

प्रस्तावना.



सर्व लोगोंको विदित करनेमें आनंद होताहै कि, “धर्माधारं हि जीवितम्” अर्थात् आयुष्य धर्मके आधार है. इस उक्तीका विचार करनेसे अपने पूर्वज लोग कैसे २५-ज्य होगये कि, जिन्होंने पश्चात् अपने लोगोंकी आचार पद्धती, तथा राजालोगोंकी व्यवहारपद्धती अखंडित चल रही है. यह उन्होंने अपने ऊपर ऐसा उपकार है कि प्रत्येक मनुष्य मात्रसे अपने आयुष्यभर तक उनकी प्रशंसा की जाय, उतनी थोड़ी है. धर्मशास्त्रमें प्रायः आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त ऐसे तीन विभाग रहते हैं. उन्होंनेसे कितनेक महर्षि लोग आचारका, कितनेक व्यवहार नीतिका और कितनेक प्रायश्चित्तका विस्तारसे उपदेश करते हैं. कितनेक सर्वोंका उपदेश करते हैं. जिसे अधिकारी पुरुषोंको ऐहिक और पारलौकिक सुखप्राप्तीके साधनका ज्ञान होके वे अपने कर्तव्यमें तत्पर रहते हैं. यह सर्व सुज्ञ पुरुषोंकूं विदित ही है.

अब प्रस्तुतमें शुक्राचार्य महर्षिजीने राजधर्मोंका जो उपदेश किया है. वह सर्व अर्थशास्त्रका समुद्र है. इसके प्रत्येक पद विचार करने योग्य हैं. यह ग्रंथ राजकीय नीतिमें तथा नित्य आचारमें अत्यंत उपयोगी है. इसके अनुसार आचरण करनेवाले महान् महान् राजालोग तथा राजकीय सर्व लोग अपरंपार सुख पाकर अपना यश इस भूमंडलपर फैला गये हैं. इससे इन शुक्राचार्यजीने जो नीतिशास्त्र निर्माण किया है. यह सर्व सुज्ञोंको शिरसा मान्य है. इसमें संदेह नहीं.

इस शुक्राचार्यविरचित शुक्रनीति ग्रंथका सांप्रतकालमें प्रकाश होनेसे जगत्के ऊपर बड़ा उपकार होगा. ऐसी अनेक देशाभिमानी लोगोंकी सूचना होनेपर हमने इस ग्रंथका पंडितवर्य महामहोपाध्याय लांसग्राम निवासी श्रीमिहिरचंद्रजीके द्वारा इसकी भाषाटीका कराके स्वकीय “श्रीवेङ्कटेश्वर” मुद्रणालयमें छापके प्रसिद्ध किया है.

सर्व सभाजनोंको विज्ञापना है कि, इस ग्रंथको अपने संग्रहमें रखके उक्त पंडितजीके परिश्रम सफल करें, इतनाही नहीं, तौ इसमें कहे आचारोंके सेवनसे अपने जन्मकोभी सफल करें ॥

आपका कृपाभिलाषी—

खेमराज—श्रीकृष्णदास

“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना—मुम्बई.

श्री: ।

भाषाटीकासहित शुक्रनीति.

अनुक्रमणिका.

विषय.	पृष्ठ.	श्लो०	विषय.	पृष्ठ.	श्लो०
अध्याय १			सर्व राष्ट्र परस्पर भेद पानेको अ-		
राजकृत्य कथन.			नीतिही कारण है.....	२	१९
मंगलाचरण.....	१	१	पूर्वजन्मके तपसेही राजाको सर्व		
दैत्यप्रश्नान्तर शुक्रोक्ति	१	२	सामर्थ्यप्राप्ति	३	२०
ब्रह्मोक्त कोटि नीतिशास्त्रका सार			कालका भेदकारण	३	२१
शुक्रनीति	१	३	राजा कालका कारण.....	३	२२
संक्षिप्त नीतिशास्त्रका प्रयोजन	१	४	राजदण्डभयसे स्वस्वधर्मप्रवृत्ति	३	२३
अन्यशास्त्र एक २ कार्यकारी....	१	४	स्वधर्मही सर्वसुखसाधन	३	२४
नीतिशास्त्र सर्वोपकारी.....	१	५	प्रजाको स्वधर्ममें तत्पर करने-		
नीतिशास्त्रका फल.....	१	५	वाले राजाके देवताभी किंकर		
नीतिशास्त्राभ्यासकी आवश्यकता	१	६	होते हैं	३	२५
नीतिशास्त्रसे कुशलत्वप्राप्ति....	१	७	बुद्धिसेअर्थवृद्धि	३	२८
व्यवहारमें व्याकरणादिकोंका			त्रिविधतपकथन	३	२९
अनुपयोग	१	७	सात्विक राजाका लक्षण.....	४	३०
सर्वलोकव्यवहार नीतिके बिना			तामसका लक्षण	४	३२
नही होता है	२	११	राजसका लक्षण	४	३३
सर्वकल्याणकारक नीतिशास्त्र	२	१२	अधमका लक्षण	४	३४
तहां नृपको अत्यावश्यक.....	२	१२	सत्त्वगुणहीमें मनकी धारणा करै	४	३५
नीतिहीनोंको शत्रु उत्पन्न होते हैं	२	१३	मनुष्यजन्मप्राप्तिका कारण.....	४	३६
प्रजापालन और दुष्टनिग्रह यह			कर्मही सबका कारण.....	४	३७
राजाका धर्म	२	१४	गुणकर्मोंसे ब्राह्मणादिक होते हैं	४	३८
अनीतिसे राजाको भयप्राप्ति....	२	१५	ब्रह्माजीसे सबकी उत्पत्ति.....	४	३९
अनीतिमान् और स्वतंत्र स्वा-			ब्राह्मणका लक्षण	४	४०
मीके सेवाका निषेध	२	१६	क्षत्रियका लक्षण	४	४१
जहां नीति और बल तहां लक्ष्मी	२	१७	वैश्यका लक्षण.....	४	४२
बिना आज्ञाके हितकारक प्रजा			शूद्रका लक्षण	५	४३
हो ऐसी नीति राजाने धारण			म्लेच्छका लक्षण.....	५	४४
करजी	२	१८	पूर्वकर्मकेही अनुसार बुद्धि और		
			फल प्राप्त होता है.....	५	४५

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
बुद्धिमान् पौरुषको और असमर्थ		राजाओंका आठ प्रकारका वृत्त	१२ २३
दैवको मानते हैं.....	५ ४८	अधम राजाका लक्षण.....	१२ २६
कर्म दो प्रकारका है	५ ४९	विनाशोन्मुख राजाका ल०....	१२ २७
पूर्वकर्मकी आवश्यकता	५ ५२	राजाने दूतद्वारा स्ववृत्तका श्रव-	
कोई पौरुषही मानते हैं	६ ५३	ण करना	१२ २९
पुरुषार्थसे दैवभी अन्यथा होता है	६ ५४	लोकापवाद बलवत्तर है.....	१३ ३४
दैव तीन प्रकारका.....	६ ५५	यौवनादिक ६ छः चंचल हैं....	१३ ३८
प्रतिकूल दैवका उदाहरण.....	६ ५६	राजाके दुर्गुण	१३ ३९
अनुकूल दैवका उदाहरण.....	६ ५७	राजाको विपत्तिकारण	१४ ४१
दैवप्रतिकूलतामें सत्कर्मभी अ-		राजाको दुःखऔर सुखका साधन	१४ ४२
निष्ठ होता है	६ ५८	गुरुका सेवन	१४ ४६
सत्कर्माचरणही श्रेष्ठ है	६ ५९	पंडित राजाका लक्षण.....	१४ ४८
राज्यके सात अंग.....	६ ६१	आन्वीक्षिक्यादिचतुर्दश विद्या	१४ ५१
राजाके गुण.....	७ ६४	चतुर्दश विद्याओंका विषय....	१५ ५२
अनीतिमान् राजासे अनर्थ....	७ ६५	त्रयीका लक्षण	१५ ५४
धर्माधर्मसे इष्टानिष्ठ फल	७ ६८	वार्तालक्षण	१६ ५५
इससे धर्मसेही द्रव्यसंचय.....	७ ६९	दंडनीतिशब्दका अर्थ	१५ ५६
इंद्रादिकोंका अंश राजा	७ ७२	अहिंसा परम धर्म है	१५ ५८
धर्माधर्म और सदसत्कर्मका प्र-		सज्जनसंगति करे	१५ ६०
ति राजा है.....	७ ७३	दुर्जनसंगतिको त्यागकरे.....	१६ ६२
सात गुणोंका वर्णन....	७ ७४	कठोर भाषण न करे.....	१६ ६५
क्षमाकी आवश्यकता	८ ८२	मृदु भाषण करे	१६ ६६
राजाका लक्षण.....	८ ८५	दयादिक वशीकरण है.....	१६ ७०
सांश राजाका लक्षण.....	८ ८६	मित्रादिकोंको वश करनेका	
राजाको विनयकी आवश्यकता	९ ९१	साधन	१६ ७३
राजाने मनको वश करना....	१० ९७	राजाको असाधारण गुणकी	
सब विषय अनर्थहेतु हैं.....	१० १०१	आवश्यकता	१६ ७७
शब्दादि पांच विषयोंका उदाह०	१० २	पृथ्वी सब धनोंकी खानी है....	१७ ७८
श्रुतादिकोंकी निंदा और स्तुति	११ ८	सर्वदा धनका संचय करना....	१७ ८०
राजाने परस्त्रीका अभिलाष नहि		सामंतादिकोंका लक्षण	१७ ८२
करना	११ १३	अनुसामंतादिकोंका लक्षण....	१८ ८८
गृहकार्यमें स्त्री सहाय है.....	११ १४	ग्रामादिकोंका लक्षण	१८ ९२
मदिरापानकी परिमिति	११ १५	ब्रह्मके कोशादिकोंका लक्षण....	१८ ९३
तपका और पापका फल.....	१२ २१	अंगुलादिकोंका प्रमाण	१९ ९५

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
प्राजापत्य और मनुमानकी व्यवस्था	२० ८	राजाज्ञावर्णन	२७ ९३
भागके बिना भूमिको न छोड़ें	२० २०	अपनी आज्ञाको लिखकर चौरा- हामें रखना.....	२९ ३१२
देवतादिकोंके निमित्त पृथ्वीको देदे	२० ११	राजाने पथिकोंका रक्षण हरप्रय- त्नसे करना	२९ १४
राजधानीस्थानवर्णन	२० १२	राजाके द्रव्यका ६ छः विभाग	२९ १६
राजगृहनिर्माणप्रकार	२१ १८	राजा शूरत्वादिकोंका त्याग न करे	२९ १८
इतर गृहादिकोंके सामने द्वार- निषेध	२२ ३२	शूरादिकोंका लक्षण	३० १९
इतर गवाक्षके सामने गवाक्ष न बनावें	२२ ३४	विषयुक्त अन्नकी परीक्षा.....	३० २५
प्राकारका प्रमाण.....	२२ ३६	अन्नका निषेध.....	३० २७
परित्वाका प्रमाण	२२ ३९	राजा मंत्रियोंसहित कोई निवे- दनको सुने	३० २९
युद्धसामग्री आदिरहितदुर्गका निषेध	२३ ४०	विहार वर्गीचामें करे.....	३० २९
राजसभाका प्रमाण और वर्णन	२३ ४२	प्रातःकाल और संध्यासमय क- वायद करावे और करे	३१ ३०
मंत्री आदिकोंके लिये सभा....	२३ ४९	मृगयामें गुण और दोष	३१ ३२
सेनानिवेशस्थान	२४ ५१	गृहचारियोंसे प्रजादिकोंका अ- भिप्राय सुने	३१ ३३
धनी आदिकोंके गृहोंका क्रम	२४ ५१	म्लेच्छ राजाके लक्षण.....	३१ ३६
धर्मशालावर्णन	२४ ५६	राजा गृहचारीको पहचाने.....	३१ ३७
वजारमें सजातियोंकी पृथक् २ दुकान बनावें	२४ ५७	राज्याधिकारिनिर्णय	३१ ४१
राजमार्गादिकोंका प्रमाण.....	२४ ५९	राज्यविभागका निषेध.....	३२ ४५
मार्गवर्णन	२५ ६५	अन्याधिकारिनिर्णय	३२ ४६
धर्मशालाकी व्यवस्था.....	२५ ६९	मंत्रियोंके संग एकांतका समय.	३२ ५०
पथिकोंकी व्यवस्था	२६ ७४	राजासनादिकोंका स्थाननिर्णय.	३२ ५२
राजाका रात्रिके पश्चिमभागमें कृत्य	२६ ७५	भद्रासनपर राजाका वर्तन.....	३३ ६१
राजाका दिनका कृत्य	२६ ७८	भृत्यको विद्या और कलाओंका अभ्यास करावे.....	३४ ६६
रात्रिके पूर्वभागमें कृत्य.....	२६ ८२	राजयानपर नीचको न बैठावे....	३४ ७०
कार्यस्थानरक्षणप्रकार	२७ ८६	प्रतिवर्ष स्वयं ग्रामादिको देखें.	३४ ७३
चौकीदारोंसे राजा गृहवृत्त सुने	२७ ८९	अनेकप्रजाद्वेषी अधिकारीको त्यागदे	३५ ७५
राजा रात्रिमें चार २ घड़ी सदा विचरे	२७ ९१	भोगयोग्य स्त्रीके लक्षण	३५ ७८
राजाका प्रजाशासनप्रकार	२७ ९२		

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
राजा दो प्रहर निद्रा करै.....	३५ ७९	औरस पुत्रके अभावमें दौहित्र.	४० ३२
आपत्तिमें किल्ला, पर्वत इनका		दौहित्राभावमें दत्तक पुत्र.....	४० ३३
आश्रय करै	३५ ८०	युवराजका वर्तन	४० ३६
उसीसमय चोरोसे राज्यग्रहण		पिताकी आज्ञाही पुत्रको भूषण है	४० ३८
करै	३५ ८१	संपूर्ण भ्राताओंमें अपनी आधि-	
परस्त्री और कुलीन कन्याको		कता न दिखावै	४० ४१
दूषित न करै.....	३६ ८४	पित्राज्ञोल्लंघनका दुष्ट फल.....	४१ ४१
प्रयत्न विफल देखकर तप क-		पिता प्रसन्न हो ऐसेही आचरण	
रिके स्वर्गमें गमन करै.....	३६ ३८५	करै	४१ ४३
अध्याय २.		चुगलको महान् दंड करै.....	४१ ४६
युवराजादिकृत्यकथन.		पित्रादिकोंको नमस्कार करै....	४१ ४७
एकाकी राजाको राज्य दुष्कर		इसप्रकार आचरणशील राजपु-	
होता है.....	३७ १	त्रको फल	४१ ५१
व्यवहार मंत्रियोंके बिना न करै	३७ २	अब मंत्री आदिकोंके संक्षेपसे	
सभासदादिकोंके मतमें स्थित		कार्य और लक्षण कहते हैं.	४२ ५२
रहै	३७ ३	केवल जाति और कुलहीको न	
स्वतंत्रता अनर्थकारी है.....	३७ ४	देखै	४२ ५४
राजाको सहायताकी आवश्यक-		विवाह और भोजनमें कुलजाति-	
कता	३७ ५	विवेक	४२ ५६
सहायोंके गुण	३७ ८	श्रेष्ठभृत्यका लक्षण	४२ ५८
निष्ठ सहायकसे अनिष्ट फल....	३८ १०	निष्ठभृत्यका लक्षण	४३ ६५
युवराजादिक राजाके अंग हैं....	३८ १२	दश प्रकृतियोंका नाम	४३ ६९
यौवराज्यके अधिकारी	३८ १४	आठ प्रकृतियोंका नाम	४३ ७२
अन्य राजपुत्रोंका यत्नसे रक्षण		पुरोहितादिकोंका अधिकार	४४ ७४
करै	३८ १७	पुरोहितादिकोंका लक्षण	४४ ७७
रक्षण न करनेसे अनर्थ	३९ २०	प्रतिनिधिकाकार्य	४५ ८७
अपने पुत्रोंको नीतिशास्त्रादिकोंमें		प्रधानका कृत्य	४५ ८९
कुशल करै.....	३९ २२	सचिवकृत्य.....	४६ ९४
अविनीत युवराजसे अनर्थ	३९ २५	मंत्रिकार्य	४६ ९५
दुष्टभी राजपुत्रका त्याग न करै.	३९ २६	प्राङ्गविवाक कृत्य.....	४६ ९८
व्यसनी राजपुत्रका वशोपाय....	३९ २७	पंडितकृत्य	४६ ९९
दुष्ट दायादको सिंह आदिसे		सुमंत्रकार्य	४६ १०१
मरवादे	३९ २८	अमात्यकृत्य	४७ ३
दत्त आदि अपने पुत्र ऐसे न माने	४० ३१	राजा अन्योन्यके स्थानपर अन्यो-	
		न्यकी योजना करै	४७ ७

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
राजाके समीप ऊँचे स्वरसे हंसी		राजपत्नी आदिकोंका अपमान	
वगैरेका निषेध ५७	१८	न करे ६१	५८
हितकारी सेवकका कृत्य..... ५८	२१	नृपाहृत त्वरित गमन करे ६१	५९
राजा किसी मिषसे प्रजाको दुःखि-		अदत्त राजद्रव्यका निषेध..... ६१	६०
त न करे..... ५८	२६	द्रव्यलोभसे अन्यकार्यको नष्ट	
विद्वान् अपने २ कार्यमें नियुक्त		न करे ६१	६१
रहै ५८	२७	लुत्कोचग्रहणनिषेध ६१	६२
अन्याधिकारकी इच्छा न करे ५८	२८	राज्यरक्षणप्रकार ६१	६३
स्वामीके गुप्तकार्य और मंत्रका		अधार्मिक राजाका लक्षण ६२	६४
प्रकाश न करे..... ५८	३०	राष्ट्रविनाशक राजाका त्याग.... ६२	६५
राजाको मित्र न माने..... ५९	३१	अस्त्रधारियोंका अवस्थाननियम ६२	६६
स्त्री आदिकोंका सद्व्यसननिषेध ५९	३२	सभामें पुरोहितादिकोंका तार-	
संपन्न होकरभी राजवेष न करे ५९	३३	तम्य ६२	६७
राजदत्त भूषणादिकको सदा धरे ५९	३५	राजा पुरोहितादिकोंका क्रमसे	
आपत्कालमें स्वामीको न त्यागे ५९	३७	पुरोगमनादिक सत्कार करे ६२	७१
अन्नदाताका इष्टचिंतन करे.... ५९	३८	राजाका त्रिविध वर्तन..... ६२	७३
अत्यंत सेवनसे अप्रधानभी प्रधा		भृत्यादिके संग परिहासादि कर-	
न होता है..... ५९	३९	नेसे अनर्थ..... ६३	७५
सहसा कार्यको न करे..... ५९	४१	भृत्य राजलेखके विना कार्य न	
राजप्रियकी अनिष्टचिंतना न करे ६०	४२	करे..... ६३	८१
सदाचारी राजा और अधिकारी		लिखें विना आज्ञा दे और कार्य	
इनकी लक्ष्मी स्थिर होती है ६०	४४	करें वे दोनों चोर हैं..... ६३	८२
प्रच्छन्नवैरिसेवकोंका लक्षण ६०	४५	राजादिकोंके लेखका तारतम्य ६३	८४
चोरराजाका लक्षण ६०	४७	लेखकी आवश्यकता..... ६४	८८
प्रच्छन्न तस्करोंका लक्षण..... ६०	४८	लेखके दो त्रुटि ६४	८९
मंत्री बालकभी राजपुत्रोंका अप		जयपत्रलक्षण ६४	९०
मान न करे..... ६०	४९	आज्ञापत्रलक्षण ६४	९१
राजपुत्रका दुराचार राजाको न		प्रज्ञापत्रलक्षण ६४	९२
अस्त्रवै ६०	५०	शासनपत्रलक्षण ६४	९३
ज्ञातस्पर रहै..... ६०	५२	प्रसादपत्रलक्षण ६४	९४
हित्कार्यमें प्राणोंकोभी दग्ध		भोगपत्रलक्षण ६४	९५
करदे..... ६१	५३	भागलेख्यलक्षण ६५	९६
अन्यथाधनहरण स्वनाशक है ६१	५५	दानपत्रलक्षण ६५	९७
राजादिकोंकी योग्यता ६१	५६	क्रयणलेख्यलक्षण..... ६५	९८

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
संवित्पत्रलक्षण	६५ १९	द्रव्य और धनका लक्षण.....	६९ ४६
ऋणलेख्यलक्षण	६५ ३०१	मूल्यका न्यूनाधिक्यकारण.....	६९ ४९
शुद्धिपत्रलक्षण.....	६५ २	पत्रलेखनप्रकार.....	७० ५१
सामायिकपत्रलक्षण.....	६५ ३	सब लेखपर राजमुद्रा.....	७० ५९
संमतिपत्र	६५ ४	पत्रमें आयव्ययलेखनका स्थान-	
क्षेमपत्रलक्षण	६५ ५	विचार	७१ ६२
भाषापत्रलक्षण	६६ ९	व्यापकव्याप्यलक्षण	७१ ६६
आयधनलक्षण	६६ १२	स्थानटिप्पणादिक भेद	७१ ६९
व्ययधनलक्षण	६६ १३	शेषायव्ययस्थलायव्ययज्ञान	७१ ७२
संचितधनलक्षण	६६ १३	तिथ्यादिकभी अवश्य लिखनी	७२ ७४
व्यय दो प्रकारका.....	६६ १४	गुंजादिकोंका लक्षण	७२ ७७
संचित तीन प्रकारका.....	६६ १४	प्रस्थापादलक्षण	७२ ७९
निश्चितान्यस्वामिक संचित		संख्याका प्रमाण	७२ ८०
त्रिविध है.....	६६ १५	संख्या अनंत है	७२ ८१
औपनिष्यादिकोंका लक्षण.....	६६ १६	एकादि पदार्थ संख्याओंका नाम	७२ ८२
स्वस्वत्वनिश्चित द्विविध	६७ १८	कालमान	७२ ८३
साहजिकलक्षण	६७ १९	चांदादिकोंकी व्यवस्था	७३ ८४
आधिकधनलक्षण	६७ २१	भृति तीन प्रकारकी.....	७३ ८५
पार्थिव आयलक्षण	६७ २३	कार्यमानादिकोंका लक्षण.....	७३ ८६
व्ययके दो प्रकार	६७ २६	मध्यमादि भृतिकालक्षण.....	७३ ८९
निधि और उपनिधिका लक्षण.....	६८ २८	पोषणयोग्य भृति नियत करै....	७३ ९१
विनिमय और आधमर्णका ल०	६८ २९	हीन भृति देनेसे अनर्थ.....	७३ ९३
ऋण दो प्रकारका	६८ ३०	शुद्धादिकोंको अन्नाच्छादनमात्र	
ऐहिकपारलौकिकोंका ल०.....	६८ ३१	भृति	७३ ९४
प्रतिदानलक्षण	६८ ३२	भृत्यके तीन भेद.....	७४ ९६
पारितोषिकलक्षण	६८ ३३	भृत्यको छुट्टी देनेका नियम....	७४ ९७
उपभोग्यलक्षण	६८ ३४	रोगके समय भृतिदानप्रकार....	७४ ९९
भोग्यलक्षण	६८ ३५	वारं रोगग्रस्तके जगह प्रति-	
आयव्ययलेखनप्रकार	६८ ३९	निधि	७४ ४०१
मानादिकोंसे आयादिकोंके अने-		सेवाके विनाही भृतिदान	७४ २
क भेद	६९ ४२	कटुभाषी भृत्यका भृतिदानप्रकार	७५ ७
मानादिकोंका लक्षण	६९ ४४	राजाका भृत्यके संग वर्तन	७५ ८
व्यवहारार्थ चांदी आदिको मु-		भृत्यको कार्यमुद्रासे अंकित करै	७६ १५
द्रित करै	६९ ४५	अपना विशिष्ट चिह्न किसीकोभी	
		न दे	७६ १७

विषय.	पृष्ठ. श्लो०
दश प्रकृतियोंका जातिनियम ७६	१८
शूद्र पुरोहितादिकोंका निषेध ७६	१९
भागवती और साहसाधिपति	
क्षत्रिय	७६ १९
ग्रामाधिपदिकोंके विषे जातिनियम ७६	२०
सेनापति शूद्रों नियुक्त करना ७६	२२
राजाको त्यागने योग्य दुष्ट गुण ७६	४३

इति युवराजादिकृत्यकथननामक
द्वितीयोऽध्यायः ॥

अध्याय ३

साधारणनीतिशास्त्रकथन.

सर्वोंकी सुखके अर्थ प्रवृत्ति है ७७	१
धर्मके बिना सुख नहीं होता.... ७७	२
सर्वसाधारण विहिताचरणकथन ७७	३
निषिद्धाचरणकथन..... ७७	६
दशविध पाप..... ७८	७
दरिद्री आदिकोंका रक्षण करै.... ७८	८
समयपर हित और मित वचन कहै ७८	१०
दूसरेको अपने अपमान आदिको प्रकट न करै	७८ १२
पराराधनपंडितपुरुषका वर्तन.... ७८	१३
इंद्रियोंको वश करै..... ७८	१४
इंद्रियोंको वश न करनेसे अनर्थ ७८	१५
स्त्रियोंका स्पर्श भी अनर्थकारक है ७८	१६
स्त्रियोंका संवोधनप्रकार..... ७९	१८
एक क्षणभी स्त्रियोंको स्वातंत्र्य न दे	७९ १९
यत्नसे स्त्रियोंकी रक्षा करै..... ७९	२२
चैत्यादिकोंका अतिक्रमणनिषेध ७९	२३
नदीतरणादिनिषेध	७९ २४
बहुत दिनतक खड़े पदार्थ न खाय ७९	२६
रात्रिके समय वृक्षपर न रहै..... ७९	२७

विषय.	पृष्ठ. श्लो०
चत्वारदिको दिनमेंभी न सेवै ७९	२८
सूर्यको निरंतर न देखे..... ८०	२९
संध्याके समय भोजनादिकोंका निषेध	८० ३०
व्यवहारमें लोकही आचार्य है.... ८०	३१
राजादि सद्धर्ममें दूषण न लगावै ८०	३२
आग्रहपूर्वक भाषण न करै.... ८०	३३
किंचितभी पापका स्मरण न करै ८०	३५
सारको यत्नसे ग्रहण करै..... ८०	३७
श्रुत्यादिकविहित कर्मको करै ८०	३८
राजा अधर्मनिरतमित्रादिकोंका- भी त्याग करै	८१ ३९
छः आततायियोंका लक्षण.... ८१	४०
स्त्री आदिकी एकक्षणभी उपे- क्षा न करै	८१ ४१
जहां विरुद्धराजादिक हो वहां एकदिनभी न बसे	८१ ४२
जहां अविवेकी राजादिक हो वहां धनादिककी इच्छा न करै.... ८१	४४
मात्रादिक पालनादिक न करै तो शोकक्री क्या बात है	८१ ४६
राजादिकोंकी सावधानपन्तेसे, सेवा करै	८१ ४९
मात्रादिकोंके संग विरोधादिक न करै	८१ ५०
स्त्री आदिके संग विवाद न करै ८२	५१
अकेला भोजनादिक न करै.... ८२	५२
अन्यधर्मका सेवन न करै..... ८२	५३
त्याज्य छः दोष..... ८२	५४
बिनापूछे किसीसे न कहै	८२ ५९
अनुभवके बिना स्वाभिप्रायको न दिखावै	८२ ६०
दंपती आदिकी साक्षी न दे.... ८३	६१
किसीके मर्मको स्पर्श न करै.... ८३	६२

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
अश्लील कीर्तनादिकोंका निषेध	८३ ६३	वार्ता करते हुए पुरुषोंके	
अपने बनाये हेतुसे किसीको		बीचमें न जाय.....	८६ ९९
झुंठित न करै.....	८३ ६४	सपुत्र और सपुत्र कन्याको घर	
शत्रुसेभी गुण ग्रहण करने	८३ ६५	न बसावै.....	८६ १०
प्रारब्धसे धनी और निर्धन होता है	८३ ६६	सधन और समर्तक भागिनीको	
दीर्घदर्शिका लक्षण	८३ ६७	घर न बसावै.....	८६ २
प्रत्युत्पन्नमतिलक्षण	८३ ६९	अग्नि आदिको अल्प समझके	
आलसी मनुष्यका लक्षण.....	८३ ७०	अपमान न करै	८६ २
साहसी मनुष्यका लक्षण	८३ ७१	ऋणादिकोंके शेषकी रक्षान करै	८६ ४
चिरकारी मनुष्यका लक्षण	८४ ७२	याचकादिकोंके संग वर्तन	८७ ५.
कदापि सहसा कर्मको न करै	८४ ७४	दाता आदिकी कीर्तिहीको सुनै	८७ ६
मित्रकी प्राप्तिके लिये यत्न करै	८४ ७६	समयपरपरिमित भोजन करै....	८७ ७
विश्वस्तकाभी अत्यन्त विश्वास न		विहारादिकको एकांतमें करै....	८७ ८
करै	८४ ७७	मधुराधिक षड्स अन्नको प्रीतिसे	
प्रामाणिकादिकोंका विश्वास		भक्षण करै	८७ ९
सदैव करै	८४ ७८	विहार स्वस्त्रीके साथ करै.....	८७ १०
उग्रदंड और कटुवचनका		दीनादिकोंका उपहास न करै	८७ ११
निषेध	८४ ८१	कार्यसाधकका कृत्य.....	८७ १२
कटुवचन और मृदुभाषणका		किसीको अनिष्ट न कहै	८७ १३
फल.....	८४ ८२	राजादिकोंका आज्ञाभंगनिषेध....	८७ १४
विद्यादिकोंसे प्रमत्त न हो....	८५ ८३	असत्कार्यकारी गुरुकोभी बोध करै	८७ १४
विद्यामत्तको अनर्थ फल.....	८५ ८४	कार्यबोधक छोटेकाभी उल्लंघन	
शौर्यमत्तको अनर्थ फल.....	८५ ८५	न करै	८८ १५
श्रीमत्तपुरुषकी स्थिति	८५ ८६	तरुणीको स्वतंत्र छोडकर कहीं	
अभिजनामत्तकी स्थिति	८५ ८७	न जाय.....	८८ १५
व्रलमत्तवर्तन	८५ ८८	साध्वी भार्यादिकोंका यत्नसे	
मानमत्तवर्तन	८५ ८९	पालन करै.....	८८ १७
विद्यादिकोंका फल	८५ ९०	जीतेही मृततुल्य है	८९ २१
सुविद्यादिकको नीचसेभी ग्रहण		आयुरादिक नव गुप्त करै.....	८८ २४
करै	८५ ९३	देशाटनादिकको करै	८८ २५
नष्टवस्तुकी उपेक्षा करै.....	८५ ९४	देशाटनादिकोंसे लाभ.....	८९ २७
परद्रव्यहरणादिकोंका निषेध....	८६ ९५	केवल स्वार्थ अन्नपचनका निषेध	८९ ३४
प्राणनाशादिकोंमें अनृत बोलै.	८६ ९७	गुरु आदिकोंको मार्ग छोड दे	८९ ३५
स्त्रीपुरुष आदिमें भेद न करै....	८६ ९८	शकटादिकोंसे दूर चलनेका	
		नियम	८९ ३६

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
शृंगी आदिका विश्वास न करे	१० ३७	कन्यालक्षण	१३ ६९
गमनादिकोंका निषेध	१० ३८	विद्या और धनका संचय करे	१३ ७०
बड़ोंकी आज्ञाके विना साथ न करे	१० ४०	धनार्जनका उपयोग	१३ ७१
निन्दितभी कर्म श्रेष्ठको भूषण होता है	१० ४१	विद्या धनसे श्रेष्ठ है	१३ ७४
श्रेष्ठके संमुख न टिके	१० ४२	अवश्य धन संपादन करे	१३ ७७
मूर्खको स्वामी बनानेकी इच्छा न करे	१० ४३	धनका प्रभाव	१४ ७९
आवश्यक कार्य पाहिले करे	१० ४४	लेखकी आवश्यकता	१४ ८१
पित्राज्ञा श्रेष्ठ है	१० ४५	लेखके विना व्यवहारनिषेध	१४ ८२
जगतकी वश करनेके उपाय	१० ४७	मैत्र्यर्थ विनाव्याजभी धन दे	१४ ८३
वशकरनेके उपाय दुर्जनके विषय व्यर्थ है	११ ४९	संबंध इत्यादि अवश्य लिख	१४ ८४
श्रुति आदिका अभ्यास हित-कारी है	११ ५०	धन देनेका निषेध	१४ ८६
मनुष्योंके चार व्यसन	११ ५१	आहारादिकोंमें लज्जा त्याग दे	१४ ८६
कूटव्यवहारादिकोंका निषेध	११ ५२	यदि मनुष्य जीवेगा तो सैंकड़ों आनंदोंको देखेगा	१४ ८९
विहितकार्यकथन	११ ५३	पिता सदार और प्रौढ पुत्रोंको धनका विभाग करे	१५ ९०
अनिन्दितका लक्षण	११ ५३	विभागके न करनेसे अनर्थ	१५ ९१
श्रेष्ठका अनुकरण न करे	११ ५६	व्याजी धनका विभाग न करे	१५ ९२
सर्प आदिपर एकाकी न गमन करे	११ ५७	जो ऋण देना हो उसकोभी न बांटे	१५ ९३
मारनेहारे गुरुकोभी मारै	११ ५७	विना साक्षी और विना ऋणपत्र धन न दे	१५ ९६
कलहमें सहायता न करे	१२ ५८	उत्तमोत्तमादिक पुद्गलोंका लक्षण	१५ ९६
गुरु आदिके आगे प्रौढपाद न बैठे	१२ ५९	दानके विना एक दिनभी व्य-तीत न करे	१५ ९९
उत्तम पुरुषका लक्षण	१२ ६०	दान और धर्म अतिशीघ्रतासे करे	१५ २००
सोलहवर्षसे ऊपर पुत्रको ताडन न करे	१२ ६१	दानधर्मके विना परलोकमें स-हायक नहीं	१६ १
दौहित्र आदिक पुत्राधिक हैं	१२ ६२	दानसे शत्रुभी मित्र होता है	१६ २
स्वामीका लक्षण	१२ ६४	पारलोक्ष्यादिदानका लक्षण	१६ २
छींके संग एकशय्यानिषेध	१२ ६४	आराध्यदेवको अत्यंत उत्तम माने	१६ ७
वर और मित्रकी परीक्षा	१२ ६५	दानके विना वशीकर वस्तु नहीं	१६ ८
विवाहमें कुलादिकोंकी अपेक्षा	१२ ६८	दानका फल	१६ ९
		विचार कर स्नेह वा द्वेषको करे	१६ ९

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
सब आतिको वर्ज दे	९६ १०	प्रीतिकृत्पिताका लक्षण	१०० ४४
आतिक्रौर्यादिकोंसे आनिष्ट फल ९७	१२	मित्रका लक्षण.....	१०० ४५
मध्यम प्रकारका आचरण करे ९७	१४	दारिद्र्यका कारण.....	१०० ४६
देवादिकोंका स्वामी होनेकी		दुःखके कारण	१०० ४८
इच्छा न करे.....	९७ १५	स्त्रियोंकी यथेष्ट कामना न करे	
इनके भजनादिकी इच्छा करे ९७	१६	वह सुखभागी नहीं होता १००	५०
तरुणी आदिको पराधीन न करे ९७	१७	स्त्री वश होनेका उपाय	१०० ५१
अल्प कारणसे बड़े अर्थको न त्यागे ९७	१८	मधुरभाग आदिक निर्जनत्वा-	
अधिक खर्चके भयसे सत्की-		दिकोंकी इच्छा करते हैं	१०१ ५५
र्तियोंको न त्यागे.....	९७ १९	मूर्खमनुष्यका कृत्य	१०१ ५९
दूसरा उदास हो ऐसे वचनको		सत्त्वगुणाधिक श्रेष्ठ है	१०१ ६०
विनोदमेंभी न कहे.....	९७ २०	ब्राह्मण अपने कर्मसे सबसे अ-	
कठोर वचनसे मित्रभी शत्रु होता है ९८	२२	धिक होता है	१०१ ६१
स्ववलाधिक शत्रुको काँधपरभी		स्वधर्मस्थ ब्राह्मणको देखकर	
लेचले	९८ २३	क्षत्रियादिक डरते हैं.....	१०१ ६२
मनुष्यको सौजन्य भूषण है....	९८ २४	जिसमें धर्महानि न हो वही	
अश्वादिकोंमें वेगादिक भूषण है ९८	२५	वृत्ति श्रेष्ठ है	१०१ ६३
इनके विपरीत दुर्भूषण है.....	९८ २८	सबसे कृषिवृत्ति उत्तम है....	१०२ ६४
एकही नायक होयतो शोभा है ९८	२९	याश्चा अधमतर वृत्ति है....	१०२ ६५
हिंस्रकी उपेक्षा न करे.....	९८ २९	कचित् सेवाभी उत्तम वृत्ति है १०२	६५
पैशुन्यादिक दोष गुणियोंकेभी गु-		अध्वर्यादिकोंसे महाधनी	
णोंका छानन करते हैं.....	९८ ३०	नहीं होता.....	१०२ ६६
बाल्यादिक अवस्थामें मात्रादि-		राजसेवाके विना विपुल धन	
कोंका नाश यह महापाप-		नहीं होता.....	१०२ ६७
फल है.....	९८ ३१	राजसेवा अतिकठिन है.....	१०२ ६८
आनिष्टप्राप्तिकारण	९८ ३२	दूरस्थभी समीप है	१०२ ७०
नररूपधारी पशुका लक्षण.....	९९ ३४	पहिले निर्धनत्व होना	१०२ ७२
खलका लक्षण.....	९९ ३६	पहिले पादगमन सुखदायी है १०२	७३
आशाबद्धको जगत्भी पर्याप्त-		मृतापत्यत्वसे अनपत्यत्व श्रेष्ठ	
नहीं है.....	९९ ३७	है	१०२ ७४
धूर्तपुरुषका कर्म	९९ ३९	अल्पज्ञतासे मूर्खता अच्छी....	१०३ ७५
प्रीतिकारक पुत्रका लक्षण....	९९ ४०	पहिले सुखकारी पीछे दुःख-	
प्रीतिदा स्त्रीका लक्षण	९९ ४२	कारी	१०३ ७७
प्रीतिदा और दुःखदा माताका		कुमन्त्री आदिकोंसे राजादिकोंका	
लक्षण.....	९९ ४३	नाश होता है.....	१०३ ७८

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
हस्त्यादिक संसर्गगुणधारक है	१०३ ७९	प्रत्यक्षादि चार प्रमाणोंसे व्यव-	
जयादि त्रितय अधिकारसे मि-		हार ज्ञान होता है	१०६ १२
लता है.....	१०३ ८०	तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥	
गृहस्थियोंको दश सुखदायक	१०३ ८१		
अंतःपुरमें नियुक्त करने योग्य	१०३ ८२		
कालनियमसे कार्योंको कर....	१०३ ८३		
अर्थ धर्म आदिमें आत्मा आ-			
दिको नियुक्त करे	१०३ ८४	अध्याय ४	
अपत्यरहित भार्या आदिक छः		मिश्रप्रकरणवचन	
परदेशमें सुखदायी होते हैं	१०४ ८५	मित्र और शत्रु चार प्रकारके	१०७ २
राजाभी हृष्टमार्गमें अच्छे यानसे		मित्रका लक्षण	१०७ ३
गमन न करे	१०४ ८७	वैरिका लक्षण.....	१०७ ५
शीघ्र जरा करनेवाले.....	१०४ ८९	कृत्रिम और सहज ऐसे दो मित्र	
प्रिय होनेका उपाय	१०४ ९१	और शत्रु हैं	१०८ १०
अप्रिय होनेका कारण	१०४ ९२	सहज मित्रका लक्षण.....	१०८ ११
स्तुतिसे देवताभी वशमें होते		सहज शत्रुका लक्षण.....	१०८ १४
हैं	१०४ ९३	परस्पर शत्रुका लक्षण.....	१०८ १५
स्वदुर्गुणोंको स्वयं विचारे	१०४ ९४	प्रजाशत्रुका लक्षण	१०८ १६
सबसे अधिकका लक्षण.....	१०४ ९४	शत्रुदासीनमित्रोंका लक्षण....	१०८ १७
साधुलक्षण.....	१०५ ९७	मित्र और शत्रुओंके संग राजा-	
खलकर्म	१०५ ९८	का आचरण.....	१०९ २०
कलहकारक क्रीडा न करे....	१०५ ९८	सामादिकोंका विचार स्वयु-	
विनोदमेंभी शाप न दे	१०५ ९९	क्तियोंसे करे	१०९ २३
मित्रकी गोप्य वस्तुका वैरी		मित्रता होनेका कारण	१०९ २४
होनेपरभी प्रकाश न करे	१०५ ३००	मित्रके विषय सामादिप्रकार	१०९ २५
वलवानके विपरीतको न कहे	१०५ २	उदासीनभी शत्रु होता है	१०९ २७
पराये घरमें जाकर तत्त्वोंको न		शत्रुके लिये सामादिप्रकार	१०९ २८
देखे	१०५ ४	सामादिकोंका क्रम	११० ३४
अन्यके अपराधी बालकको		शत्रुभेदसे सामादिकोंकीव्यवस्था	१२० ३५
शिक्षा न दे.....	१०५ ५	मित्रके लिये सामदानही	
अन्यविवादको ग्रहण कर कि-		होते हैं.....	११० ३६
सीके संग विवाद न करे	१०६ ८	रिपुपीडितोंका साम और दानसे	
पारतंत्र्यसे परे दुःख और स्वतं-		संग्रह करे.....	११० ३७
त्रतासे परे सुख नहीं	१०६ १०	स्वप्रजाओंका साम और	
		दानसेही पालन करे	११० ३८
		विपरीत करनेसे राज्यनाश	
		होता है	११० ३९

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
दंडका लक्षण.....	११० ४०	तनुस्त्रुमुवैशुतादनयोग्य-	
दंडका प्रभाव.....	१११ ४३	लक्षण	११५ ८५
राजा सदैव धर्मरक्षाके लिये		देहकी पीठपर मारे	११५ ८६
दंडधारी हो	१११ ४६	नीच कर्म करनेवालेको दंड	११५ ८७
दंडही संपूर्णधर्मोका उत्तम		वधकी शिक्षा कदापि न करे	११५ ८८
शरण है	१११ ४८	असहायको दंड न दे.....	११५ ९०
दुर्जनोको हिंसा अहिंसा होती है	१११ ४९	प्रजा क्षुब्ध होनेका कारण....	११५ ९१
दंड देनेसे राजाको इष्टानिष्ट-		देशपार करने योग्यका लक्षण	११५ ९३
फलकथनका कारण.....	१११ ५०	मार्गसंरक्षणयोग्योका लक्षण	११६ ५
कलियुगमें आधा दंड कहा है	११२ ५४	राजा संसर्गद्वीपतको दंड देकर	
युगप्रवर्तक राजा हैं	११२ ५५	सन्मार्गकी शिक्षा दे.....	११७ ६
धर्मिष्ठ प्रजा होनेका कारण....	११२ ५७	राजादिकोंका विगाड करने-	
पापी राजाके राज्यमें समयपर		वालेको शीघ्रही नष्ट कर दे	११७ ७
भेषवृष्टि नहीं होती	११२ ५८	गणदुष्टता हो तब उपाय....	११७ ८
स्वर्ण और क्रोधी राजाका		प्रजा अधर्मशील राजाको सदैव	
निषेध	११२ ५९	भय दे.....	११७ ९
राजा काम क्रोध और लोभकी		अधर्मशील राजा और प्रजा	
त्यागदे.....	११३ ६२	तत्काल नष्ट हो जाते हैं....	११७ १०
सूचकसे देश नष्ट होता है....	११३ ६३	मात्रादिकोंका त्याग करे तो	
उत्तम राजाका लक्षण.....	११३ ६४	गिगढवद्धनकरे	११७ ११
राजा पहिले आत्माको नष्ट करे	११३ ६४	उत्तमादिक साहस दंडका	
अपराधके चार भेद.....	११३ ६५	लक्षण	११७ १२
चार अपराधकी परीक्षा.....	११३ ६७	पण आदिकोंका लक्षण	११७ १३
केवल दंडके योग्य पुरुषका		कोशका लक्षण	११७ १६
लक्षण	११३ ६९	कोशसंग्रहका उत्तम प्रयोजन	११८ १८
अत्रोधके योग्य पुरुषका ल०	११४ ७३	अन्यायोपार्जित कोशसे दुष्टफल	११८ २०
संरोध और नीचकर्मके योग्य		पात्रका लक्षण....	११८ २१
पुरु०	११४ ७६	अपात्रका धन अवश्य हरण	
शास्त्रोक्तदंडयोग्यपुरुषलक्षण	११४ ७८	करे.....	११८ २१
यावज्जीव बंधनयोग्यलक्ष०....	११४ ७९	अधर्मशील राजाका धन सब	
मार्गसंस्करणयोग्यपुरुषका ल०	११४ ८१	प्रकारसे हरले.....	११८ २२
धनगर्वसे अपराध करनेवालेको		शत्रुके अधीन राज्य होनेका	
दंड	११४ ८२	कारण	११८ २३
बंधन और ताडनयोग्यका		तीर्थदेवकरसे कदापि कोश-	
लक्षण	११५ ८४	वृद्धि न करे	११८ २४

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
आपत्तिमें अधिक धन ग्रहण		पद्मराग और वज्र धारण करने-	
करे.....	११८ २५	का निषेध.....	१२२ ६६
आपत्तिरहित हो जाय तब शूद्र		बहुत दिन धारण कियों मोती	
सहित दे	११८ २६	और मृंगा हीन होजाते हैं	१२२ ६७
प्रवलदंडसे अनिष्ट फल	११९ २७	दोषवर्जित रत्नका लक्षण	१२२ ६८
कोशसंग्रह करनेका प्रमाण....	११९ २८	मोल अधिक और कम होनेका	
प्रजासंरक्षणका फल.....	११९ २९	कारण	१२३ ७०
राष्ट्रवृद्धिके तीनों कारण	११९ ३१	मौक्तिककी उत्पत्ति.....	१२३ ७३
नीतिनिपुणतासे कोशवृद्धि-		मोतीके रंग और भेद.....	१२३ ७४
का यत्न करे	११९ ३२	कृत्रिम मोतीकी उत्पत्ति.....	१२३ ७५
श्रेष्ठ नृपका लक्षण	११९ ३३	मोतीकी परीक्षा	१२३ ७६
नीच आदि धनका लक्षण	११९ ३६	रत्नोंका तुलामान.....	१२३ ७८
प्रजाताप वंशसहित राजाको		वज्रका मूल्यविचार.....	१२३ ८०
नष्ट करता है	१२० ४०	सुवर्णका प्रमाण.....	१२४ ८२
धान्यसंग्रह करनेका प्रमाण	१२० ४०	काले और रक्त बिंदुवाले रत्न-	
संग्रहयोग्य धान्य आदिकी		का न धारे.....	१२४ ८८
परीक्षा	१२० ४२	माणिक्यादिकोंका मूल्यविचार	१२४ ८९
औषधी आदि सब वस्तुका सं		गोमेद उन्मानके योग्य नहीं	
चय करे	१२० ४५	होता	१२४ ९१
संगृहीत धनकी यत्नसे रक्षा		अत्यंत गुणवालोंका मोल मानसे	
करे.....	१२० ४७	नहीं होता	१२५ ९३
स्वकार्यमें सदा जागृत रहै	१२१ ५०	मोतियोंकी मूल्यकल्पना	१२५ ९३
संचयकी रक्षा नहीं करसक्ता		मोतीके भेद और लक्षण....	१२५ ९७
उससे परे भूख नहीं	१२१ ५१	सुवर्णादि ७ सात धातु.....	१२५ ९९
मूर्खका लक्षण.....	१२१ ५२	उनका तरतमभाव.....	१२५ २००
यथार्थ जाननेके लिये स्वयं		सुवर्णादिकोंके गुण.....	१२५ १
यत्न करे.....	१२१ ५४	धातुके मूल्यका प्रमाण.....	१२६ ३
राजा परीक्षकोंसे और स्वयं र-		अधिक मूल्यके गौका लक्षण	१२६ ५
त्नकी परीक्षा करे....	१२१ ५५	बकरी आदिके मोलका प्रमाण	१२६ ७
वज्र आदि नव महारत्न	१२१ ५५	गौ आदिका उत्तम मूल्य.....	१२६ ८
नवरत्नोंके वर्ण और नव ग्रह	१२१ ५७	हाथी आदिका उत्तम मूल्य....	१२६ ११
संपूर्ण रत्नोंमें वज्र रत्न श्रेष्ठ है	१२२ ६१	उत्तम अश्व आदिका लक्षण और	
श्रेष्ठ रत्नका लक्षण.....	१२२ ६३	मूल्य.....	१२६ १२
असत् रत्नका लक्षण.....	१२२ ६६	समयके अनुसार सबकी मोल-	
		कल्पना करले.....	१२७ १५

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय	पृष्ठ. श्लो०
शुल्कका लक्षण.....	१२७ १७	ब्राह्मणके कर्म	१३० ५७
वस्तुओंका शुल्क एकवारही		क्षत्रिय और वैश्यके कर्म....	१३० ५८
ग्रहण करे.....	१२७ १८	शूद्र आदिके कर्म	१३० ५९
शुल्कका परिमाण.....	१२७ १९	ब्राह्मणादिके लिये कृषिभेद....	१३१ ६०
किशानसे भाग लेनेका प्रमाण	१२७ २२	ब्राह्मणके विना अन्यको भिक्षा	
उत्तमकृषिकृत्यका लक्षण	१२७ २४	निंदित है.....	१३१ ६१
तडागादिकोंसे संपन्न भूमिके		द्विजाति सांग वेदको पढ़े	१३१ ६२
राजभागका तारतम्य.....	१२८ २५	गुरुका लक्षण.....	१३१ ६३
रजतादियुक्त भूमिके लिये रा-		मुख्य विद्या ३२और कला६४हैं	१३१ ६४
जभागनियम	१२८ २८	विद्या और कलाओंका लक्षण	१३१ ६५
तृणकाष्ठादिके वेचने वालोंसे२०		वेद और उपवेदके नाम.....	१३१ ६७
मा भाग करले.....	१२८ ३०	वेदोंके छः अंग	१३१ ६८
अजा आदिके वृद्धिसे आठवां		मीमांसादि विद्याओंके नाम....	१३१ ६९
भागले	१२८ ३१	मंत्र और ब्राह्मण दोनों मिलके	
कारु आदिसे लेनेका प्रकार	१२८ ३२	वेद कहा है.....	१३२ ७१
भूमिभागादिको उसी समय		मंत्र और ब्राह्मणका लक्षण....	१३२ ७२
ले	१२८ ३४	ऋग्भागका लक्षण.....	१३२ ७३
किशानको भागपत्र लिख दे	१२८ ३५	यजुर्वेदका लक्षण.....	१३२ ७४
ग्रामधनीके प्रतिभू ग्रहण करले	१२८ ३६	सामका लक्षण.....	१३२ ७५
क्वचित् करलेनेका निषेध	१२९ ३८	अथर्ववेदका लक्षण	१३२ ७६
व्यापारी आदिसे३२मा भागले	१२९ ३९	आयुर्वेदलक्षण.....	१३२ ७७
हाटवाले आदिसे भूमिका करले	१२९ ४०	धनुर्वेदलक्षण	१३२ ७८
राष्ट्र दो प्रकारका है.....	१२९ ४२	गांधर्ववेदलक्षण	१३२ ७९
पृथ्वीमें राजासे अन्य देवता		अथर्ववेदलक्षण	१३२ ८०
नहीं है.....	१२९ ४४	शिक्षालक्षण	१३३ ८१
राजा देशके पुण्य और पापको		कल्पलक्षण	१३३ ८२
भोगता है.....	१२९ ४५	व्याकरणलक्षण	१३३ ८३
नरकका लक्षण.....	१२९ ४७	निरुक्तलक्षण	१३३ ८४
सर्वधर्मरक्षणसे देशरक्षा होती है	१३० ५१	ज्योतिषलक्षण	१३३ ८५
मुख्य जाति चारप्रकारकी है	१३० ५२	छंदका लक्षण.....	१३३ ८६
संकरसे जाति अनंत है....	१३० ५३	मीमांसालक्षण	१३३ ८७
जरायुज आदि चार प्राणियोंकी		तर्कलक्षण.....	१३३ ८८
जाति हैं.....	१३० ५४	सांख्यलक्षण	१३३ ८९
द्विजोंके कर्म	१३० ५७	वेदांतलक्षण	१२३ ९०
		योगलक्षण.....	१३३ ९१

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
इतिहासलक्षण	१३४ ९२	अब शूद्रधर्म कहते हैं	१४२ ६९
पुराणलक्षण	१३४ ९३	संकरजातिके विषे नियम	१४१ ७०
स्मृतिलक्षण	१३४ ९४	राजा स्वर्णकारादिकोंको सदा	
नास्तिकमतलक्षण	१३४ ९५	कार्यमें नियुक्त करे	१४१ ७८
अर्थशास्त्रलक्षण	१३४ ९६	मदिगृह गांवसे पृथक् करै	१४२ ७९
कामशास्त्रलक्षण	१३४ ९७	मदिरापान दिनमें कभी न	
शिल्पशास्त्रलक्षण	१३४ ९८	करावै	१४२ ८०
अलंकारशास्त्रलक्षण	१३४ ९९	वृक्षारोपण और पोषणके नियम	१४२ ८०
काव्यलक्षण	१३४ ३००	ग्राम्यवृक्षके नाम और लक्षण	१४२ ८२
देशभाषालक्षण	१३४ २	आरण्यवृक्षके नाम और लक्षण	१४२ ८७
अवसरोक्तिलक्षण	१३४ २	देशमें त्रिपुल जल हो ऐसे	
यावनमतलक्षण	१३५ ३	करे	१४३ ९४
देशादिधर्मलक्षण	१३५ ५	चतुष्पथमें विष्णु आदिका मं-	
गांधर्ववेदोक्त ७ कलाओंका		दिर बनवावे	१४३ ९६
लक्षण	१३५ ८	मेरु आदि मंदिरके सोलह प्र-	
आयुर्वेदोक्त १० दशकलाओंका		कार है	१४३ ९७
लक्षण	१३४ १२	मेरु आदिका लक्षण	१४३ ४००
धनुर्वेदोक्त ५ कलालक्षण	१३६ १७	मंदिरादिकोंके नाम	१४४ १
पृथक् चार कला	१३६ २०	तत्तन्मंडपका प्रमाण	१४४ ३
तडागकरणादिकला	१३६ २२	सात्त्विकी आदि तीन प्रकारकी	
चार आश्रम	१३६ ३९	प्रतिमा	१४४ ४
चार आश्रमोंमें कृत्य	१३८ ४१	सात्त्विकी आदिप्रतिमाका	
स्त्री और शूद्र देवपूजा न करै	१३८ ४४	लक्षण	१४४ ५
पतिसे पृथक् स्त्रियोंको धर्म		अंगुलादिकोंका प्रमाण	१४४ ९
नहीं है	१३८ ४४	प्रतिमाको ऊंचाईका प्रमाण	१४४ १०
स्त्रीके नित्यकृत्य	१३८ ४५	अवयवोंका प्रमाण	१४५ १३
साध्वी स्त्री पैशुन्यादिको त्यागदे	१४० ५९	रम्य प्रतिमाका लक्षण	१४६ २५
इस प्रकार पतिकी सेवा करने-		अवयवोंके आकृतिका वर्णन	१४६ २७
से पतिलोकमें जाति है	१४० ६०	अवयवोंके अंतरका प्रमाण	१४७ ३४
स्त्रीके नैमित्तिक कृत्य	१४० ६१	अवयवोंके परिधिका प्रमाण	१४७ ३७
तहां रजस्वला स्त्रीके नियम	१४० ६१	प्रतिमाके दृष्टिका प्रमाण	१४८ ४८
रजस्वलाशुद्धि	१४० ६३	प्रतिमाके आसनका प्रमाण	१४८ ४९
पतिके समान नाथ और सुख		द्वारप्रमाण	१४८ ५०
नहीं है	१४० ६६	देवालयके ऊंचाईका प्रमाण	१४८ ५०

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
मंजिलका प्रमाण	१४८ ५२	शरीरकी पूर्णता होनेका वर्ष-	
प्रासादकी आकृति	१४८ ५४	प्रमाण	१५३ ६
चारों दिशाओंमें मंडप और		सप्ततालप्रमाण मनुष्यके अव-	
धर्मशाला बनावे	१४८ ५४	यवोंका प्रमाण	१५४ ८
मंदिरके स्तंभोंका प्रमाण	१४८ ५४	अष्टतालके अवयवोंका प्रमाण	१५४ १०
स्तंभोंका निषेध	१४८ ५४	दशतालके अवयवोंका प्रमाण	१५४ १२
विस्तारविचार	१४९ ५५	शिल्पी मूर्तियोंकी वृद्धसदृश	
वाहनविचार	१४९ ५७	कल्पना कभी न करे.....	१५५ १९
प्रतिमाके रूप आयुषका विचार	१४९ ५८	राजा ऐसे देवताओंका स्थापन	
आयुषस्थानविचार	१४९ ५९	करके प्रतिवर्ष उनका उत्सव	
मुख अनेक हों वहां व्यवस्था	१४९ ६१	करे	१५५ २०
अनेक मुजाओंकी व्यवस्था	१४९ ६२	मानहीन और भग्न प्रतिमाका	
ब्रह्माके मुखोंकी व्यवस्था	१४९ ६२	निषेध	१५५ २१
इयग्रीवादिकोंकी आकृति	१४९ ६२	प्रजाकृत उत्सवोंका सदैव पा-	
अनिष्टकारक प्रतिमा	१५० ६६	लना करे	१५५ २३
सौख्यदायक प्रतिमा	१५० ६७	राजा प्रजा सुखसे सुखी और	
सात्विकप्रतिमालक्षण.....	१५० ६७	प्रजा दुःखसे दुःखी हो	१५५ २३
विष्णुप्रतिमाके चौविस भेद....	१५० ७०	शत्रु और प्रजापालनके लक्षण	१५५ २५
लक्षणोंके अभावमेंभी दोष-		शत्रुनाशन और दुष्टनिग्रहका	
रहित प्रतिमा	१५० ७२	लक्षण	१५५ २६
प्रमाणदोषरहित प्रतिमा	१५० ७३	व्यवहारलक्षण.....	१५५ २७
युगभेदसे वर्णभेदकथन	१५० ७४	राजा प्राड्विकादिसहित व्यव-	
वर्णभेदसे सात्विक्यादिकथन	१५० ७५	हारोंको देखे	१५५ २८
युगभेदसे सौवर्णादिप्रतिमा-		पक्षपातके पांच कारण	१५६ ३१
विभाग.....	१५० ७६	राजाको अनिष्टकारक हेतु....	१५६ ३१
अनुक्तप्रतिमास्थापननिषेध	१५१ ७८	राजा कार्यनिर्णय न करे तब	
भक्तिमान् पूजकके तपोबलसे		उत्तलक्षण ब्राह्मणको नियुक्त	
प्रतिमादोष नष्ट हो जाते हैं	१५१ ८०	करे	१५६ ३५
वाहनस्थापनविचार	१५१ ८१	ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रियादि	१५६ ३७
वाहनलक्षण	१५१ ८५	उस पदपर शत्रुको यत्नसे व-	
गजाननकेमूर्तिका लक्षण	१५२ ८७	जिंदे	१५६ ३७
अवयवोंका प्रमाण	१५२ ९०	सभासदलक्षण	१५६ ३९
स्त्रियोंके अवयवोंका प्रमाण....	१५३ २०	निर्णयायोग्यपुरुषोंका लक्षण....	१५७ ४१
संघके मुखका प्रमाण.....	१५३ २	राजा द्विजाति आदिकोंका निर्णय	
बालकके अवयवोंका प्रमाण	१५३ ३	स्वयं न करे	१५७ ४२

विषयः	पृष्ठ. श्लो०	विषयः	पृष्ठ. श्लो०
यज्ञसदृश सभाकां लक्षण	१५७ ४८	स्तोभकलक्षण.....	१६१ ८९
सभामें सुननेवाले वैश्य हों	१५७ ४९	सूचकलक्षण	१६१ ९०
सभामें जानेका नियम	१५८ ५१	पंचाशतछल	१६१ ९१
सभामें निर्णय करनेवालेका क्रम	१५८ ५३	दश अपराध	१६२ २
निर्णायकोंका तारतम्य	१५८ ५४	नृपज्ञेय चाइशर २२ पद.....	१६३ ४
निर्णयक्षमपुरुषका लक्षण.....	१५८ ५६	दंडयोग्य वादीका लक्षण.....	१६३ ७
धर्मलक्षण	१५८ ५७	अर्जीका लक्षण.....	१५३ ८
अनुचितनप्रकार	१५८ ५७	सर्वके बोधयोग्य भाषा	१६३ ९
दश साधनांग.....	१५८ ५९	पूर्वपक्षको शुद्ध किये विना जो	
यज्ञतुल्यसभाका द्वितीय लक्षण	१५८ ६०	उत्तर दिवाते उनको अधि-	
दशांगोंके कर्म	१५९ ६२	कारसे निवृत्त करे.....	१६३ ११
गणक और लेखकका लक्षण	१५९ ६४	पूर्वपक्ष पूरा हो ले तब वादीको	
धर्माधिकरणलक्षण	१५९ ६५	रोकदे	१६३ १३
राजाका सभाप्रवेशनप्रकार	१५९ ६६	राजाशा नही तबतक प्रत्यर्थीको	
सभामें राजाका कृत्य	१६९ ६७	रोकदे	१६४ १५
राजा पूर्ण विचार करके सब		आसेध चार प्रकारका है.....	१६४ १६
धर्मका रक्षण करे.....	१५९ ६८	जिसपर अपराधकी शंका हो वा	
देशजातिकुलधर्मोंका पालन		जो अपराधी हो उसकोही	
करे.....	१५९ ६९	राजा बुलावे	१६४ १९
देशजातिकुलधर्मोंके उदाहरण	१५९ ७०	असमर्थादि अपराधियोंको न	
न्यायादिकोंका समय.....	१६० ७४	बुलावे	१६४ २१
मनुष्यमारणादिकोंका समयनि-		हीनपक्षादि स्त्रियोंकोभी न बुलावे	१६४ २२
यम नहीं	१६० ७५	निर्वैष्टुकाम आदिकोंका आसेध-	
राजाके आगे कार्यनिवेदनप्रकार	१६० ७६	निषेध	१६४ २३
अर्थीके लिये राजकार्य	१६० ७८	जो असमर्थ हो उनको यानमें	
तहां लेखकका कृत्य.....	१६० ८१	बुलावे	१६५ २८
राजा अन्यलेखकको शिक्षा दे	१६० ८२	जब अर्थीप्रत्यर्थी अन्यकार्यमें	
राजाके अभावमें प्राड्विवाक पूछे	१६१ ८३	व्याकुल हों तब प्रतिनिधि-	
प्राड्विवाकशब्दका अर्थ	१६१ ८४	को करलें	१६५ ३०
व्यवहारपदकथन	१६१ ८६	अप्रगल्भ आदिके उत्तरपक्षको	
राजा वा राजपुरुष स्वयं व्यवहा-		बंधु आदिक है.....	१६५ ३१
रको पैदा न करे	१६१ ८६	पूर्वपक्ष ठीक २ करदें तो विवा-	
राजा छलादिकको निवेदन वि-		दको प्रवृत्त करै.....	१६५ ३२
नामी ग्रहण करले.....	१६१ ८८	जिस किसीस कार्य कराहे वह	

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
उसी किया समझना.....	१६५ ३२	प्राङ्म्याय तीन प्रकारका.....	१६९ ६९
नियोगित पुरुषको सोलहमा		व्यवहारके चार पाद	१६९ ७२
भाग भृति दे	१६५ ३३	प्रथम न्याय वा विवादका निर्णय	
अन्यथा भृतिको ग्रहण करने-		करने योग्य	१६९ ७५
वालिको दंड दे.....	१६५ ३४	एक विवादमें दो वादियोंकी	
राजाभी सदा अपनी बुद्धिसे		क्रिया नहीं होती.....	१७० ७७
एक नियोगी कर दे.....	१६५ ३४	भूत और भव्य दो प्रकार	१७० ७९
नियोगी लोभसे अन्यथा करे		तत्त्व और छलका लक्षण	१७० ७९
तो दंडयोग्य होता है	१६६ ३५	साधनके भेद.....	१७० ८१
भ्रात्रादिकको नियोगी न करे.	१६६ ३५	विवादियों अपने २ साधन	
विवादको लगाकर दोनों मर-		प्रत्यक्ष दिखावे	१७० ८४
गये तो पुत्र विवाद करे....	१६६ ३७	जो दोष गुप्त हो उनको सभास-	
मनुष्यमारणादि अपराधोंमें प्रति-		द प्रकट करे	१७० ८५
निधिको न दे	१६६ ३८	कूटसाक्षी और साक्ष्यलोपीको	
साक्षीका कृत्य	१६६ ४२	दुना दंड दे	१७१ ८७
प्रतिभूका लक्षण.....	१६६ ४४	लिखित दो प्रकारका	१७१ ८९
विवादियोंको रोककर वादकी		तहाँ लौकिक सात प्रकारका	१७१ ९०
प्रवृत्तिको राजा करे	१६६ ४५	राजशासन तीन प्रकारका	१७१ ९१
पक्षका लक्षण	१६७ ४७	साधनक्षमलेख्यलक्षण	१७१ ९२
भाषाके दोष.....	१६७ ४८	साधनायोग्यलेख्यका लक्षण....	१७१ ९६
पक्षभासको वर्णदे.....	१६७ ४९	अच्छे लेखसे फल	१७२ ९८
अप्रसिद्धलक्षण	१६७ ५०	साक्षीके लक्षण और भेद	१७२ ९९
निराबाध और निष्प्रयोजनका		स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करनी	१७२ ४
लक्षण	१६७ ५०	वालादिक साक्षियोग्य नहीं हैं	१७२ ५
असाध्य और विरुद्धका ल०	१६७ ५२	राजा साक्षिकथनमें कालक्षेप न	
निरर्थक वा निष्प्रयोजनका ल०	१६७ ५४	करे	१७३ ९
उत्तरलेखनविचार	१६८ ५६	प्रत्यक्ष साक्षीको कहावे.....	१७३ १०
संदिग्धोत्तरका लक्षण.....	१६८ ५९	दंड्य और नीच साक्षीका	
दंडयोग्य प्रतिवादीका लक्षण	१६८ ६१	लक्षण.....	१७३ ११
चार प्रकारका उत्तर.....	१६८ ६३	एक २ से साक्षीका कथन	
सत्यादिकोंके लक्षण	१६८ ६४	करावे	१७३ १४
मिथ्योत्तर चार प्रकारका....	१६८ ६६	साक्षी लेनेका प्रकार.....	१७३ १५
प्रत्यवस्कंदनलक्षण	१६९ ६७	लेख और साक्षी न मिले तो	
प्राङ्म्यायलक्षण	१६९ ६८	भोगसेही विचार करे.....	१७४ २६

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
कुशल और कुटिल बनावट		गर दिव्यका प्रकार.....	१७७ ५६
लेख करलेते है	१७५ २८	धटादिव्यका प्रकार.....	१७७ ५६
केवल साक्षियोंसेही कार्यसिद्धि		तोयदिव्यका प्रकार.....	१७७ ५७
नही हो सकती	१७५ २९	धर्माधर्म दिव्यका प्रकार.....	१७७ ५८
केवल भोगोंसेही कार्यसिद्धि		तंडुलदिव्य	१७७ ५८
नहीं हो सकती	१७५ ३०	शपथदिव्य.....	१७७ ५९
न्यथा शंका करनेसे अनवस्था		अपराधतारतम्यसे दिव्यतार-	
होती है	१७५ ३२	तम्य	१७८ ६०
प्रामाणिक भोगका लक्षण	१७५ ३३	दिव्यका निषेध.....	१७८ ६३
केवल भोगकी बतोंवे वह चोर		शिरके बिना दिव्यके अधिकारी	१७८ ६६
जानना.....	१७५ ३४	तत्समाप्त दिव्यके अधिकारी	१७८ ६८
केवल आगमभी प्रबल नहीं		वादी दिव्यका स्वीकार करे तो	
होता	१७५ ३५	फिर साधन न पूछे.....	१७८ ६९
साठ वर्षतक भोग हो तो उसको		भाषा पत्रिका होय तो दिव्यसे	
कोई नहीं छोन सकता....	१७६ ३८	शोधन करै.....	१७९ ७०
आधि आदिक केवल भोगसे		लौकिक साधन न होय वहां	
नष्टनहीं होता	१७६ ३९	दिव्यको दे	१७९ ७१
उपेक्षादिकारणसे स्वामी उस		साक्षी भेदनको प्राप्त हो जाय	
फलको प्राप्त नहीं होता	१७६ ४०	तब शपथोंसे निर्णय करै....	१७९ ७४
अब दिव्य कहते हैं.....	१७६ ४१	विवाहादिकोंमें साक्षी ही निर्णय	
त्रिविध साधनके अभावमें तीन		साधन होते हैं.....	१७९ ७७
प्रकारकी विधि	१७६ ४२	द्वार मार्गका करना इत्यादिकों-	
युक्तिका लक्षण	१७६ ४४	में भोगनाही प्रमाण है....	१७९ ७८
कार्य साधक हेतुओंका लक्षण	१७६ ४५	मानुषी और दैविकी क्रियाओं-	
धन ग्रहण करने योग्य प्रति-		की व्यवस्था.....	१७९ ७९
वादीका लक्षण.....	१७६ ४६	आठ तरहका निर्णय.....	१८० ८१
युक्तिभी असमर्थ होय वहां		सबके अभावमें निश्चय करने-	
दिव्य	१७६ ४७	को राजा प्रमाण है.....	१८० ८२
दुष्कर कर्मके लिये दिव्य....	१७६ ४७	राजाधर्म शास्त्रके अवरोधसे	
दिव्यको न मानै वह धर्म		नीतिशास्त्रकी विचारें	१८० ८५
तत्स्कर है.....	१७६ ४९	विवाद होनेका कारण.....	१८० ८६
दिव्यका स्वीकार करनेवाले-		अधर्ममें प्रवृत्तहुये राजाकी सभा-	
को उत्तम फल.....	१७७ ५१	सद उपेक्षा न करै	१८० ८९
दिव्यनिर्णयमें पदार्थ.....	१७७ ५२	धिग्दंड और वाग्दंड ये दोनों	
अभिदिव्यका प्रकार	१७७ ५२	समासदोंके अधीन होते हैं	१८० ९०

विषय	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
अर्थ दंड और वध राजाधीन होते हैं.....	१८१ ११	उत्तमसाहस दंडयोग्यका लक्षण	१८४ २८
दुवारा कार्यका आरंभ करनेका कारण.....	१८१ ११	अस्वामिक धनको चौरोसे लेने वालेको दंड	१८४ २९
पौनर्भव विधिका लक्षण.....	१८१ १३	त्यागयोग्य ऋत्विज और याज्य-का लक्षण.....	१८४ ३०
जयीका लक्षण.....	१८१ १५	राजा वत्तीसवां या सोलहवां लाभ पण्यमें नियत करै....	१८४ ३१
जयीको जयपत्रको देनेका प्र-कार	१८१ १६	व्यापारी धनकी व्यवस्था.....	१८४ ३२
प्रजाको अनुकूल करनेवाले राजाके गुण.....	१८१ १८	मूलसे दूना व्याज लेलिया हों तो उत्तमर्गको मूलकोही दिल-वावे.....	१८५ ३३
जीवतेहुये मातापिताके वृद्धभी पुत्र स्वतंत्र नहीं होता	१८१ १९	लिखित नष्ट होजाय तो.....	१८५ ३५
उन दोनोंमें पिता श्रेष्ठ है.....	१८१ ८००	खोटीवस्तुको बेचनेवालेको दंड	१८५ ३७
पिताके अभावमें माता फिर भाई श्रेष्ठ होता है	१८१ ८०९	शिल्पियोंके भृतिका विचार	१८५ ३८
पिताके संपूर्ण पत्नियोंमें माताके समान वर्ताव करै.....	१८२ १	स्वर्णकारके भृतिका विचार....	१८५ ४३
स्वतंत्रास्वतंत्रका निर्णय	१८२ २	धातुओंमें कपट करै तो दूना दंड.....	१८६ ४७
स्वामित्वका निर्णय	१८२ ५	अब दुर्गप्रकरण कहतेहैं	१८६ ४९
विभाग विचार.....	१८२ ११	ऐरिण और पारिख दुर्गका लक्षण	१८६ ५०
अंशहारीका क्रम निर्णय	१८३ १३	पारिखदुर्ग और वनदुर्गका लक्षण	१८६ ५१
सौदायिक धनमें स्त्री स्वतंत्र होतीहै	१८३ १४	धन्वदुर्ग और जलदुर्गका लक्षण	१८६ ५२
सौदायिकधनका लक्षण	१८३ १५	गिरिदुर्ग और सैन्यदुर्गका लक्षण	१८६ ५३
अविभाज्यधनका लक्षण	१८३ १६	सहायदुर्गका लक्षण	१८७ ५४
जलादिकोंसे धनका रक्षण कर-नेवाला दशवांभागको प्राप्त होता है	१८३ १७	ऐरिणादिदुर्गका तारतम्य	१८७ ५४
शिल्पीका लक्षण	१८३ १९	सेनादुर्गसे महान् लाभ	१८७ ५७
शिल्पियोंका धनविभाग	१८३ २०	आपत्कालमें अन्यदुर्गोंका आ-श्रय उत्तम है	१८७ ५८
नर्तकादिकोंका धनविभाग	१८३ २१	अत्यंत श्रेष्ठ दुर्गका लक्षण....	१८७ ६०
चोरधनविभाग	१८३ २२	सहायपुष्ट दुर्गसे विजय निश्चयसे होता है.....	१८७ ६२
व्यापारी आदिकोंका धनविभाग	१८४ २६	अब सातवें सैन्यप्रकरणको क-हते हैं	१८७ ६३
सामान्यादि नववस्तुओंको आ-पत्समयमें भी न दे	१८४ २६	सेनाका लक्षण और भेद.....	१८७ ६४
		स्वगमा और अन्यगमा सेना-का लक्षण.....	१८८ ६५

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
स्वगमसेनाका दूसरा लक्षण....	१८८ ६६	घोड़ोंके ऊंचाई और लंबाईका	
सेनाका प्रभाव.....	१८८ ६७	प्रमाण	१९२ ८
बल छः प्रकारका.....	१८८ ६८	अश्वोंका दूसरा लक्षण.....	१९२ १०
दोषकारका सेनावल.....	१८८ ७१	माँवरी घोड़ी और घोड़ाके देहमें	
स्त्रीय और मैत्र सेनावलका		वाई और दाहिनी तरफ	
लक्षण	१८८ ७२	क्रमसे फलदायक होते हैं....	१९२ १३
मौलादिकोंका लक्षण	१८९ ७४	शुभ आवर्तका लक्षण.....	१९३ १५
दुर्बलसेनाका लक्षण	१८९ ७७	उत्तम और मध्यम घोड़ोंके	
शारीरादिवलके बढ़ानेके उपाय	१८९ ७९	आवर्तोंका विचार	१९३ १७
आयुर्वलका लक्षण	१८९ ८२	सूर्यसंज्ञक अश्वका लक्षण और	
सेनामें पदाति आदिकोंका सं-		फल	१९३ १९
ख्या नियम	१८९ ८३	त्रिकूट अश्वका लक्षण और फल	१९३ २०
सेनामें लेखकादिकोंका संख्या		अन्य अश्वोंका लक्षण	१९३ २१
नियम	१९० ८८	शर्व नामादि अश्वोंका लक्षण	
प्रतिमासमें खर्च करनेका		और फल.....	१९३ २४
प्रमाण	१९० ८९	अनिष्टकारक अश्वोंका लक्षण	१९४ ३१
राजके रथका वर्णन.....	१९० ९२	आवर्तोंका शुभाशुभत्व कथन	१९५ ३७
अनिष्ट और शुभदायक हाथीका		आवर्तोंका नाम और फल	१९५ ४२
लक्षण.....	१९१ ९४	पंचकल्याणादि अश्वोंका	
हाथीके चार प्रकार.....	१९१ ९६	लक्षण	१९५ ४५
भद्र गजका लक्षण.....	१९१ ९७	पूज्य श्यामकर्णका लक्षण	१९६ ४६
मंद्र गजका लक्षण.....	१९१ ९८	जयमंगलका लक्षण	१९६ ४७
मृग गजका लक्षण.....	१९१ ९९	निंदित घोड़का लक्षण.....	१९६ ४८
मिश्रगजका लक्षण	१९१ १००	घोड़ेके श्रेष्ठ गतिकका लक्षण	१९६ ५२
गजमानमें अंगुलादिकोंका		निंदित दलभंजी घोड़ोंका	
प्रमाण	१९१ १	लक्षण	१९६ ५३
भद्रादि गजोंके शरीरका मान	१९१ २	आवर्त आदिसे दूषितभी पूजने-	
सब हाथियोंमें श्रेष्ठ हाथीका		योग्य अश्वका लक्षण.....	१९६ ५४
लक्षण	१९१ ४	घोड़ेके कुशत्वादि दोष उत्पन्न	
उत्तमोत्तम घोड़ोंका लक्षण	१९२ ५	होनेका कारण	१९६ ५५
उत्तम और मध्यम घोड़ोंका		सुशिक्षकका लक्षण	१९७ ५७
लक्षण	१९२ ६	सुशिक्षकका कृत्य	१९७ ५८
नीच घोड़ोंका लक्षण.....	१९२ ७	अन्यथा ताडन करनेसे अनिष्ट	१९७ ६३
घोड़ोंके अवयवोंकी कल्पना	१९२ ७	उत्तम और हीन घोड़ेके गतिक	
		प्रमाण.....	१९७ ६५

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
गतिको बढ़ानेका समय.....	१९८ ६८	निर्दिष्ट घोड़ेका लक्षण	२०० ९८
वर्षाकृतुमें और विषम भूमिमें		बैलके आयुकी दांतोंसे परीक्षा २०१	१०००
घोड़ेको न चलावे	१९८ ६९	ऊंटके आयुकी परीक्षा	२०१ ३
उत्तम गतिसे घोड़ेको फल १९८	७०	अंकुशका लक्षण	२०१ ३
थके हुये घोड़ेको शनैः चलावे १९८	७०	घोड़ेके खलीनका वर्णन.....	२०१ ४
घोड़ेके भक्षणके लिये हितका-		बैल और ऊंटको वशमें करने-	
रक पदार्थ.....	१९८ ७१	का प्रकार.....	२०१ ६
जो गात्र घोड़ेका घाव आदिसे		मलशुद्धिके लिये देताली	२०१ ७
गिर जाय उस जगह मांस-		बैल आदिकोंके निवासका सु-	
को भरदें	१९८ ७२	रक्षितस्थल	२०१ ८
घोडा मार्गसे चलकर आया हो		बोझ लेचलनेवालोंका तारतम्य २०२	१०
उसको लवण और गुड दें १९८	७३	राजा छोटेभी शत्रुपर अल्प	
पसीना शांत होनाय तब उ-		साधनसे गमन न करे	२०२ ११
सको लगामको उतार ले १९८	७४	युद्धसे भिन्न कार्योंमें अशिक्षि-	
गानोंको मलकर फेंके.....	१९८ ७५	तादिकोंको नियुक्त करे....	२०२ १२
मदिरा और जंगली मांसका		संग्राममें अधिक साधनकी	
रस सब योगोंको हरताहै....	१९८ ७६	आवश्यकता	२०२ १३
भसूर और भूंग घोड़ेके लिये		सन्नद्ध सेनाका माहात्म्य.....	२०२ १५
निर्दिष्ट हैं	१९९ ७८	मौल सेनाकी प्रशंसा.....	२०२ १६
पुत आदि छः गतिके लक्षण १९९	७९	सेनाका अवश्य भेद होनेका-	
धारादि गतिके लक्षण.....	१९९ ८२	कारण	२०२ १७
बैलके मुखका प्रमाण	१९९ ८५	सेनाका भेद होनेसे अनिष्टफल २०२	१८
पूजने योग्य सप्तताल बैलका		राजा शत्रुसेनाका भेद अवश्य	
लक्षण	१९९ ८६	करे.....	२०२ १९
श्रेष्ठ ऊंटका लक्षण	२०० ८८	शत्रुओंको साधनेका प्रकार....	२०३ २०
मनुष्य और हाथियोंके आयुका		शत्रुओंके जीतनेका भेदसे	
प्रमाण	२०० ८८	अन्य उपाय नहीं हैं	२०३ २१
मनुष्यके बाल्य और मध्यमाव-		शत्रुकी त्यागी हुई सेनाकी	
स्थाका प्रमाण.....	२०० ८९	योजना.....	२०३ २३
हाथीकी मध्यमावस्था	२०० ९०	मित्रकी सेनाकी योजना	२०३ २४
घोडाआदिके आयुका प्रमाण २००	९१	अस्त्र और शस्त्रका लक्षण	
घोडाआदिके अवस्थाओंका		और भेद	२०३ २४
प्रमाण	२०० ९१	मांत्रिक अस्त्रके अभावमें ना-	
घोड़ेके आयुकी दांतोंसे परीक्षा २००	९२	लिक अस्त्र.....	२०३ २६
		नालिक दो प्रकारका है	२०३ २८

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
लघु नालिक(बंदूक) का लक्षण २०३	२८	और उन्हेंकी स्थल्योजना २१०	९६
बृहन्नालिक (तोप) का लक्षण २०४	३१	सेनाव्यूह और मकरादि व्यूहोंके	
अग्निचूर्ण (दारु) बनानेका		लक्षण	२११ १०
प्रकार	२०४ ३४	आसनका लक्षण	२१२ १७
गोला बनानेका प्रकार	२०४ ३७	संधायासनका लक्षण	२१२ १९
नालिककी व्यवस्था	२०४ ३९	आश्रयका लक्षण	२१२ २०
दारु बनानेके दूसरे अनेक		द्वैधीभावसे वर्तनकरने योग्य	
प्रकार	२०४ ३९	पुरुषका और द्वैधीभावका	
तोपके गोलको निसाने पर		लक्षण	२१२ २३
फेकनेकी रीति	२०५ ४२	राजा भेद और आश्रय इन दो-	
बाणका लक्षण.....	२०५ ४५	नोंके बिना युद्ध न करै	२१३ २९
गदा आदिकोंका लक्षण.....	२०५ ४६	अवश्य युद्ध करनेका कारण २१३	३१
खट्वादिकोंका लक्षण.....	२०५ ४७	युद्धमें परासुखन होनेवालेकी	
चक्रादिकोंका लक्षण.....	२०५ ४९	निंदा	२१४ ३४
कवचका लक्षण	२०५ ५०	ब्राह्मणभी आपत्कालमें युद्ध	
युद्धकी इच्छा करने योग्य		करै.....	२१४ ३५
राजाका लक्षण	२०६ ५१	क्षत्रियका महान् अधर्म	२१४ ३६
युद्धका सामान्य लक्षण	२०६ ५२	युद्धमें परासुखन होनेका और	
युद्धके भेद और उनके लक्षण २०६	५३	मरनेका उत्तम फल	२१४ ४०
युद्धकेलिये कालका विचार....	२०६ ५६	शौर्यकी प्रशंसा	२१५ ४६
युद्धकेलिये देशका विचार	२०६ ६०	प्राणियोंके अन्नका विचार	२१५ ४७
युद्धकेलिये सेनाका विचार	२०७ ६३	सूर्यमंडलको भेदन करनेवाले	
मंत्रके संधि आदि छः गुण	२०७ ६५	दो पुरुष	२१५ ४८
संधि आदिकोंका सामान्य लक्षण २०७	६६	ब्राह्मणभी आततायीशुद्धके	
संधिको करनेयोग्य पुरुषका		समान है	२१५ ५०
कथन	२०७ ७०	आतताईके मारनेमें कोईभी	
उपहाररूपसंधि सबसे श्रेष्ठ है २०८	७२	दोष नहीं होता	२१५ ५१
विग्रहको करने योग्य पुरुषका		दुराचारी क्षत्रीको ब्राह्मण नष्ट	
लक्षण	२०८ ८१	करदे	२१६ ५६
लड़ाई होनेका कारण.....	२०९ ८४	उत्तम मध्यम और अधम युद्ध-	
यानके पांच भेद	२०९ ८५	का लक्षण.....	२१६ ५८
विशृणयानादिकोंका लक्षण	२०९ ८६	अस्त्रयुद्धका लक्षण	२१६ ५९
रास्तामें सेनाको चलानेकी		शस्त्रयुद्धका लक्षण	२१६ ६१
व्यवस्था मकरादिव्यूहोंके		बाहुयुद्धका लक्षण	२१६ ६२
नाम.....	२१० ९३	युद्धके समय सेनाकी रचना....	२१६ ६३

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
युद्ध होनेका क्रम.....	२१६ ६६	सैनिकोंके संग प्रतिदिन व्यू-	
सेनाको उपद्रव.....	२१७ ६८	होंका अभ्यास करें.....	२२० ५
यानमें योद्धाओंकी भृतिकों		सायंकाल और प्रातःकालमें	
वधावे.....	२१७ ७२	सैनिकोंकी गिनती करें....	२२० ६
युद्धमें अपने देहकीभी रक्षा		भृत्योंके प्राप्तपत्रका ग्रहण	
करें.....	२१७ ७२	करके वृत्तपत्र उसकी देहे	२२० ८
युद्धमें नालाह्वादिकोंकी यो-		शिक्षित सैनिकोंकी भृति पूर्ण	
जना.....	२१७ ७३	देनी.....	२२० ९
युद्धमें स्थलाकूटादिकोंकी मार-		सुखासक्त भृत्यको त्यागदे	२२१ ११
नका निषेध.....	२१७ ७६	अंतःपुरादिकोंमें नियुक्त करने	
कृत्ययुद्धमें पूर्वोक्त नियम नहीं है	२१८ ८०	योग्य भृत्यका कथन.....	२२१ १२
कृत्ययुद्धके समान और युद्ध		शत्रुके भृत्योंका भृतिका विचार	२२१ १५
नहीं है.....	२१८ ८०	जिसका राज्य हरा हो उसके	
राजा शत्रुके छिद्रको भली प्र-		पुत्रादिकोंकी व्यवस्था....	२२१ १७
कार देखें.....	२१८ ८२	शत्रुसंचितधनकी व्यवस्था....	२२१ १८
सेनापतिकी नित्यकृत्य.....	२१८ ८३	सदाचारिशत्रुका पालना करें	२२२ २०
भारी कामका करें उसको पारि-		पहरेदारोंकी व्यवस्था.....	२२२ २१
तोषिक वा उत्तम अधिकार दे	२१८ ८५	राजा पूज्य होनेका कारण....	२२२ २८
शत्रुको नष्ट करनेका उपाय....	२१८ ८६	चिरस्थायी राजाका लक्षण....	२२३ २९
शत्रुकी सेनाका भेद करनेका		शीघ्रही पदभ्रष्ट होनेवाला	
प्रकार.....	२१८ ८७	राजाका लक्षण.....	२२३ ३०
अपने राज्यके अत्यंत समीप		नीतिभ्रष्ट राजाकीभी अन्य राजा	
राज्यको दूसरे राजाका न		उद्धार करनेकी समर्थ होता है	२२३ ३३
लेने दे.....	२१९ ८९	तेजोहीन राजासे बलवान् रा-	
शत्रुओंको जीतनेपर शत्रुकी		जाका छोटाभी भृत्य तेजस्वी	
प्रजाकी प्रसन्न करें.....	२१९ ९२	होता है.....	२२३ ३४
मंत्रके विचारमें दूसरे मंत्रियोंको		राजाका मुख्य बल.....	२२३ ३५
नियुक्त करें.....	२१९ ९३	हीनराज्य राजाका आचरण....	२२३ ३६
मंत्री आदिकोंका कृत्य.....	२१९ ९५	राजा दरिद्री होनेका कारण....	२२३ ३७
ग्रामसे बाहर समीपमेंही सैनि-		मनु आदिने मानेही अर्थ शुक्रा	
कोंको ठिकाने.....	२१९ ९७	चार्यने माने हैं.....	२२४ ४१
ग्रामके निवासी और सैनिकों-		इस नीतिसारमें २२०० वाईस	
का लेनदेन न होने दे....	२२० ९८	सो श्लोक कहे हैं.....	२२४ ४२
सैनिकोंके लिये पृथक् बाजार		नीतिसारका चिंतन करनेका	
बनावे.....	२२० ९८	फल.....	२२४ ४२
सेनाको एक स्थानपर न बसावे	२२० ९९	धर्मका रक्षणकरनेवाला नीच	
आठमें दिन सैनिकोंको राजा-		राजाभी श्रेष्ठ होता है....	२२३ ३९
की शिक्षा.....	२२०-१२००	धर्म और अधर्मकी प्रवृत्तिमें	
		राजाही कारण होता है....	२२४ ४०

विषय.	पृष्ठ. श्लो०	विषय.	पृष्ठ. श्लो०
शुक्रनीतिके समान दूसरी नीति नहीं है.....	२२४ ४३	महान् वैरका कारण	२२८ ८६
अब नीतिशेषको कहते हैं	२२४ ४६	मित्रता होनेका कारण	२२८ ८७
शत्रुको नष्ट करनेका प्रयत्न	२२४ ४८	आपत्तसमयमें राजाका वर्ताव	२२८ ८७
युद्धमें नियुक्त करने योग्य सेना-का कथन.....	२२४ ५१	आपत्तिमें भृतिके विनाभी स्वामिकार्यको करनेकी कालमर्यादा	२२८ ९१
दानमानरहितभी भृत्य अपने राजाको छोड़ें	२२५ ५२	प्रशंसाके योग्य भृत्य और स्वामी का वर्णन	२२९ ९४
राजाका द्रव्यभेदोदकके समान पुष्टिदायक है	२२५ ५३	एकचित्ताप्रभाव.....	२२९ ९६
शत्रुका राज्य हरण करनेका उपाय	२२५ ५४	श्रीकृष्णकी कूटनीतिका वर्णन	२२९ ९७
राज्यको वृक्षकी साम्यता	२२५ ५७	केवल अपनी रक्षाकी युक्तिको विचारकरने वालेकी निंदा	२२९ ९९
राजाको अवश्य पालन करने योग्य नियम	२२५ ५९	दो प्रकारकी युक्ति	२२९ १३०
पुत्रको राज्य देनेका समय	२२६ ६४	छद्मचरित्रके संग छद्म करें....	२२९ १३०
राज्यको प्राप्त होनेपर राज-पुत्रका आचरण	२२६ ६६	छलका वर्णन	२३० ३
राजपुत्रके संग पहिले मंत्रि-योंका आचरण	२२६ ६७	तीन प्रकारका भृत्य	२३० ६
अनीतिसे वर्ताव करै तो अनिष्ट फल	२२६ ६८	उत्तमादि भृत्योंके लक्षण.....	२३० ७
नवीन जनकी व्यवस्था	२२६ ७०	उपदेशके विना सबका ज्ञान नहीं होता	२३० ९
राजा मायावीजनोंका अंतर बड़े यत्नसे जानले	२२७ ७२	कार्य करनेका विचार.....	२३० ११
मायाके पैदा करनेवाले	२२७ ७३	दशग्रामी आदिकोंका वर्ताव	२३१ १६
धूर्तका वर्णन	२२७ ७४	उत्तमादि गृह भूमिका प्रमाण	२३१ २२
मायाके विना अत्यंत धन नहीं मिलता है	२२७ ७७	नृपकार्यके विना सैनिक ग्राममें न धरै.....	२३२ २४
संपूर्णपाप आश्रयके भेदसे धर्मरूपसे स्थित है	२२७ ८०	राजा सैनिकको शौर्य बढ़ानेवाले धर्मको नित्य श्रवण करवावे	२३२ २५
अत्यंत दानादिकोंका निषेध	२२८ ८२	शौर्यवृद्धिकारक अन्य उपाय	२३२ २६
अर्थके लिये अवश्य यत्न करै	२२८ ८३	राजा सत्याचार धनिक और कि-सानोंका विपत्तिमें उद्धार करै	२३२ २७
अर्थसे सर्व पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं.....	२२८ ८४	परदेशियोंसे व्ययके अनुसार भागले.....	२३२ २८
शौर्यादिक शस्त्रास्त्रादिकोंके विना दुःखदायी होते हैं	२२८ ८४	धनिकोंके धनकी बड़े यत्नसे रक्षा करै.....	२३२ २९
मित्रके समान दूसरा सहाय नहीं है.....	२२८ ८६	मूल धनकी अपेक्षा चौगुनी वृद्धि लेली होय तो धनीको कुछ भी धन न दे.....	२३२ ३०

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सटीक

श्रीपं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषानुवाद

भक्तगणो! अति उत्तम टीका सरल पदोंमें हरेक देशोंके समझने योग्य कराई गई है और रुचिर स्थलोंमें मधुर दृष्टान्तों और उदाहरणोंसे अर्थ पुष्ट किया है किन्तु गूढ़ाशयोंका अर्थ तो विशेषही दर्शाया है, विशेष प्रलापसे क्या शीघ्रता करो पीछे मूल्य बढ़ाया जावेगा. यह पुस्तक कथा वांचनेमें परमोपयोगी है मूल्य केवल २२ ही रु० भेजनेपर यह पुस्तकही घरवैठे पहुंच जावेगी ॥

वाल्मीकीय रामायण केवल भाषा ।

इसमें श्लोकांक और प्रत्येक सर्गका आद्यन्त श्लोक लिखा गया है भाषा परम मधुर और चित्तको मोहनेवाली है सम्पूर्ण पुस्तककी दो जिल्दें हैं जिल्द अत्यंत मनोहर सुनहरी परम पुष्ट है कीमत १० रु०

श्रीमद्भोस्नामितुलसीदासकृत रामायण सटीक

पं० ज्वालाप्रसादजीकृतसंजीवनी टीका ।

लीजिये रामायण सटीकभी लीजिये असल पुस्तक श्रीगुसाई जीकी लिपिके अनुसार व संपूर्ण श्लोकों सहित जिसमें शंका समाधान आद्यपर्यंत विस्तारपूर्वक लिखे हैं तुलसीदासका जीवन चरित, माहात्म्य, राम चतुर्दश वर्ष वनवासका तिथि पत्र और अष्टम रामाश्वमेध लवकुशकाण्ड तथा कोप और सुंदर फोटोग्राफके चित्रभी संयुक्त हैं इसके टीकाकी रचना बहुत उत्तम और अपूर्व मनभावन सुख उपजावन राम यश पावन है, की० ८ रु० ८० म० २ रु०

शुकसागर अर्थात् श्रीमद्भावत भाषा ।

शंका समाधान और अनेकानेक दृष्टांत इतिहास तथा उत्तमोत्तम दोहा चौपाई भजन कवित्त मिश्रित सुंदर वार्त्तिक प्राकृत भाषामें बड़े २ अक्षरोंमें छपी है आज-पर्यंत ऐसी उत्तम पुस्तक अन्यत्र कहीं नहीं छपी कीमत डाकमहसूल सहित १२ ॥ = रु० है प्रतीकके लिये श्लोकांकभी डाले गये हैं ॥

जाहिरात।

ताजिकनीलकंठी भाषाटीका।

उक्त ग्रंथका भाषानुवाद तीनों तंत्र एकत्रित कर ज्योतिर्विद पं० महीधरजीने ऐसा कठिन ग्रंथ होनेपर भी ऐसी सरल टीका तथा गूढ़ाशयों का प्रकाश किया है कि जिससे द्वारा सामान्य श्रेणीके मनुष्य भी भलीभांति वर्ष जन्मपत्र फलादेश प्रश्नादि बता सकते हैं वैसे ही शुद्धतापूर्वक टैपमें चक्र और उदाहरणों सहित उत्तम कागजमें छापी गई है जिसके देखनेसे चित्त प्रसन्न होजायगा और उत्तम विलायती कपड़ेकी जिल्द बाँधी गई है, मूल्य केवल १॥ रु० मात्र है

शार्ङ्गधर वैद्यक दत्तराम चौबेकृत भाषाटीका सहित।

यह टीका आठमल्ली और गूढ़ार्थ प्रकाशिका जो इसकी संस्कृतटीका हैं उनके अनुसार भाषाटीका करी गई है। यद्यपि इस ग्रंथकी टीका कई भिषगवरोंने की हैं परन्तु इस रीतिसे गूढ़ाशयोंकी टिप्पणी समन्वितकर विस्तार पूर्वक किसीने नहीं की है तिसपर भी मूल्य केवल तीन ३ रु० रखवा है विलायती कपड़ेकी जिल्द बाँधी है और नया छपा है।

पातंजलि-योगदर्शन तथा सांख्यदर्शन भाषानुवाद सहित।

देखो ! इस पातंजलि सूत्र मात्रका ऐसा बहुत और रुचिर भाषानुवाद किया गया है कि पढ़ते २ ग्रंथका आशय चित्तमें जुझ जाता है। मूल्य केवल योगदर्शनका १ रु० और सांख्यदर्शनका १॥ रु० है।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास.

“श्रीवेंकटेश्वर” छापाखाना—मुम्बई.

श्रीः ।

शुक्रनीति

(भाषाटीका सहिता)

आध्याय १ ल

प्रणम्य जगदाधारसर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥

संपूज्य भार्गवः पृष्टो वंदितः पूजितः स्तुतः ॥ १ ॥

पूर्वदेवैर्यथान्यायं नीतिसारमुवाच तान् ।

शतलक्षश्लोकमितं नीतिशास्त्रमथोक्तवान् ॥

भाषार्थ—रचते और पालने और नाशके कारण जगत्के आधार (आश्रय) भगवान्को नमस्कार करिके पूर्वदेवताओंने सत्कार-पूर्वक नमस्कार और पूजा और स्तुति की जिनकी ऐसे शुक्राचार्यके न्यायके अनुसार प्रश्न किया वे शुक्राचार्य देवताओंके प्रति नीतिका सार कहते भये शुक्र कहते हैं एक कोटी नीतिशास्त्र ब्रह्मने वर्णन किया ॥ १ ॥ २ ॥

स्वयं भूर्भगवाँल्लोकहितार्थसंग्रहेण वै ॥

तत्सारं तु वासिष्ठाद्यैरस्माभिर्वृद्धिहेतवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जगत्के कल्याणके अर्थ संक्षेपसे उसका सार वसिष्ठ आदि हम संपूर्ण ऋषियोंने बढ़नेके अर्थ वर्णन किया ॥ ३ ॥

अल्पायुर्भूभृताद्यर्थसंक्षिप्तं तर्कविस्तृतम् ॥

क्रियैकदेशोधीनिशास्त्राण्यन्यानि संति हि ।

भाषार्थ—तर्कोसे किया है विस्तार जिसका ऐसा नीतिशास्त्र अल्प है अवस्था जिनकी ऐसे राजाओंके लिये वसिष्ठ आदिकोंने संक्षेपसे किया इतर जो शास्त्र सो एक २ कार्यके बोधक हैं ॥ ४ ॥

सर्वोपजीवकं लोकस्थिति कृत्रीति शास्त्रकं
धर्मार्थकाममूलं हि स्मृतं मोक्षप्रदं यतः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—जिससे धर्म अर्थ, काम, इनका कारण और मोक्षका दाता कहा है इससे नीतिशास्त्र संपूर्ण जगत्का उपकारक और मर्यादा पालक है ॥ ५ ॥

अतः स दानीति शास्त्रमभ्यसेद्यत्नतो नृपः ।

यद्विज्ञानानृपाद्याश्च शत्रुजिह्वोकरं जकाः ॥

भाषार्थ—इससे राजा नीतिशास्त्रका यत्नसे अभ्यास करे जिसके ज्ञानसे राजा और मंत्री आदि शत्रुओंके जेता और जगत्के प्रिय होते हैं ॥ ६ ॥

सुनीतिकुशलानित्यं प्रभवति च भूमिपाः ।

शब्दार्थानां न किं ज्ञानं विना व्याकरणतो भवेत् ॥

भाषार्थ—राजा इस शास्त्रके ज्ञानसे सुन्दर नीतिमें कुशल होते हैं शब्द और अर्थका ज्ञान विना व्याकरण नहीं होता ॥ ७ ॥

प्राकृतानां पदार्थानां न्यायतर्कैर्विनानाकिम् ।

विधिक्रियाव्यवस्थानां न किं मीमांसया विना

भाषार्थ—प्राकृत अर्थात् जगत्के पदार्थोंका ज्ञान न्याय और तर्कके विना और कर्मकांडकी व्यवस्थाओंका ज्ञान मीमांसके विना नहीं होता ॥ ८ ॥

देहावधिनश्वरत्वं वेदान्तैर्न विना हि किम् ।

स्वस्वाभिमतबोधीनिशास्त्राण्येतानि संति हि

भाषार्थ—शरीर आदि जगत् नाशवान् है यह ज्ञान वेदांतके बिना नहीं होसकता अपने २ वांछित एक २ वस्तुके बोधक वे पूर्वोक्तसंपूर्ण शास्त्र हैं ॥ ९ ॥

तत्तन्मतानुगैः सर्वैर्विधृता निजनैः सदा ॥
शुद्धिकौशलमेतद्धितैः किंस्याद्यवहारिणाम्

भाषार्थ—जिस २ मतके अनुयायी संपूर्ण जनोने सदैव रचे है परंतु वे संपूर्ण शास्त्र शुद्धिकी चतुर्गईरूप है इससे व्यवहारियोंका कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥

सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्या विना न हि ।
यथाशनं विना देहस्थितिर्न स्याद्धिदेहिनां ॥

भाषार्थ—संपूर्ण लोकके व्यवहारकी स्थिति नीतिके बिना इस प्रकार नहीं हो सकती जैसे देह धारियोंके देहकी स्थिति भोजनके बिना असंभव है ॥ ११ ॥

सर्वाभीष्टकरं नीतिशास्त्रं स्यात्सर्वसंमतम् ।
अत्यावश्यं नृपस्यापि सर्वेषां प्रभुर्यतः १२

भाषार्थ—सबके वांछितका कारक नीतिशास्त्र संपूर्ण मनुष्योंको संमत है और राजाकोभी अत्यंत अवश्य युक्त है क्योंकि यह सम्पूर्णका संमत है ॥ १२ ॥

शत्रवो नीतिहीनानां यथापथ्याशिनंगदाः ।
सद्यः केचिच्चकालेन भवन्ति न भवन्ति च ॥ १३

भाषार्थ—जिस प्रकार अपथ्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके रोग इसी प्रकार नीतिसिद्धि राजाओंके शत्रु कोई शीघ्र-और-कोई कालांतरमें होते हैं फिर वे नीतिहीनोंका तिरस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।
दुष्टनिग्रहणं नित्यं न नीत्यातो विना ह्युभे १४ ॥

भाषार्थ—प्रजाओंका पालन और दुष्टोंका नाश ये दो २ राजाओंके परमधर्म हैं ये दोनों नीतिके बिना नहीं हो सकते ॥ १४ ॥

अनीतिरेव संछिद्रं राज्ञां नित्यं भयावहम् ॥
शत्रुसंवर्धनं प्रोक्तं बलहासकरं महत् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—राजाका अन्याय महान् छिद्र(दोष) है और भयदायक—शत्रुओंका बढ़ानेवाला और सेनाकी हानिकरनेवाला होता है १५ नीतिरहितत्ववर्ततेयः स्वतंत्रः सहिदुःखभाक् स्वतंत्रप्रभुसेवातुल्यसिधाराबलेहनम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—नीतिका परित्याग करके जो राजा स्वतंत्र वर्त्ताव करता है वह दुःखका भागी होता है और स्वतंत्र राजाकी सेवा तलवारकी धारके चाटनेके तुल्य है ॥ १६ ॥

स्वाराध्यो नीतिमान् राजा दुराराध्यस्त्वनी-
तिमान्

यत्र नीतिबले चोभेत तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी ॥ १७

भाषार्थ—नीतिमान् राजा सुखसे आराधना करनेके योग्य हैं—और—अनीतिमान् राजा दुःखसे आराधना करनेके योग्य हैं, जिस राजाके नीति और बल दोनों हैं उसको चारों ओरसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

अप्रेरितहितकरं सर्वराष्ट्रं भवेद्यथा ॥
तथानीतिस्तु संधार्य नृपेणात्महिताय वै १८

भाषार्थ—जिस प्रकार बिना आज्ञाके हितकारी संपूर्ण देश हों इस प्रकार अपने कल्याणके अर्थ राजा नीतिको धारण करे ॥ १८ ॥

भिन्नराष्ट्रबलं भिन्नं भिन्नो मात्यादिकीर्णः ।
अकौशल्यं नृपस्यैतदनित्यं स्य सर्वदा ॥ १९

भाषार्थ—जिस राजाके देश-सेना-मंत्री आदिको—में परस्पर भेद है—यह सर्वकाल नीतिहीन राजाओंकी अकृशलता है ॥ १९ ॥

तपसतेजआदतेशास्त्रीपाताचरंजकः ॥
नृपःस्वप्राक्तनाद्धतेतपसाचमर्हामिमाम् ॥

भाषार्थ—तपसे राजा तेजधोरा और शास्त्र-
का ज्ञाता और रक्षाका कर्त्ता—सबका प्रिय हो-
ता है और राजा अपने पूर्वजन्मके तपसे इस
पृथ्वीकी पालना करता है ॥ २० ॥

वृष्टिगीतांप्पनक्षत्रगातिरूपस्वभावतः ॥
इष्टानिष्टाधिकेन्यूनाचारैःकालस्तुभिद्यते ॥

भाषार्थ—वर्षा—शीत—उष्ण—नक्षत्रोंकी गति
आदिके स्वभावसे वृष्ट—अनिष्ट अधिक और
न्यून आचरणसे कालका भेद होता है अर्थात्
एकही काल अनेकप्रकारका प्रतीत होता
है ॥ २१ ॥

आचारप्रेरकोराजाह्येतकालस्यकारणम् ॥
यदिकालःप्रमाणहिकस्माद्धर्मोस्थिकर्तुषु ॥

भाषार्थ—आचरणका प्रेरक राजा है इससे
कालका कारण है—जो केवल कालही प्रमाण
हो तो देहधारियोंमें धर्म कहाँसे हो—अर्थात्
राजाके बिना कालसेभी धर्मकी प्रवृत्ति नहीं
हो सकती ॥ २२ ॥

राजदंढभयाल्लोकःस्वस्वधर्मपरोभवेत् ।
योहिस्वधर्मनिरतःसतेजस्वीभवेदिह ॥ २३ ॥

भाषार्थ—राजदंढके भयसे जगत् अपने
धर्ममें तत्पर होता है और जो अपने धर्ममें
स्थित है वही इस लोकमें तेजघारी होता
है ॥ २३ ॥

विनास्वधर्मान्नसुखंस्वधर्मोहिपरंतपः ।
तपःस्वधर्मरूपंयद्धारितंयेनवैसदा ॥ २४ ॥

भाषार्थ—अपने धर्मके बिना सुख नहीं
होता और अपना धर्म ही परमतप है जि-
ससे तप स्वधर्मरूप है इससे वह स्वधर्मकी
सदा वृद्धि करता है ॥ २४ ॥

देवास्तुकिंकरास्तस्यकिंपुनर्मनुजाभुवि ।
सुदंडैर्धर्मनिरतःप्रजाःकुर्यान्महाभयैः ॥ २५ ॥

भाषार्थ—धर्मज्ञ मनुष्यके देवताभी सेवक
होते हैं पृथिवीपर मनुष्य तो क्यों न होंगे
धर्ममें स्थित राजा उत्तम और भयानक दंडों-
से प्रजाओंको धर्ममें तत्पर करता है ॥ २५ ॥

नृपःस्वधर्मनिरतोभूत्व तेजःक्षयोन्यथा ॥
अभिपिक्तानभिपिको नृपत्वंतुयदाप्नुयात् ॥

भाषार्थ—राजाको अभिषेक (पिता आदि-
के उपदेशद्वारा शास्त्राक्त (विधि) अथवा स्वयं
जब राजपदवीको प्राप्त हो तब राजा धर्ममें
तत्पर रहे जो धर्ममें स्थित नहीं उसके ते-
जका क्षय (नाश) होता है ॥ २६ ॥

बुद्ध्यावल्लेखशौर्येणततोनीत्यानुपालयन् ।
प्रजाःसर्वाःप्रतिदिनमच्छिद्रोदंडधृक्सदा ॥

भाषार्थ—बुद्धि—बल—शूरी—राजा और नीतिसे
संपूर्ण प्रजाका पालन करता हुआ राजा अ-
च्छिद्र (दोषरहित) होकर दंडकी सदा धारण
करे ॥ २७ ॥

नित्यबुद्धिमतोप्यर्थःस्वल्पकोपिविवर्धते ।
तिर्यञ्चोपिविशयांतिशौर्यनीतिबलैर्धनैः ॥

भाषार्थ—बुद्धियान् राजाका अत्यंत अल्प-
भी अर्थ नित्य वृद्धिको प्राप्त होता है सपर्य
आदिभीशूरता—नीति—बल—धनसे वश हो जाते
हैं ॥ २८ ॥

सात्त्विकतामसंचैवराजसंनिविधंतपः ।
याद्वक्तपतियोत्यर्थताहर्भवतिसो नृपः ॥ २९ ॥

भाषार्थ—सत्त्वगुणी—रजोगुणी—तमोगुणी—तीन
प्रकारका तप होता है—जो राजा सात्त्विकगुणी
होकर तपता है वह वैसाही होता है ॥ २९ ॥

योहिस्वधर्मनिरतःप्रजानांपरिपालकः ।
यष्टाचसर्वयज्ञानानेताशत्रुगणस्यच ॥ ३० ॥

दानशौडःक्षमीशूरोनिस्पृहोविषयेष्वपि ॥
विरक्तःसात्विकःसोहिन्द्रपोतेमोक्षमन्विष्यात्

भाषार्थ—जो राजा धर्मनिष्ठ होकर प्रजाका पालक होता है—और संपूर्ण यज्ञोका कर्ता है शत्रुओंका जेता है और—दानी है और क्षमावान् है—शूरवीर है—निलोभी है—विषयोंसे विरक्त है—वह सात्विक राजा अंत समयमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३० । ३१ ।

विपरीतस्तामसःस्यात्सोतेनरकभाजनः ।
निघृणश्चमदोन्मत्तोर्हिसकः सत्यवर्जितः ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त लक्षणोंसे विपरीत है लक्षण जिसमें ऐसा राजा तामसी और निर्दया—मदोन्मत्त—हिंसाप्रिय—सत्यहीन—अंतमें नरकगामी होता है ॥ ३२ ॥

राजसोदांभिकांलोभीविषयीवंचकश्शठः ।
मनसान्यश्चवचसाकर्मणाकलहप्रियः ॥ ३३
नीचप्रियः स्वतंत्रश्चनीतिहीनश्छलांतरः ।
सतिर्यक्त्वंस्थावरत्वंभवितांतृत्पाधमः ३४

भाषार्थ—दंभी—ओभी—विषयी—वंचक—शठ—मनसा अन्य (मनमें कपटी) वाणी और कर्मसे कलहकारी—नीचोंमें प्रेमी—स्वतंत्र—नीतिहीन—मनस छली ऐसा राजाओंमें अधम राजा—जोगुणी होता है—वह अंतमें तिरछी—अथवा स्थावरयोनको प्राप्त होता है ३३ ३४

देवांशान्सात्विकोभुंक्तेराक्षसांशांस्तुतामसः
राजसोमानवांशांस्तुसत्त्वधार्यमनोयतः ॥

भाषार्थ—सत्वगुणी देवांशोंको—तमोगुणी—राक्षसांशोंको—रजोगुणी—मनुष्यांशोंको भोगता है इससे सत्त्वगुणीमें मनकी धारणा करे ॥ ३५ ॥

सत्त्वस्यतमसःसाम्यान्मानुषंजन्मजायते ।
यद्यदाश्रयतेमर्त्यस्तत्तुल्योद्विष्टोभवेत् ॥

भाषार्थ—सत्वगुण—और तमोगुणकी साम्यतासे मनुष्यजन्म होता है—तिस २ गुणका आश्रय करता है अपने प्रारब्धके अनुसार—तिसकेही तुल्य होता है ॥ ३६ ॥

कर्मैवकारणंचात्रसुगतिर्दुर्गतिप्रति ।
कर्मैवप्राक्तेनमपिक्षणंकिंकोस्तिचाक्रियः ॥

भाषार्थ—इस जगतमें सुगति—और—दुर्गतिके प्रति कर्म ही कारण है—पूर्वकर्महीको प्रारब्ध कहते हैं क्या कोई जीव क्षणमात्र भी कर्म—रहित रह सकता है—अर्थात् नहीं रह सकता ॥ ३७ ॥

नजात्याब्राह्मणश्चात्रक्षत्रियोवैश्यएव न ।
नशूद्रोनचर्वम्लेच्छोभेदितागुणकर्मभिः ३८

भाषार्थ—इस जगतमें जन्मसे ब्राह्मण—वैश्य—क्षत्रिय—शूद्र—म्लेच्छ नहीं होते हैं किंतु गुण और कर्मके भेदसे होते हैं ॥ ३८ ॥

ब्रह्मणस्तुसमुत्पन्नाःसर्वेतेकिंब्राह्मणाः ।
नवर्णतेनजनकाद्वाहृत्यतेजःप्रपद्यते ३९ ॥

भाषार्थ—संपूर्ण—जीव ब्रह्मासे उत्पन्न होनेसे क्या ब्राह्मण होसके हैं—अर्थात् नहीं वर्णसे और पितासे ब्रह्मतेजकी प्राप्ति नहीं होसकती ३९ ॥

ज्ञानकर्मापासनाभिर्देवताराधनेरतः ।
शांतोदांतोदयालुश्चब्राह्मणश्चगुणैःकृतः ॥

भाषार्थ—ज्ञान—कर्म—देवता—आदिकी उपासना देवताके आराधनमें जो तत्पर—और—शांत—दांत—और—दयालु—ऐसा जो मनुष्य—वही गुणोंसे ब्राह्मण होता है ॥ ४० ॥

लोकसंरक्षणेदक्षश्शूरोदांतःपराक्रमी ।
दुष्टनिग्रहशीलीयः सर्वैक्षत्रियउच्यते ॥ ४१

भाषार्थ—लोककी रक्षा करनेमें चतुर—शूरवीर—दांत और पराक्रमी—दुष्टोंको दंडका दाता—ऐसा जो मनुष्य उसे क्षत्रिय कहते हैं ॥ ४१ ॥

क्रयविक्रयकुशलायेनित्यपण्यजीविनः ॥

पशुरक्षाकृषिकरास्तेवैश्याः कीर्तिताभुवि ॥

भाषार्थ—लेन देनमें चतुर व्यवहार है जीवन जिनका और पशुओंकी रक्षा—और खेतीके करनेहारे जीव वे पृथ्वीमें वैश्य कहते हैं ॥ ४२ ॥

द्विजसेवार्चनरताःशूराः शांताजितेंद्रियाः ।

सीरकाष्ठनृणवहास्तेनीचाःशूद्रसंज्ञकाः ४३

भाषार्थ—ब्राह्मणभी सेवा और पूजनमें तत्पर—शूर—वीर—शांत—और—जितेंद्रिय—हल काष्ठ—और नृण—इनको लेजानेहारे जो नीच जीव वे शूद्र कहते हैं ॥ ४३ ॥

त्यक्तस्वधर्मचरणानिघृणाःपरपीडकाः ।

चंडाश्चहिंसकानित्यंम्लेच्छास्तेह्यविवेकिनः

भाषार्थ—त्याग दियाहै अपने धर्मका आचरण जिन्होंने ऐसे निर्दयी परकों पीडा देनेहारे चंड और नित्य हिंसक जो अविवेकी मनुष्य वे म्लेच्छ हैं ॥ ४४ ॥

प्राक्कर्मफलभोगार्हाबुद्धिःसंजायतेनृणाम् ।

पापकर्मणिपुण्येवाकर्तुंशक्तीनचान्यथा ४५

भाषार्थ—पूर्वकर्मके फल भोगने योग्य मनुष्यकी बुद्धि पापकर्म अथवा पुण्यमें जब होती है तब ही बुद्धिके अनुसार कर्म कर सकता है अन्यथा नहीं ॥ ४५ ॥

बुद्धिरुत्पद्यतेतादृग्यादृक्कर्मफलोदयः ॥

सहायास्तादृशाएवयादृशीभावितव्यता ४६

भाषार्थ—जैसे कर्मके फलका उदय होता है वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है—और वैसी भावितव्यता (होनी) होती है वैसीही सहायक होते हैं ॥ ४६ ॥

प्राक्कर्मवशतःसर्वभवत्येवेतिनिश्चितम् ।

तदोपदेशाव्यय्याःस्युःकार्याकार्यप्रबोधकाः

भाषार्थ—जो यह निश्चय है कि पूर्वकर्मके आधीनही संपूर्ण होता है तो कार्यके जतानेहारे उपदेश व्यर्थ हो जायगे ॥ ४७ ॥

धीमंतोर्वचचरितामन्यतेपौरुषंमहत् ।

अशक्तपौरुषंकर्तुंस्त्रीवादैवमुपासते ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् और माननीयचरित्र मनुष्य पुरुषार्थकी बड़ा मानते हैं और जो नपुंसक पुरुषार्थ करनेको असमर्थ हैं वे दैव (प्रारब्ध) की उपासना करते हैं ॥ ४८ ॥

दैवपुरुषकरेचखलुसर्वप्रतिष्ठितम् ।

पूर्वजन्मकृतकर्मैर्हाजितंतद्विधाकृतम् ४९ ॥

भाषार्थ—प्रारब्ध और पुरुषार्थमेंही निश्चयसे संपूर्ण जगत् विद्यमान है पूर्वजन्मका कर्म प्रारब्ध और इस जन्मका कर्म पुरुषार्थ होनेसे एकही कर्मसे दो प्रकारका होता है ॥ ४९ ॥

बलवत्प्रतिकारिस्यादुर्वलस्यसदैवहि ॥

सबलाबलयोर्ज्ञानंफलप्राप्त्यान्यथानहि ॥

भाषार्थ—दुर्वलका प्रतिकार करनेवाला उपकारी बलवान् कर्म सर्वदा होता है और प्रबल और दुर्वलके ज्ञान फलप्राप्तिसे है अन्यथा नहीं होते ॥ ५० ॥

फलोपलब्धिःप्रत्यक्षहेतुनानैवदृश्यते ॥

प्राक्कर्महेतुकीसातुनान्यथैवेतिनिश्चयः ५१

भाषार्थ—फलकी प्राप्तिका हेतु कोई प्रत्यक्ष नहीं दीखता क्योंकि यह निश्चय है कि फलकी प्राप्ति पूर्वकर्मके अनुसार होती है अन्यथा नहीं हो सकती ॥ ५१ ॥

यज्जायतेत्पक्रिययानृणांवापिमहत्फलम्

तदपिप्राक्तनादेवकेचित्प्रागिहकर्मजम् ५२

भाषार्थ—जो मनुष्यको अल्प कर्मसे महान् फल होता है—वह भी पूर्वकर्मसे ही होता है क्योंकि इस जन्मके कर्मसे पूर्व किंचित् भी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥

वदंतीहैवक्रिययाजायतेपौरुषंनृणाम् ॥

सस्नेहवर्तिदीपस्यरक्षावातात्प्रयत्नतः ५३

भाषार्थ—कोई मतवादी कहते हैं कि इस जन्मके ही कर्मसे मनुष्योंका पुरुषार्थ होता है जैसे तेलवती सहित दीपककी रक्षा पवनसे और यत्नसे करते हैं ॥ ५३ ॥

अवश्यंभाविभावानांप्रतिकारानिच्छेदादि ।
दुष्टानांक्षपणंश्रेयांयावद्बुद्धिबलोदयम् ५४ ॥

भाषार्थ—अवश्य होनेवाली वस्तुका जो प्रतिकार न होता तौ अपने बुद्धि और बलके अनुसार दुष्टोंके नाशसे कुशल कैसे होती अर्थात् पुरुषार्थसे भावी भी अन्यथा होशकती है ॥ ५४ ॥

प्रतिकूलानुकूलभ्यांफलाभ्यांचनृषोप्यतः
ईषन्मध्याधिकाभ्यांचत्रिधादैवाविवर्तयत्

भाषार्थ—इनसे राजाभी अपने प्रतिकूल अनुकूल और अल्प-मध्यम-उत्तम-फलोंसे तीन प्रकारके दैवका विचार करें ॥ ५५ ॥

रावणस्यचभीष्मादेर्वनमंगेचगोगृहे ॥

प्रातिकूलान्तुविज्ञातमेकस्मान्वानरत्रातु ॥

भाषार्थ—रावणके वनका भंग एक वानर (हनुमान) से हुआ और भीष्मका गोगृहमें एकनर (अर्जुन) से भंग भया इससे कर्मकी प्रतिकूलताभी ज्ञात होती है ॥ ५६ ॥

कालानुकूल्यंविस्पष्टंराघवस्यार्जुनस्यच
अनुकूलंयदादैवक्रियाल्पासुफलाभवेत् ॥

भाषार्थ—रामचंद्र-और अर्जुनकी काल संवधी अनुकूलता स्पष्टतर है क्योंकि जब दैव, अनुकूल होता है तब स्वल्पक्रिया भी सफल होती है ॥ ५७ ॥

महतीसक्तियानिष्टफलास्यात्प्रीतिकूलके ।
बलिदानिनसंवद्धोहरिश्चंद्रस्तथैवच ५८ ॥

भाषार्थ—प्राग्बद्धी प्रतिकूलतामें महान्भी सुत्कर्म अनिष्ट फलदायक होता है बलि और राजा हरिश्चंद्र दानसेभी बंधनको प्राप्त हुये ॥ ५८ ॥

भवतीष्टसक्तिययानिष्टंतद्विपरीतया ॥

शास्त्रतः ८ दसज्ज्ञात्वात्यक्त्वाऽसत्सत्समा-
चरेत् ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—सत्कर्मसे इष्ट और असत्कर्मसे अनिष्ट होता है इससे शास्त्रद्वारा सत् और असत्का ज्ञान और असत्का परित्याग करके सत् (श्रेष्ठ) कर्महीका आचरण करें ॥ ५८ ॥

कालस्यकारणंराजासदसत्कर्मणस्त्वतः ।
स्वक्रौर्घोद्यतदंडाभ्यांस्वधर्मस्थापयेत्प्रजाः

भाषार्थ—कालका कारण राजा है सत् और असत् कर्मके प्रभावसे अपनी कूरता और दंडसे अपने २ कर्ममें प्रजाका स्थापन राजा करें ॥ ६० ॥

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गवलानिच
ससांगमुच्यतेराज्यंतत्रमूर्धानृपःस्मृतः ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—राजा-मंत्री-मित्र-कोश-देश-दुर्ग किला सेना ये सात अंग राज्यके हैं तिन सातोमें राजा प्रधान है ॥ ६१ ॥

दृगमात्यासुहृच्छ्रेयंमुखंकोशावलंमनः ॥
हस्तौपादौदुर्गराष्ट्रौराज्यांगानिस्मृतानिहि ।

भाषार्थ—मंत्री, नेत्र, मित्र-कर्ण, कोश-मुख सेना मन, दुर्ग-हात, देश-पाद, ये राज्यके अंग कहे हैं ॥ ६२ ॥

अंगानांक्रमशोवक्ष्येगुणान्भूतिप्रदान्सदा ॥
यैर्गुणैस्तुसुसंयुक्तावृद्धिमतोभवन्तिहि ६३ ॥

भाषार्थ—भूतिके देनेवाले अंगोंके गुण-क्रमसे कहते हैं जिन गुणोंसे संयुक्त मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥

राजास्य जगतो हेतुर्वृद्धचैवृद्धाभिसंमतः ।
नयनानंदजनकः शशांक इव तोयधेः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—राजा इस जगत्की वृद्धिका हेतु है और वृद्धोंका मान्य है नेत्रोंको इस प्रकार आनंद देता है जैसे चंद्रमा समुद्रको ॥ ६४ ॥

यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजाः
अकर्णधाराजलधौ विप्लवे तोहनौरिव ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—जो उत्तम नीतिमान् राजा न हो तो प्रजा इस प्रकार नष्ट हो जाय जैसे मला-हके बिना समुद्रमें नाव ॥ ६५ ॥

नतिष्ठंति स्वस्वधर्मे विनापालेन वं प्रजाः ।
प्रजयातु विना स्वामी पृथिव्यां नैव शोभते ६६

भाषार्थ—पालकके बिना प्रजा अपने धर्ममें नहीं टिकती और पृथिवीपर प्रजाके बिना स्वामीभी शोभाको प्राप्त नहीं होता ॥ ६६ ॥
न्यायप्रवृत्तो नृपतिरात्मानमथ च प्रजाः ।
त्रिवर्गेषोपसंधत्ते निहंति ध्रुवमन्यया ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—न्यायमें प्रवृत्त राजा अपनी और प्रजाको धर्म अर्थ काममें धारणा करता है और अन्यथा पूर्वोक्तोंको नष्ट करता है ॥ ६७ ॥

धर्माद्विपवनो राजा वधाय बभूवे भुवम् ।
अधमाच्चैव नहुषः प्रतिपेदे रसातलम् ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—धर्मसे विपन्न राजा पृथ्वीको जीतकर भोगता भया और राजा नहुष अधर्मसे पातालमें प्राप्त हुआ ॥ ६८ ॥

वेनो नष्टस्त्वधर्मेण पृथुर्वृद्धस्तु धर्मतः ।
तस्माद्धर्मपुरस्कृत्य गते तायाय पार्थिवः ६९

भाषार्थ—राजा वेन अधर्मसे नष्ट हुआ और राजा पृथु धर्मसे वृद्धिको प्राप्त हुआ तिससे राजा धर्मको प्रधान रखकर द्रव्यके संचयमें यत्न करें ॥ ६९ ॥

यो हि धर्मपरो राजा देवांशोन्यश्च रक्षसम् ।
अंशभृतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत् ७०

भाषार्थ—जो राजा धर्ममें तत्पर हैं वह देवताओंका अंश हैं और इतर राजा रक्षसोंका अंश हैं रक्षसोंका अंश धर्मका लोप कर्त्ता प्रजाका पीडा करने द्वारा होता है ॥ ७० ॥

इंद्रानिलयमार्काणामग्रे श्वरुणस्य च ।
चंद्रवित्तेशयोश्चापि मात्रा निहृत्य शाश्वतीः ॥
जंगमस्यावराणां च हीशः स्वतपसा भवेत् ।

भागभागक्षणे दक्षो यथेद्रे नृपतिस्तथा ७२ ॥

भाषार्थ—इंद्र-पवन-यम-सूर्य-अग्नि-वरुण-चंद्र-कुचे—इनके स्वाभाविक अंशोंस और अपने तपके प्रतापसे जंगम और स्थावरोंका स्वामी—राजा होता है—राजा अपने अंश (कर) का भोगने द्वारा रक्षा करनेमें चतुर इस प्रकार होता है जैसा स्वर्गका रक्षक इंद्र ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

वायुर्गंधस्य स दसत्कर्मणः प्रेक्षो नृपः ।
धर्मप्रवर्त्तकोऽधर्मनाशकस्तमसो रविः ७३ ॥

भाषार्थ—पवन सुगंधका जैसे प्रेरक है—तैसे सत् और असत् कर्मका प्रेरक राजा होता है धर्मका प्रवर्त्तक और अधर्मका नाशक राजा इस प्रकार होता है जैसे अधकारका नाशक सूर्य होता है ॥ ७३ ॥

दुष्कर्मदंडको राजायमः स्याद्दंडकुक्षमः ।
अग्निश्शुचिस्तयाराजारक्षार्थं सर्वभागभुक् ॥

भाषार्थ—दुष्कर्मके दंडका दाता होनेसे यमराजके समान दंडका कारक होता है राजा अग्निके समान शुद्ध होता है और रक्षा के अर्थ अपने भाग (कर) को भोगता है ॥ ७४ ॥

पुण्यत्यपारसैःसर्ववरुणःस्वधनैर्नृपः ।

करैश्चंद्रोल्हादयतिराजास्वगुणकर्मभिः ॥

भाषार्थ—जलोंसे सबका पोषक राजा जलरूप और अपने धनोंसे पुष्ट करनेसे वरुण रूप है चंद्रमाकी किरणोंके समान अपने गुण और कर्मोंसे सबको प्रसन्न रखता है ॥ ७५ ॥

कोशानारक्षणेदक्षःस्यान्निधीनाधनाधिपः ।

चंद्रांशेनविनासर्वैरंशैर्भातिभूपतिः ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—धनकी रक्षा करनेमें चतुर और कोशमें कुबेरके समान सर्वगुणी भी राजा चंद्रमांश (प्रकाश) के विना शोभित नहीं होता ॥ ७६ ॥

पितामातागुरुभ्रातृबंधुवैश्वणोयमः ।

नित्यंसप्तगुणैरेषांयुक्तोराजानचान्यथा ॥

भाषार्थ—पिता, माता, गुरु, भ्राता, बंधु, कुबेर, यम, इनके सात गुणोंसे युक्त ही राजा होता है अन्यथा नहीं होता ॥ ७७ ॥

गुणसाधनसंदक्षःस्वप्रजायाःपितायथा ।

क्षमयिष्यपराधानांमातापुष्टिविधायिनी ॥

भाषार्थ—पिताके समान अपनी प्रजाके गुणोंकी सिद्धिमें तत्पर रहे और प्रजाके अपराधोंको क्षमा करिके पुष्टि इस प्रकार करे जैसे माता पुत्रके अपराधोंको क्षमा करिके पुष्टि करती है ॥ ७८ ॥

हितोपदेशशिष्यस्यसुविद्याध्यापकोगुरुः ।

स्वभागोद्धारकृच्छ्रातायथाशास्त्रं पितुर्धनात्

भाषार्थ—जिस प्रकार गुरु शिष्यको उत्तम विद्याध्ययन कराता है और उसके हितोंको उपदेशभी कराता है जिस प्रकार भ्राताके धनमेंसे शास्त्रके अनुसार अपने भागको ग्रहण करता है इस प्रकार राजाभी हितोपदेशपूर्वक शास्त्रके अनुसारही कर (दंड) का ग्रहण करे ॥ ७९ ॥

आत्मस्त्रीधनगुह्यानांगोत्तावंधुस्तुमित्रवत् ।

धनदस्तुकुबेरःस्याद्यमःस्याच्चसुदंडकृत् ॥

भाषार्थ—बंधु, जिस प्रकार मित्रके समान अपने स्त्री धन गोप्य वस्तु इनकी रक्षा करता है इसी प्रकार राजाभी करे और प्रजाकी विपत्तिमें धनके देनेसे कुबेर और अपराधके अनुसार दंड देनेसे यम यमरूप राजा होता है ॥ ८० ॥

प्रवृद्धिमतिसंराज्ञानिवसंतिगुणाधमी ।

एतेसप्तगुणाराज्ञानहातव्याः कदाचन ८१ ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ बुद्धिमान् उत्तमराजामें ये पूर्वोक्त सातों गुण वसते हैं इससे राजा इन सातों गुणोंका कदाचित् भी परित्याग न करे क्षमतेयोपराधंसः शक्तः सदमनेक्षमी ।

क्षमयातुविनाभूषेनभात्यखिलसद्गुणैः ८२

भाषार्थ—जो अपराधोंकी क्षमा करे वह राजा क्षमावान् है और जो दमन दंड देनेमें समर्थ है वह शक्त है क्षमाके विना राजा सम्पूर्णभी उत्तम गुणोंसे शोभित नहीं होता है ८२ ॥

स्वान्दुर्गुणान्परित्यज्यह्यतिवादांस्तितिक्षते दानैर्मानैश्चसत्कारैः स्वप्रजारंजकः सदा ॥

भाषार्थ—अपने निन्दित गुणोंका परित्याग करिके निंदाका सहन करे, दान मान सत्कारसे अपनी प्रजाको सदा प्रसन्न रखे दांतः शूरश्चशस्त्रास्त्रकुशलेरिनिषुदनः ।

अस्वतंत्रश्चमेधावीज्ञानविज्ञानसंयुतः ८४ ॥

भाषार्थ—दमनशील शूरी शस्त्र और अस्त्रमें कुशल शत्रुओंका नाशक शास्त्रके अनुसार आचरण करनेद्वारा बुद्धिमान् ज्ञान और विज्ञान संयुक्त राजा सदा रहे ८४ नीचहीनोदीर्घदर्शीवृद्धसेवीसुनीतियुक् गुणिजुष्टस्तुयोराराजसज्ञेयोदेवतांशकः ८५

भाषार्थ—नीचांसे रहित दीर्घदर्शी वृद्धोंका सेवक उत्तम नीतिमान् गुणियोंसे युक्त ऐसा जो राजा वह देवता आंका अंश है ॥ ८५ ॥ विपरीतस्तुरक्षोऽंशः सवैनरकगोजनः ॥

नृपांशसदृशो नित्यं तत्सहायगणः किल ८६

भाषार्थ—पूर्वोक्त गुणोंसे विपरीत हैं गुण जिसमें वह राजा राक्षसोंका अंश है और जिस अंशका राजा होता है उसके सहायकोंका समूह भी उसी अंशका होता है ॥ ८६ ॥

तत्कृतं मन्यते राजा संतुष्यति च मोदते ॥

तेषामाचरणैर्नित्यं नान्यथानियतेर्बलात् ८७

भाषार्थ—सहायकोंके किये कार्यको उनके आचरणोंसे राजा मानता है और संतोष करता है और देवके अनुसार प्रसन्न होता है अन्यथा नहीं ॥ ८७ ॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्मफलं नरैः ॥

प्रतिकारैर्विना नैव प्रतिकारं कृते सति ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—किये हुए कर्मोंका फल मनुष्यको अवश्य ही भोगना पड़ता है प्रतिकारके बिना प्रतिकार (निवृत्तिका उपाय) किये पीछे भी अवश्य भोगने योग्य है ॥ ८८ ॥

तथा भोगाय भवति चिकित्सितगदो यथा

उपदिष्टे निष्ठे तौ तत्तत्कर्तुं यते ततः ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार रोगका चिकित्सा होगी उसी प्रकारके भोगोंकी प्राप्ति होगी जो अनिष्ट फलके हेतुका उपदेश करता है उसके करनेमें कोई भी यत्न नहीं करता ८९ राज्यते सत्फलं स्वात्तं दुष्फलं न हि कस्यचित् ॥

सदसद्बोधकान्येव हृष्टाशास्त्राणि चाचरेत् ९०

भाषार्थ—मनुष्यका मन उत्तम है फल जिसका ऐसे कर्ममें लगता है और अनिष्ट है फल जिसका उसमें किसीका भी मन नहीं लगता है इससे सत् और असत्के बोधक शास्त्रोंको देखकर ही राजा आचरण करे ॥ ९० ॥

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात् विनयस्यैन्द्रियजयस्तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति ॥

भाषार्थ—नीतिका कारण विनय है विनय-शास्त्रके निश्चयसे होता है विनयका हेतु इन्द्रियोंका जय है इन्द्रियोंके जयसे ही शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ ९१ ॥

आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत् ।

ततः पुत्रांस्ततो मातृयांस्ततो भृत्यांस्ततो प्रजा

भाषार्थ—इससे राजा प्रथम अपने आत्माको निरंतर विनययुक्त करे फिर पुत्रोंको फिर अमात्योंको फिर सेवकोंकी फिर प्रजाको विनययुक्त करे ॥ ९२ ॥

परोपदेशकुशलः केवलोन भवेन्नृपः ॥

प्रजाधिकारहीनः स्यात्सगुणोऽपि नृपः क्वचित्

भाषार्थ—दूसरेके उपदेशमें ही केवल राजा कुशल न रहे किंतु आप भी विनयशील रहें क्योंकि विनयहीन सगुण भी राजा प्रजा के अधिकारसे कदाचित् हीन होजाता है ॥ ९३ ॥ ननु नृपविहीनास्य दुर्गुणा ह्यपि तु प्रजा ॥

यथानविधवैद्राणी सदा तु तथा प्रजा ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—दुर्गुण भी प्रजा राजासे हीन सर्वदा इस प्रकार नहीं होता जैसे इंद्रकी स्त्री कभी विधवा नहीं होती है ॥ ९४ ॥

अष्टश्रीः स्वामिताराज्ञो नृप एव न मंत्रिणः ॥

तथा विनीतदायादौ दाताः पुत्रादयोऽपि च ॥

भाषार्थ—जैसे राजा की अष्टश्रीका कारण राजा ही है मंत्री नहीं किसी प्रकार जिस राजाके पुत्र आदि अधिनीत होते हैं वही राजा अष्टश्री अर्थात् राज्यसे हीन होजाता है ९५ सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः ॥

विनीतात्मा हिनृपतिर्भूयसीं श्रियमश्नुते ॥ ९६

भाषार्थ—जिस राजामें प्रजाका अनुराग होता है और जो प्रजाके पालनमें तत्पर है और

विपरीत है वह राजा अत्यंत श्रीकी भोगता है ॥ ९६ ॥

प्रकीर्णविषयारण्येधावंतंविप्रमाथिनम् ।

ज्ञानांकुशेनकुर्वीतवशमिन्द्रियदंतिनम् ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—राजा गहनविषयरूपी वनमें मदसे दौड़ते हुए इंद्रियरूपी हस्तीको ज्ञानरूपी अंकुशसे वशमें करे ॥ ९७ ॥

विषयाम्बलोभेनमनः प्रेरयतीन्द्रियम् ।

तन्निबन्धप्रयत्नेनजितेतस्मिञ्जितेन्द्रियः ॥

भाषार्थ—विषयरूप मासके लोभसे इंद्रियोंको मन प्रेरता है तिसके प्रयत्नसे मनको रोके क्यों कि मनके जीतेसे राजा जितेन्द्रिय होता है ॥ ९८ ॥

एकस्मैवहियोशक्तोमनसः सन्निरहणे ।

महर्सागरपर्यन्तांसकथं हवजेयति ॥ ९९ ॥

भाषार्थ—जो राजा एक मनके वश करनेमें असमर्थ है वह राजा सागरपर्यन्त पृथ्वीको किस प्रकार जीतेगा ॥ ९९ ॥

क्रियावसानविरसैर्विषयैरपहारिभिः ।

गच्छत्याक्षिप्तहृदयः करिवनृपतिर्गृहम् ॥

भाषार्थ—नाशमान और अंतमें विरस विषयासे आक्षिप्त (वशीभूत) मन जिसका ऐसा राजा हस्तिके समान बंधनको प्राप्त होता है ॥ १०० ॥

शब्दः स्पर्शश्चरुपंचरसेगंधश्चपंचमः ।

एकेकस्त्वलमेतेषां विनाशप्रातिपत्त्यै ॥ ११ ॥

शब्द - स्पर्श - रूप - रस - गंध - इनमें से एक २ भी विषय विनाश करनेको समर्थ हैं ॥ १ ॥

शुचिर्दभीकुराहारोविदूरभ्रमणक्षमः ।

लुब्धकोद्गीतमोहनमृगोमुगयतवधम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—शुद्ध-और कुशाओंके अंकुरोंका भक्षक-और अत्यंत दूरदेशमें भ्रमणशील मृग लुब्धक के गीतसे मोहित होकर वधको प्राप्त होता है अर्थात् एकश्रवणाइंद्रियकेहि वश होकर मृत्युको प्राप्त होजाता है- ॥ २ ॥

गिरीन्द्रशिखराकारोलीलयोन्मूलितदृढम् ।

करिणीस्पर्शसंमोहाद्रंधनंयातिवाणः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—पर्वतकी शिखरके समान है आकार जिसका और लीलासे उखाड़ है वृक्ष जिसने ऐसा हस्ती हस्तिनीके भोगके समोहसे बंधनको प्राप्त होता है अर्थात् लिंगइंद्रियकेही वशीभूत होकर बंधनको भोगता है ॥ ३ ॥

स्निग्धदीपशिखालोकविलोलितविलोचनः ।

मृत्युमुच्छतिसंमोहात्पतंगः सहस्रापतन् ४

भाषार्थ—स्निग्ध (रमणीय) दीपककी शिखाके देखनेसे चंचल हैं नेत्र जिसके ऐसा पतंग दीप शिखापर गिरता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् नेत्रइंद्रिय ही इसके वधका हेतु हो जाता है ॥ ४ ॥

अगाधसलिलेमग्नोदूरोपिवसतोवसन् ।

मीनस्तुसामिषंलोहमास्वादयतिमृत्यवे ५॥

भाषार्थ—अगाधजलमें डूबा हुआ और दूर वसता हुआ भी मीन अपनी मृत्युके अर्थ मांस सहित लोहेको ग्रहण करता है अर्थात् एक जिह्वा इंद्रियसे ही मर जाता है ॥ ५ ॥

उत्कर्तितुंसमर्थोपि न तु चैव स पक्षकः ।

द्विरेफीगंधलोभेनकमलेयातिबंधनम् ॥ ६ ॥

कमलके कतरनेमें समर्थ और अपने पंखोंसे गमन करनेमें संपन्न भी भ्रमर गंधके लोभसे कमलकेविषे बंध जाता है अर्थात् घ्राण इंद्रियसे मरणको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

एकैकशोविनिघ्नन्तिविषयाविषसन्निभाः ॥

किंपुनः पंचामोढताः नक्तयनाशयतिहि ७

भाषार्थ—विषके तुल्य विषय एक २ भी हते हैं तो पाचों मिलकर नाश क्यों नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य करेंगे ॥ ७ ॥

द्युतंस्त्रीमद्ये प्रवैतत्रितयंवहनर्थकृत् ॥

अयुक्तंयुक्तियुक्तंहेधनपुत्रमतिप्रदम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—अयोग्य द्यूत-स्त्री-मदिरा-अत्यंत अनर्थ-क कर्ता हैं—यदि युक्त अर्थात्—इनका सेवन योग्यतापूर्वक होय तो क्रमसे धन-पुत्र—मति इनके दायक होते हैं ॥ ८ ॥

नलधर्मप्रभृतयः सुद्युतेनविनाशिताः ॥

सकापस्वधनायालं द्यूतंभवतितद्विदाम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ—नल और युधिष्ठिर आदि राजा द्यूतनेनष्ट कर दिये द्यूतके जाननेवालोंको कष्ट सहित द्यूत धनके देनेमें समर्थ हैं ॥ ९ ॥

स्त्रीणां नामापिसंल्लादिविकरोत्येवमानसम् ।
किंपुनर्दशनं तासां विलासोल्लासितभुवाम् १०

भाषार्थ—आनंदका दाता स्त्रियोंका नाम भी मनको विकारी करता है और विलासकारिके उल्लास (शोभा) को प्राप्त हुई है भ्रुकुटीजिनकी उनका दर्शन तौ क्यों नहीं विकारको करेगा अर्थात् अवश्य करेगा ॥ १० ॥

रहःप्रचारकुशलामुदुगद्गदभाषिणी ।

कंननारीवशी कुर्यान्नरं रक्तांतलोचना ११ ॥

भाषार्थ—एकांत कार्यमें कुशल-और कोमल गद्गद बोलनेमें तत्पर लालहै नेत्रोंका समीप जिसका ऐसी स्त्री किस मनुष्यको वशमें न करेगी अपितु सबकोही वश कर सकती है ११

मुनेरपिमनोवश्यं सरागं कुरुते गना ॥

जितेंद्रियस्य कावार्ता किंपुनश्चाजितात्मनाम्

भाषार्थ—जितेंद्रियमुनिके मनको भी वशीभूत और सराग (विषयाभिलाषा) स्त्री करती है, अजिताओंके मनको तौ वशीभूत क्यों नहीं करेगी ॥ १२ ॥

व्यायच्छंतश्चवहवः स्त्रीपुनाशंगताभमी ॥

इंद्रदंडक्यनहुपरावणाद्याः सदाहृतः १३ ॥

भाषार्थ—परस्त्रियोंकी इच्छा करनेहारि ये राजा नाशको प्राप्त हुए इंद्र-दंडक्य-नहुष-और रावण आदि—१३

अतत्परनरस्यैव स्त्रीसुखाय भवेत्सदा ॥

साहाय्यिनी गृह्य कृत्येतां विनान्धानविद्यते ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य स्त्रीके विषे तत्पर (आधीन) नहीं उसीकी स्त्री सुखदायक होती है क्योंकि गृहके कार्यमें उसके बिना और कोई भी सहायक नहीं है ॥ १४ ॥

अतिमद्यांहिपि वतो बुद्धिलोपो भवेत्किल ॥

प्रतिभां बुद्धिबैशद्यं धैर्यं चित्तविनिश्चयं १५

तनोति मत्रयापीतं मद्यमन्यद्विनाशकृत्

कामक्रोधौ मद्यतमौ निनोक्तव्यौ यथोक्तं

भाषार्थ—अत्यंत मदिरा पीनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका लोप होता है, और परिमित पिईहुई मदिरा बुद्धिकी स्फुरणा और श्रेष्ठता-धीरता-चित्तको निश्चय इनको विस्तार करती है—अधिक मदिरा विनाश करती है और मदिरासे भी काम-क्रोध-होता है इनको यथाचित्त रोके ॥ १५ ॥ १६ ॥

कामः प्रजापालने चक्रो धः शत्रुनिबर्हणे ॥

सेनासंधारणे लोभो योज्यो राज्ञा जयार्थिना ॥

भाषार्थ—विषयकी इच्छावाला राजा प्रजाके पालनमें कामना और शत्रुओंके नष्ट करनेमें क्रोध और सेनाकी धारणामें लोभको क्रमसे नियुक्त करे अन्यत्र नहीं ॥ १७ ॥

परस्त्रीसंगमेकामोलोभोनान्यधनेषुच ।

स्वप्रजादंडनेक्रोधनैवधार्योनृपैःकदा ॥१८॥

भाषार्थ—परस्त्रीके संगममें काम और अन्यके धनमें लोभ और अपनी प्रजाके दंडमें क्रोधका धारण राजा कदापि न करै ॥१८॥

किमुन्यतेकुटुंबीतिपरस्त्रीसंगमन्नरः ।

स्वप्रजादंडनाच्छूरोधनिकोन्यधनैश्चकिम् ॥

भाषार्थ—परस्त्रीके संगसे कुटुंबी और अपनी प्रजाको दंडदेनेसे शूखीर और अन्यके धनसे धनिक क्या मनुष्य कहा जाता है अपितु कदाचित् भी नहीं कहाता ॥ १९ ॥

अराक्षितारंनृपतिर्ब्राह्मणंचातपस्विनम् ।

धनिकंचाप्रदातारं देवाघ्नंतित्यजंत्यधः २० ॥

भाषार्थ—रक्षाके नकरने हारे राजाको और अतपस्वी ब्राह्मणको और अदाता धनिको देवता हतते हैं और नरकमें गेरते हैं ॥२०॥

स्वामित्वंचैवदासुत्वं धानिकत्वंतपःफलम् ।

एनसः फलमर्थित्वंदास्यत्वंचदरिद्रता २१

भाषार्थ—स्वामिता दासता धनिकता ये तपका फल है और याचकता दासता दरिद्रता ये पापका फल है ॥ २१ ॥

दृष्ट्वाशास्त्राण्यतोत्मानंसन्नियम्ययथोचितं ।

कुर्यान्नृपःस्ववृत्तंतुपरत्रेहसुखायच ॥२२॥

भाषार्थ—इससे राजा शास्त्रोंको देख और मनको रोक कर यथोचित अपने आचरणको इसलोक और परलोकके सुखके अर्थ करै २२

दुष्टनिग्रहणंदानं प्रजायाः पारिपालनम् ।

यजनं राजसूयाद्वैकोशान्नान्यायतीर्जनम् ॥

करदीकरणं शस्त्राणि परिमर्दनम् ।

भूमेरुपार्जनं भूयोरजडुत्तु चाष्टधा २४ ॥

भाषार्थ—दुष्टोंको दंड और प्रजाका पालन और राजसूय आदि यज्ञोंका करना और न्यायसे कोश खजानाका बढ़ाना और राजाओंको करका दाता करना शत्रुओंका मर्दन करना और मुनिका वारंवार सम्पादन करना यह आठप्रकारका राजाओंका वृत्त आचरण है ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥

नवर्धितं वलं यैस्तु न भूपाः करदीकृताः ।

न प्रजाः पालिताः सम्यक्ते वैषण्डतिलानृपाः ॥

भाषार्थ—जिन राजाओंने सेनाकी वृद्धि न की और अन्य राजाओंको करके दाता न किये और प्रजाओंकी सम्यक् पालना न की वे राजा निष्फलतिलके समान हैं ॥२५॥

प्रजास्तु द्विजतेयस्माद्यत्कर्मपारिर्निदति ।

त्यज्यते धनिकैर्यस्तु गुणिभिस्तु नृपाधमः ॥

भाषार्थ—जिस राजासे प्रजा कांपती है और प्रजा जिस राजके कार्यकी निंदा करती है तिस राजाको धनी और गुणी त्यागते है वह राजा अधम है ॥ २६ ॥

नटगायकगणिकामल्लपंडालपजातिषु ।

योतिशक्तो नृपो निचः सहिशत्रुमुखे स्थितः ॥

भाषार्थ—नट गायक वेदया नृपसक और नीचजातियोंमें जो राजा अत्यन्त आसक्त है वह राजा निच है और शत्रुके मुखमें विद्यमान है ॥ २७ ॥

बुद्धिमतंसदाद्वेष्टि मोदते वंचकैः सह ॥

स्वदुर्गुणं नैव वेत्ति स्वात्मना शायसो नृपः २८

भाषार्थ—जो राजा बुद्धिमान्से सदा द्वेषकरै वंचकोंसे सदा प्रसन्न और अपने दुर्गुणको न जानै वह राजा अपने नाशका कारण होता है

नापराधं हि क्षमते प्रदंडो धनहारकः

स्वदुर्गुणः श्रवणतो लोकांनां परिपीडकः २९

मृषोयदा तदालोकः क्षुभ्यते भिद्यते यतः

गूढचारैः श्रावयित्वा स्ववृत्तं दूषयंतिके ॥ ३०

भाषार्थ—जो राजा अपराधको क्षमा न करे उत्तम दण्डको दे धनको हरे और अपने दुर्गुणोंको श्रवण करिके लोकोंको राजा जब पीडित करता है तब लोक क्षोभ और भेदको प्राप्त होता है इससे गुप्त दूतोंके द्वारा अपने वृत्त (आचरण) को कान दूषित करता है यह श्रवण करावे ॥ २९ ॥ ३० ॥

भूषयंतिकैर्भावैरमात्याद्याश्च तादृहः

मयिकीदृक् च संप्रीतिः केपामप्रीतिरेव वा ॥

भाषार्थ—और कान वृत्तके ज्ञाता मंत्री आदि मेरे वृत्तकी प्रशंसा करते हैं और मेरे विषे किस प्रकार उत्तम प्रीति और अप्रीति है ॥ ३१ ॥

मम गुणैर्गुणैर्वापि गूढं संश्रुत्य नाखिलम्

चारैः स्वदुर्गुणं ज्ञात्वा लोकतः सर्वदा नृपः ३२

सुकीर्त्यै संश्रुत्य जेन्नित्यं नावमन्येत वै प्रजाः

लोकानिदितिराजस्त्वाचारैः संश्रावितो यदि

भाषार्थ—मेरे गुण और दुर्गुणोंसे कौन प्रसन्न और अप्रसन्न है इस प्रकार संपूर्ण गुणव्यवहार श्रवण करके संपूर्ण कालमें लोकसे अपने दुर्गुणोंको राजा जानकर अपनी सुकीर्तिके अर्थ प्रजाको त्याग (छोड़) दे अर्थात् दंड न दे और प्रजाका अपमान न करे जिस राजाने लोकोंसे यह श्रवण किया हो कि है राजन् लोक तेरी निंदा करते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कोपं करोति दौरात्म्यादात्मदुर्गुणलोपकः ।
सीतासांध्यपिरामेण त्यक्ता लोकापवादतः

भाषार्थ—जो राजा अपने दुर्गुणोंके छिपानेके निमित्त कोप करता है वह दुरात्मा है साधुस्वभावभी सीताजीको लोकके अपवादसे रामचंद्रजीने त्याग दी ॥ ३४ ॥

शक्तेनापि हि न धृतो दंडो लपोरजके कांचित् ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्ने राजदत्ताभयोपि च ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—समर्थ होकरभी ज्ञानविज्ञानयुक्त राजाने दिया है, अभयदान जिसको ऐसे रजक (घोषी) को अल्पभी दंड न दिया ॥ ३५ ॥

समक्षं वक्तुं न भयाद्वाङ्मोहोर्वपि दूषणम् ।
स्तुतिप्रिया हि वै देवा विष्णुमुख्या इति श्रुतिः ॥

भाषार्थ—राजाके अधिक दूषण कोई नहीं कहता है विष्णु आदि देवताभी स्तुतिके प्रिय मानते हैं यह श्रुति है ॥ ३६ ॥

किं पुनर्मनुजानित्यानिंदाजः क्रोध इत्यतः ।
राजा सुभागदंडी स्यात्सूक्ष्मरीरं रजकः सदा ॥

भाषार्थ—मनुष्य तों नित्य स्तुतिप्रिय क्यों न होंगे जिससे क्रोध निंदासे उत्पन्न होता है इससे राजा सुभाग (सूक्ष्म) दंड दाता और उत्तम क्षमाशील और प्रजाका रंजक (प्रसन्न कारक) सदा रहे ॥ ३७ ॥

यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मश्चिस्वा मिता ।
चंचलानि पण्डितानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत् ३८

भाषार्थ—यौवन—जीवन—चित्त—छाया—लक्ष्मी स्वामिता ये छे ६ चंचल हैं यह जानकर राजा धर्ममें तत्पर रहे ॥ ३८ ॥

अदानेनापमानेन छलाच्च कटुवाक्यतः ॥

राज्ञः प्रबलदंडेन नृपमुंचतिवै प्रजा ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—कृपणता—तिरस्कार—छल—कटुवचन—राजाका प्रबलदंड—इनसे राजाको प्रजा त्याग देती है ॥ ३९ ॥

विपरीतगुणरेभिः सान्वयारज्यते प्रजा
एकस्तनोति दुष्कीर्तिं दुर्गुणः संघशानिकम् ॥

भाषार्थ—और पूर्वोक्तगुणोंके विपरीत गुणोंसे प्रजा सदा प्रसन्न रहती है—एकभी दुर्गुण कुकीर्ति करता है तो दुर्गुणोंका समूह दुष्कीर्ति क्यों नहीं करेगा ॥ ४० ॥

मृगयाक्षास्तथापानगर्हि तानि महीभुजाम्
दृष्टास्तेभ्यस्तु विपदोपांडुनैषधवृष्णिषु ४१

भाषार्थ—मृगया—शूत—मदिरा—ये तीनों राजाओंको निर्दिष्ट हैं—क्योंकि इन तीनोंसे ही नैषध पांडु यादवोंमें विपत्ति देखी है ॥ ४१ ॥

कामक्रोधस्तथामोहलोभमानो मदस्तथा
षड्वर्गमुत्सृजे देनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥

भाषार्थ—काम—क्रोध—मोह—लोभ—मान—मद—इन छःओंको राजा त्यागदे क्योंकि इनके त्यागनेसे राजा सुखी होता है ॥ ४२ ॥

दंडक्योनृपतिः कामात्क्रोधाच्च जनमेजयः
लोभादैलस्तुराजर्षिर्मोहाद्वातापिरासुरः ॥
पौलस्त्योराक्षसोमानान्मदाद्भोद्रवोनृपः ॥
प्रयातानि धनं ह्येतेश्च षड्वर्गमाश्रिताः ४४ ॥

भाषार्थ—दंडक्य कामसे जन्मेजय क्रोधसे ऐलराजर्षि लोभसे—वातापि असुर मोहसे, रावण राक्षस मानसे—दंभसे उत्पन्न राजा मदसे ये पूर्वोक्त राजा षड्वर्ग रूप शत्रुओं के आश्रयसे मरणको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यः प्रतापवान्
अंबरीषो महाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ४५ ॥

भाषार्थ—और शत्रुओंके षड्वर्गको त्यागकर प्रतापी परशुराम और महाभाग—अंबरीष—चिरकाल तक पृथ्वीको भोगते भये ॥ ४५ ॥

वर्धयन्निह धर्मार्थोसे वितौ सद्भिरादरात्
निगृहीतं द्विग्रामो कुर्वीत गुरुसेवनम् ४६ ॥

भाषार्थ—सज्जनोंने किया है सेवन जिनका ऐसे धर्म और अर्थकी वृद्धि की अर्थ इन्द्रियोंको वशोभूत (जीत) कर गुरुका सेवन करे ॥ ४६ ॥

शास्त्राय गुरुसंयोगः शास्त्रं विन वृथ द्ययं ॥
विद्याविनीतिं नृपतिः सतां भवति संमतः ४७ ॥

भाषार्थ—गुरुका संयोग शास्त्रके अर्थ और शास्त्र विनय (नम्रता) की वृद्धिके अर्थ—विद्या और विनयसे युक्त राजा सत्पुरुषोंको संमत होता है ॥ ४७ ॥

प्रेर्यमाणोऽप्यसदृत्तैर्नाकार्येषु प्रवर्तते ॥
श्रुत्या स्मृत्या लोकतश्च मनसा साधुनिश्चितम्

यत्कर्म धर्मसंज्ञतद्वचस्य त्विच पंडितः ॥
आददानप्रतिदानकलासम्यक्महीपतिः

भाषार्थ—असत् है आचरण जिनका तिनकी प्रेरणासे भी जो निर्दिष्टकर्म कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता और वेद और स्मृति (धर्मशास्त्र) और लोकसे मनके द्वारा साधु निश्चित किया जो कर्मसम्बन्धीकर्म उसे जो करता है वह राजा पंडित है समयके अनुसार धनलेने और देनेसे राजा साधु होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

जितेंद्रियस्य नृपतेर्नीतिशास्त्रानुसारिणः
भवंत्युच्चलितालक्ष्म्यः कीर्तयश्च न भस्पृशः

भाषार्थ—जितेंद्रिय—और नीतिशास्त्रके अनुसार राजाको लक्ष्मी अधिक और कीर्ति स्वर्गगामिनी होती है ॥ ५० ॥

आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता दंडनीतिश्च शाश्वतीः
विद्याश्च तत्त्व एवैता अभ्यसन्नृपातः सदा ५१ ॥

भाषार्थ—ब्रह्मावद्या (वेदान्त) वेदत्रयी (३ वेद) वार्ता—दंडनीति—ये चारोंविद्याओं का राजा सदा अभ्यास करे ॥५१॥

आन्वीक्षिक्यांतर्कशास्त्रवेदांताद्यंप्रतिष्ठितम्
त्रय्यांधर्मोहाधर्मश्चकामोकामः प्रतिष्ठितः॥

भाषार्थ—आन्वीक्षिकीमें न्यायशास्त्र और वेदांत आदि हैं और वेदत्रयीमें धर्म अधर्म—कामना—और—मोक्ष है ॥५२॥

अर्थानर्थानुवार्तायांदंडनीत्यानयानयौ ।
वर्णाःसर्वाश्रमाश्चैवविद्यास्वासुप्रतिष्ठिताः॥

भाषार्थ—अर्थ और अनर्थ वार्तामें—न्याय—और अन्याय दंडनीतिमें वर्ण और आश्रम इन संपूर्ण विद्याओंमें विद्यमान हैं ॥ ५३ ॥

अंगानिवेदाश्चत्वारोमीमांसान्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रपुराणानित्रयीदंसर्वमुच्यते॥५४॥

भाषार्थ—शिक्षा—कल्प—व्याकरण—निरुक्त—ज्योतिष्—छंद ये वेदके ६ अंग हैं—और—४ वेद—मीमांसा—न्यायका विस्तार—धर्म—शास्त्र—पुराण इन संपूर्णोंको त्रयी कहते हैं॥५४॥
कुसीदकृषिवाणिज्यंगोरक्षावार्तायोच्यते
संपन्नोवार्तयासाधुर्नवृत्तेभयमृच्छति ॥ ५५

भाषार्थ—सूतलेना खेती व्यापार गोरक्षा इन्हें वार्ता कहते हैं वार्तासे संपन्न जो साधु राजा वह आचरणसे भयको प्राप्त नहीं होता ॥५५॥

दमोदंडइतिख्यातस्तस्मादंडोमहीपीतः ।
तस्यनातिर्दंडनीतिर्नयनात्रीतिरुच्यते ५६

भाषार्थ—दमको दंड कहते हैं इससे राजा दंडरूपमें तिस राजाकी नीतिकी दंडनीति कहते हैं और नय (न्याय) की नीति कहते हैं ॥५६॥

आन्वीक्षिक्यात्मविज्ञानाद्धर्षशोकौ
व्युदस्यति॥उभौलोकाववाप्नोतेत्रय्यां
तिष्ठन्यथाविधि ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—आन्वीक्षिकी विद्या आत्मके ज्ञानसे आनंद और शोकको नष्ट करती है त्रयीमें टिकता हुआ राजा दोनों लोकोंको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥

आनृशंस्यंपरोधर्मस्सर्वप्राणभृतांयतः ।
तस्माद्राजानृशंस्येनपालयेत्कृपणंजनम् ॥

भाषार्थ—जिससे संपूर्ण जीवोंका आनृशंस्य (अहिंसा) परमधर्म है तिससे राजा अहिंसोसे दुःखी जनकी रक्षा करे ॥५८॥

नहिस्वसुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणंजनम् ।
कृपणःपीड्यमानःस्वमृत्युनाहंतिपार्थिवम्

भाषार्थ—अपने सुखकी इच्छा करता हुआ राजा कृपण (दीन) मनुष्यको दुःख न दे क्यों कि पीड्यमान कृपण मृत्युसे राजाको हतता है ॥ ५९ ॥

सुजनैःसंगमंकुर्याद्धर्मायचसुखायच ।
सेव्यमानस्तुसुजनैर्महानतिविराजते ६०

भाषार्थ—उत्तम जनोके साथ—धर्म और सुखके अर्थ—संग करे—सुजनोसे सेवित राजा अत्यंत महत्त्वको प्राप्त होता है ॥ ६०॥

हिमांशुमालीवतथानवोत्फुल्लोत्पलंसरः ॥
आनंदयतिचेतांसियथासुजनचेष्टितम् ६१

भाषार्थ—सुजनकी चेष्टा इस प्रकार चित्तको आनंद करती है जैसे चन्द्रमा नवे खिले है कमल जिसमें ऐसे तलावको ॥६१॥

ग्रीष्मसूर्याशुसंततमुद्वेजनमनाश्रयम् ।
मरुत्स्थलमिवोदग्रत्यजेदुर्जनसंगतम् ६२॥

भाषार्थ—ग्रीष्मकालके सूर्यकी किरणोंसे संतप्त और कंपनका हेतु और आश्रय रहित मरुदेशके समान उद्वंड दुर्जनके समागमको त्याग करै॥६२॥

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूमधूम्रीकृताननैः ।
वरमाशीविषैःसंगंकुर्यान्नत्वेवदुर्जनैः॥६३॥

भाषार्थ—श्वाससे उत्पन्न अग्निके धूँयेसे श्यामहै मुख जिनका ऐसे सपोंका संग तौ उत्तम है परंतु दुर्जनका संग कदापि उत्तम नहीं है ॥ ६३ ॥

क्रियतेभ्यर्हणीयायसुजनाययथांजलिः ।
ततःसाधुतरःकार्योदुर्जनायहितार्थिनां ६४

भाषार्थ—जिस प्रकार सुजनके प्रतिपूजाके अर्थ—अंजलि—की जाती है उससे अच्छी तरह दुर्जनकी पूजाके अर्थ—अंजलि—अपने हितका अभिलाषी करै ६४

नित्यंमनोपहारिण्यावाचाप्रल्हादयेज्जगत्
उद्वेजयतिभूतानिऋवाग्धनदोपिसन् ६५

भाषार्थ—मनोहरवाणीसे सदा जगत्को प्रसन्न रखे क्योंकि कुबेरके समानभी कठोर वाणि पुरुष भूतोंको कंपित करता है—६५

हृदिविद्धिवात्पर्ययथासंतप्यतेजनः ॥
पीडितोपिहिमेधावीनतांवाचमुदीरयेत् ६६

भाषार्थ—जिस वाणीसे हृदयमें तपायमानके समान जन दुःखी हो उस वाणीको पीडित हुआभी बुद्धिमान् न कहै ॥ ६६ ॥

प्रियमेवाभिधातव्यंनित्यंसत्सुद्विषत्सुवा ।
शिखीवकेकामधुरांवाचंभूतेजनप्रियः ६७॥

भाषार्थ—सुजन और दुर्जनोंके प्रति नित्य जो प्रियवचनही कहता है वह मनुष्य मधु-खाणी कहनेहारे मयूरके समान सबको प्रिय होता है ६७

मदरक्तस्यहंसस्यकोकिलस्यशिशंङ्गिनः
हरंतिनतथावाचोयथावाचोविपश्चिताम् ६८

भाषार्थ—मदसे संयुक्त हंस और कोकिल और मयूर इनकी वाणी ऐसा मनको नहीं हरती जैसी पंडितोंकी वाणी मनको हरती है ॥ ६८ ॥

येप्रियाणिप्रभावंतेप्रियमिच्छंतिसत्कृतम् ।
श्रीमंतोवैद्यचरितादिवास्तेनरविग्रहाः ६९॥

भाषार्थ—जो मनुष्य प्रिय वचन बोलते हैं—और प्रियके सत्कारकी इच्छा करते हैं वे श्रीमान् नमस्कारके योग्य हैं चरित्र जिनक मनुष्यके शरीरका भारी देवता है ॥ ६९ ॥

नहीदृशंसंवर्ननंत्रिपुल्लोकेपुविद्यते ।
दयामित्रीचभूतेपुदानंचमधुराचवाक् ७०॥

भाषार्थ—सब भूतोंपर दया और मित्रता और दान और मधुरवाणी ऐसा वशीकरण और कोई तीनों लोकोंमें नहीं है ॥ ७० ॥

श्रुतिरास्तिक्वपूतात्मापूजयेद्देवतांसदा ।
देवतावद्गुरुजनमात्मवच्चसुहृज्जनान् ७१

भाषार्थ—वेदकी आस्तिकता (सत्यबुद्धिसे पवित्र) है आत्मा जिसका ऐसा राजा देवताओंका सदा पूजन करै देवताओंके समान गुरुजनोंका और आत्माके समान मित्रजनोंका पूजन करै ॥ ७१ ॥

प्राणिपातेनहिगुरुस्तंतोनचान्वेष्टितः ।
कुर्वीताभिमुखान्देवान्भूत्यैसुकृतकर्मणाम्॥

भाषार्थ—वेदपाठी संयुक्त होकर राजा अपनी कौंतिके अर्थ प्रमाणसे गुरु और सत्पुरुषोंको और उत्तम कर्मसे देवताओंको अपने अभिमुख (अनुकूल) करै॥७२॥

सद्भावेनहरेन्मित्रंसद्भावेनचचांधवान् ।
स्त्रीभृत्यौप्रेममानाभ्यांदाक्षिण्येनेतरंजनम्

भाषार्थ—श्रेष्ठभाव (प्रीति) से मित्रको
और वंधुओंको प्रेमसे स्त्रीको मानसे
भृत्य (सेवक) को चतुरतासे इतर जनों
को वश करें ॥ ७३ ॥

बलवान्बुद्धिमान्शूरोयोहियुक्तपराक्रमी
वित्तपूर्णमर्हीभुंक्तेसभूपोभूपातिर्भवेत् ७४ ॥

भाषार्थ—जो राजा बलवान् और बुद्धिमान्
और शूरवीर और युक्त पराक्रमी है वह राजा
द्रव्यसे पूर्ण पृथ्वीको भोगता है और वही
राजा भूमिका पति होता है ॥ ७४ ॥

पराक्रमोबलबुद्धिःशौर्यमेतेवरागुणाः ।
एभिर्हीनान्यगुणयुग्महीभुक्तसधनोपिच ७५

भाषार्थ—पराक्रम-बल-बुद्धि शूरता ये गुण
उत्तम हैं इन गुणोंसे हीन और इतर गुणोंसे
युक्त राजा बहुत धनवाला होय तो भी ७५॥
मर्हीस्वल्पानैवभुंक्तेद्वेतराज्याद्विनश्याति ।
महाधनाच्चनृपतेर्विभात्यल्पोपिपार्थिवः ७६

भाषार्थ—पूर्वोक्त राजा स्वल्पभी मर्ही
(भूमि) को नहीं भोगता और शीघ्र राज्यसे
भ्रष्ट होता है और महाधनी राजा अल्पही
शोभाको प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

अव्याहताज्ञस्तेजस्वीएभिरेवगुणैर्भवेत् ।
राज्ञःसाधारणास्त्वन्येनशक्ताभूप्रसाधने ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त गुणोंसेयुक्त राजा अनाहताज्ञ
(जिसकी आज्ञाका कोईभी अवलंघन न करे)
और तेजस्वी होता है और राजाके साधारण
गुण पृथ्वीके वश करनेमें समर्थ नहीं हैं ७७॥

स्त्रानिः सर्वधनस्येयंदेवदैत्यविमर्दिनी ।
भूम्यर्थेभूमिपतयःस्वात्मानंनानाशयंत्यपि ॥

भाषार्थ—यह पृथ्वी संपूर्ण धनोंकी खानि
है और देव दैत्योंकी नाशक है क्योंकि भू-
मिके अर्थ भूमिपति (राजा) अपने आत्मा
कोभी नष्ट करदेते हैं ॥ ७८॥

उपभोगायचधनंजीवितयेनरक्षितम् ।
नरक्षितातुभूयेनर्कितस्यधनजीवितैः ७९॥

भाषार्थ—जीवितकी रक्षाकारक धन उपभो-
गके अर्थ है जिस राजाने भूमिकी रक्षा नहीं
की उसके धन और जीवनसे क्या है ॥ ७९॥

नयथेष्टव्ययायालंसंचितंतुधनंभवेत् ।
सदागमाद्विनाकस्यकुवेरस्यापिनांजसा ॥

भाषार्थ—सदा प्राप्तिके बिना कुवेरकाभी
धन सुख पूर्वक इच्छाके अनुसार व्यय
(खर्च) करनेको समर्थ नहीं होता और
तो किसका संचितधन समर्थ होगा ॥ ८०॥

पूज्यस्त्वेभिर्गुणैर्भूपानेभूपःकुलसंभवः ।
नकुलेपूज्यतेयादृग्वलशौर्यपराक्रमैः ॥ ८१

भाषार्थ—इन गुणोंसेही राजा पूजाके यो-
ग्य होता है और उत्तम कुलके उत्पन्न होने-
से पूज्य नहीं होता क्योंकि जैसा बलबुद्धि
पराक्रमसे पूजित होता है ऐसा कुलसे नहीं
होता ॥ ८१ ॥

लक्षकर्ममितोभागोराजतोयस्यजायते ।
वत्सरेवत्सरेनित्यंप्रजानांत्वविपीडनैः ॥ ८२

सामंतःसन्तुपःप्रोक्तोयावल्लक्षत्रयावधि ।
तदूर्ध्वंदशलक्षांतोनृपोमांडलिकःस्मृतः ८३

तदूर्ध्वंतुभवेद्राजायाद्विशतिलक्षकः ।
पंचाशलक्षपर्यंतोमहाराजःप्रकीर्तितः ॥ ८४

भाषार्थ—जिस राजाके राज्यमें वर्ष वर्षमें
प्रजाकी पीडाकी पीडाके भी एक लक्षराजा-

का भाग संचित होता है उसे सामन्त कहते हैं उससे अधिक तीन लक्षपर्यंत जिसका भाग संचित हो वह राजा मांडलिक कहाता है और दश १० लक्षसे बीसलक्ष पर्यंतका भागी राजा और बीसलक्षसे पचासलक्ष पर्यंतका भागी महाराजा होता है ॥८२॥८३॥८४॥

तत्तस्तुकोटिपर्यंतःस्वराट्संम्राट् ततःपरम् ।
दशकोटिमितोयावद्विराट् तत्तदनंतरं ॥८५॥

पंचाशत्कोटिपर्यंतसार्वभौमस्ततःपरं
सप्तद्वीपाचवृथिवीयस्यवश्याभवेत्सदा ८६

भाषार्थ—दशलक्षसे कोटि पर्यंतका भागी स्वराट् और एककोटिसे दशकोटिपर्यंतका भागी सम्राट् और दशकोटिसे पचास कोटि पर्यंतका भागी विराट् और जिसके सप्तद्वीपा पृथ्वी वशमें हो वह राजा सार्वभौम होता है ॥८५॥८६॥

स्वभागभृत्यादास्यत्वेप्रजानांचनृपःकृतः
ब्रह्मणास्वामिरूपस्तुपालनार्थमिह सर्वदा ॥

भाषार्थ—राजाके भागरूप भृति (बेंतन)के देनेसे प्रजाओंका दासरूप और प्रजाओंके फलनसे स्वामिरूप राजा ब्रह्माने किया है ८७

सामंतादिसमायेतुभृत्याअधिकृताभुवि
तेनुसामंतसंज्ञास्युराजभागहराःक्रमात् ॥

भाषार्थ—जो भूमिमें अधिकृत भृत्य (नौकर) सामंतादिक तुल्य है और राजाके भागको ग्रहण करते हैं वे अनुसामंतक होते हैं ८८

सामंतादिपदभ्रष्टास्तत्तुल्यंभृतिपोषिताः
महाराजादिभिस्तेतुहीनसामंतसंज्ञकाः ॥

भाषार्थ—जो सामंत आदि पदवीसे तौ महाराजादिकोंने भ्रष्ट करदिये हैं परंतु सामंतोंके समान भृति (नौकरी)को भोगते हैं वे हीन सामंत कहाते हैं ॥ ८९ ॥

शतग्रामाधिपोयस्तुसोपिसामंतसंज्ञकः ॥
शतग्रामेचाधिकृतोनुसामंतो नृपेणसः ॥९०॥

भाषार्थ—शत ग्रामोंका जो अधिपति वहभी सामंत कहाता है और ग्रामोंपर जो राजाका अधिकारी (नियमित) है वह अनुसामंत कहाता है ॥ ९० ॥

अधिकृतोदशग्रामेनायकःसचकीर्तितः ॥
आशापालोयुतग्रामभागभाक्चस्वराडपि ।

भाषार्थ—दश ग्रामोंमें जो अधिकृत वह नायक कहाता है दशसहस्रग्रामोंके भागोंका जो भागी वह आशापाल और सुराट्भी कहाता है ॥ ९१ ॥

भवेत्क्रोशात्मकोग्रामोरूप्यकर्षसहस्रकः ।
ग्रामार्धकपल्लिसंज्ञं पृथग्धकुंभसंज्ञकम् ९२ ॥

भाषार्थ—एक कोशका जिसका प्रमाण और एकहजार रुपयेका जिसमें राजाका भाग हो उसे ग्राम कहते हैं और ग्रामका आधापल्ली और पल्लीका आधा कुंभ होता है ॥ ९२ ॥

करैः पंचसहस्रैर्वाक्रोशः प्रोक्तः प्रजापतेः
हस्तैश्चतुःसहस्रैर्वा मनोः क्रोशस्यविस्तरः

भाषार्थ—पांच हजार हाथका कोशविधि ब्रह्माका होता है और चार हजारका मनुका होता है ॥ ९३ ॥

सार्धद्विकोटिहस्तैश्चक्षेत्रंक्रोशस्यब्रह्मणः ॥
पंचविंशशतैः प्रोक्तंक्षेत्रतद्विनिवर्तनैः ॥९४॥

भाषार्थ—अर्धकोटि कोशका ब्रह्माका क्षेत्र पच्चीशसे कोशका क्षेत्र विनिवर्तनसे मनु आदिकोंने कहा है ॥ ९४ ॥

मध्यमामध्यमं पर्वदैर्ध्वयच्चतदंगुलम् ।
यवोदरैरष्टभिस्तदैर्ध्वस्यौल्यंतुपंचभिः ९५

भाषार्थ—मध्यमा वीचकी अंगुलीके मध्यम पूर्व अर्थात् मध्यमेरेखाओंके वीचके भागकी तुल्य और आठ जो लंबा और पांच जो मोटा उसे अंगुल कहते हैं ॥ ९५ ॥

चतुर्विंशत्यंगुलैस्तैः प्राजापत्यः करः स्मृतः सश्रेष्ठोभूमिमानेतुतदन्यास्त्वधमामताः ॥

भाषार्थ—चौबीस २४ अंगुलोंका कर प्रजापति कहाता है वही कर पृथिवी प्रमाणों में श्रेष्ठ है और इतर कर अधम है ॥ ९६ ॥

चतुःकरात्मकोदंडोलघुः पंचकरात्मकः । तदंगुलंपंचयवैर्मानवमानमेवतत् ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—चार हाथका दंड लघु और पांच हाथका दंड दीर्घ होता है उस करके अंगुल पांच यवके होते हैं क्योंकि ये पूर्वोक्त दंड मनुके मानसे हैं ॥ ९७ ॥

वसुपण्डुनिसंख्याकैर्यवैर्दंडः प्रजापतेः । यवोदरेः पट्शतैस्तुमानवोदंडउच्यते ९८

भाषार्थ—सातसौ अड़सठ ७६८ यवोंका प्रजापतिका और ६०० छैसे यवोंका मनुका दंड होता है ॥ ९८ ॥

पंचविंशतिभिर्दंडैरुभयोस्तुनिवर्तनम् । त्रिंशच्छतैरंगुलैर्यवैस्त्रिपंचसहस्रकैः ॥ ९९

भाषार्थ—पच्चीशसे २५०० दंडोंका दोनोंका निवर्तन होता है अथवा तीससे ३००० अंगुलोंका अथवा तीन सहस्रयवोंका अथवा पांच सहस्रयवोंका दोनोंका दंड क्रमसे होता है १९

सपादशतहस्तैश्चमानवतुनिवर्तनम् । ऊनविंशतिसाहस्रैर्द्विशतैश्चयवोदरैः १००

भाषार्थ—सवास १२५ हाथका मानव (मनुका) निवर्तन अथवा उन्नीसहजार दोसौ १९२०० यवोंका पूर्वोक्त निवर्तन होता है १००

चतुर्विंशशतैरेवहंगुलैश्चनिवर्तने ।

प्राजापत्यंतुकथितंशतैश्चैवकरैःसदा ॥१॥

भाषार्थ—चौबीशसौ २४०० अंगुलोंका अथवा सौ १०० करोंका प्रजापतिका निवर्तन कहा है ॥ १ ॥

सपादपट्शतदंडाउभयोश्चनिवर्तने ।

निवर्तनान्यपिसदाभयोर्विपंचविंशतिः ॥२॥

भाषार्थ—सवाछैसे ६२५ दंड दोनोंके निवर्तनमें होते हैं निवर्तनभी दोनोंके सदा पच्चीश होते हैं ॥ २ ॥

पंचसप्ततिसाहस्रैरंगुलैः परिवर्तनं ।

मानवंपष्टिसाहस्रैः प्राजापत्यं तथांगुलैः ३॥

भाषार्थ—पंचहत्तर हजार ७५००० अंगुलोंका मानव और साठहजार ६०००० अंगुलोंका प्रजापतिका परिवर्तन होता है ॥ ३ ॥

पंचविंशाधिकैर्हस्तैरेकत्रिंशच्छतैर्मनोः ।

परिवर्तनमाख्यातंपंचविंशशतैःकरैः ॥ ४॥

भाषार्थ—सवाइकत्तीश ३१२५ शत हस्तोंका मनुका और पच्चीशसे २५०० हस्तोंका प्रजापतिका परिवर्तन कहा है ॥ ४ ॥

प्राजापत्यंपादहीनचतुर्लक्षयवैर्मनोः ।

अशीत्यधिकसाहस्रचतुर्लक्षयवैःपरम् ॥ ५॥

भाषार्थ—तीनलाख यवोंका प्रजापतिका और चारलाख अस्सीहजार ४८०००० यवोंका मनुका निवर्तन होता है ॥ ५ ॥

निवर्तनानिद्वात्रिंशन्मनुमानेनतस्यवै ।

चतुःसहस्रहस्ताःस्युर्दंडाश्चाष्टशतानिहि ॥

भाषार्थ—मनुके मानसे बत्तीस निवर्तनोंके चार हजार हाथ और आठसे दंड होते हैं ॥ ६ ॥

पंचविंशतिभिर्दंडैर्भुजःस्थात्परिवर्तने ।

करैर्युतसंख्याकैःक्षेत्रं तस्यप्रकीर्तितं ७ ॥

भाषार्थ—पञ्चीसदंडोंकी परिवर्तनकी भुज होती है दश हजार हाथोंका परिवर्तनका क्षेत्र होता है ॥ ७ ॥

चतुर्भुजैःसमंप्रोक्तंकष्टभूपरिवर्तनम् ।

प्रजापत्येनमानेनभूभागहरणंनृपः ॥ ८ ॥

सदाकुर्याच्चस्वापत्तौमनुमानेननान्यथा ।

लोभात्संकर्षयेद्यस्तुहीयतेसप्रजोनृपः ९

भाषार्थ—भूमिका परिवर्तन चतुर्भुजके सम कहा है राजा पृथिवीके भागका ग्रहण प्रजापतिके प्रमाणसे करे और अपनी आपत्तिके समय मनुके मानसे करे अन्यथा नहीं जो राजा लोभसे प्रजाकी संकर्षित अर्थात् प्रजासे अधिक कर लेता है वह प्रजासहित हीनताको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

नदद्याद्द्व्यंगुलमपिभूमेःस्वत्वानिवर्तनं ।

वृत्त्यर्थंकल्पयेद्वापियावद्वाहस्तुजीवति १०

भाषार्थ—दो अंगुलीकी भूमिको भी कर- (भाग) के बिना न छोड़े अथवा अपनी आजीविकाके अर्थ भागका ग्रहण करे—क्यों कि इतनेकर करका ग्रहण करेगा तब तकही जीवेगा ॥ १० ॥

मुणीतावद्देवतार्थंविस्मृजेच्चसदैवहि ।

आरामार्थंगृहार्थंवाद्दद्याद्दृष्टाकुटुंबिनम् ११

भाषार्थ—गुणवान् राजा देवताओंके मंदिर बगीचेके निमित्त और कुटुंबवार मनुष्यको देखकर गृहके निमित्त पृथ्वीको देदे ११ ॥

नानावृक्षलताकीर्णेषुपक्षिगणान्वृते ।

सुवहूदकधान्येचतृणकाष्ठसुसंसदा १२ ॥

आसिंधुनौगमाकूलेनातिदूरमहीधरे ।

सुरम्यसमभूदेशेराजधानींप्रकल्पयेत् ॥ १३

भाषार्थ—अपनी राजधानी राजा ऐसी जगह बनावे जहां नानाप्रकारके वृक्ष और लता हों और पशु और पक्षियोंके गणसे युक्त देश हो और जिसमें अधिक अन्न और जल हो और जिसमें काष्ठ और तृणका सुख हो और समुद्रपर्यन्त नावके गमनका जहां अनुकूल हो और जहां पर्वत समीपही रमणीक और समभूमि जहां हो ॥ १२ ॥ १३ ॥

अर्धचंद्रांवर्तुलांवाचतुरस्रांसुशोभनाम् ।

सप्राकारांसपरिस्त्रांगामादीनांनिवेशिनीं १४

भाषार्थ—अर्धचंद्रके आकार हो और गोल अथवा चौकोर हो शोभायमान हो आकार रहित हो परिस्त्रा (खाई) युक्तही ग्राम और पुर जिसके मध्य वसते हो ऐसी राजधानी जा बनावे ॥ १४ ॥

सभामध्यांकूपवापीतंडागादियुतांसदा ।

चतुर्दिक्षुचतुर्द्वारांसुमार्गारामवीथिकाम् १५

भाषार्थ—और सभा जिसके मध्यमें हो कूप-वापी (बावडी) तलाव इनसे सदा युक्त हों और चारों ओर दिशामें जिसके चार द्वार हो और मार्ग बगीचे-गली जिसमें सुंदर हों ॥ १५ ॥

दृढसुरालयमठपांथशालाविराजिताम् ।

कल्पयित्वावसेत्तत्रसुगुप्तःसप्रजोनृपः १६

भाषार्थ—दृढ है देवस्थान-मठ-धर्मशाला इन से शोभित ऐसी पूर्वोक्त राजधानीको रचकरि गुप्त होकर प्रजासहित राजा उसमें बसे—१६

राजगृहंसभामध्यांगवाश्वगजशालिकम् ।

प्रशस्तवापीकूपादिजलयन्त्रैःसुशोभितम् १७

भाषार्थ—सभा जिसके मध्यमें हो, गो-अश्व-हस्ती इनकी शाला जिसमें हो और उत्तम-चावड़ी कूप आदि जलयंत्रोंसे शोभित राजा गृहको बनावे ॥१७॥

सर्वतःस्यात्समभुजंदक्षिणोच्चमुदङ्गतं ।
शालांविनानैकभुजंतयाविपमवाहुकम् १८॥

भाषार्थ—जिसको चारों भुजासम हों दक्षिणकी ओर ऊँचा और उत्तरको नीचा हो और शालाके विना एक भुज (पाखा) विपम भुज न हो ॥१८॥

प्रायःशालानैकभुजाचतुःशालंविनाशुभा ।
शस्त्रास्त्रधारिसंयुक्तं प्राकारं सुष्ठुयत्नकं १९

भाषार्थ—बहुधा शाला एकभुज नहीं होती चौकोरके विनाभी शुभहै शस्त्र और अस्त्र धारियोंसे संयुक्त और उत्तम यंत्रोंसे संयुक्त प्राकार (परकोटा) बनावे ॥ १९ ॥

सत्रिकक्षचतुर्द्वारंचतुर्दिक्षुसुशोभनम् ।
दिवारात्तौसशस्त्रास्त्रैःप्रतिकक्षासुगोपितं २०
चतुर्भिःपंचभिःपट्टिर्वाभिकैःपरिवर्तकैः ।
नानागृहोपकार्यदृष्टसंयुतंकल्पयेत्सदा २१

भाषार्थ—तीन कक्षा (श्रेणी) से युक्त-चारों दिशाओंसे चार शोभायमान द्वार हों रात्रि दिन शस्त्र और अस्त्रों संपूर्ण कक्षाओंमें गुप्त हों ॥२०॥ चार पांच छ परिवर्तक (चौकीदार) प्रहर २ में घूमनेवाले हों जिसमें और नाना प्रकार की सामग्रीसहित अट्टाअटारी संयुक्त गृहको बनावे ॥ २१ ॥

वस्त्रादिमार्जनार्थचस्नानार्थयजनार्थकम् ।
भोजनार्थचपाकार्यपूर्वस्यांकल्पयेत्गृहान्

भाषार्थ—वस्त्रों का धोना-स्नान-पूजन-भोजन और पाकके अर्थ पूर्वदिशामें घर बनावे ॥ २२ ॥

निद्रार्थचविहारार्थपानार्थरोदनार्थकं ।

धान्यार्थवरटाद्यर्थदासीदासार्थमेवच ॥२३

उत्सर्गार्थगृहान्कुर्याद्दक्षिणस्यामनुक्रमात् ।

गोमृगोष्ट्रजाद्यर्थगृहान्प्रत्यक्षप्रकल्पयेत् ॥

भाषार्थ—शयनक्रीडाके-पानके-रोनेके अन्नके घट (पातना) के-दासीके दासके और मलमूत्रके त्यागके अर्थ दक्षिणदिशामें गृहबनावे और गो-मृग-ऊट-हस्ती इनके अर्थ पश्चिममें गृह बनावे ॥२३॥२४॥

रथवाज्यस्त्रशस्त्रार्थव्यायामायाभिकार्यकम् ।

वस्त्रार्थकंतुद्रव्यार्थविद्याभ्यासार्थमेवच २५

उदगृहान्प्रकुर्वीतसुगुप्तान्सुमनोहरान् ।

यथासुखानिवाकुर्याद्गृहाण्येतानिवैनृपः २६

भाषार्थ—अश्व-अस्त्र-शस्त्र-व्यायाम (कसरत) आयाम (घूमना) वस्त्र-द्रव्य-विद्याके अभ्यासके अर्थ उत्तरदिशामें गृहोंकी रचना करेव अथवा अपने सुखके अनुसार राजा पूर्वोक्त गृहोंको बनावे ॥२५॥२६॥

धर्माधिकरणंशिल्पशालांकुर्यादुदगृहात् ।
पंचमांशाधिकोच्छ्रायाभित्तिर्विस्तारतो गृहे

भाषार्थ—धर्माधिकार (कचहरी) शिल्प-शाला इन्ह गृहसे उत्तरदिशामें बनावे गृहके भागसे पंचम भाग ऊँची भित्ति (दिवाल) बनावे ॥ २७ ॥

कोष्ठविस्तारपष्ठांशस्थूलासाचप्रकीर्तिता ।

एकभूमेरिदंमानमूर्ध्वमूर्ध्वसंमततः ॥२८॥

भाषार्थ—कोष्ठके विस्तारसे पष्ठांश (छठा भाग) स्थूल भित्ती कहीं है-यह प्रमाण एक भूमि (एक मजले) स्थानका है इसके आगे इसी प्रकार वृद्धि कही है ॥ २८ ॥

स्तंभैश्च भित्तिभिर्वापि पृथक्कोष्ठानि संन्यजेत् ।
त्रिकोष्ठं पंचकोष्ठं वा सप्तकोष्ठं गृहं स्मृतम् ॥ २९ ॥

भाषार्थ—स्तंभ और भित्तियोंके पृथक् २
कोठे बनावे तीन पांच अथवा सात हैं कोठे
जिसमें ऐसा गृह कहा है ॥ २९ ॥

द्वारार्थमष्टधा भक्तं द्वारस्यांशौ तु मध्यमौ ।
द्वौ द्वौ ज्ञेयौ चतुर्दिक्षु धनपुत्रप्रदौ नृणाम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ—द्वारके वास्ते आठ भाग धरके
कौरे और द्वारके भाग मध्यमहों चारों
दिशाओंमें द्वारके अर्थ दो दो धन-पुत्रके
दाता हैं ॥ ३० ॥

तत्रैवैकल्पयेद्द्वारं नान्यथा तु कदाचन ।
वातायनं पृथक्कोष्ठे कुर्याद्याह्नसुखावहम् ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—उन्ही मध्यभागोंमें द्वार बनावे
अन्यथा कदापि न बनावे सब कोठोंमें जैसे
सुखके दाता हों इस प्रकार पृथक् २
वातायन (झरोखे) बनावे ॥ ३१ ॥

अन्यगृहद्वारविद्वंगृहद्वारं न चिंतयेत् ।
वृक्षकोणस्तंभमार्गपीठकूपैश्च वेधितम् ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—इतरगृहोंके द्वार-और वृक्ष
कोणस्तंभ मार्ग चोतरा कूप इनसे विंधा
अर्थात् इनके सामने गृहका द्वार न
बनावे ॥ ३२ ॥

प्रासादमंडपद्वारे मार्गवेधो न विद्यते ।
गृहपीठं चतुर्थांशमुद्रायस्य प्रकल्पयेत् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—मंदिर और मंडपके द्वारमें
मार्गका वेध नहीं है गृहपीठके चतुर्थांशका
जिस मंडपका प्रमाण हो ॥ ३३ ॥

प्रासादानां मंडपानामर्धांशं वा परेजयुः ।
परवातायनैर्विद्वं नापि वातायनं स्मृतं ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—कोई ऋषि प्रासाद और मंडपका

अर्द्ध भागके प्रमाणसे द्वारको कहते हैं
दूसरेके गवाक्ष (झरोखे) से विंधा गवाक्ष
न हो ॥ ३४ ॥

विस्तारार्धांशमूलोच्चाच्छादिः खर्परसंभवा ।
पतितंतुजलंतस्यां सुखं गच्छति वाप्यधः ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—विस्तारके भागसे अर्द्ध है मूलो-
च्चभाग जिसका ऐसी खपरोंकी छाल बनावे
जिसमें गिरा जल सुखसे नीचे गिरे ॥ ३५ ॥
हीनानिम्नाच्छादिर्न स्यात्तादृक्कोष्ठस्य विस्तरः
स्वोच्छ्रायस्यार्धमूलोवाप्राकारः सममूलकः

भाषार्थ—जैसा कोष्ठका विस्तार हो उससे
हीन और नीचा न हो अथवा अपनी
ऊंचाईसे आधा हो अथवा सम हो विस्तार
जिसका ऐसा प्राकार (परकोटा) हो ॥ ३६ ॥
तृतीयांशकमूलोवाह्युच्छ्रायार्धमविस्तरः ।
उच्छिन्नस्तु तथा कार्योदस्युभिर्न विलंघ्यते ॥

भाषार्थ—तृतीय भाग है मूल जिसका ऐसा
ऊंचाईसे आधा विस्तार हो और ऊंचा
ऐसा हो जो चोरोसे न लंघा जाय ॥ ३७ ॥
यामिकैरक्षितो नित्यं नालिकाखैश्च संयुतः ।
सुबहुदृढगुल्मश्च सुगवाक्षप्रणालिकः ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—चौकीदारोंसे नित्य रक्षित नालि-
काखों (तोपों) से संयुक्त और अच्छीतरह
दृढ़ है गुल्म और गवाक्षोंकी प्रणाली जिसमें
ऐसा घर बनावे ॥ ३८ ॥

स्वहीनप्रतिप्राकारो ह्यसमीपमहीधरः ।
परिखाचततः कार्या स्वाता द्विगुणविस्तरा ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—परकोटेसे हीन प्रति प्राकार ऐसा
हो जिसके समीप पर्वत न हो और खातसे
द्विगुणित है विस्तार जिसका ऐसी परिखा
हो ॥ ३९ ॥

नातिसमीपप्राकाराह्वाधसालिलाशुभा
युद्धसाधनसंभारैःसुयुद्धकुशलैर्विना ४० ॥

भाषार्थ—नहीं है अत्यंत समीप प्राकार जिसके और अगाध है जल जिसमें ऐसी पस्त्रिखा हो और युद्धकी सामग्री और युद्ध करने में कुशल पुरुषोंके विना दुर्ग श्रेष्ठ नहीं ४०

नश्रेयसेदुर्गवासोराज्ञःस्याद्बंधनायसः ।
राज्ञाराजसभाकार्यासुगुतासुमनोरमा ४१

भाषार्थ—पूर्वोक्त दुर्ग (किला) राजाका कल्याण करी नहीं प्रत्युत बंधनका हेतु है और राजा ऐसी राजसभा बनावे जो अत्यंत गुप्त और मनोहर हो ॥ ४१ ॥

त्रिकोष्टैःपंचकोष्टैर्वाप्तकोष्टैःसुविस्तृता ॥
दक्षिणोदक्तयादीर्घापावप्रत्यगृद्धिगुणायवा

भाषार्थ—जो सभा तीन-पांच-सात-कोष्ठोंसे सुविस्तृत हो और दक्षिण उत्तर लंबी अथवा पूर्वपश्चिम द्विगुण हो ॥ ४२ ॥

त्रिगुणावायथाकाममेकभूमिर्द्विभूमिका ।
त्रिभूमिकावाकर्तव्यासोपकार्याशिरोगृहा ॥

भाषार्थ—अथवा अपनी इच्छानुसार त्रिगुणा हो और एक मंजली अथवा द्वि मंजली अथवा त्रिमंजली हो और जिसके ऊपरका गृह संपूर्ण युद्ध आदिकी सामग्री सहित हो ॥ ४३ ॥

परितःप्रतिकोष्ठेतुवातायनाविराजिता ।

पार्श्वकोष्ठात्तुद्विगुणोमध्यकोष्ठस्यविस्तरः

भाषार्थ—चारों ओर प्रति कोष्ठमें गवाक्षोंसे विराजमान हो और पार्श्व कोष्ठसे मध्यकोष्ठ का द्विगुण विस्तर हो ॥ ४४ ॥

पंचमांशाधिकंत्वौच्चमध्यकोष्ठस्यविस्तरात् ।
विस्तारेणसमंत्वौच्चपंचमांशाधिकं तुवा ४५

भाषार्थ—विस्तारसे पंचम भाग उंचाई मध्य कोष्ठकी हो अथवा विस्तारके समान उंची हो ऐसी सभा राजा बनावे ॥ ४५ ॥

कोष्ठकानांचभूमिर्वाछिर्दिवातत्रकारयेत् ।
द्विभूमिकेपार्श्वकोष्ठेमध्यमंत्वेकभूमिकम् ४६

भाषार्थ—कोठकी छत पृथिवीकी हो अथवा खपरैलकी हो पार्श्वके कोठेदुमंजले और मध्यमका कोष्ठ (कमरा) इकमंजला हो ॥ ४६ ॥

पृथक्संभांतसत्कोष्ठाचतुर्भिर्गणिमाशुभा ।
जलोर्ध्वपातियंत्रैश्चयुतासुस्वरयंत्रकैः ४७ ॥

भाषार्थ—पृथक् २ हैं स्तंभ जिनमें ऐसे उत्तम कोष्ठ चारों भागोंमें जिसके दरवाजे हों और फुवारे और बाजोंसे सुशोभित हो ॥ ४७ ॥

वातप्रेरकयंत्रैश्चयंत्रैःकालप्रबोधकैः ।
प्रतिष्ठिताचस्वादशैस्तथाचप्रतिरूपकैः ४८

भाषार्थ—वायुके प्रेरक और समयके बोधक यंत्रोंसे और उत्तम २ आदर्श (सीसे) और प्रतिरूप (तसवीर) इनसे शोभित हो ॥ ४८ ॥
एवंविधाराजसभामंत्रार्थकार्यदर्शने ।

तथाविधामात्यलेख्यसभ्याधिकृतशालिका

भाषार्थ—ऐसी राजसभा कार्यके देखने और मंत्रके अर्थ हो और ऐसी ही मंत्री (सेवक) और सभाओंके अधिकारियोंकी हो ॥ ४९ ॥

कर्तव्याश्चपृथक्त्वेतास्तदर्थान्पृथक्पृथक्
शतहस्तमितांभूमित्यक्त्वारजगृहात्सदा ॥

भाषार्थ—इन राजसभा आदिको पृथक् २ और इनके कार्यभी पृथक् २ हों और राजाके घरसे शतहस्त भूमिको छोड़कर पूर्वोक्त सभाओंको बनावे ॥ ५० ॥

उदग्दिशतहस्तांप्राक्सेनासंवेशानार्थिकाम् ।
आराद्वाजगृहस्यैवप्रजानांनिलयानिच ५१

भाषार्थ—पूर्व अथवा उत्तरदिशामें दोसै २००
हाथ गृहके अंतरसे सेनानिवास-और राजाके
घरके समीप प्रजाके स्थान बनवावे ॥ ५१ ॥

सधनश्रेष्ठजात्यानुक्रमतश्चसदाबुधः ।
समंताच्चचतुर्दिक्षुविन्यसेच्चततःपरम् ५२ ॥

भाषार्थ—धनी और उत्तम जाति इनके
क्रमसे चारों तरफ और चारों दिशाओंमें
गृहोंका विन्यास करावे ॥ ५२ ॥

प्रकृत्यनुप्रकृतयोह्यधिकारिगणस्ततः ।
सेनाधिपाःपदातीनांगणःसादिगणस्ततः ॥

भाषार्थ—प्रकृति(दिवान आदि)अनुप्रकृति
(उत्तम सेवक) फिर अधिकारियोंके गण
फिर सेनाके अधिपति—फिर पदाति(सिपाई)
फिर सवार इस क्रमसे गृह बनावे ॥ ५३ ॥

साश्वश्चसगजश्चापिगजपालगणस्ततः ।
वृहन्नालिकयंत्राणिततःस्वतुरगीगणः ५४

भाषार्थ—असवार-हाथिवान्-हस्तिके रक्ष-
कोंका समूह-और बड़े नालियोंका यंत्र-और
उसके अनंतर-घोड़ियोंके समूह ॥ ५४ ॥

ततःस्वगोपककगणोह्यारण्यकगणस्ततः ।
क्रमादेवांगृहाणिस्थुःशोभनानिपुरेसदा ५५

भाषार्थ—इसके अनंतर गोपालोंके गण
फिर वनवासी (भिल्ल) आदिकोंके गण-
इस क्रमसे ३। यमान इनके घर पुरमें
सदा बनावे ॥ ५५ ॥

पांयशालाततःकार्यासुगुप्तासुजलाशया ।
सजातीयगृहाणांहिसमुदायेनपंक्तिः ॥ ५६

भाषार्थ—फिर पांयशाला सुगुप्त और जला-
शय(रूप)आदि सुंदर हैं जिसमें ऐसी बनावे

और फिर सजातीय गृहोंके समुदाय (मुह-
ल्ले) पृथक् २ बनावे ॥ ५६ ॥

निवेशनंपुरेग्रामेप्राग्दङ्मुखमेववा ।
सजातिपण्यनिवहैरापणेपण्यवेशनम् ५७ ॥

भाषार्थ—पुर और ग्राममें पूर्व और उत्तरा-
भिमुख स्थान बनौव और आपण (बाजार)
में सजातियोंकी पृथक् २ दुकान बनावे ५७ ॥

धनिकादिक्रमेणैवराजमार्गस्थपार्श्वयोः ।
एवंहिपत्तनंकुर्याद्ग्रामंचैवनराधिपः ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—धनिक आदिके क्रमसे राजमार्ग
दोनों पार्श्वोंमें पण्य(दुकानें) बनावे इस प्रकार
पत्तन और ग्रामको राजा बनावे ॥ ५८ ॥

राजमार्गास्तुक्तर्त्न्याश्चतुर्दिक्षुपगृहात् ।
उत्तमोराजमार्गस्तुत्रिंशद्धस्तमितोभवेत् ॥

भाषार्थ—राजगृहसे चारोंदिशाओंमें राज-
मार्ग(सड़क) बनावे और तीस हाथका राज-
मार्ग उत्तम है ॥ ५९ ॥

मध्यमोर्विंशतिकरोदशपंचकरोधमः ।
पण्यमार्गास्तथाचैतपुरग्रामादिपुस्थिताः ॥

भाषार्थ—बीस हाथका मध्यम और पंद्रह
हाथका राजमार्ग अधम होता है और पण्यके
मार्गभी ऐसीही पुर और ग्रामादिकोंके
होते हैं ॥ ६० ॥

करत्रयात्मिकापद्यावीथिःपंचकरात्मिका ।
मार्गोदशकरःप्रोक्तोग्रामेपुनगरेपुच ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—तीन हाथकी पद्या और पांच
हाथकी वीथी और दशहाथका मार्ग ग्राम और
नगरोंमें कहा है ॥ ६१ ॥

प्राक्पश्चादक्षिणोदकतान्ग्राममध्यात्प्रक-
ल्पयेत् ॥

पुरंद्वाराजमार्गान्सुबहून्कल्पयेन्नृपः ६२ ॥

भाषार्थ—पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर ग्रामके मध्यसे राजमार्ग आदिको रचे और उन्हें पुरके अनुसार बहुत बनावे ॥ ६२ ॥

नवीयिनचपद्याहिराजधान्याप्रकल्पयेत् ।
षड्योजनान्तरेरण्येराजमार्गतुचोत्तमम् ६३ ।

भाषार्थ—तीन और पांच हाथका मार्ग राजधानीमें न बनावे चौबिसकोस वनके अंतरसे राजमार्ग उत्तम होता है ॥ ६३ ॥

कल्पयेन्मध्यमं मध्येतयोर्मध्येतथाधमम् ।
दशहस्तात्मकं नित्यं ग्रामे ग्राधेनियोजयेत् ॥

भाषार्थ—और वनके मध्यमें चारहकोसके अंतरमें मध्यम और उत्तमसे भी मध्यममें अधम मार्ग बनावे और दश हाथका मार्ग ग्राम ग्राममें हो ॥ ६४ ॥

कूर्मपृष्ठमार्गमूमिः कार्यग्राम्यैः सुसेतुका ।
कुर्यान्मार्गान्पार्श्वे खातात्रिर्गमार्थजलस्य च

भाषार्थ—मार्गकी भूमि कछवेकी पीठके समान और उत्तम पुल हैं जिसमें ऐसी बानी और जलके गमनके निमित्त दोनों पार्श्वोंमें खाई जिसमें ऐसे मार्ग बनावे ॥ ६५ ॥

राजमार्गमुखानि स्युर्गृहाणिसकलान्यपि ।
गृहपृष्ठे च द्वावीथिमलनिर्हरणस्थलम् ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—राजमार्गमें हैं दरवाजे जिनके ऐसे संपूर्ण गृह बनावे और गृहके पिछवारे मल आदिके दूर करनेकी गली बनावे ॥ ६६ ॥
पंक्तिद्वयगतानां हि गृहानां कारयेत् तथा ।
मार्गान्मुधाशर्करैर्वाघटितान् प्रतिवत्सरम् ॥

भाषार्थ—दोनों पंक्तियोंमें विद्यमान गृहोंके मार्ग ऐसे प्रतिवर्ष बनावे जो चूना शर्करा (कंकर) आदिसे कूटा हो ॥ ६७ ॥

अभियुक्तनिरुद्धैर्वाकुर्यात् ग्राम्यजनैर्नृपः ।
ग्रामद्वयांतरे चैव पांथशालाः प्रकल्पयेत् ६८

भाषार्थ—अभियुक्त (मजूर) निरुद्ध (कैदी) ऐसे ग्रामीणोंसे मार्गको बनावे और ग्रामोंकी मध्यमें पांथशाला बनावे ॥ ६८ ॥

नित्यं संमार्जितं चैव ग्रामपैश्च सुगोपिताम् ।
तत्रागतं तु संपृच्छेत् पांथशालाधिपः सदा ६९

भाषार्थ—ग्रामके अधिपतियोंसे पांथशालाको प्रतिदिन संमार्जित (स्वच्छ) रखे और उस पांथशालामें आप पथिकको उक्त शालाका अधिपति यह पूछे ॥ ६९ ॥

प्रयातोऽसिकुतः कस्मात्कगच्छसि कृतवद ।
स सहायोऽसहायो वा किं शस्त्रः किं सवाहनः ॥

भाषार्थ—कहांसे आये हो, और किस हेतुसे और कहां जाते हो और कौन संगहै अथवा एका की हौ और कौन तुम्हारे पास शस्त्र है और कौन तुम्हारे वाह (सवारी) है यह सत्य बताओ ॥ ७० ॥

काजातिः किं कुलं नाम स्थितिः कुत्रास्तिते चिरं
इति पृष्ट्वा लिखेत् सार्यं शस्त्रं तस्य प्रगृह्य च ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—और कौन जाति कुल नाम है और कहांके वासी हो यह पूछे और उसके शस्त्रको ग्रहण करके सार्यकालके समय लिखले ॥ ७१ ॥

सावधानमना भूत्वा स्वापंकुर्वीति शासयेत् ।
तत्र स्थानां गायित्वा तु शालाद्वारं पिधाय च ॥

संरक्षयेद्यामिकैश्च प्रभते तान् प्रबोधयेत् ।
शस्त्रं दद्याच्च गणयेद् द्वारमुद्धात्य मोचयेत् ७३

भाषार्थ—और सावधानतासे सोवो यह शिक्षा दे और वहांके टिकेहुए संपूर्ण मनुष्योंको गिणकरि और शालाके दरवाजेको लगाकरि चौकीदारोंसे रक्षा करावै और प्रातःकाल जगवादे और शस्त्रकोदैं और दरवाजे खोलकरि प्रभात छोड़दे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

कुर्यात्सहायसीमांतंतेषां ग्राम्यजनस्सदा ।
प्रकुर्याद्दिनकृत्यंतुराजधान्यां वसन्नृपः ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—और पथिकोंकी सीमातक ग्रामके मनुष्य रक्षा करै और राजधानीमें वसता हुआ राजा दिनमें करने योग्य कर्म करै ७४ उत्थाय पश्चिमेयामे मुहूर्तद्वितयेनवै ।

नियतायश्च कृत्यस्तिव्ययश्च नियतः कति ॥
कोशभूतस्यद्रव्यस्यव्ययः कतिगतस्तथा
व्यवहारे मुद्रितायव्ययशेषं कतीति च ॥ ७६ ॥
प्रत्यक्षतोलेखतश्च ज्ञात्वा चाद्यव्ययः कति
भविष्यति च तत्तुल्यं द्रव्यं कोशात्तु निर्हरेत् ॥

भाषार्थ—रात्रिके पश्चिमभागमें दो मुहूर्त (चार घड़ी) रात्रि से उठकरि कितना आजका आय (आमदनी) और कितना व्यय (खर्च) नियमित है और कोशमेंसे कितना व्यय हुआ है और व्यवहारमें कितना रुपया आया और कितना व्यय हुआ प्रत्यक्ष और लेखसे यह जानकर और आज कितना व्यय होगा यह निश्चय करिके उतनाही द्रव्य कोशमेंसे निकाले ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

पश्चात्तु वेगनिर्मोक्षं सानं भौहूर्तिकं मत्तं ।
संध्यापुराणदानैश्च मुहूर्तद्वितयं नयेत् ७८ ॥

भाषार्थ—पीछेसे मलका परित्याग करिके एक मुहूर्तमें स्नान करै और दो मुहूर्तको संध्या पुराण श्रवण और दानमें व्यतीत करै ॥ ७८ ॥

पारितोषिकदानेन मुहूर्तं तु नयेत् सुधीः ॥

धान्यवस्त्रस्वर्णरत्नसेनादेशविलेखनैः ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—और पारितोषिकके देनेसे मुहूर्त व्यतीत करै अन्न वस्त्र सुवर्ण रत्न सेना और देश इनके देखनेसे एक मुहूर्त व्यतीत करै ॥ ७९ ॥

आयव्ययैर्मुहूर्तानां चतुष्कं तु नयेत् सदा ॥

स्वस्थचित्तो भोजनेन मुहूर्तं सप्तमुहूर्तः ८० ॥

भाषार्थ—४ चार मुहूर्त आय और व्ययमें व्यतीत करै फिर मित्रोंसहित राजा भोजन करिके एक मुहूर्त स्वस्थचित रहै ॥ ८० ॥

प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्णनवीनानां मुहूर्तकम् ।

ततस्तु प्राड्विवाकादिबोधितव्यवहारतः ॥

भाषार्थ—पुरानी और नई वस्तुओंके देखनेमें एक मुहूर्त व्यतीत करै फिर एक मुहूर्त वकीलोंसे बोधित (जताये) व्यवहारसे व्यतीत करै ॥ ८१ ॥

मुहूर्तद्वितयं चैव मृगयाक्रीडनैर्नयेत् ॥

व्यूहाभ्यासैर्मुहूर्तं तु मुहूर्तं संध्यायाततः ८२ ॥

भाषार्थ—दो मुहूर्त मृगयाकी क्रीडासे एक मुहूर्त व्यूहाभ्यास (कवायद) से फिर एक मुहूर्त संध्यासे व्यतीत करै ८२ ॥

मुहूर्तं भोजनेनैव द्विमुहूर्तं च वार्तया ॥

गूढचारः श्रावितयानि द्रयाष्टमुहूर्तकम् ८३ ॥

भाषार्थ—एक मुहूर्त भोजनसे दो मुहूर्त गूढचारी पुरुषने सुनाई हुई वार्ता व्यवहारसे और आठ मुहूर्त निद्रासे व्यतीत करै ॥ ८३ ॥

एवं विहरतो राज्ञः सुखं सम्यक् प्रजायते

अहोरात्रं विभज्यैवात्रिंशद्दिनस्तु मुहूर्तकैः ८४ ॥

नयेत्कालंवृथानैव नयेत्स्त्रीमद्यसेवनैः ।

यत्कालेह्युचितं कर्तुं तत्कार्यं द्वागशंकितम् ८५

भाषार्थ—इस प्रकार विहार करते राजाको सुख अच्छीतरह होता है इस प्रकार तीस मुहूर्त्तसे रात्रिदिनका विभाग करके कालको व्यतीत करै स्त्री और मदिरादिसे कालको न बितावै और जिस समय जो करनेको उचित हो उसी समय उस कार्यको निःशंक होकर शीघ्रही करै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

कालेवृष्टिः सुपोषाय ह्यन्यथा सुविनाशिनी ।

कार्यस्थानानि सर्वाणि यामिकैरभितो निशम्

भाषार्थ—समयकी वृद्धि भले प्रकार पुष्टिके अर्थ है और अकालवृष्टि शीघ्र विनाशका हेतु है संपूर्णकार्य स्थानों चारों ओरसे यामिक (चौकीदारों) से रात्रि दिन रक्षा करै ॥ ८६ ॥

नयवात्रीति नति विस्तिद्ध शस्त्रादिकैर्वरैः ।

चतुर्भिः पंचभिर्वापि षड्भिर्वा गोपयेत्सदा ॥

भाषार्थ—न्याय—नीति—नति इनका ज्ञाता सिद्ध (ज्ञात) हैं शस्त्रादि जिनको ऐसे चार—पांच—छै यामिकोंसे कार्यस्थानोंकी रक्षा करै ॥ ८७ ॥

तत्रत्यानि दैनिकानि शृणुयाल्लेखकाधिपैः ।

दिनेदिने यामिकानां प्रकुर्यात्परिवर्तनं ८८

भाषार्थ—कार्यस्थानोंमें जो दैनिक हैं उन्हें लेखाधिपोंसे सुनै और दिन २ में यामियोंका परिवर्तन (बदली) करै ॥ ८८ ॥

गृहपंक्तिमुखे द्वारं कर्तव्यं यामिकैः सदा

तैस्तद्वृत्तं शृणुयात् गृहस्य भूतिपोषितैः ८९

भाषार्थ—गृहोंकी पंक्तिके मुखपर यामिक (चौकीदार) सदा द्वार करै उन्हीं यामिकोंसे

गृहोंके वृत्तांतको राजा सुने और वेषा यामिक गृहस्थ भूति (गृहस्थके पालन योग्य वेतन) से पुष्ट रहें ॥ ८९ ॥

निर्गच्छंति च ये ग्रामाद्ये ग्रामं प्रविशंति च ।

तान्मुसंशोध्य यत्नेन मोचयेद्दत्तलग्नकान् ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य ग्राममें जाय और जो ग्राममें प्रविष्ट हो उन्हें भलीभांति शोधन और चिह्न सहित करके छोड़ दे ॥ ९० ॥

प्रख्यातवृत्तशीलांस्तु ह्यविमृश्य विमोचयेत्

वीथिवीथिपुया माघैर्निशि पर्यटनं सदा ९१ ॥

भाषार्थ—और प्रसिद्ध हैं आचरण और शील जिनका उन्हें विनाविचारेही छोड़ दे और रात्रिमें चार २ घटी गली २ में सदा विचरै ॥ ९१ ॥

कर्तव्यं यामिकैरेव चौरजारनिवृत्तये ।

शासनं त्वीदृशं कार्यं राजानित्यं प्रजासु च ९२

भाषार्थ—यामिकोंको चौर और जारकी निवृत्तिके अर्थ गली २ में विचरना और राजाको प्रजामें इस प्रकार शिक्षा करनी कि ॥ ९२ ॥

दासेभृत्येभार्यायां पुत्रेशिष्येपि वाक्चित् ।

वाग्दंडपरुषान्नैव कार्यं भद्रैश्च संस्थितैः ९३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य मेरे देशमें रहते हैं उन्हें दास—भृत्य—भार्या—पुत्र—शिष्य इनके विषय कठोर वचनका दंड नहीं देना अर्थात् कठोर वचन नहीं कहना ॥ ९३ ॥

तुलाशासनमानानां नानाणकस्यापि वाक्चित्
निर्धासानां च धातूनां सजातीनां धृतस्य च ।

मधुदुग्धवसादीनां पिष्टादीनां च सर्वदा ।

कूटनैव तु कार्यं स्याद्बलाच्च लिखितं जनैः ९५

भाषार्थ—तुला—आज्ञा—मान—नाणक—
निर्यास (गोंद) धातु—सजाति—घृत—मधु—दूध—
वसा—पिष्ट (आटा) इनके लेखको मनुष्य
बलसे मिथ्या न करै ॥९४॥९५॥

उत्कोचग्रहणात्रैवस्वामिकार्यविलोभनम् ।
दुर्वृत्तकारिणंचोरंजारंमद्वेषिणंद्विषम् ९६॥

नरक्षत्त्वप्रकाशंहितथान्यानपकारकान् ।
मातृणांपितृणांचैवपूज्यानाविदुषामपि ९७

भाषार्थ—उत्कोच (कोड) के ग्रहण कर्ता
स्वामी कार्यके नाशक—दुराचारी और चौर
और जार और राजाका अद्वेषी—और द्वेषी—
इतर अपकारी इनकी प्रत्यक्ष रक्षा कोई न
करै—माता पिता पूज्य और विद्वान् इनका
तिरस्कार कोई न करै ॥९६॥९७॥

नावमानंनोपहासंकुर्युःसदृत्तशालिनाम् ।
नभेदंजनयेयुर्वैतृनार्योःस्वामिभृत्ययोः ९८

भाषार्थ—और सदाचारमें तत्परोंकाभी
तिरस्कार न करै और स्त्री पुरुष—स्वामी—
भृत्य—इनके भेद (फूट) को कोई उत्पन्न न
करै ॥९८॥

भ्रातृणांगुरुशिष्याणांनकुर्वुःपितृपुत्रयोः ।
वापीकूपारामसीमाधर्मशालासुरालयान् ॥

मार्गान्नैवप्रवाधेयुर्हीनांगविकलांगकान् ।
द्यूतंचमद्यपानंचमृगयांशस्त्रधारणम् १०० ॥

भाषार्थ—भ्राता—गुरु—शिष्य—पिता पुत्र—
इनकेभी भेदको न करै—और वापी—कूप—आ-
राम—सीमा—धर्मशाला—देवमंदिर और मार्ग—
हीनअंगवाला पुरुष—इनको कोई पीडा न दे-
और द्यूतमद्यपान मृगया—शस्त्रधारण—इन सब
को राजाके विना न करै ॥९९॥१००॥

गोगजाश्वोष्ट्रमहिषीनृणांवैस्थावरस्यच ॥
रजतस्वर्णरत्नानांमादकस्याविषस्यच १ ॥

क्रयंवाविक्रयंवापिमद्यसंधानमेवच
क्रयपत्रंदानपत्रमृणनिर्णयपत्रकम् ॥ २ ॥

राजाज्ञयाविनानैवजनैःकार्यचिकित्सितं
महापापाभिःशपनंनिधिग्रहणमेवच ॥ ३ ॥

भाषार्थ—गौ हस्ती—ऊंट—भैंस—मनुष्य—स्थार-
—चांदी—सोना—रत्न—मादकवस्तु—विष—इन-
का लेनदेन—और मदिरा निकासना—लेनेका
पत्र—देनेकापत्र—ऋणके निर्णयका पत्र चिकि-
त्सा (इलाज) महापापका अभिशपन अर्थात्
महापापका दोष लगाना निधि (खजाना)
का ग्रहण—इतने कार्य राजाकी आज्ञाके विना
कोईभी मनुष्य न करै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

नवसमाजनियमंनिर्णयजातिदूषणं
अस्वामिनाष्टिकधनंसंग्रहंमंत्रभेदनम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—नये समाजका नियम—निर्णय
जातिका दोष—जिसका कोई स्वामी न हो
उस वस्तुका ग्रहण—और मंत्र सलाह—
इनका भेद कोई न करै ॥ ४ ॥

नृपदुर्गुणलोपंतुनैवकुर्वुःकदाचन ।
स्वधर्महानिमनृतंपरदाराभिमर्शनम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—राजाके दुर्गुणोंका लोप कोई पु-
रुष कदाचित्भी न करै अपने धर्मका
त्याग—असत्य भाषण—अन्यस्त्रीका संग—
कोई न करै ॥ ५ ॥

कूटसाक्षंकूटलेख्यमप्रकाशप्रतिग्रहम् ॥
निर्धारितकराधिक्यंस्तेयसाहसमेवच ॥ ६ ॥

भाषार्थ—झूठा साक्षी—झूठा लेख—गुप्त
प्रतिग्रह—नियमित करसे अधिककर—चोरी
साहस—इहे कोई न करै ॥ ६ ॥

मनसापिनकुर्वंतुस्वामिद्रोहंतथैवच ॥
भृत्याशुल्केनभागेनवृद्ध्यादर्पवलाच्छलात्

भाषार्थ—भलीप्रकार रक्षा और हरणमें अच्छे प्रकारसे यत्न करै शूरता—पांडित्य—वक्तृता दातृता—इनको कदापि न त्यागे ॥ १८ ॥

बलंपराक्रमंनित्यमुत्थानंचापिभूमिपः ।
समितौस्वात्मकार्येवास्वामिकार्येतथैवच ॥

भाषार्थ—बल—पराक्रम—नित्य उत्थान (चढ़ाई) इनकोभी न त्यागे—संग्राम अपने और स्वामीके कार्यमें प्राणोंका भय न करे ॥१९॥

त्यक्त्वाप्राणभयंयुध्येत्तशूरस्त्वविशंकितः
पक्षंसंत्यजयत्नेनवालस्यापिसुभाषितं २० ॥
गृण्हांतिधर्मतत्त्वचव्यवस्यतिसंपंडितः
राज्ञोपेदुर्गणान्वक्तिप्रत्यक्षमविशंकित २१

भाषार्थ—प्राणोंके भयकोत्याग और निःशंक होकर जो युद्ध करे वही शूर है—पक्षपातको छोड़कर बालककेभी उत्तम कथनको ग्रहण करे—और धर्मके तत्त्वका निश्चय करे और निःशंक होकर राजाके प्रत्यक्ष राजाकेभी अपगुणोंको जो कहै वही पंडित है २०।२१
सवक्तागुणतुल्यांस्तान्नप्रस्तौतिकदाचन ।
अदेयंयस्यनैवास्तिभार्यापुत्रादिकंधनं ॥२२

भाषार्थ—वही वक्ता है जो गुणोंके तुल्य यथार्थ स्तुति करे और अधिक न करे और भार्या—पुत्र—धन आदिमें जिसको अदेय न हो वही राजा है ॥२२॥

आत्मानमपिसंदत्तेपात्रेदातासउच्यते ।
अशंकितक्षमोयेनकार्यकर्तुंबलंहितत् २३ ॥

भाषार्थ—जो सुपात्रको अपने आत्माकोभी दे दे वही दाता है और जिससे निःशंक होकर कार्यको करे वही बल है ॥ २३ ॥

किंकराड्वयेनान्येनृपाद्याःसपराक्रमः ।
युद्धातुकूलव्यापारउत्थानमितिकीर्तितं २४

भाषार्थ—जिससे इतर राजा किंकरके समान होजाय वही पराक्रम है और युद्धका जो संपादक जो व्यापार उसे उत्थान कहते हैं—॥२४॥

विषदोषभयादन्नविमृश्यकपिकुकुट्टेः ।
हंसाः स्वलंतिकूजंतिभृंगानृत्यंतिमायुराः
विरोतिकुकुटोमत्तःक्रौंचोवैरेचतेकपिः ।
हृष्टरोमाभवेद्भुः सारिकावमतेतथा २६ ॥

भाषार्थ—विषके दोषभयसे वानर मुरगों अन्नकी परीक्षा करे क्योंकि विषके भक्षणसे हंस स्वलित (अंडबंड) बोलते हैं भ्रमर शब्द करते हैं मोर नाचते हैं मुरगा अत्यंत शब्द करता है झूंच मत्त हो जाता है वानर वमन करदेता है नोलेकी रोम खड़ी हो जाती है सारिकाभी वमन करती है—यदि ये पूर्वोक्त जीव जिस अन्नभक्षणसे उक्त कार्यकारी हो जायें तो उस अन्नको कदाचिदपि अन्नको भक्षण न करे—२६—२७ ॥

दृष्ट्वंसविपंचान्नंतस्माद्भोज्यंपरीक्षयेत् ।
भुंजीतपडूंस्नित्यंनद्वित्रिरससंकुलम् २७ ॥

भाषार्थ—इस प्रकार विष सहित अन्नको देखकर पश्याद्भोजनके योग्यकी परीक्षा करे अर्थात् छै रस जिसमें उसै भक्षण करे और दो अथवा तीन रस जिसमें हों उसै भक्षण न करे—२७ ॥

हीनातिरिक्तंनकटुमधुरक्षारसंकुलम् ।
आवेदयतियत्कार्यंशृणुयान्मात्रिभिःसह २८

भाषार्थ—न्यून और अधिक है—कटु—मधुर—खार—जिसमें उसे भक्षण न करे जो कोई मनुष्यकार्यको निवेदन करे उसेई मंत्रियों सहित राजा सुनै ॥ २८ ॥

आरामादौप्रकृतिभिःस्त्रीभिश्चनटगायकैः ।
विहरेत्सावधानस्तुगाधैरैन्द्रजालिकैः २९

भाषार्थ—प्रजा—स्त्री—नट—गानेवाले—भाट—इंद्रजाली—इनके संग सावधान हो कर आराम (वगीचा) आदिमें विहार करे ॥ २९ ॥

गजाश्वरथयानंतुप्रातःसायंसदाभ्यसेत् ।
व्यूहभ्याससैनिकानांस्वयंशिक्षेच्चशिक्षयेत् ।

भाषार्थ—प्रातःकाल और संध्यासमय—
हस्ति-अश्व-रथ-इनके यानका अभ्यास करे
और सेनाके मनुष्योंको व्यूह (कवायद) अभ्या-
स करावे और आपभी करे ॥ ३० ॥

व्याघ्रादिभिर्वनचरैर्मयूराद्यैश्चपक्षिभिः ।
क्रीडयेन्मृगयांकुर्याद्दृष्टसत्त्वान्निपातयन् ॥

भाषार्थ—सिंह आदि वनचर और मयूर आदि
पक्षी इनके संग क्रीडा और मृगया करे और
दृष्ट जीवोंको नष्ट करे ॥ ३१ ॥

शौर्यप्रवर्धतेनित्यंलक्ष्यसंधानमेवच ।
अकातरत्वंशस्त्रास्त्रशीघ्रपातनकारिता ॥

भाषार्थ—शूरताकी वृद्धि और लक्ष्य (निश-
ने) का संधान अकातरता शस्त्रास्त्रका
शीघ्र चलाना ये मृगयासे होते हैं ॥ ३२ ॥

मृगयायांगुणाएतेर्हिंसादोषोमहत्तरः ।
इंगितंचेष्टितयत्नात्प्रजानाधिकारिणाम् ॥

भाषार्थ—मृगयामें ये गुण हैं परंतु हिंसा दोष
महान् हैं प्रजा और अधिकारी इनका मनोरथ
और चेष्टा गुप्तचारोंसे सुनै ॥ ३३ ॥

प्रकृतीनांचशत्रूणांसैनिकानामंतंचयत् ।
सभ्यानांवांधवानांचस्त्रीणामंतःपुरेचयत् ॥

शृणुयाद्बृहच्चरिभ्योनिशिचात्ययिकेसदा ।
सावधानमनाःसिद्धशस्त्रास्त्रःसंल्लिखेच्चतत् ॥

भाषार्थ—प्रजा-शत्रु-सेनाके मनुष्य और
सभासद-बंधु-अंतःपुर-स्त्री-इनका आचरण-
नित्य पिछली रात्रिको विचरने हारे गूढचारि-
योंसे सुनै और सावधानतासे शस्त्रास्त्रको
धारण करिके उसे लिखे ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥

असत्यवादिनंगूढचारंनैवचज्ञास्तियः ।
सन्तपोम्लेच्छइत्युक्तःप्रजाप्राणधनापहः ॥

भाषार्थ—झूठेगुप्तचारीको जो राजा शिक्षा
नहींदेता वह राजा प्रजाके प्राण और धनका
अपहारी म्लेच्छ है ॥ ३६ ॥

वर्णांतपस्वीसंन्यासीनीचसिद्धस्वरूपिणम् ।
प्रत्यक्षेणललेनैवगूढचारंविशोधयेत् ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—ब्रह्मचारी-तपस्वी-संन्यासी-नीच-
लिङ्गमें हैं रूप जिसके ऐसे गूढचारीको प्रत्य-
क्ष अथवा छलसे शोधे अर्थात् पहचाने ॥ ३७ ॥
विनातच्छोधनात्तत्त्वंजानातिचनान्यते ।
अशोधकनृपान्नैवाविभ्यंत्यनृतवादने ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—गूढचारीके शोधे विना राजाको
तत्त्वका ज्ञान और प्राप्ति नहीं होती और जो
राजा इनका शोधन नहीं करता उससे गूढ
बोलनेमें वे नहीं हारते ॥ ३८ ॥

प्रकृतिभ्योधिकृतेभ्योगूढचारंसुरक्षयेत् ।
सदैकनायकंराज्यंकुर्यान्नवहुनायकम् ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—प्रकृति और अधिकारी इनसे
गूढचारीकी रक्षा करै और राज्यका स्वामी
एकही करे बहुत नहीं ॥ ३९ ॥

नानायकंकचिदपिकर्तुमीहेतभूमिपः ।
राजकुलेतुवहवः पुरुषायादिसंतिहि ॥ ४० ॥

तेपुज्येष्टोभवेद्राजाशेषास्तत्कार्यसाधकाः ।
गरीयांसोवराःसर्वसहायेभ्योभिवृद्धये ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—राजा किसी स्थानकोभी अना-
कय (स्वामीरहित) करनेकी चेष्टा न करै
यदि राजाके कुलमें बहुत पुरुष होय तो
उनमें ज्येष्ठ राजा होता है शेष उसके कार्य-
साधक होते हैं राजाकी वृद्धिके अर्थ और
बंधु इतर सहायोंसे श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठोपिबधिरः कुष्ठीमूकौधः पंढरएवयः
सराज्याहोभवेनैवभ्रातातत्पुत्रएवहि ४२ ॥

भाषार्थ—यदिज्येष्ठ भ्राताभी बधिर—कुष्ठी—
मूक—अंध—नपुंसक होय तो वह राज्यके
योग्य नहीं होता भ्राता अथवा उसका पुत्र
राज्यका अधिकारी होता है ॥ ४२ ॥

स्वकनिष्ठोपिज्येष्ठस्यभ्रातुः पुत्रस्तु
राज्यभाक् ॥ दायदादानामैकमत्यं
राज्ञःश्रेयस्करंपरम् ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—अपना कनिष्ठ ज्येष्ठ भ्राता अथवा
भ्राताका पुत्र राज्यका अधिकारी होता
है और दायद (अंशभागियों) की एक
मति राज्यके परमकल्याणको करतीहै ॥ ४३ ॥

पृथग्भावोविनाशायराज्यस्यचकुलस्यच
अतःस्वभोगसदृशान्दायादान्कारयेन्नृपः ॥

भाषार्थ—अंशभागियोंका जो पृथक् भाग
वह राज्य और कुलके विनाशका हेतु है
इससे राजा हिस्सेदारोंको अपने भागके
सदृश करे ॥ ४४ ॥

राज्यविभजनाच्छ्रेयानभूपानांभवेत्खलु ॥
अल्पीकृतंविभागेनराज्यंशत्रुजिघृक्षति ४५

भाषार्थ—राज्यके विभागसे राजाओंको क-
ल्याण नहीं होता क्योंकि विभागसे स्वरूपहुए
राज्यको शत्रु ग्रहण करनेकी इच्छा करता
है ॥ ४६ ॥

राज्यतुर्यांशदानेनस्थापयेत्तान्समंततः ।
चतुर्दिक्ष्वथवादेशाधिपान्कुर्यात्सिदानृपः ॥

भाषार्थ—राज्यके चतुर्थभागको देकर क-
निष्ठ बंधुओंको चारों ओर नियत करे अथवा
चारों दिशाओंमें देशोंके अधिपति करे ४६ ॥

गोगजाश्वोष्ट्रकोशानामाधिपत्येनियोजयेत्
मातामावसमायाचसानियोज्यामहासने ॥

भाषार्थ—गौ—हस्ति—अश्व—ऊट—कोश (ख-
जाना) इनके अधिपति करे माता और माताके
जो तुल्य हैं उसे सिंहासन पर नियुक्त करे ४७

सेनाधिकारिसंयोज्यावांधवाशालकाः सदा
स्वदोषदर्शकाः कार्यागुरवः सुहृदश्चये ४८

भाषार्थ—सेनाके अधिकारमें बंधु और
शालोंको नियुक्त करे अपने दोषोंके दिखा-
नेमें गुरु अथवा मित्रोंको नियुक्त करे ॥ ४८ ॥

वस्त्रालंकारपात्राणांस्त्रियोयोज्यासुदर्शने
स्वयंसर्वतुविमृशेत्पर्यायेणचमुद्रयेत् ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—वस्त्र—भूषण—पात्र—इनके भली
प्रकार देखनेमें स्त्रियोंको नियुक्त करे और
संपूर्णकी आपविचारै और राजमुद्रासे अङ्कित
करे ॥ ४९ ॥

अंतर्वैश्वमनिरात्रौवादिवारण्येविशोधिते ।
मंत्रयेन्मंत्रिभिःसार्धंभाविक्त्यंतुनिर्जने ॥

भाषार्थ—गृहके भीतर अथवा वनमें दिनके
समय एकांतमें मंत्रियोंके संग भाविकार्यको
विचारै ॥ ५० ॥

सुहृद्भिर्द्रातृभिःसार्धंसभायांपुत्रबांधवैः ।
राजकृत्यंसेनपैश्रसभ्याद्यैश्चितयेत्सदा ॥

भाषार्थ—मित्र—भ्राता—पुत्र—बंधु—सेनाके
अधिप—सभासद इनके संग राजकृत्यका
सदा चिंतन करे ॥ ५१ ॥

सभायांप्रत्यगर्धस्यमध्येरात्रासनंस्मृतं ।
दक्षसंस्थावामसंस्थाविशेषयुःपार्श्वकोष्ठगाः ॥

भाषार्थ—सभामें पश्चिमदिशाके मध्यभागमें
राजाका आसन कहा है और पासके बैठन
हरे दक्षिण अथवा वामभागमें बैठे ॥ ५२ ॥

पुत्राःपौत्राभ्रातरश्चभागिनेयाःस्वपृष्ठतः ।
दौहित्रादक्षभागात्तुवामसंस्थाःक्रमादिमे ॥

भाषार्थ-पुत्र-पौत्र-भ्राता-भानजे ये, अपने पृष्ठभागमें बैठे दौहित्र (पुत्रीके पुत्र) दक्षिणभागमें वाम भागमें क्रमसे बैठें ॥ ५३ ॥

पितृव्याःस्वकुलश्रेष्ठाःसभ्याःसेनाधिप-
स्तथा ।

स्वाग्नेदक्षिणभागेतुप्राक्संस्थाःपृथगासनाः ।

भाषार्थ-पितृव्य (चाचा ताऊ) अपने कुलके श्रेष्ठ सभासद-सेनाके अधिप ये अपने आगे दक्षिण भागमें पूर्वदिशामें बैठें ॥ ५४ ॥

मातामहकुलश्रेष्ठार्मन्निणोवांधवास्तथा ।

श्वशुराश्वेवश्यालाश्ववामांग्रेचाधिकारिणः ॥

भाषार्थ-माताके कुलमें श्रेष्ठ-मंत्री-चण्डु-श्वशुर-झपाल ये वामभागमें अग्रभागके अधिकारी हैं- ॥ ५५ ॥

वामदक्षिणपार्श्वस्थौजामाताभगिनीपतिः ॥

स्वसदृशःसमीपेवास्वार्थासनगतःसुहृत् ५६

भाषार्थ-वाम और दक्षिणपार्श्वमें जमाई, और भनोई बैठे और अपनी तुल्य मित्र अपने समीपमें वा अपने आधे आसनपर बैठे ॥ ५६ ॥

दौहित्रभागिनैयानांस्थानेस्युदत्तकादयः ।

भागिनैयाश्वदौहित्राःपुत्रादिस्थानसंश्रिताः

भाषार्थ-दौहित्र-भानजे इनके स्थानमें दत्तकादि पुत्र बैठे और भानजे और दौहित्र पुत्र आदिके स्थानमें बैठे ॥ ५७ ॥

यथापितातथाचार्यःसमश्रेष्ठासनेस्थितः ।

पार्श्वयोरग्रतःसर्वेलेखकार्मन्निपृष्ठगाः ५८ ॥

भाषार्थ-पिताके समान गुरु होता है इससे पिताके समान श्रेष्ठआसनपर बैठे और

दीनों पार्श्वमें अग्रभाग विप्रे संपूर्ण लेखक मंत्रियोंके पीछे बैठे ॥ ५८ ॥

परिचारगणाःसर्वेसर्वेभ्यःपृष्ठसंस्थिताः ।

स्वर्णदंडधरौपार्श्वप्रवेशनतिबोधकौ ॥ ५९ ॥

भाषार्थ-संपूर्ण सेवकोंके गण सबसे पीछे बैठे और सभामें प्रवेश (आने) के जताने और राजाको इतरकी प्रणामके बोधक सुवर्णके दंडको ग्रहण करके दो मनुष्य राजाके दोनों पार्श्वमें बैठे ॥ ५९ ॥

विशिष्टचिन्हयुग्राजास्वासनेप्रविशेत्सुखं ।

सुभूपणःसुकवचःसुवस्त्रोमुकुटान्वितः ६०

भाषार्थ-श्रेष्ठ चिह्नवाला राजा अच्छेभूषण और श्रेष्ठ कवच-और श्रेष्ठ मुकुट-इनको धारण करके सुंदर आसनपर सुखसे बैठे ॥ ६० ॥

सिद्धास्त्रोनग्रशस्त्रस्सन्सावधानमनाःसदा ।

सर्वस्मादधिकोदाताशूरस्त्वधार्मिकोह्यसि ॥

भाषार्थ-सिद्ध हैं अत्र जिसको ऐसा राजा नम्र शस्त्रको ग्रहण करके सदा सावधान-मन रहें और आप सबसे अधिक दाता-शूर और-धार्मिकहो इस वाणीको न सुने ६१ ॥

इतिवाचनंशृणुयाच्छ्रावकावंचकास्तुये ।

रागाहोभाद्रयाद्राज्ञःस्युर्मूकाश्चमंत्रिणः ॥

भाषार्थ-और जो पूर्वोक्त वाणीके सुनाने-वाले हैं और जो ठग हैं और जो राजाके मंत्री किसीकी प्रीति-राग-लोभसे मूक, हो-जाय अर्थात् यथार्थ न्यायमें संमति न दें उन्हें राजा अपने अनुमत नजानें ॥ ६२ ॥

नताननुमतान्विद्यानृपतिःस्वार्थसिद्धये ।

पृथक्पृथक्मतंतेपालेखयित्वाससाधनं ६३

भाषार्थ—अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त पूर्वोक्तोंको अनुमत नहीं समझे किंतु उनका मत युक्ति सहित पृथक् २ लिखकर आप विचारे ॥ ६३ ॥

विमृशोत्त्वमतैर्नैवयत्कुर्याद्बहुसंमतं ।
गजाश्वरथपश्वादीन्भृत्यान्दासांस्तथैवच ॥

भाषार्थ—और जो कार्य वह संमतभी किया हो उसेभी अपने मतसे करै । हस्ती-घोड़े रथ-पशु-आदि-भृत्य-और दास-६४ संभारान्सैनिकान्कार्याक्षमान्ज्ञात्वादिनेदिने संरक्षयेत्प्रयत्नेनसुजीर्णान्संत्यजेत्सुधीः ॥

भाषार्थ—और सेनाके संभार-इनकी प्रतिदिन यत्नसे रक्षा करके कार्यके योग्य करै और जो जीर्ण (पुराने) हों उन्हें त्याग दै ॥ ६५ ॥

अयुतक्रोशजांवार्ताहरेदेकदिनेनवै ।
सर्वविद्याकलाभ्यासेशिक्षयेद्भूतिपोषिताम्

भाषार्थ—दशसहस्र क्रोशकी वार्ताको एकही दिनमें जानले और भृत्योंको संपूर्ण विद्याओंकी कलाओंके अभ्यासमें शिक्षित करै ॥ ६६ ॥

समाप्तविद्यसंदष्टात्कार्येतांनियोजयेत् ।
विद्याकलोत्तमान्दृष्ट्वावत्सरेपूजयेच्चतान् ॥

भाषार्थ—उसकी पूरी विद्याको देखकर उसे कार्यमें नियुक्त करै और विद्याकी कला-में उत्तम देखकर उन्हें प्रतिवर्ष पूजै अर्थात् उनकी विद्याके अनुसार उनका सत्कार करै ॥ ६७ ॥

विद्याकलानां वृद्धिः स्यात्तथाकुर्यान्नृपः सदा
पृष्ठग्रगान्कूरवेषान्नतिनीतिविशारदान् ६८

भाषार्थ—जैसे विद्याकी कला वृद्धिको प्राप्त हों तैसे राजा सदा करै पृष्ठभाग और

अग्रभागमें विद्यमान जो पुरुष वे नति (प्रणाम) और नीतिमें चतुर और भयानक वेषधारी हों ॥ ६८ ॥

सिद्धास्त्रनग्नशस्त्रांश्चभटानारान्नियोजयेत्
पुरेपर्यटयेन्नित्यंगजस्थोरंजयन्प्रजाः ॥ ६९

भाषार्थ—और वे ज्ञात हैं अस्त्र जिन्हें ऐसे हों और नग्नशस्त्र हों ऐसे भटों (नोकरों) को समीप नियुक्त करै और हस्तीपर चढ़कर प्रजाको प्रसन्न करता राजा आपभी अपने नगरमें फिरै ॥ ६९ ॥

राजयानारूढितःकिंराज्ञाश्वानसमोपिच ।
शुनासमोनकिंराजाकविभिर्भाव्यतेजसा ७०

भाषार्थ—जो राजा अपने यान (सवारों) पर श्वान अथवा नीचको बैठा लै तौ ज्ञानी-पुरुष राजाभी श्वानके समान क्या नहीं जानैगे अर्थात् अवश्य जानेंगे ॥ ७० ॥

अतः स्वबांधवैर्मित्रैः स्वसाम्यप्रापितैर्गुणैः ।
प्रकृतीभिर्नृपोगच्छेन्ननीचैस्तुकदाचन ॥ ७१

भाषार्थ—इससे राजा अपने बंधु और मित्र-और जो गुणोंसे अपनी तुल्यताको प्राप्त हुए हैं उन और प्रकृतियों सहित गमन करै नीचोंके संग कदाचिदपि गमन न करै ॥ ७१ ॥

मिथ्यासत्यसदाचारैर्नीचः साधुः क्रमात्स्मृत
साधुभ्यां तोस्त्वमृदुत्वं नीचाः संदर्शयति हि ॥

भाषार्थ—झूठसे नीच सत्य और श्रेष्ठ आचरणसे साधु होता है क्योंकि नीचभी साधुओंसे कोमल अपने आचरणको दिखाते हैं ॥ ७२ ॥

ग्रामान्पुराणि देशांश्च स्वयं संवीक्ष्य वत्सरे ।
अधिकारिगणैः काश्चरंजिताः काश्चकर्षिताः

भाषार्थ—ग्राम पुर देश इनको स्वयं प्रति-
वर्ष देखै और अधिकारियोंने कौनसी प्रजा
प्रसन्न की और कौनसी दुःखी की यहभी
देखै ॥ ७३ ॥

प्रजास्तासंतुभूतेनव्यवहारविचिंतयेत् ।

नभृत्यपक्षपातीस्यात्प्रजापक्षसमाश्रयेत् ॥

भाषार्थ—उन प्रजाओंके वर्तावसे व्यवहार-
का चिंतन करै और अपने भृत्य (नोकरों)
का पक्षपाती नहो किंतु प्रजाके पक्ष
पातीही हो ॥ ७४ ॥

प्रजाशतेनसंद्दिष्टसंत्यजेदधिकारिणम् ।

अमात्यमपिसंवीक्ष्यसकृदन्यायगामिनं ७५

भाषार्थ—जो अधिकारी अनेक प्रजाओंका
द्वेषी है उसको त्यागदे और मंत्रीको एकवार
अन्यायगामी अर्थात् अनौतिकारक देखकर
एकांतमें दंड दे ॥ ७५ ॥

एकांतदेदंडयेत्पष्टमभ्यासागस्कृतंत्यजेत् ।

अन्यायवर्तिनारारज्यंसर्वस्वंचहरेन्नृपः ७६ ॥

भाषार्थ—और प्रकट जो अपना अपराधी
है उसे त्याग दे अर्थात् उसे दंड न दे और
अन्यायवर्तियोंके राज्य और सर्वस्वको
राजा हरले ॥ ७६ ॥

जितानां वषये स्थाप्यं धर्माधिकरणं सदा ।

भृतिदद्यान्नितानांतच्चारिण्यानुरुपत ७७

भाषार्थ—जीतिहुओंके राज्यमें धर्मसे सदा
अधिकार करै और जीतिहुओंको उनके सर-
चके अनुसार भृति (नोकरों) दे ॥ ७७ ॥

स्वानुरक्तां सुरूपांच सुवस्त्रां प्रियवादिनीम् ।

सुभूषणां सुसंशुद्धां प्रमदां शयने भजेत् ७८

भाषार्थ—अपने विषे अनुरक्त (प्रीति-
मती) सुरूप-सुवस्त्र-प्रियवादिनी-सुंदर-

भूषणोंवाली शुद्ध जो हो उस स्त्रीको शय्या
पर भजे अर्थात् ऐसी स्त्रीके संगही भोग
करै ॥ ७८ ॥

यामद्वयं शयानोहित्वत्यंतं सुखमश्नुते ।

न संत्यजेच्च स्वस्थानं नीत्याशन्नगणं जयेत् ॥

भाषार्थ—जो राजा दो प्रहर शयन कर-
ता है वह अत्यंत सुखको भोगता है और
अपने स्थानका परित्याग राजा न करै किंतु
नीतिसेही शत्रुओंके गणको जीतै ॥ ७९ ॥

स्थानभ्रष्टानो विभांतिदंताः केशान् खानृपाः
संश्रयेद्विरिदुर्गाणि महापदिनृपाः सदा ८०

भाषार्थ—अपने स्थानसे भ्रष्ट (पतित)
दन्त-केश-नख-राजा ये शोभाको प्राप्त नहीं
होते और महान् आपत्तिमें राजा किल्ला
पर्वत इनका आश्रय ले ॥ ८० ॥

तदा श्रायाद्दस्युवृत्त्यास्वराज्यं तु समाहरेत्

विवाहदानयज्ञार्थं विनाप्यष्टांशशेषितं ८१ ॥

भाषार्थ—उनके आश्रयसे चोरीसे अपने
राज्यको ग्रहण करै और विवाह-दान यज्ञ-इ-
नके अर्थ अष्टांशशेषके विनाभी सबसे
द्रव्यको ग्रहण करै ॥ ८१ ॥

सर्वतस्तु हरेद्दस्युरसतामखिलं धनं ।

नैकत्रसंवसेन्नित्यं विश्वसेनैव कं प्राति ८२ ॥

भाषार्थ—सब प्रकार चोरीसे असज्जनोके
धनको ग्रहण करै और प्रतिदिन एकस्थान-
में न बसे और किसीका विश्वास न करै ८२

सदैव सावधानः स्यात्प्राणनाशनं चिंतयेत् ।

क्रूरकर्मासदोद्युक्तो निर्धृणो दस्युर्कर्मसु ८३

भाषार्थ—राजा सदा सावधान रहै और
प्राणोंके नाशकी चिंता न करै (कठोर)
क्रूर कर्मको करै, और सदा उद्योगी रहै,
और चौरोंके कर्ममें दया न करै ॥ ८३ ॥

विमुखः परदारेषुकुलकन्याप्रदूषणे ।
पुत्रवत्पालिताभृत्याः समये शत्रुतांगताः ८४

भाषार्थ—परस्त्री और कुलीनकन्याके दूष-
णसे पराङ्मुख रहै और पुत्रके समान पालै
भृत्यभी समयमें शत्रु होजाते हैं ॥ ८४ ॥

नदोषः स्यात्प्रयत्नस्य भागधेयं स्वयंहितम् ।
दृष्ट्वा सुविफलं कर्म तपस्तप्त्वा दिवं व्रजेत् ८५

भाषार्थ—और प्रयत्न करनेमें राजाको कुछ
दोष नहीं क्योंकि प्रयत्नमें राजाका भाग्यही

होता है—और कर्मको अच्छीतरह विफल
(निष्फल) देखकर और तपको करिके
स्वर्गमें राजा गमन करे ॥ ८५ ॥

उक्तं समाप्तं तो राजकृत्यं मिश्रेधिकं ब्रुवे ।
अध्यायः प्रथमः प्रोक्तो राजकार्यनिरूपकः ॥

भाषार्थ— इस प्रकार संक्षेपसे राजकार्य
जिसमें ऐसा यह राजकार्य निरूपक प्रथमा
ध्याय हुआ । आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ ८६ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः पूर्तिमगात् ॥ १ ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

शुक्रनीति

(भाषाटीकासहिता)



अध्यायः २ यः

यद्यप्यल्पतरङ्गमर्तदप्येकेनदुष्करं ।
पुरुषेणासहायेनकिमुराज्यमहोदयं ॥ १ ॥

भाषार्थ—अल्पसे अल्पभी कार्य एक अ-
सहाय मनुष्यसे दुःखसे किया जाता है. म-
होदय (अतिमहान्) राज्य तो क्यों नहीं
दुष्कर होगा ॥ १ ॥

सर्वविद्यासुकुशलोत्पुपोहापिसुमंत्रवित् ।
मंत्रिभिस्तुविनामंत्रनैकोर्यंचितयेत्काचित् ॥

भाषार्थ—सर्व विद्याओंमें अच्छीतरह कुश-
ल और सुमंत्रका वेत्ता (जाननेवाला) भी
राजा एकाकी मंत्रियोंके विना व्यवहारकी
कदापि चिन्ता न करे ॥ २ ॥

सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासत्सुमतेस्थितः ।
सर्वदास्यानृपः प्राज्ञः स्वमतेनकदाचन ॥

भाषार्थ—विद्वान् राजा सभ्य अधिकारी
प्रकृती सभासद् इनके मतमें सदा स्थित रहे
और अपने मतमें कदापि स्थित न रहे ॥ ३ ॥

प्रभुःस्वातंत्र्यमापन्नोहानर्थयैवकल्पते ।
भिन्नराष्ट्रोभवेत्सद्योभिन्नप्रकृतिरेवच ॥ ४ ॥

भाषार्थ—स्वतंत्रताको प्राप्त होकर राजा
अनर्थ करता है और उसका राज्य भिन्न हो
जाता है और प्रकृतिभी पृथक् होजाती है ४

पुरुषेपुरुषेभिन्नदृश्यतेतुद्विवैभवं ।
आप्तवाक्यैरेनुभवैरागमैरनुमानतः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—पुरुष २ में भिन्न २ बुद्धिका प्रताप
दीखता है यथार्थ वक्ताओंके वाक्यसे और
अनुभवसे और आगम और अनुमानसे ५ ॥

प्रत्यक्षेणचसादृश्यैःसाहसैश्चछलैर्वलैः ।
वैचित्र्यव्यवहाराणामौन्नत्यंगुरुलाघवैः ६ ॥

नहितत्सकलज्ञातुंनरेणैकेनशक्यते ।
अतःसहायान्वरयेद्वाजाराज्यविवृद्धये ॥ ७ ॥

भाषार्थ—प्रत्यक्षसे-सादृश्यसे-और-साहस
छल-बल इन पूर्वोक्त संपूर्ण साधनोंसे
व्यवहारोंकी विचित्रता और गुरुलाघवसे
उंचाई इनको एक मनुष्य नहीं जानसकता
इससे राज्यकी वृद्धिके अर्थ सहायोंको
अंगीकार राजा अवश्य करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

कुलगुणशीलवृद्धाञ्छ्रान्भक्तान्प्रियंवदान्
हितोपदेशकान्छेदशशान्धर्मरतान्सदा ८ ॥

क भाषार्थ—कुल-गुण-शील-इनसे वृद्ध-शूर-
वीर-भक्त-प्रियवक्ता-हितके उपदेष्टा-क्लेश-
के सहनशील-सदा धर्ममें रत ऐसे सहायों
को राजा रखे ॥ ८ ॥

कुमार्गगन्तृपमपिबुद्धचोद्धर्तुक्षमाञ्छुचीन् ।
निर्मत्सरान्कामक्रोधलोभहीनान्निरालसान्

भाषार्थ—जो सहायक कुमार्गगामी राजाको-
भी अपनी बुद्धिसे निवृत्त करनेकी समर्थ हो
और शुद्धहो और मत्सर न हो काम-क्रोध
लोभ-आलस्य-इनसे रहित हों उन्हें रखे ९

हीयतेकुसहायेनस्वधर्माद्राज्यतो नृपः ।

कुं कर्मणाप्रनष्टास्तुदितिजाःकुसहायतः १०

भाषार्थ—निंदित सहायकसे राजा अपने
धर्म और राज्यसे हीन होजाता है क्योंकि
निंदितकर्म और निंदित सहायकसे दैत्य नष्ट
होगये ॥ १० ॥

नष्टादुर्योधनाद्यास्तुनृपाःशूरावल्लधिकाः ।

निरभिमानीनृपतिःसुसहायोभवेदतः ॥ ११

भाषार्थ—निंदितसहायक आदिसे शूरी
और बलवान् दुर्योधनादिक भी नष्ट होगये
इससे राजा निरभिमानी और सुसहायकर है ॥

शुवराजोमात्यगणोभुजावेतौमहीभुजः ।

तावेव नयनेकर्णौदक्षसव्यौक्रमात्स्मृतौ १२

भाषार्थ—राजाके युवराज और मंत्रियों-
का समूह क्रमसे दक्षिण वामभुजा नेत्र और
कर्ण कहे हैं ॥ १२ ॥

बाहुकर्णाक्षिहीनःस्याद्विनाताभ्यामनृपः

योजयेच्चतयित्वातौमहानाशायचान्यथा ॥

भाषार्थ—युवराज और मंत्रियोंके बिना
राजा बाहु-कर्ण-नेत्र इनसे हीन होता है
इससे इन दोनोंको विचारके युक्त करे अ-

न्यथा नियुक्त कियेहुये ये दोनों महानाशके
कर्ता होते हैं ॥ १३ ॥

मुद्रांविनाखिलंराजकृत्यंकर्तुंक्षमंसदा ।

कल्पयेद्युवराजार्थमौरसंधर्मपत्तिजं १४ ॥

भाषार्थ—जो मुद्राके बिना संपूर्ण राजकृ-
त्य करनेको सदा समर्थ हो ऐसे धर्मपत्नीके
औरस पुत्रको युवराजके अर्थ कल्पित करे ॥

स्वकनिष्ठं पितृव्यं वानुजं वा प्रजसंभवं ।

पुत्रं पुत्रीकृतं दत्तं तं यौवराज्ये भिवेचयेत् १५ ॥

भाषार्थ—अपने कनिष्ठ पितृव्य (चाचा)
अथवा कनिष्ठ भ्राताको अथवा ज्येष्ठ भ्रा-
ताके पुत्रको अथवा पुत्रीकृत पुत्रको अथवा
दत्त पुत्रको युवराजपदवीपर नियुक्त करे १५

क्रमदभावेदौहित्रं स्वस्तीयं वानियोजयेत् ।
स्वहितायापि मनसानैतान् संकर्षयेत्काचित् ॥

भाषार्थ—क्रमसे पूर्वोक्त पुत्र आदिके अ-
भावमें दौहित्र वा भानजाको नियुक्त करे
और अपने हितके लियेभी कदाचित् इनको
मनसे दुःखी न करे ॥ १६ ॥

स्वधर्मनिरताञ्छूरान्भक्तान्नीतिमतः सदा ।

संरक्षयेद्राजपुत्रान्वालानपिसुयत्नतः ॥ १७

भाषार्थ—अपने धर्ममें तत्पर-शूर-भक्त-
नीतिवाले जो राजाओंके बालकपुत्र उनकी
बढेयत्नसे रक्षा करे ॥ १७ ॥

लोलुभ्यमानास्तेर्येषु हन्युरेन मरक्षिताः ।

रक्ष्यमाणा यदि च्छिद्रं कथं चित्प्राप्नुवंति ते १८

भाषार्थ—यदि राजा इतर राजपुत्रोंकी
यत्नसे रक्षा करे तौ वे द्रव्यके लोभको प्राप्त
और अरक्षित हुए इस राजाको मार देंगे यदि
रक्षासेभी वे छिद्रको प्राप्त होजाय तौ १८ ॥

सिंहशावइवघ्नतिरक्षितारं द्विपद्भुतं ।

राजपुत्रमदोद्धृतागजाइवनिरंकुशाः ॥१९॥

भाषार्थ—वे राजपुत्र जैसे सिंहका बालक हस्तीको इस प्रकार रक्षक राजाको हतदेते हैं निरंकुश गजके समान मदसे उन्मत्त राज-पुत्र-पिता आदिकोभी हतदेते हैं ॥१९॥

पितरंचापिनिघ्नतिभ्रातरं त्वितरं न किं ।

मूर्खोवालोपीच्छतिस्मस्वाम्यर्घ्यं किं नु पुनर्युवा

भाषार्थ—पिता और भ्राताको भी हतदेते हैं तो इतरको क्यों नहीं हतेंगे क्योंकि मूर्ख और बालकभी अपने स्वल्पराज्यकी इच्छा करता है तो युवा क्यों नहीं करेगा ॥२०॥

स्वात्यंतसन्निकर्षणराजपुत्रास्तुरक्षयेत् ।

सद्भृत्यैश्चापितत्स्वांतं छलैर्ज्ञात्वासदास्वयं ॥

भाषार्थ—और अपने सुपुत्रभृत्योंसे उसके स्वांत (जिले) को आप जानकर और अपने बहुत निकट रखकर राजपुत्रोंकी रक्षा करे २१

सुनीतिशास्त्रकुशलान्धनुर्वेदविशारदान् ।

क्लेशसहंश्चवाग्दंडपारुष्यानुभवान्तदा २२ ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ नीतिशास्त्रमें कुशल धनुष-विद्यामें चतुर-क्लेशके सहनेवाले और वाग्दंड (कठोर वचन) इनके ज्ञाता अपने पुत्रोंको राजा करे ॥ २२ ॥

शौर्ययुद्धरतान्सर्वकलाविद्याविदो जसाः ।

सुविनीतान्प्रकुर्वीत ह्यमात्याद्यैर्नृपः सुतान् ॥

भाषार्थ—वीरता और युद्धमें रत संपूर्ण विद्याओंकी कलाके यथार्थ ज्ञाता और अच्छे विनीत (नम्र) अपने पुत्रोंको मंत्रियोंके द्वारा राजा करे ॥२३॥

सुवस्त्राद्यैर्भूषयित्वा लालयित्वा सुक्रीडनैः ।

अर्हयित्वा सनाद्यैश्च पालयित्वा सुभोजनैः ॥

भाषार्थ—अच्छे वस्त्रों आदिसे भूषित और अच्छी क्रीडाओंसे लालिला और अच्छे आसन आदिसे सत्कार और अच्छे भोजनोंसे पाल करे ॥ २४ ॥

कृत्वा तु यौवराज्याहर्न्यावराज्येभिषेचयेत् ।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विनश्यति ॥

भाषार्थ—और यौवराज्यके योग्य करिके यौवराज्यके विषे अभिषेक देदे क्योंकि जिस कुलमें राजकुमार अविनीत हैं वह कुल शीघ्र नष्ट होजाता है ॥२५॥

राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः परित्यागं हि नार्हति ।

क्लिश्यमानः स पितरं परानाश्रित्य हंति हि २६

भाषार्थ—दुष्टभी राजाका पुत्र त्याग करनेके योग्य नहीं होता और वह क्लेशको प्राप्त होकर और इतर राजाओंके आधीन होकर अपने पिताको मारदेता है ॥ २६ ॥

व्यसने संजमानं तं क्लेशयेद्यसनाश्रयैः ।

दुष्टगजमिवोद्धृतं कुर्वीत सुखबंधनं ॥ २७ ॥

भाषार्थ—जो राजपुत्र व्यसन (झूतआदि) में आसक्त होजाय तो व्यसनके अधिपतियोंसे दुःखित करे उद्धृत (उन्मत्त) दुष्टगजके समान उसका सुखसे बंधन करे अर्थात् शांति आदिके उपायसे बश करे २७

सुदुर्वृत्तास्तु दायादाहंतव्यास्ते प्रयत्नतः ।

व्याघ्रादिभिः शत्रुभिर्वालैराप्राविवृद्धये ॥

भाषार्थ—दुराचारी जो दायाद (हिस्सेदार) है उनको बड़े यत्नके साथ सिंह आदि अथवा शत्रु और छलसे अपने राज्यकी वृद्धिके अर्थ मखा दे ॥ २८ ॥

अतो न्यथा विनाशाय प्रजायाभूपते श्वते ।

तोषयेयुर्नृपं नित्यं दायादाः स्वंगुणैः परैः ॥

भाषार्थ—अन्यथा प्रजा और राजाको वे दायद नाशके हेतु होते हैं क्योंकि दायद अपने श्रेष्ठ गुणोंसे राजाको नित्य प्रसन्न करते हैं ॥ २९ ॥

अष्टाभवंत्यन्यथातेस्वभागाजीवितादपि ।
स्वसापिष्यविहीनायेह्यन्योत्पन्नानराःखलु ॥

भाषार्थ—अन्यथा वे अपने भाग और जीवनसे हीन होजाते हैं जो नर अपने सर्पिड हो और अन्यसे उत्पन्न हैं उन्हें ॥ ३० ॥

मनसापिनमंतव्यादत्ताद्याःस्वसुताइति ।
तदत्तकत्वमिच्छंतिदृष्ट्वायंधनिकंनरं ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—मनसेभी दत्त आदि अपने पुत्र हैं ऐसा न मानें जिस धनिक मनुष्यको देखकर तिसके दत्तककी इच्छा करते हैं ॥ ३१ ॥

स्वकुलोत्पन्नकन्यायाःपुत्रस्तेभ्योवरोह्यतः ।
अंगादंगात्संभवतिपुत्रबहुहितातृणां ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—उनसे अपने कुलसे उत्पन्न हुई कन्याका पुत्र श्रेष्ठ है क्योंकि पुत्रके समान मनुष्यके अंगरसे कन्या उत्पन्न होती है ॥ ३२ ॥

पिंडदानेविशेषोपुत्रदौहित्रयोस्त्वतः ।
भूप्रजापालनार्थेहिभूपोदत्ततुपालयेत् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—और जिससे पुत्र दौहित्रके पिंडदानमें विशेष नहीं है पृथ्वी और प्रजाके पालनाके अर्थ राजा दत्तकपुत्रकीभी पालना करे ॥ ३३ ॥

नृपःप्रजापालनार्थसधनश्चेन्नचान्यथा ।
परोत्पन्नेस्वपुत्रत्वंमत्वासर्वददाति ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—राजा और धनी केवल प्रजाके पालनार्थ हैं अन्यथा नहीं परसे उत्पन्नके विषे अपना पुत्रभाव मानकर उसीको सर्वस्व देता है ॥ ३४ ॥

किमाश्चर्यमतोलोकेनददातियजत्यपि ।
प्राप्यापियुवराजत्वंप्राप्नुयाद्विकृतिंनच ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—इससे अधिक क्या आश्चर्य है किन धनको लोकमें देता है और न यज्ञ करता है और युवराजपदवीको प्राप्त होकर भी जो विकारको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

स्वसंरक्तिमदानैवमातरंपितरंशुसं ।
आतरंभगिनींवापिह्यन्यान्वाराजवल्लभान् ॥

भाषार्थ—अपनी संपत्तिके मदसे माता-पिता-गुरु-भ्राता-भगिनी (बहन) और इतर राजाके वल्लभ (मंत्री) आदिका अपमान न करे ॥ ३६ ॥

महानजांस्तथाराष्ट्रेनावमन्येन्नपीडयेत् ।
प्राप्यापिमहतींवृद्धिर्वर्तेतपितुराज्ञया ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—राज्यके महाजनोको अपमान और पीडा न दे और अधिकवृद्धिको प्राप्त होकर भी पिताकी आज्ञामें वर्त्ते ॥ ३७ ॥

पुत्रस्यपितुराज्ञापिपरमंभूषणंस्मृतं ।
भार्गवेणहतामाताराधवस्तुवनंगतः ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—पिताकी आज्ञाही पुत्रका परमभूषण कहा है परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे माताको हता और रामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे वनको गये ॥ ३८ ॥

पितुस्तपोबलात्तौतुमातरंराज्यमापनुः ।
शापानुग्रहयोःशक्तोयस्तस्याज्ञागरीयसी ॥

भाषार्थ—आर पिताके तपोबलसे वे दोनों माता और राज्यको क्रमसे प्राप्त हुए जो शाप और अनुग्रहमें समर्थ हैं उसकी आज्ञाही सर्वोपरि है ॥ ३९ ॥

सोदरेषुचसर्वेषुस्वस्याधिक्यंनदर्शयेत् ।
भागार्हभ्रातृणांनष्टोह्यवमानात्सुयोधनः ॥

भाषार्थ—संपूर्ण भ्राताओंमें अपनी अधिकता न दिखावं क्योंकि भागके योग्य भ्राताओंके अपमानसे दुर्योगन नष्ट होगया ॥ ४० ॥

पितुराज्ञोच्छ्रयनेनप्राप्यापिपदमुत्तमं ।
तस्माच्छ्राभवंतीहदासवद्राजपुत्रकाः ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—पिताकी आज्ञाके अवलंबनसे उत्तम पदको प्राप्त होकरभी तिस पदसे इस संसारमें दासके समान राजाके पुत्र भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

ययाक्षेत्रयथापुत्राविश्वामित्रसुतायथा ।
पितृसेवापरस्तिष्ठेत्कायवाङ्मानसैःसदा ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—जैसे ययातिराजाके पुत्र और विश्वामित्र ऋषिके पुत्र पिताकी आज्ञाके अवलंबनसे नष्ट हुए तिससे पुत्र देहमनवाणीसे पिताकी आज्ञामें तत्पर रहें ॥ ४२ ॥

तत्कर्मनियतंकुर्याद्येनतुष्टोभवेत्पिता ।
तन्नकुर्याद्येनपितामनागपिविपीदति ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—उस कार्यको नियमसे करें जिससे पिता प्रसन्न हो और उसको न करें जिससे पिता यत्किंचित्भी दुःखित हो ॥ ४३ ॥

यस्मिन्पितुर्भवेत्प्रीतिःस्वयंतस्मिन्प्रयंचरेत्
यस्मिन्द्वेषपिताकुर्यात्स्वस्यापिद्वेष्यएवसः

भाषार्थ—जिस पुरुषमें पिताकी प्रीति हो उसमें अपनीभी प्रीति करें और जिससे पिताका द्वेष हो उसे अपनाभी द्वेष ही जाने ॥ ४४ ॥

असंमतंविरुद्धंवापितुर्नैवसमाचरेत् ।
चारसूचकदोषेणयदित्यादन्यथापिता ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—पिताके असंमत और विरुद्धका आचरण न करें यदि दूत और सूचक (चुगल) के दोषसे पिताकी विपरीत बुद्धि होजाय ॥ ४५ ॥

प्रकृत्यनुमतंकृत्वातमेकांतेप्रबोधयेत् ।
अन्यथासूचकान्त्रित्यमहदंडेनदंडयेत् ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—तौ प्रजाके अनुमत करिके उसे एकांतमें बोधित करें (समझावें) यदि पिता न माने तौ सूचककी सहायता लेकर महादंडसे शिक्षित करें ॥ ४६ ॥

प्रकृतीनांचकपटःस्वातंत्र्यविद्यात्सदैवहि ।
प्रातर्नत्वाप्रतिदिनंपितरंमातरं गुरुं ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—कपट कर प्रकृतियोंके स्वभावको सदा जानें और पिता-माता-गुरु-इनको प्रतिदिन प्रातःकाल नमस्कार करके ॥ ४७ ॥

राजानंस्वकृतंयद्यन्निवेद्यानुदिनंततः ।
एवंगृहविरोधेनराजपुत्रोवसेदृहे ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—तिसके अनंतर राजाकी अपना कृत्य प्रतिदिन निवेदन करके इस प्रकार अपने घरके अवरोधसे राजाका पुत्र घरमें वसे ४८ विद्याकर्मणाशीलैःप्रजाःसंरंजयन्मुदा ।
त्यागीचसत्त्वसंपन्नःसर्वान्कुर्याद्विशेषक ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—विद्या-कर्म-शीलसे आनंद होकर प्रजाको प्रसन्न रखता हुआ त्यागी और सत्त्वगुणी हो कर सबको अपने वशमें करे ४९ शनैःशनैःप्रवर्धेतशुक्लपक्षमृगांकवत् ।
एवंवृत्तोरारजपुत्रोराज्यं प्राप्याप्यकंटकं ५०

भाषार्थ—शनैः शशुक्लपक्षके चंद्रमा समान वृद्धिको प्राप्त हो इस प्रकार आचरणशील राजपुत्र निष्कंटक राज्यको प्राप्त हो करमी ॥ ५० ॥

सहायवान्सहामात्यश्चिरंमुंकेवसुंधरां ।
समासतःकार्यमुक्तंयुवराजस्ययद्वितं ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—सहाय और मंत्रियों सहित युवराज चिर कालतक पृथ्वीको भोगता है यह

संक्षेपसे युवराजका हितकारी कार्य वर्णन किया ॥ ५१ ॥

समासादुच्यतेकृत्यममात्यादेश्वलक्षणं ।
मृदुगुरुप्रमाणत्ववर्णशब्दादिभिःसमं ५२॥

भाषार्थ—मंत्री आदिकोंके कार्य और लक्षण संक्षेपसे वर्णन करते हैं—कोमलता-गुरुता-प्रमाण-वर्ण-शब्दादिकों सहित ॥ ५२ ॥

परीक्षकैर्द्रावयित्वायथास्वर्णपरीक्ष्यते ।
कर्मणासहवासेनगुणैःशीलकुलादिभिः ५३

भाषार्थ—जैसे परीक्षकोंसे तपायकर सुवर्ण-की परीक्षा कीजाती है तिसी प्रकार कर्मसे सहवाससे गुण-शील-और-कुलादिकसे भृत्यकीभी परीक्षा करे ॥ ५३

भृत्यंपरीक्षयेन्नित्यंविश्वास्यंविश्वसेत्तदा ।
नैवजातिर्नचकुलंकेवललक्षयेदपि ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—भृत्यकी नित्य परीक्षा करे और तभी विश्वासके योग्यका विश्वास करे और केवल जाति और कुलहीको न देखे ॥ ५४ ॥

कर्मशीलगुणाःपूज्यास्तथाजातिकुलेनहि ।
नजात्यानकुलेनैवश्रेष्ठत्वंप्रतिपद्यते ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—जैसे कर्म-शील-गुण पूज्य हैं तिस प्रकार जाति-कुल-पूज्य नहीं केवल जाति और कुलसे श्रेष्ठताको प्राप्त नहीं होता ॥ ५५

विवाहेभोजनेनित्यंकुलजातिविवेचनं ।
सत्यवान्गुणसंपन्नस्तथाभिजनवान्धनी ५६

भाषार्थ—विवाह और भोजनमें—नित्य कुल और जातिका विवेक करे सत्यवान्-गुणी और कुटुंबी और धनी ॥ ५६ ॥

सुकुलश्चसुशीलश्चसुकर्माचनिरालसः ।
यथाकरोत्यात्मकार्यंस्वामीकार्यंतेतोधिकं ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठकुलसे उत्पन्न सुशील उत्तम कर्मका कर्त्ता और निरालस होकर जैसा अपना कार्य करे तिससे अधिक स्वामीका करे ॥ ५७ ॥

चतुर्गुणेनयत्नेनकायवाङ्मानसेनच ।
भृत्याचतुष्टोमृदुवाक्कार्यदक्षःशुचिर्दृढः ॥ ५८

भाषार्थ—अपने कार्यकी अपेक्षा चतुर्गुण यत्न और देह वाणी मनसे स्वामीके कार्यको करे भृति (नोकरी) से संतुष्ट रहे कोमलवाणी और कार्यमें चतुर और शुद्ध और दृढ रहे ॥ ५८ ॥

परोपकरणेदक्षोह्यपकारपराङ्मुखः ।
स्वाम्यागस्कारिणंपुत्रंपितरंचापिदर्शकः ॥

भाषार्थ—परके कार्यमें चतुर और परके अपकारसे निवृत्त रहे और अपने स्वामीके अपराधी पुत्र और पिता आदिका द्रष्टा अर्थात् देखता रहे ॥ ५९ ॥

अन्यायगामिनिपतौह्यतद्रूपःसुबोधकः ।
नाक्षेप्तातद्विरंकांचित्तन्यूनस्याप्रकाशकः ॥

भाषार्थ—अन्याय करते स्वामीको बोधन करे (समझावे) और अन्यायमें स्वयं प्रवृत्त न हो और स्वामीकी वाणीमें शंका न करे और स्वामीकी न्यूनताभी प्रकाशित न करे ॥ ६० ॥

अदीर्घसूत्रःसत्कार्येह्यसत्कार्येचिरक्रियः ।
नतद्भार्यापुत्रमितच्छिद्रदर्शकदाचन ६१ ॥

भाषार्थ—उत्तम कार्यको शीघ्र करे और असत् (बुरे) कार्यको विलंबसे करे और स्वामी-स्त्री-पुत्र-मित्र-इनके छिद्रको कभी न देखे ॥ ६१ ॥

तद्ब्रह्मिस्तदीयेषुभार्यापुत्रादिवंधुषु ।
नश्चाघतेस्पर्धतेननाभ्यसूयतिर्निदति ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—स्वामीके संबंधी स्त्री-पुत्र-बंध आदिकोंमें स्वामीके समान बुद्धि रखै श्लाघा (बड़ाई) न करे और न स्पर्धा (तिरस्कार) की इच्छा करे और उनकी बड़ाई देखकर दुःखित न होय और न निंदा करे ॥ ६२ ॥

नेच्छत्यन्याधिकारं हि निःस्पृहो मोदते सदा ।
तदत्तवस्त्रभूषादिधारकस्तत्पुरोनिशं ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—अन्यके अधिकारकी इच्छा न करे निःस्पृह (इच्छारहित) हुआ सदा प्रसन्न रहें और स्वामीके दिये हुए वस्त्र-भूषण-आदिको स्वामीके आगे रात्रिदिन धारण करे ॥ ६३ ॥

भृतितुल्यव्ययीदांतो दयालुः शूर एव हि ।
तदकार्यस्य रहसि सूचको भृतको वरः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—अपनी भृति (नोकरी) के समान व्यय (खर्च) करे और दांत (चतुर) दयालु और शूरवीर और स्वामीके अन्यथा कार्यको एकांतमें जो सूचन करे वह भृत्य श्रेष्ठ होता है ॥ ६४ ॥

विपरीतगुणैरेभिर्भृतकोर्निष्ठ उच्यते ।
ये भृत्या हीन भृतिकाये दंडेन प्रकर्षिताः ६५

भाषार्थ—जो पूर्वोक्त इनगुणोंसे हीनहो वह भृत्य निंदायोग्य कहाता है जो भृत्य हीन भृतिक (नोकरी रहित) है और दंडसे दुःखित है ॥ ६५ ॥

शठश्च कातरालुब्धाः समक्षप्रियवादिनः ।
मत्ताव्यसनिनश्चार्ता उत्कोचेष्टाश्च देविनः ॥

भाषार्थ—और जो शठ और भीरु लोभी और प्रत्यक्षमें प्रियवादी है व्यसनी (मदिरापान आदिमें प्रवृत्त) और दुःखी है उत्कोच (धूस) लेनेमें इष्ट है और देवी द्यूतमें आसक्त है ॥ ६६ ॥

नास्तिकादां भिकाश्चैव सत्यवाचोऽप्यसूयकाः
ये चापमानिता ये सद्वाक्यैर्मर्मणि भेदिताः ॥

भाषार्थ—जो भृत्य नास्तिक दंभी और सत्यबोलनेमें निंदा प्रकट करते हैं और जो अपमानको प्राप्त हुए हैं, और जो कुवाक्योंसे मर्ममें विंधे हैं ॥ ६७ ॥

चंडाः साहसिका धर्महीनानैतं सुसेवकाः ।
संक्षेपतस्तु कथितं स दृष्ट्यलक्षणं ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—चंड (अतिक्रोधी) साहसिक (अविचारसे कार्यकारी) धर्महीन ऐसे भृत्य अच्छे नहीं होते संक्षेपसे उत्तम और अधम भृत्योंके लक्षण वर्णन किये ॥ ६८ ॥

समासतः पुरोधादिलक्षणं यत्तदुच्यते ।
पुरोधाचप्रतिनिधिः प्रधानसचिवस्तथा ॥ ६९ ॥
मंतीचप्राड्विवाकश्च पंडितश्च सुमंत्रकः ।
अमात्यो दूत इत्येताराज्ञः प्रकृतयो दश ॥ ७० ॥

भाषार्थ—संक्षेपसे पुरोहित आदिकोंके जो लक्षण होते हैं सो कहते हैं पुरोहित प्रतिनिधि (कायमसुकाम) प्रधानमंत्री-मंत्रि-प्राड्विवाक (वकील) पंडित-श्रेष्ठमंत्री-अमात्य-दूत-ये दश राजाकी प्रकृति होती हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

दशमांशाधिकाः पूर्वदूतांताः क्रमशः स्मृताः ।
अष्टप्रकृतिभिर्भुक्तो नृपः कैश्चित् स्मृतः सदा ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त पुरोहित आदि और दूत-तक दशांश अधिक मासिक आदिके भागी क्रमशः होने कहे हैं और कोई ऋषि आठ प्रकृतियोंसे युक्त राजाको वर्णन करते हैं ॥ ७१ ॥

सुमंत्रः पंडितो मंत्री प्रधानः सचिवस्तथा ।
अमात्यप्राड्विवाकश्च तथा प्रतिनिधिः स्मृतः

भाषार्थ—सुमंत्र-पंडित-मंत्री-प्रधान स-
चिव-अमात्य-प्राड्विवाक-प्रतिनिधि ये प्र-
कृति हैं ॥ ७२ ॥

एताभृतिसमास्त्वष्टौराज्ञःप्रकृतयःसदा ।
इंगिताकारतत्त्वज्ञोदूतस्तदनुगःस्मृतः ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—समान हैं मासिक जिनका ऐसे
पूर्वोक्त सुमंत्र आदि प्रकृति कहें हैं जो
चेष्टा और आकृतिके तत्त्वको जाने वह
राजाका अनुयायी दूत होता है ॥ ७३ ॥

पुरोधाःप्रथमंश्रेष्ठःसर्वेभ्योराजराष्ट्रभृत् ।
तदनुस्यात्प्रतिनिधिःप्रधानस्तदनंतरं ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—सबसे श्रेष्ठ और प्रथम और सं-
पूर्ण देशका पालनकर्त्ता पुरोहित होता है
और पुरोहितका अनुयायी प्रतिनिधि और
प्रतिनिधिके अनंतर प्रधान होता है ॥ ७४ ॥

सचिवस्तुततःप्रोक्तोमंत्रीतदनुचोच्यते ।
प्राड्विवाकस्ततःप्रोक्तःपंडितस्तदनंतरं ॥

भाषार्थ—तिसके अनंतर सचिव-और
तिसके अनंतर मंत्री और तिसके अनंतर
प्राड्विवाक और तिसके अनंतर पंडित होता
है ॥ ७५ ॥

सुमंत्रस्तुततःख्यातोह्यमात्यस्तुततः परं ।
दूतस्ततःक्रमादेतेष्वंशेष्वष्टायागुणाः ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—तिसके अनंतर सुमंत्र और ति-
सके अनंतर अमात्य और तिसके अनंतर
दूत ये पूर्वोक्त क्रमसे गुणोंके अनुसार श्रेष्ठ
होते हैं ॥ ७६ ॥

मंत्रानुष्ठानसंपन्नस्त्रैविद्यःकर्मतत्परः ।
जितेंद्रियोजितक्रोधोलोभमोहविवर्जितः ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—मंत्र और अनुष्ठानमें संपन्न
कुशल वेदत्रयीके ज्ञाता-कर्ममें तत्पर-

जितेंद्रिय-जितक्रोध-लोभ और मोह र-
हित ॥ ७७ ॥

पडंगविस्तांगधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित् ।
यत्कोपभीत्याराजापिधर्मनीतिरतोभवेत् ॥

भाषार्थ—वेदके व्याकरण आदि छः अंगों-
का ज्ञाता और धनुर्वेद्याका-और धर्मका
ज्ञाता हो और जिसके क्रोधके भयसे रा-
जाभी धर्म और नीतिमें तत्पर होजाय ॥ ७८ ॥

नीतिशस्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तुपुरोहितः ।
सैवाचार्यःपुरोधायःशापानुग्रहयोःक्षमः ॥

भाषार्थ—नीति-शस्त्र-और अस्त्रके समू-
हमें कुशलहो वही पुरोहित होता है और जो
पुरोहित होता है वही आचार्य होता है और
वह पुरोहित ऐसा होना चाहिये जो शाप और
अनुग्रह (दयाभाव) में समर्थ हो ॥ ७९ ॥

विनाप्रकृतिसन्मंत्राद्राज्यनाशोभवेन्मम ।
निरोधनंभवेदेवंराज्ञस्तस्युःसुमंत्रिणः ८० ॥

भाषार्थ—प्रजाकी संमतिके विना राज्यका
नाश होता है और भेरा निरोध होता है इस
प्रकारके अवसर पर संमतिके जो दाता हैं
वे राजाके सुमंत्री होते हैं ॥ ८० ॥

नविभेतिनृपोयेभ्यस्तैःकिंस्याद्राज्यवर्धनं ।
यथालंकारवस्त्राद्यैःस्त्रियोभूष्यास्तथाहिते ॥

भाषार्थ—जिन मंत्रियोंसे राजा भय नहि
करता उनसे राज्यकी क्या वृद्धि होती है
इससे जिस प्रकार स्त्रियोंको वस्त्र-भूषण
आदिसे भूषित करते हैं-इसी प्रकार मंत्रियों
कोभी राजा भूषित करे ॥ ८१ ॥

राज्यंप्रजावलंकोशःसुनृपत्वंनवर्धितं ।
यन्मंत्रतोरीनाशस्तैर्मंत्रिभिःकिंप्रयोजनं ॥

भाषार्थ—राज्य-प्रजा-सेना-कोश (खजा-
ना) राजाकी उत्तमता-शत्रुनाश जिन मंत्रि-

योंकी संमतिसे पूर्वोक्त राज्य आदि वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए ऐसे मंत्रियोंसे क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछभी नहीं ॥ ८२ ॥

कार्याकार्यप्रविज्ञातास्मृतःप्रतिनिधिस्तु सः ।
सर्वदशीप्रधानस्तु सेनावित्सचिवस्तथा ॥

भाषार्थ—कार्य और अकार्यका प्रतिज्ञाता जो हो उसे प्रतिनिधि कहते हैं राजाके संपूर्ण कार्योंका जो द्रष्टा उसे प्रधान कहते हैं और सेनाका जो ज्ञाता उसे सचिव कहते हैं

मंत्रीतुनीतिकुशलःपंडितो धर्मतत्त्ववित् ।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तु प्राड्विवाकः स्मृतः सदा ॥

भाषार्थ—नीतिमें जो कुशल उसे मंत्री और धर्मतत्त्वका जो ज्ञाता उसे पंडित और लोक और शास्त्रकी नीतिका जो ज्ञाता उसे प्राड्विवाक कहते हैं ॥ ८४ ॥

देशकालप्रविज्ञाताह्यमात्यइतिकथ्यते ।
आयव्ययप्रविज्ञातासुमंत्रः सचकीर्तितः ॥

भाषार्थ—देशकालके ज्ञाताको अमात्य कहते हैं—आय (आमदनी) व्यय (खर्च) का जो ज्ञाता उसे सुमंत्र कहते हैं ॥ ८५ ॥

इंगिताकारचेष्टज्ञः स्मृतिमान्देशकालवित् ।
पाङ्गुण्यमंत्रिवद्वाग्मीवीतभीर्दूतइष्यते ॥

भाषार्थ—इंगित-नेत्रसे इच्छाका प्रकाश आकार और चेष्टाका ज्ञाता और स्मृतिमान् (धारणाका अधिकारी) और देशकालका ज्ञाता छः हैं गुण जिसमें ऐसे मंत्रका वक्ता वाग्मी यथार्थ धीरतासे वक्ता और भयरहित इस प्रकारके लक्षण जिसमें हों उसे दूत कहते हैं ॥ ८६ ॥

अदितंचापियत्कार्यसद्यःकर्तुंयदौचितं ।
अकर्तुंयद्विदितमपिराज्ञःप्रतिनिधिःसदा ८७ ॥

भाषार्थ—राजाके अहितकार्य और तत्काल कर्तव्यकार्य और अकर्तव्य कार्य और हितकारी कार्यको प्रतिनिधि सर्व कालमें जानें ॥ ८७ ॥

बोधयेत्कारयेत्कुर्यान्नकुर्यान्नप्रबोधयेत् ।
सत्यंवायदिवासत्यंकार्यजातंचयाकिल ८८ ॥

भाषार्थ—और जो सत्यकार्यका समूह है उसे बोधन करे अथवा किसीसे करवादे और जो असत्य कार्योंका समूह है उसे न तो आप करे और न किसीको विदित करे ८८ ॥

सर्वेषां राजकृत्येषु प्रधानस्तद्विचिंतयेत् ।
गजानांचतथाश्वानां रथानां पदगामिनां ८९ ॥

भाषार्थ—संपूर्ण राजकार्योंमें सत्य और असत्यका प्रधान चिंतन करे और—हस्ति अश्व-रथ और पदाति इनकीभी परीक्षा प्रधानही करे ॥

सदृढानांतयोष्ठाणां वृषाणांसद्य एवाहि ।
वाद्यभाषासु संकेतव्यूहाभ्यसनशालिनां ९० ॥

भाषार्थ—और दृढ उष्ट्र (ऊँट) और वृष (बैल) वाद्य (बाजे) के संकेत और व्यूह (कसरत) के अभ्यासियोंके आचरणोंको देखे प्राक्प्रत्यग्गामिनां राज्यचिन्हशस्त्रास्त्रधारिणां ।

परिचारगणानां हि मध्यमोत्तमकर्मणां ९१ ॥

भाषार्थ—पूर्व और पश्चिमके गमनकर्ता और मध्यम उत्तम हैं कर्म जिनका ऐसे जो राज्यके चिह्न शस्त्र अस्त्रके धारी परिचारक (सेवक) उनके आचरणकोभी देखें ॥ ९१ ॥

अस्त्राणामस्त्रपातीनांसद्यस्त्वर्तुरगीगणः ।
कार्यक्षमश्चप्राचीनः साद्यस्कः कतिविद्यते ॥

भाषार्थ—अस्त्र और शस्त्रधारी इनकी नवीनता और सवारोंका समूह कितना कार्य-

कारी है और कितना प्राचीन है और कितना नवीन है इसकी चिंता भी प्रधान ही रखें ९२
कार्यासमर्थः कृत्यस्ति शस्त्रगोलाग्रिचूर्णयुक्
सांग्राभिकश्च कृत्यस्ति संभारस्तान्विचिंत्य च

भाषार्थ—और कितना कार्यकारि नहीं है और दारु और गोले के संयुक्त शस्त्र कितने हैं और संग्राम के योग्य संभार कितना है इसको चिंतन करके ॥ ९३ ॥

सचिवश्चापितत्कार्यराज्ञे सम्यङ्निवेदयेत् ।
सामदामभेदश्च दंडः केषु कदा कथं ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—और सचिव भी पूर्वोक्त कार्यको राजा के प्रति भली प्रकार निवेदन करे और साम दाम भेद दंड किनको उचित है और किस कालमें देना होगा यह भी मंत्री राजाको निवेदन करे ॥ ९४ ॥

कर्तव्यः किं फलं तेभ्यो बहुमध्यं तथाल्पकं ।
एतत्संचिंत्य निश्चित्य मंत्री सर्वं निवेदयेत् ॥

भाषार्थ—और पूर्वोक्त दंडों से क्या उत्तम मध्यम अल्प फल होगा यह संपूर्ण निश्चय और चिंता करके मंत्री निवेदन करे ॥ ९५ ॥

साक्षिभिरिच्छितैर्भोगैश्छलभूतैश्च मानुषान् ।
स्वानुत्पादितसंग्राहव्यवहारान्विचिंत्य च ॥

भाषार्थ—साक्षियों ने लिखे जो भोग उनसे और छल के बल से किये भोगों से अपने मनुष्यों को ऐसे देखें कि आप उत्पन्न करके ये व्यवहारी हैं अर्थात् अनर्थ से नहीं ॥ ९६ ॥

दिव्यसंसाधनान्वापिकेषु किं साधनं परं ।
युक्तिप्रत्यक्षानुमानोपमानैर्लोकशास्त्रतः ॥

भाषार्थ—दिव्य साधन के योग्यको और किसमें कौन साधन है इनको प्रत्यक्ष अनुमान उपमान लोक और शास्त्र से मंत्री जाने ॥ ९७ ॥

बहुसम्मतसंसिद्धान्विनिश्चित्य सभास्थितः ।
ससभ्यः प्राड्विवाकस्तु नृपसंबोधयेत्सदा ॥

भाषार्थ—अनेक संमतियों के सिद्ध कार्यों को सभासदों के सहित प्राड्विवाक (वकील) सभामें स्थित होकर राजाको निवेदन करे ९८
वर्तमानाश्च प्राचीनाधर्माः केलोकसंश्रिताः ।
शास्त्रेषु केसमुद्दिष्टा वरुध्यंते च केधुना ९९ ॥

लोकशास्त्रविरुद्धाः केपंडितस्तान्विचिंत्य च ।
नृपसंबोधयेत्तैश्च परत्रेह सुखप्रदैः ॥ १०० ॥

भाषार्थ—वर्तमान और प्राचीन धर्म लोकमें कौनसे हैं और शास्त्रमें कौनसे कहे हैं और अब कौनसे धर्म शास्त्र के विरुद्ध हैं और लोक और शास्त्र दोनों से कौनसे धर्म विरुद्ध हैं पंडित विचार कर इस लोक और परलोकमें सुखदायक उन धर्मों को राजा के प्रति बोधित करे (बतावै) ॥ ९९ ॥ १०० ॥

इयञ्च संचिंत्य वत्सरेस्मिन् तृणादिकं ।
व्ययीभूतमियञ्चैव शेषं स्थावरजंगमं ॥ १ ॥

इयदस्तीति वैराज्ञे सुमंत्रो विनिवेदयेत् ।
पुराणि च कति ग्रामा अरण्यानि च संति हि ॥ २ ॥

भाषार्थ—इस वर्षमें इतना तृण आदि द्रव्य संचय हुआ है और इतना व्यय (खर्च) हुआ है और इतना शेष (बाकी) है और इतना स्थावर (वृक्षादि) और इतना जंगम (पशु-आदि) है यह संपूर्ण सुमंत्र राजा के प्रति निवेदन करे—और कितने पुर हैं और कितने ग्राम हैं और कितने अरण्य (वन) हैं यह अमात्य राजा के प्रति निवेदन करे ॥ १ ॥ ॥ २ ॥

कार्षिता कार्तिभूः केन प्राप्तो भागस्ततः कति ।
भागशेषं स्थितं तस्मिन् कृत्य कृष्टाच भूमिका ॥

भाषार्थ—किसने कितनी भूमि जोती है और कितना भाग उससे मिला और कितना शेष रहा और बिना जोती भूमि कितनी है यह भी अमात्यही राजाको निवेदन करें ॥३॥
भागद्रव्यं वत्सरेस्मिञ्छुल्लकंदं डादिजं कति ॥
अकृष्टपच्यं कति च कति चारण्यसंभवं ॥४॥

भाषार्थ—इस वर्ष कितना द्रव्य भागका हुआ और कितना मुलूक (महसूल) और कितना द्रव्य दंडका हुआ और बिना जोते कितना अन्न हुआ और कितना अन्न वनमें उत्पन्न हुआ यह भी अमात्य निवेदन करें ॥४॥
कति चारु संजातं निधि प्राप्तं कति च ।
अस्वामिकं कति प्राप्तं नाष्टिकं तस्कराहतं ॥५॥

भाषार्थ—आकर (खान) से कितना द्रव्य उत्पन्न हुआ और निधि खजानेमें कितना है और अस्वामिक (नावारसी) कितना मिला और चोरोंसे कितना नष्ट हुआ यह भी अमात्यही निवेदन करें ॥ ५ ॥
संचितं तु विनिश्चित्या मात्पोराज्ञे निवेदयेत् ॥
समासाल्लक्षणं कृत्यं प्रधानं दशकस्य च ॥६॥

भाषार्थ—और संचित द्रव्यका निश्चय करिके अमात्य राजाके प्रति निवेदन करें और पूर्वोक्त दश प्रधानोंका लक्षण और कृत्य संक्षेपसे कहा ॥ ६ ॥

उक्तं तल्लिखितैः सर्वविद्यात्तदनुदर्शिभिः ।
परिवर्त्य त्रुपो ह्येतान्युज्यादन्योन्यकर्मणि ॥

भाषार्थ—प्रधान आदिके लेखसे उनके लेखको अनुदर्शियों (देखनेवालों) से जाने और राजा पूर्वोक्त प्रधान आदिकोंको बदलता हुआ परस्परके कर्ममें नियुक्त करें अर्थात् मंत्रीके स्थानपर अमात्य और अमात्यकी पदवीपर मंत्री इत्यादि ॥ ७ ॥

न कुर्यात्स्वाधिकवलात्कदापि ह्यधिकारिणः
परस्परं समवलाः कार्याः प्रकृतयो दश ॥८॥

भाषार्थ—अपनेसे प्रबल अधिकारियोंको कदाचित् न करें पूर्वोक्त दश प्रकृति समवल (एकसे) करने ॥ ८ ॥

एकस्मिन्नाधिकारे तु पुरुषाणां तयसंदा ।
नियुंजीत प्राज्ञतमं मुख्यमेकं तु ते पुत्रैः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—एक २ अधिकारके तीन २ साक्षियोंके निमित्त पुरुष नियुक्त करें और उनमें एक अत्यंत बुद्धिमानको नियुक्त करें ॥ ९ ॥

द्वौ दर्शको तु तत्कार्ये हायनेस्तन्निवर्तनं ।
तिभिर्वापंच भिर्वापि सप्तभिर्दशभिश्च वा ॥

भाषार्थ—और उसके कार्यके दो द्रष्टा हों और तीन-पांच-सात-अथवा दश वर्षमें उनकी निवृत्ति करें ॥ १० ॥

दृष्टा तत्कार्यको शल्येतथा तं परिवर्तयेत् ।
नाधिकारं चिरं दद्याद्यस्मै कस्मै सदानृपः ॥

भाषार्थ—तिनको कार्य और कुशलता जैसी देखें तैसेही पदवीपर बदले और जिस किसीको चिरकाल तक राजा अधिकार दे ॥ ११ ॥

अधिकारे क्षमं दृष्ट्वा ह्यधिकारे नियोजयेत् ।
अधिकारमदं पीत्वा को न मुह्यत्पुनश्चिरं ॥१२॥

भाषार्थ—अधिकारके योग्य देखकर अधिकारमें नियुक्त करें क्योंकि अधिकाररूपी मदको चिरकालतक पीकर कौन मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

अतः कार्यक्षमं दृष्ट्वा कार्येन्येतं नियोजयेत् ।
तत्कार्ये कुशलं चान्यंतं तदनुगतं खलु ॥१३॥

भाषार्थ—इससे कार्यके योग्य देखकर अन्यकार्यमें तिसे नियुक्त करै और तिसके कार्यपर उसके अनुयायी अन्यको नियुक्त करै ॥ १३ ॥

नियोजयेद्वर्तनेतुतदभावेतथापरं ।

तद्रूपोयदितत्पुत्रस्तत्कार्येननियोजयेत् ॥

भाषार्थ—उसके अभावमें वर्तन (लोटने) में अन्यको नियुक्त करै—यदि उन गुणोंसे युक्त उसका पुत्र होय तो उसके कार्यमें उसे नियुक्त करै ॥ १४ ॥

यथायथाश्रेष्ठपदेहाधिकारीयदाभवेत् ।

अनुक्रमेणसंयोज्योह्यंतैतंप्रकृतिर्नयेत् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जैसे २ अधिकारी हों तैसे २ श्रेष्ठ पदपर नियुक्त करै इस प्रकार दश प्रकृतियोंको पदवीपर अंतसमय नियुक्त करै ॥ १५ ॥

अधिकारबलं दृष्ट्वा योजयेद्दर्शकान्वहून् ।

अधिकारिणमेकंवायोजयेद्दर्शकंविना ॥ १६ ॥

भाषार्थ—अधिकारके बलको देखकर बहुतसे दृष्टाओंको नियुक्त करै अथवा दृष्टाके विना एक अधिकारीको नियुक्त करै ॥ १६ ॥

येचान्येकर्मसचिवास्तां सर्वान्विनियोजयेत्
गजाश्वरथपादातपशूष्टृमृगपक्षिणां ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जो इतर कर्मोंके सचिव हैं उन संपूर्णोंको नियुक्त करै हस्ति—अश्व—रथ—पदाति—पशु—ऊंट—मृग—पक्षियोंके पृथक् २ अधिपति नियुक्त करै ॥ १७ ॥

सुवर्णरत्नरजतवस्त्राणामधिपान्पृथक् ।

वितानाद्यधिपंधान्याधिपंपाकाधिपंतथां ॥

भाषार्थ—सुवर्ण—रत्न—चांदी—वस्तु—इनके अधिपति वितान (तंबू) आदि कोंके अधिप-

ति अन्न और पाक (रसोई) के अधिपति पृथक् २ नियुक्त करै ॥ १८ ॥

आरामाधिपतिंचैवसौधरोहाधिपंपृथक् ।

संभारपदेवतुष्टिपतिंदानपतिसदा ॥ १९ ॥

भाषार्थ—आराम (वगीचे) का अधिपति मंदिरोंका अधिपति संभारोंका अधिपति दे-वताओंके स्थानोंका अधिपति और दाना-ध्यक्ष इनको पृथक् २ नियुक्त करै ॥ १९ ॥

साहसाधिपतिंचैवग्रामनेतारमेवच ।

भागहारं वृतीयंतुलेखकंचचतुर्थकं ॥ २० ॥

भाषार्थ—साहस (दंड) का अधिपति ग्रामका नेता (चौधरी) तीसरा भागका लेनेवाला और चौथा लेखक—इनको भी नियत करै २०

शुल्कग्राहं पंचमंचप्रतिहारंतथैवच ।

षट्कमेतन्नियोक्तव्यं ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ २१ ॥

भाषार्थ—पांचमां शुल्क (मोल) का ग्राहक और छठा प्रतिहार इन पूर्वोक्त छःओंको ग्राम २ और पुर २ में नियुक्त करै ॥ २१ ॥

तपस्विनादानशोलाः श्रुतिस्मृतिविशारदाः
पौराणिकाः शास्त्रविदोदैवज्ञामांतिकाश्चये ।

भाषार्थ—तपस्वी—दाता—श्रुति (वेद) स्मृ-तिमें चतुर पुराणोंके ज्ञाता शास्त्रोंके ज्ञाता ज्योतिषी मंत्रोंके जो ज्ञाता हैं ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविदः कर्मकांडज्ञास्तांत्रिकाश्चये ।

येचान्येगुणिनः श्रेष्ठाबुद्धिमंतोजितेंद्रियाः ॥

भाषार्थ—वैद्य—कर्मकांडके ज्ञाता तंत्रके ज्ञाता और गुणवान् हैं श्रेष्ठ हैं और बुद्धि-मान् जितेंद्रिय हैं ॥ २३ ॥

तान्सर्वान्पोषयेद्भृत्यांदानैर्मनैः सुपूजितान्
हीयतेचान्यथाराजाह्यकीर्तिंचापि विंदति ॥

भाषार्थ—तिन तपस्वी आदिकोंको भूति (नौकरी) से दान सत्कारसे पूजित करके पोषण करै यदि पोषण न करै तो राजदानिको और कुकीर्तिको प्राप्त हो ॥२४॥

बहुसाध्यानिकार्याणि तेषामप्यधिपांस्तथा ।
तत्तत्कार्येषु कुशलं ज्ञात्वा तांस्तु नियोजयेत् ।

भाषार्थ—जो कार्य बहुतसे मनुष्योंसे हो उनकेभी अधिपति नर कार्योंमें कुशल जानकर नियुक्त करै ॥२५॥

अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् ।

अयाग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ।

भाषार्थ—मंत्रके बिना अक्षर नहीं और औषधिके बिना मूलनहीं और अयोग्य पुरुष नहीं परंतु योजन करनेद्वारा तहां दुर्लभ है ॥२६॥

प्रभद्रादिजातिभेदं गजानां च चिकित्सितम् ।
शिक्षां व्याधिपोषणं च तालुजिह्वानखैर्गुणान् ।

भाषार्थ—प्रभद्र आदि हाथियोंकी जातियोंके भेद और हाथियोंके चिकित्सक-शिक्षा-रोग-पोषण-तालु-जिह्वा-नख-इनके गुण तिनका जो ज्ञाता ॥२७॥

आरोहणं गतिं वेत्ति स योज्यो गजरक्षणे ।

तथा विधाधोरणस्तु हस्तीहृदयहारकः ॥

भाषार्थ—चढ़ना-गमन-जो जानै उस मनुष्यको गजांकी रक्षामें नियुक्त करै और बैसेही आधोरण (पीलवान्) को नियुक्त करै जो हाथीके हृदयको वश करले ॥ २८ ॥

अश्वानां हृदयं वेत्ति जातिवर्णभ्रमैर्गुणान् ।

गतिं शिक्षां चिकित्सां च सत्त्वं सारं रजं तथा ॥

भाषार्थ—जो अश्वोंके हृदयको और जाति वर्ण-गमनसे गुणोंको और गति-शिक्षा-चिकित्सा-बल-दृढता-और रोग इनको जानै ॥ २९ ॥

हिताहितं पोषणं च मानं यानंदतो वयः ।

शूरश्च व्यूहविप्राज्ञः कार्योश्चाधिपतिश्च सः ॥

भाषार्थ—हित और अहित-पोषण-मान-प्रमाण यान-गाति-दंत-अवस्था इनको जो जानै ऐसा शूरवीर व्यूहका ज्ञाता विद्वान् अश्वोंका अधिपति नियुक्त करना ॥३०॥

एभिर्गुणैश्च संयुक्तो धुर्यान्धुग्यांश्च वेत्ति यः ।

रथस्य सारं गमनं भ्रमणं परिवर्तनम् ॥३१॥

भाषार्थ—इन पूर्वोक्तगुणोंसे संयुक्त धुर्य अर्थात् धुरके योग्य-युग्य-अर्थात् यानके वहनेको समर्थ अश्वोंका ज्ञाता और रथकी सारता और गमन और भ्रमण और परिवर्तन (लौटाना) इनको जो यथार्थ जानै ऐसा सारथी नियुक्त करै ॥३१॥

समापतत्सु शस्त्रास्त्रलक्ष्यसंधाननाशकः ।

रथगत्यारथहयहयसंयोगशुसिचित् ॥३२॥

भाषार्थ—योद्धाओंके संमुख शस्त्रऔर अस्त्रोंके लक्ष्यके संधानको जो नाश करै और रथकी गति और रथ-अश्व-और अश्वोंका मेल और रक्षा इनको जानै ॥३२॥

सादिनश्च तथा कार्याः शूराव्यूहविशारदाः ।

वाजिगतिविदः प्राज्ञाः शस्त्रास्त्रैर्युद्धकोविदाः ।

भाषार्थ—और सादि (असवारभी) ऐसे करने जो शूर व्यूह (कवायद) में चतुर घोड़ोंकी गतिका वेत्ता-विद्वान् शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्धमें कुशल हो ॥ ३३ ॥

चाक्रैरेतरे चित्तं वल्गीतकं धौरिति माप्नुतं ।

तुरं मंदं च कुटिलं सर्पणं परिवर्तनम् ॥ ३४ ॥

एकादशास्कांदितं च गतीरश्वस्य वेत्ति यः ।

यथा बलं यथर्तुं च शिक्षयेत्स च शिक्षकः ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—चक्रके समान गति-रेचित गति-मधुर गति-धौरित गति-आप्नुत गति-तुर (शी-

प्रगति) मंदगति—कुटिलगति—सर्पणगति—
परिवर्तनगति—आस्कंदितगति—इन पूर्वोक्त
एकादशगतियोंको जो जानै और अश्वके
बल और ऋतुके अनुसार अश्वको शिक्षादे
ऐसे मनुष्यको शिक्षक नियुक्त करें ॥ ३४ ॥ ३५
वाजिसेवासुकुशलः पल्याणादिनियोगवित् ।
दृढांगश्च तथा शूरः सकार्यो वाजिसेवकः ॥ ३६

भाषार्थ—घोड़ोंकी सेवामें कुशल—पल्याण
(चारजामा वगैरह) की शिक्षाका ज्ञाता—और
दृढांग और शूरवीर—ऐसा जो हो वह घोड़ोंका
सेवक करना ॥ ३६ ॥

नीतिशास्त्रव्यूहादिनतिविद्याविशारदाः
अवालामध्यवयसः शूरादां तादृढांगकाः ।

भाषार्थ—जो नीतिशास्त्र—अखसमूह—
नम्रताओंसे चतुर हो वालक न हो यौवनका
भोक्ता—शूरवीर दांत—दृढांग हो ॥ ३७ ॥

स्वधर्मनिरतानित्यं स्वामिभक्तारिपुद्विषः
शूद्रावाक्षतियवैश्याम्लेच्छाः संकरसंभवाः

भाषार्थ—अपने धर्ममें नित्य स्थित और
स्वामीके भक्त—शत्रुओंके द्वेषी—शूद्र—क्षत्रिय—
वैश्य—म्लेच्छ—वर्णसंकर—इन जातियोंके हों ३८

सेनाधिपाः सैनिकाश्च कार्या राजा जयार्थिना
पंचानामथवापण्णामधिपः पदगामिनाम् ।

भाषार्थ—ऐसे सेनाधिप और सैनिक (सिना-
के योद्धा) जयकी इच्छा करनेवाले राजाको
करने और पांच अथवा छै सिपाईयोंका
अधिप जो हो ॥ ३९ ॥

सौज्यः सपत्तिपालुः स्यात्त्रिंशतांगौलिमकः
स्मृतः ।

शतानां तु शतानीकस्तथा नुशतिकोवरः ।

भाषार्थ—उसे पत्तिपालु कहते हैं तीस
सिपाईयोंके अधिपतिको गौलिमक कहते हैं
शतके अधिपकी शतानीक और अनुशतिक
उससे उत्तमको कहते हैं ॥ ४० ॥

सेनानीलेंखकश्चैतेशतं प्रत्यधिपाइमे ।

साहस्रिकस्तु संयोज्यस्तथा चायुतिको महा-
न् ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—सेनानी और लेखक ये सब शत-
के अधिपति होते हैं और सहस्रका अधिप-
ति और एकादश सहस्रका अधिपति नियुक्त
करना ॥ ४१ ॥

व्यूहाभ्यासं शिक्षयेद्यः सायं प्रातस्तु सैनिकान्
जानाति सशतानीकः सुयोद्धुं युद्धभूमिकाम्

भाषार्थ—व्यूह (कवायद) के अभ्यासकी
जो सायंकाल और प्रातःकाल सैनिकोंको
शिक्षा दे और युद्धभूमिमें युद्ध करनेको जो
जाने उसे शतानीक कहते हैं ॥ ४२ ॥

तथा विधे नुशतिकः शतानीकस्य साधकः
जानाति युद्धसंभारं कार्ययोग्यं च सैनिकम् ।

भाषार्थ—तैसाही शतानीकका शिक्षक
अनुशतिक होता है जो युद्धके संभारों और
कार्यमें कुशल सेनाके सिपाईयोंको जाने ४३

निदेशयति कार्याणि सेनानीर्यामिकांश्च सः
परिवृत्तियाभिकानां करोति सच पत्तिपः ।

भाषार्थ—सिपाईयोंको जो कार्य बतावै
उसे सेनानी कहते हैं और जो सिपाईयोंकी
परिवृत्ति (बदली) करै उसे पत्तिप
कहते हैं ॥ ४४ ॥

सावधानां यामिकानां विजानीयाच्च गुल्मपः
सैनिकाः कति संत्येतैः कति प्रास्तु वेतनम् ४५

भापार्थ—जो सिपाईयोंकी सावधानीको जाने उसे गुरुमप कहते हैं और ये सैनिक कितने हैं और कितना वेतन (नौकरी)मिली प्राचीनाःकेकुत्रगताश्चैतान्वेत्तिसलेखकः । गजाश्वानांविंशतेश्चाधिपोनायकसंज्ञकः ॥

भापार्थ—प्राचीन सैनिक कितने हैं और वे कहां गये इसको जो जाने उसे लेखक कहते हैं और बीसहाथी और बीस अश्वोंका जो अधिपति उसे नायक कहते हैं ॥ ४६॥ उक्तसंज्ञान्स्वस्वाचिन्हैर्लाङ्घिताश्चनियोजयत् ।

अजाविगोमहिष्येणमृगाणामधिपाश्चये ॥

भापार्थ—उक्तसंज्ञावालोंको अपनेरुचिहोंसे चिह्नित करके नियुक्त करें और अजा-भेड़-गौ-भैंस-मृग इनके अधिपोंको भी इसी प्रकार चिह्नित करके नियुक्त करें ॥ ४७ ॥

तद्वृद्धिपुष्टिकुशलास्तद्वात्सल्यानिपीडिताः । तथाविधागजोष्ट्रादेर्योज्यास्तत्सेवका अपि ।

भापार्थ—तिनकी वृद्धि और पुष्टिमें जो कुशल और तिनपर दयालु और पीडारहितहो और तैसेही गज छंट आदिके भी सेवक नियुक्त करें ॥ ४८ ॥

युद्धप्रवृत्तिकुशलास्तिस्तिरादेश्वपोषकाः । शुकादेःपाठकाःसम्यक्छयेनादेःपातवो ॥ धकाः ॥ ४९ ॥

भापार्थ—और युद्धकी प्रवृत्तिमें कुशल और तित्तिर आदिके पोषक (पालक) और तोतोंके उत्तम पाठक और शिखरेके पाता (गिरने) के बोधक नियुक्त करने ॥ ४९ ॥

तत्तद्वृद्धयविज्ञानकुशलाश्चसदाहिते । मानाकृतिप्रभावरणजातिसाम्याच्चमौल्यवित् ॥ ५० ॥

भापार्थ—तिसके हृदयके जाननेमें सदा कुशल वे हों मान आकार प्रभा-वरण जाति इनकी साम्यता मूल्यके वेत्ताहों ॥ ५० ॥

रत्नानांस्वर्णरजतमुद्राणामधिपश्चसः ।

दांतस्तुसधनोयस्तुव्यवहारविशारदः ॥

भापार्थ—रत्न-स्वर्ण-चांदी-मुद्रा-इनका अधिपहो और दांत और धनी और चतुर व्यवहारमें हो ऐसा कोशाध्यक्ष हो ॥ ५१ ॥

धनप्राणोतिकृपणःकोशाध्यक्षःसएवाहि ।

देशभेदेर्जातिभेदैःस्थूलसूक्ष्मबलावलैः ॥

भापार्थ—धनमें जिसके प्राणहों ऐसा अत्यंत कृपण कोशाध्यक्ष होताहै देश और जातिके भेद स्थूल और सूक्ष्म बल और निर्बलतासे ॥ ५२ ॥

कौशेयादेर्मनमूल्यवेत्ताशास्त्रस्यवस्त्रपः ।

कुटीकंचुकनेपथ्यमंडपादेःपरिक्रियाम् ॥

भापार्थ—रेसमके मान और मूल्यका ज्ञान और शास्त्रका वेत्ता वस्त्रोंका अधिप हो-ताहै वस्त्र और वेप और मंडपकी क्रियाको जो जानें ॥ ५३ ॥

प्रमाणतःसौचिकेनरंजनानिचवेत्तियः ।

तथाशय्यादिसंधानंवितानादेर्नियोजनम् ॥

भापार्थ—सूचिके प्रमाणसे रंगोंको जो जानें और शय्यादिके संधान वितान (चंदो-आ)का नियोग जो जानें ॥ ५४ ॥

वस्त्रादीनांचसप्रोक्तोवितानाद्यधिपःखलु ।

जातिंतुलांचमौल्यंचसारभोगपरिग्रहम् ॥

भापार्थ—वस्त्रका ज्ञाता ऐसा पुरुष वितान छवानेका अधिपहो और जाति तोल-मौल्य-सार-भोग-परिग्रह ॥ ५५ ॥

संभार्जनंचधान्यानांविजानातिसधान्यपः ।
धौताधौतविपाकज्ञोरससंयोगभेदवित् ॥

भाषार्थ—अन्नकी शुद्धी (छडन) जो जाने उसे धान्यपति करना और मलीन शुद्ध पाकका ज्ञाता रसके संयोगभेदका ज्ञाता ॥ ५६ ॥

क्रियासुकुशलद्रव्यगुणविपाकनायकः ।
फलपुष्पवृद्धिहेतुरोपणशोधनतथा ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—क्रियामें कुशल द्रव्यके गुणका वेत्ता जो हो उसे पाकनायक करना फल फूलकी वृद्धिका कारण रोपण (लगाना) और शोधन ॥ ५७ ॥

पादपानांयथाकालंकर्तुंभूमिजलादिना ।
तद्भेषजचंसवेत्तिह्यारामाधिपतिश्चसः ५८ ॥

भाषार्थ—वृक्षोंका रोपण भूमिजलादिकसे कालके अनुसार जो जाने और उनका भेषज (इलाज) जो जाने वह आरामका अधिप होताहै ॥ ५८ ॥

प्रासादंपरिखांदुर्गंप्राकारप्रतिमांतथा ।
यंत्राणिसेतुबंधंचवार्पांकूपतडागकम् ५९ ॥

भाषार्थ—ऐसे पुरुषको गृहवनानेका अधिपकरे प्रासाद (मकान) खाई किला प्राकार परकोटाकी प्रतिमा (प्रमाण) यंत्र पुलबांधना वापी (बावडी) कूप तडाग इनका ज्ञाताहो ५९ तथापुष्करिणीकुंडंजलादूर्ध्वगतिक्रियाम् ।
सुशिल्पशास्त्रतःसम्यक्सुरम्यंतुयथाभवेत् ॥

भाषार्थ—तिसी प्रकार पुष्करिणी छोटा क्रीडाका तलाव कुंड जलसे ऊपर आनेकी क्रिया ऐसा जानताहो जिस प्रकार शिल्प-विद्यासे भली प्रकार रमणीय हो उसको ६० कर्तुंजानातियःसैवगृहाद्यधिपतिःस्मृतः ।
राजकार्योपयोग्यानिहपदार्थान्वेत्तितत्त्वतः ॥

भाषार्थ—करनेको जो जाने वही गृहोंका अधिपति होता है ऐसा पुरुष संभारका अधिप होताहै जो राजाके कार्योंपयोगी पदार्थोंको जानें ॥ ६१ ॥

संचिनोतियथाकालेसंभाराधिपउच्यते ।
स्वधर्माचरणेदक्षोदेवताराधनेरतः ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—और समयके अनुसार संचय करे वह संभारका अधिपति होताहै और वह पुरुष देवताओंका संतोषकारी होताहै जो अपने धर्माचरणमें चतुर और देवताके आराधनमें तत्परहो ॥ ६२ ॥

निःस्पृहःसचकर्तव्योदेवतुष्टिपतिःसदा ।
याचकंविमुखंनैवकरोतिनचसंग्रहम् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—लोभी न हो वह देव पुष्टिका पति (पुजारी) करना और वह दानाध्यक्ष करना जो याचकको विमुख न करे और संग्रह न करे ॥ ६३ ॥

दानशीलश्चनिर्लोभोगुणज्ञश्चनिरालसः ।
दयालुर्धृदुवाग्दानपात्रविन्नतितत्परः ६४ ॥

भाषार्थ—दानशीलहो लोभी न हो गुणी हो आलसी नहो दयालुहो कोमलवचन कहता हो पात्रका ज्ञाताहो नमस्कारमें तत्परहो ६४ नित्यमेभिर्गुणैर्युक्तोदानाध्यक्षःप्रकीर्तितः ।
व्यवहारविदःप्राज्ञावृत्तशीलगुणान्विताः ॥

भाषार्थ—प्रतिदिन जो इन गुणोंसे युक्तहो वह दानाध्यक्ष कहाहै और ऐसे सभासदहो जो व्यवहारके ज्ञाता सदाचारशील गुणोंसे संयुक्तहो ॥ ६५ ॥

रिपौभिन्नेसमायेचधर्मज्ञाःसत्यवादिनः ।
निरालसाजितक्रोधकामलोभाःप्रियंवदाः ॥

भाषार्थ—शत्रु और मित्रमें जो समहों धर्मज्ञ और सत्यवादी हों आलसी न हों क्रोध

काम लोभ ये तीनों जिन्होंने जीतलियेहो
और प्रियवक्ता हों ॥ ६६ ॥

सभ्याःसभासदःकार्यावृद्धाःसर्वासुजातिपु।
सर्वभूतात्मतुल्योयोनिःस्पृहोतिथिपूजकः॥

भाषार्थ—ऐसे संपूर्ण जातियोंमें वृद्ध और
सभामें साधु सभासद करने और ऐसा
यज्ञका अधिपति हो जो सबको अपने
आत्माके समान जानें और निर्लोभी और
अभ्यागतोंका जो पूजक हो ॥ ६७ ॥

दानशीलश्चयोनिर्त्यसैवसत्ताधिपःस्पृतः ।
परोपकारनिरतःपरमर्माप्रकाशकः ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—जो प्रतिदिन दानशीलहो और
ऐसा मनुष्य परीक्षकहो जो परोपकारमें
तत्परहो परमर्म (छिद्र) प्रकाश न करे ६८ ॥

निर्मत्सरोगुणग्राहीतद्विद्यःस्यात्परीक्षकः ।
प्रज्ञानष्टानहिभवेत्तथादंडविधायकः ६९ ॥

भाषार्थ—क्रोधी न हो गुणका ग्राहक हो
परीक्ष्यविद्याका ज्ञाताहो और ऐसा मनुष्य
(साह) फौजदारीका अधिपतिहो जो इसप्रकार
दंडदे जिस प्रकार प्रजा नष्ट न होय ॥ ६९ ॥

नातिकूरोनातिमृदुःसाहसाधिपतिश्चसः ।
आधर्षकेभ्यश्चैरेभ्यःह्यधिकारिगणान्तथा ॥

भाषार्थ—और अतिकठोर और अतिको-
मल जो नहो और ऐसा पुरुष ग्रामका अधिप-
तिहो जो ठग और चौर अधिकारियोंके
समूहसे प्रजाकी रक्षामें चतुरहो ॥ ७० ॥

प्रजासंरक्षणेदक्षोग्रामपोमातृपितृवत् ।
वृक्षान्संपुष्ययत्नेनफलंपुष्पंविचिन्वति ॥

भाषार्थ—मातापिताके समान प्रजाकी
रक्षामें चतुरहो और ऐसा पुरुष भाग(कर)का
ग्राहक हो जो मालीके समान वृक्षोंको यत्नसे

पुष्ट करके फल फूलको बीजें अर्थात्
प्रजाकी अत्यंत रक्षापूर्वक कर ले ॥ ७१ ॥

मालाकारइवात्यंतभागहारस्तथाविधः ।
गणनाकुशलोयस्तुदेशभाषाप्रभेदवित् ॥

भाषार्थ—ऐसा पुरुष लेखकहो जो गण-
नामें कुशलहो और देशभाषाके भेदका
ज्ञाताहो ॥ ७२ ॥

असंदिग्धमगूढार्थविलिखेत्सचलेखकः ।
शस्त्रास्त्रकुशलोयस्तुदृढांगश्चनिरालसः ॥

भाषार्थ—संदेह रहित स्पष्ट जो लिखे और
ऐसा पुरुष प्रतिहार (दूत) हो जो शस्त्र
अस्त्रमें कुशलहो और दृढांग और आलसी
न हो ॥ ७३ ॥

यथायोग्यसमाहूयात्प्रनम्रःप्रतिहारकः ।
यथाविक्रयिणामूलधननाशोभवेन्नहि ७४ ॥

भाषार्थ—जो नम्र होकर यथोचित आह्वान
करे (बुलावै) ऐसा पुरुष शौलिक (मह-
सूलका अधिप) हो जो जैसे लेन देनहारोंके
मूलधनका नाश नहो इस प्रकार शुल्क ग्रहण
करे ॥ ७४ ॥

तथाशुल्कंतुहरतिशौलिकःसउदाहृतः ।
जपोपवासनियमकर्मध्यानरतस्सदा ७५ ॥

भाषार्थ—तिस प्रकार शुल्क (महसूल) को
ले वह शौलिक कहाताहै उसे तपोनिष्ठ क-
हते हैं जो जप-उपवास-नियम कर्म और
ध्यानमें सदा रतहो ॥ ७५ ॥

दांतःक्षमीनिःस्पृहश्चतपोनिष्ठःसउच्यते ।
याचकेभ्योददात्यर्थंभार्यापुत्रादिकंत्वपि ॥

भाषार्थ—दांत हो क्षमावान् (इच्छारहित)
हो वह दानशील कहाताहै जो याचकोंको
भार्या पुत्र आदिको अति उदार होकर
देदे ॥ ७६ ॥

नसंगृह्णाति यत्किंचिद्दानशीलः सदुच्यते ।
पठनपाठनकर्तुं क्षमास्त्वभ्यासशालिनाम् ॥

भाषार्थ—और यत् किंचित्भीग्रहण न करें
वे श्रुति (वेदके) ज्ञाता होते हैं जो कियोह
अभ्यास जिनका ऐसे श्रुतिस्मृति पुराणोंके
पठनपाठन करनेमें समर्थ हो ॥ ७७ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां श्रुतज्ञास्ते प्रकीर्तिताः ।
साहित्यशास्त्रनिपुणः संगीतज्ञश्च सुस्वरः ॥

भाषार्थ—और वह पुराणोंका ज्ञाता होता है
जो साहित्यशास्त्रमें निपुण हो संगीतका ज्ञाता
और उत्तम स्वर जिसका हो ॥ ७८ ॥

सर्गादिपंचकज्ञाता सवैपौराणिकः स्मृतः ।
मीमांसातर्कवेदांतशब्दशासनतत्परः ७९ ॥

भाषार्थ—सर्ग आदि पांचका जो ज्ञाता हो
और वह शास्त्रका ज्ञाता होता है जो मी-
मांसा-न्याय-वेदांत-व्याकरणमें तत्पर हो ७९

ऊहवान्बोधितुं शक्तस्तत्त्वतः शास्त्रविच्चसः ।
संहितांचतथाहोरांगणितं वेत्ति तत्त्वतः ८० ॥

भाषार्थ—तर्कका ज्ञाता बोधन करनेमें
समर्थ और तत्वका ज्ञाता हो और वह ज्यो-
तिषी होता है संहिता और होरा और गणित
इनको तत्त्वसे जानें ॥ ८० ॥

ज्योतिर्विच्चसविज्ञेयो त्रिकालज्ञश्च यो भवेत् ।
वीजानुपूर्व्या मंत्राणां गुणान्दोषांश्चेत्ति यः

भाषार्थ—और भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों
कालोंका ज्ञाता हो और ऐसा पुरुष मंत्र-
शास्त्रका ज्ञाता हो जो मंत्रोंके बीजोंके अनु-
सार गुण और दोषोंको जानें ॥ ८१ ॥

मंत्रानुष्ठानसंपन्नो मांत्विकः सिद्धदैवतः ।
हेतुलिङ्गौषधीभिर्यो व्याधीनां तत्त्वानिश्चयम् ॥

भाषार्थ—मंत्रोंके अनुष्ठानमें युक्त हो और
देवता जिसे सिद्ध हों और वैद्य वह होता है
जो कारण चिन्ह और औषधियोंसे व्याधियोंके
तत्त्व निश्चय ॥ ८२ ॥

साध्यासाध्यं विदित्वोपक्रमते स भिषक् स्मृतः ।
श्रुतिस्मृतीतरन्मंत्रानुष्ठानैर्देवतार्चनम् ८३

भाषार्थ—और साध्य और असाध्यको
जानकर चिकित्साका प्रारंभ करे वह भिषक्
कहा है और श्रुतिस्मृतिमंत्रोंके अनुष्ठानसे
जो देवताओंका पूजन ॥ ८३ ॥

कर्तुं हिततमं मत्वा यतते स च तार्त्रिकः ।
न पुंसकाः सत्यवाचो सुभूषाश्च प्रियं वदाः ।

भाषार्थ—करनेको जो हिततम मानकर
यत्न करे वह तार्त्रिक होता है और ऐसे पु-
रुषणवासमें युक्त करने जो नपुंसक सत्य-
वादी सुवेष और प्रियवादी हों ॥ ८४ ॥

सुकुलाश्च सुरूपाश्च योज्यास्त्वन्तः पुरे सदा ।
अनन्याः स्वामिभक्ताश्च धर्मनिष्ठा दृढांगकाः

भाषार्थ—और उत्तम कुलीन और सुरूप
हों और ऐसे दृढ युक्त करने जो अनन्य हो-
कर स्वामीके भक्त हों और धर्मशील हों
और दृढ जिनका अंग हो ॥ ८५ ॥

अवालामध्यवयसः सेवासुकुशलाः सदा ।
सर्वयद्यत्कार्यजातं नीचं वा कर्तुमुद्यताः ८६ ॥

भाषार्थ—वालक न हों और सेवामें यथार्थ
कुशल हो और संपूर्ण कार्योंका समूह चाहें
नीचभी हो उसे करनेको उद्युक्त (तईयार)
हो ॥ ८६ ॥

निदेशकारिणो राजाकर्तव्याः परिचारकाः ।
राज्ञः समीपप्राप्तानां नतिस्थानविबोधकाः ॥

भाषार्थ—आज्ञाके कर्त्ता और राजाके
समीप जो आवैं उनको नमस्कार और

स्थानके वतानेहारे राजाको परिचारक से-
वक नियुक्त करने ॥ ८७ ॥

दंडधारावेत्रधाराः कर्तव्यास्तेषु शिक्षकाः ।
तंत्रीकंदोस्थितान्सस्वरांस्वयानविभागतः

भाषार्थ—और वे सेवक दंड और वेतको
धारण करें और उत्तम शिक्षावान् हों और
ऐसा गानेवालोंका अधिपति हो जो तंत्रीके
कंठसे उत्पन्न सातस्वरोंके स्थानोंको विभाग
(भेद) से जानें ॥ ८८ ॥

उत्पादयतिसंवेत्तिसंयोगविभागतः ।

अनुरागं सुस्वरं च सतालं च प्रगायति ॥

भाषार्थ—स्वरोंको उत्पन्न करें और जाने
और संयोग और विभागसे प्रसन्नता और
उत्तमस्वर और ताल और नृत्यसे जो
गाने ॥ ८९ ॥

सन्तृप्त्यं वा गायकानामधिपः सचकीर्तितः ।

तथा विधाचपण्यस्त्रीनिर्लज्जाभावसंयुता ॥

भाषार्थ—ऐसा पुरुष गायकोंका अधिप
कहा है और इसी प्रकारकी गणिका
(वेश्या) हो जो निर्लज्ज हो और भाव
(प्रीति) युक्त हो ॥ ९० ॥

शृंगाररसतंत्रज्ञासुंदरांगी मनोरमा ।

नवीनोत्तुंगकटिन्कुचासुस्मितदर्शिनी ९१ ॥

भाषार्थ—शृंगार रसके तंत्रकी ज्ञाता सुंदर
है अंग जिसका मनोरमा (मनके हरने
वाली) नवयौवना ऊंचे हैं कठोर स्तन
जिसके और हंसमुखी वेश्या हो ॥ ९१ ॥

येचान्येसाधकास्ते च तथा चित्तविरंजकाः ।

सुभृत्यास्तेपि संधार्या नृपेणात्महिताय च ॥

जो वेश्याके इतर साधक हैं वेभी तिसी
कार चित्तके रंजकहों और उन साधकोंकी

भृत्य (नोकर) भी श्रेष्ठ हों ऐसे साधक
अपने हितके अर्थ राजाको रखनें ॥ ९२ ॥

वैतालिकाः सुकवयो वेित्रदंडधाराश्च ये ।

शिल्पज्ञाश्च कलावंतो ये सदाप्युपकारकाः ॥

भाषार्थ—भांड ऐसे हों जो सुंदर कविहों
वेत और दंडके धारण करनेहारे हों कार्य-
गर (कलावारी) हों और जो सदा उप-
कारि हों ॥ ९३ ॥

दुर्गुणान्मूचकाभाणानर्तकावहुरूपिणः ।

आरामकृत्रिमवनकारिणो दुर्गकारिणः ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—इतरके दुर्गुणोंको जो सूचित
करें वे भोंड कहोते हैं और जो अनेक-
रूपोंको धारें वे नर्तक होते हैं, आराम और
कृत्रिम वन (बाग) के बनानेहारे और
किलेके बनानेहारे ॥ ९४ ॥

महानालिकयंत्रस्य गोलैलैक्ष्यविभेदिनः ।

लघुयंत्राग्रेयचूर्णवाणगोलासिकारिणः ९५ ॥

भाषार्थ—तोपके गोलैलैक्ष्य (निशाने)
के भेदन करनेहारे वंदूक और आग्नेय
चूर्ण (बारूद) और बाण और गोले और
अस्ति (तलवार) इनके करनेहारे ॥ ९५ ॥

अनेकयंत्रशस्त्रास्त्रधनुस्त्राणादिकारकाः ।

स्वर्णरत्नाद्यलंकारघटकारयकारिणः ॥

भाषार्थ—अनेकप्रकारके यंत्र शस्त्र अस्त्र-
धनुष-तरकस इनके करनेहारा और स्वर्ण
रत्न-आदिके अलंकार इनके घटनेहारे
और रथके करनेहारे ॥ ९६ ॥

पापाणघटकालोदकाराधातुविलेपकाः ।

कुंभकाराः शौल्विकाश्च तक्षिणो मार्गकारकाः

भाषार्थ—पत्थरके और लोहेके बनानेहारे
और धातुके लेपक (मुलमा करनेहारे)
कुंभार शूल्बके बनानेहारे और वड़ई और
सड़कके बनानेहारे— ॥ ९७ ॥

नापितारजकाश्चैवंवांशिकामलहारकाः ।
वार्ताहराःसौचिकाश्चराजचिन्हाग्रधारिणः॥

भाषार्थ—नाई—धोबी—वंशोके लानेहारे मलके शोधक—डांकवाले—दरजी—ये संपूर्ण पूर्वोक्त राजचिह्नग्रके धारण करनेहारे हों९८ भेरीपटहगोपुच्छशंखवेण्वादिनिःस्वनैः ।
व्यवृहचकायानापयानादिकवोधकाः ॥

भाषार्थ—नगारे—ढोल—रणसिंगे—शंख—वंशी इनके शब्दोंसे जो व्यूहकी रचनामें तत्पर हैं और जो यान—और अपयान (कवायद) के शिक्षक हैं ॥ ९९ ॥

नाविकाःखनकाव्याधाःकिराताभारिकाअपि ।

शस्त्रसंमार्जनकराजलधान्यप्रवाहकाः ॥

भाषार्थ—मल्लाह—खनक (खोदनेवाले) व्याध भील—भारके लेजानेवाले शस्त्रके मार्जन करनेहारे और जो जलमें अन्नके पहुंचानेहारे ॥ २०० ॥

आपणिकाश्चगणिकावाद्यजायाप्रजीविनः ।
तंतुवायाःशाकुनिकाश्चित्रकाराश्चचर्मकाः

भाषार्थ—बाजारवाले—वेश्या—नट—कुली—शकुनके ज्ञाता—चित्रकारी और चमार—१॥

गृहसंमार्जकाःपात्रधान्यवस्त्रप्रमार्जकाः ।
शय्यावितानास्तरणकारकाःशासकाअपि॥

भाषार्थ—घरके झांसेहारे और पात्र—अन्न वस्त्र—इनके मार्जन करनेहारे शय्या पर बिछौना करनेहारे और शिक्षा देनेहारे—२॥

आमोदाःस्वेदसंस्कारस्तांबूलिकास्तथा
हीनारूपकर्मिणश्चैतैर्योज्याःकार्यानुरूपतः

भाषार्थ—सुगंध द्रव्य—धूपकर्ता—तंबोली—नीचकर्मके कर्ता—इनपूर्वोक्तोंको कार्यके अनुसार नियुक्त करें—॥ ३ ॥

प्रीतं पुण्यतमं सत्यं परोपकरणं तथा ।

आज्ञायुक्तांश्चभृतकान्सततंधारयेन्नृपः ॥४॥

भाषार्थ—सत्य और परोपकार अत्यंत श्रेष्ठ कहा है और राजा अपनी आज्ञासे युक्त सेवकोंको निरंतर रखे ॥ ४ ॥

हिंसागरीयसीसर्वपापेभ्योनृत्तभाषणं ।

गरीयस्तरमेताभ्यांयुक्तान्भृत्यान्धारयेत्॥

भाषार्थ—संपूर्ण पापोंसे हिंसा प्रबल है और झूठ उससेभी अधिक प्रबल है इससे हिंसक—और झूठे भृत्योंको धारण न करें५ यदायदुचितं कर्तुं वर्तुं वा तत्प्रबोधयन् ।

तद्वक्तिकुरुतेद्राक्तुससद्भृत्यःसुपूज्यते ६॥

भाषार्थ—जिस समय जो करनेको उचित है उसको अथवा कहने को उचित है उसको बोधित (जताया) हुआ जो शीघ्रकार्य को करता है वही उत्तम भृत्य है और उसे—ही राजा युक्त करें ॥ ६ ॥

उत्थायपश्चिमेयामेगृहकृत्यं विचिंत्य च ।

कृत्वोत्सर्गंतु देवं हि स्मृत्वा स्नायादन्तरं ॥७॥

भाषार्थ—रात्रिके पिछले पहरमें उठकर और गृहके कार्यकी चिंता करके और शौच—को करके तिसके अनंतर स्नान करें॥ ७ ॥

प्रातःकृत्यंतु निर्वर्त्य यावत्सार्धमुहूर्तकं ।

गत्वा स्वकीयं शालां वा कार्याकार्यं विचिंत्य च

भाषार्थ—तीन घड़ी दिन चढ़ेपर्यंत अपने प्रातःकालके कृत्यको करिकें अपनी कार्य—शाला (कचहरी) में जाकर और कार्य और अकार्यको चिंता करकें ॥ ८ ॥

विनाज्ञयाविशंतंतु द्वास्थःसम्यङ्निरोधयेत् ।

निदेशकार्यं विज्ञाप्य तेनाज्ञप्तः प्रमोचयेत् ॥

भाषार्थ—राजाकी आज्ञाके बिना जे कार्यशालामें प्रवेश करें उसे राजाका

द्वारापाल रोकै तदनंतर उसके निवेशकार्य (प्रार्थना) को राजाको जता कर और राजाकी आज्ञासे उसे छोड़ दे ॥ ९ ॥

दृष्टागतान्सभामध्येराज्ञेदंडधरःक्रमात् ।

निवेद्यतन्नतपिश्चात्तेपांस्थानानिसूचयेत् ॥

भाषार्थ—सभाके मध्यमें आये मनुष्योंको दंडधर (चौकीदार) क्रमसे निवेदन करे और नम्र होकर पश्चात् उनको स्थानोंको सूचित करे ॥ १० ॥

ततोराजगृहंगत्वाज्ञसोगच्छेच्चसंनिधिं ।

नत्वातृपयथान्यायंविष्णुरूपमिवापरं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—तिसके अनंतर राजाके स्थानमें जाकर राजाकी आज्ञासे समीप जाकर और नीतिके अनुसार राजाको नमस्कार इस प्रकार करिके कि मानों दूसरे विष्णुही हैं ॥ ११ ॥

प्रविश्यसानुरागस्याचित्तज्ञस्यसमंततः ।

भर्तुरर्धासनेदृष्टिकृत्वानान्यत्रनिक्षिपेत् ॥

भाषार्थ—सभामें प्रविष्ट होकर प्रीतिमान् और चित्तके ज्ञाता राजाके सिंहासनमें ही सारेसे रोककर दृष्टिकी करिके किसी इतर मनुष्यको और न देखे ॥ १२ ॥

अग्निदीप्तमिवासीदेद्राजानमुपशिक्षितः ।

आशीविषमिवकुट्टं प्रभुं प्राणधनेश्वरं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—तदनंतर शिक्षाको प्राप्तहोकर अपने प्राण और धनके ईश्वर प्रभु (राजा) के समीप इसप्रकारता किमानों प्रज्वल अग्निरूप हैं और क्रोधी सर्पके समान हैं ॥ १३ ॥

यत्नेनोपचरेन्नित्यं नाहमस्मीति चिंतयेत् ।

समर्थयश्चतत्पक्षाधुभापेतभाषितं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—सेवक बड़े यत्नसे स्वामीकी सेवा करे जानों मैं नहीं और स्वामीके

पक्षकी पुष्टि करता हुआ कोमल वाणीसे भाषण करे ॥ १४ ॥

तन्नियेगिनवावृयादर्थसपरिनिश्चितं ।

सुखप्रबंधगोष्ठीपुविवादेवादिनामंतं ॥ १५ ॥

भाषार्थ—अच्छाहैं प्रबंध जिनमें ऐसीसभाओंमें विवादियोंके मतको और राजाकी आज्ञासे अच्छीतरह युक्तिसे बोलें ॥ १५ ॥

विजानन्नपिनोद्वयाद्रतुःक्षिप्रोत्तरंवचः ।

सदानुद्धतवेषःस्यावृषाहूतस्तुप्रांजलिः ॥ १६ ॥

भाषार्थ—स्वामीके प्रश्नका उत्तर जानता हुआभी शीघ्र नदे और सेवक उद्वह वेषको कदाचित् भी धारण नकरे और राजाजब बुलावें तब हाथ जोड़ कर खड़ा रहे ॥ १६ ॥

तद्वांकृतनतिःश्रुत्वावस्त्रांतरितसंमुखः ।

तदाज्ञांधारयित्वादौस्वकर्माणिनिवेदयेत् ॥

भाषार्थ—राजाकी वाणीको प्रणाम करिके सुनकर और वस्त्रकी ओटमें राजाके संमुख होकर और प्रथम राजाकी आज्ञाको लेकर अपने कार्योंको निवेदन करे ॥ १७ ॥

नत्वासीतासनेप्रवृहस्तत्पार्श्वसंमुखोज्ञया ।

उच्चैःप्रहसनंकासंघीवनंकुत्सनंतथा ॥ १८ ॥

भाषार्थ—और राजाके समीप और आसनपर उद्धत होकर न बैठे और संमुख आज्ञा से बैठे और उंचेस्वरसे हंसी और थूंकना और किसीकी निंदा न करे ॥ १८ ॥

जुंभणंगात्रभंगंचपर्वास्फोटंचवर्जयेत् ।

राज्ञादिष्टुयत्स्थानंतत्रतिष्ठेन्मुदान्वितः ॥

भाषार्थ—जंभाई अंगको भंग (आलस्यसे जोड़ोंका चटकाना) (मटकाना) राजानें जो स्थान बतादिया है वहांही आनंदसे बैठा रहे ॥ १९ ॥

प्रवीणोचितमेधावीर्जयेदभिमानतां ।
आपद्युन्मार्गगमनेकार्यकालात्ययेषुच २० ॥

भाषार्थ—प्रवीण (कुशल) और उत्तम बुद्धिमान्पुरुष अभिमानको त्यागदे आपत्ति और कुमार्गकी प्राप्ति (हलन) और कार्यके नाशमेंभी राजाका हित चाहैं ॥ २० ॥

अपृष्टोपिहितान्वेषीद्व्यात्कल्याणर्भाषितं ।
प्रियंतथ्यंचपथ्यंचवदेद्वर्मायकंवचः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—राजाके कल्याणकी इच्छा करने द्वारा सेवक विनापूछेभी कल्याणरूपी हो बचन कहैं और वह वचनभी प्रिय सत्य हितकारी और धर्म और अर्थके अनुकूल हो ॥ २१ ॥

समानवार्तयाचापितद्धितंवेधयेत्सदा ।
कीर्तिमन्यनृपाणांवावदेन्नीतिफलंतथा २२

भाषार्थ—अपने सहयोगियोंके संग वातासी राजाके हितकोही बोधन करैं और इतर राजाओंकी कीर्ति और न्यायके फलकोभी बोधन करैं ॥ २२ ॥

दातात्वंधार्मिकःशूरोनीतिमानसिभूषते ।
अनीतिस्तेतुमनसिर्वर्ततेनकदाचन ॥ २३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् तुम दाता और धर्मके कर्त्ता और न्यायके ज्ञाता हो और कदाचित् भी तुम्हारे मनमें अन्याय नहीं वर्तता है—२३ येयेभ्रष्टाअनीत्यातास्तदयेकीर्तयेत्सदा ।
नृपेभ्योह्यधिकोसीतिसर्वेभ्योनविशेषयेत् ॥

भाषार्थ—और जोजो अन्यायके राजा नष्ट हो गये हैं उनको राजाके आगे सदा कीर्तन करे और राजासे ऐसे नकहैं कि तुम संपूर्ण राजाओंसे अधिक हो ॥ २४ ॥

परार्थदेशकालज्ञोदेशकालेचसाधयेत् ।
सार्थनाशनंनस्यात्तथाब्रूयात्सदैवहि ॥ २५ ॥

भाषार्थ—देश और कालका ज्ञाता सेवक इतरके प्रयोजनको संपूर्ण देश और कालमें सिद्ध करे और परके प्रयोजनका नाश जैसे न हो इसीप्रकार सदा राजासे कहैं ॥ २५ ॥
नकर्षयेत्प्रजांकार्यमिषतश्चनृपःसदा ।
अपिस्थानुवदासीतशुष्यन्परिगतःक्षुधा ॥

भाषार्थ—राजा किसी कार्यके मिषसे प्रजा को दुःखित न करे चाहे क्षुधासे पीडित सूखते हुए वृक्षके समानभी स्थित रहैं ॥ २६ ॥

नत्वेवानर्थसंपन्नां वृत्तिमीहेतपांडितः ।
यत्कार्येयोनिशुक्तःस्थाद्भूयात्तत्कार्यतत्परः

भाषार्थ—अनर्थसे युक्त आजीविकाकी पंडित चेष्टा कभी न करे और जिस कार्यमें जो नियुक्त हो उसी कार्यमें तत्पर रहैं ॥ २७ ॥

नान्याधिकारमन्विलेन्नाभ्यसूयाच्चकेन चित्
नन्यूनलक्षयेत्कस्यपूरयोतस्वशक्तितः २८

भाषार्थ—अनर्थके कार्यकी इच्छा और निंदा नकरे और जो किसीकी न्यूनता अपनेको प्रतीत हो जाय तौ अपनी शक्तिके अनुसार संपूर्ण करदे ॥ २८ ॥

परोपकरणादन्यन्नस्यान्मित्रकरंसदा ।
कारिण्यामीतितेकार्येनक्रुर्यात्कार्यलंबनं ॥

भाषार्थ—परके उपकारसे इतर मित्रका और कोई कर्त्तव्य नहीं है और मैं तेरा कार्य सदा कहेगा ऐसी कहकर कार्यके करनेमें विलंब न करे ॥ २९ ॥

द्राक्षुर्यात्तुसमर्थश्चेत्सांशदीर्घनरक्षयेत् ।
गुह्यकर्मचमंत्रंचनभृतुःसंप्रकाशयेत् ॥ ३० ॥

भाषार्थ—जो समर्थ हो तौ कार्यको शीघ्र करे और बहुत दिनका विश्वास नदे और अपने स्वामीके गुप्तकार्य और मंत्रका प्रकाश न करे ॥ ३० ॥

विद्वेषचविनाशचमनसापिनाचिंतयेत् ।
राजापरममित्रोस्तिनकामविचरोदिति ३१

भाषार्थ—मनमेंभी किसीके द्वेष और
नाशकी चिंता न करे और मेरा राजा परम
मित्रहै इसविश्वाससे यथेच्छ न विचरे ॥ ३१ ॥

स्त्रीभिस्तदर्थिभिः पापैर्वैरिभूतैर्निराकृतैः ।
एकार्यचर्यासाहित्यसंसर्गचविवर्जयेत् ३२ ॥

भाषार्थ—स्त्री स्त्रियोंके रासिक पापी राजानें
जिनको निकास दियाहो इनके संग वास
और संबंधको त्यागदे ॥ ३२ ॥

वेपभापानुकरणं कुर्व्यात्पृथ्वीपतेः ।
संपन्नोपि च मेधावीनस्पर्धत च तद्गुणैः ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—विद्वान् मनुष्य संपन्नहोकरभी
राजाके वेप और भाषाका अनुकरण न करे
राजाके गुणोंकी ईर्ष्याभी न करे ॥ ३३ ॥

रागापरागौजानीयाद्गुरुः कुशलकर्मवित् ।
इंगिताकारचेष्टाभ्यस्तदभिप्रायतातया ३४

भाषार्थ—कुशल कर्मका ज्ञाता मनुष्य
इंगित आकार और चेष्टासे राजाकी प्रीति
क्रोध और अभिप्रायको जाने ॥ ३४ ॥

तद्वत्तवस्त्रभूषादिचिन्हसंधारयेत्सदा ।
न्यूनाधिक्यं स्वाधिकारकार्यो नित्यं निवे-
दयेत् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—राजाके दिये हुए वस्त्र आभू-
षण आदि चिन्हको सदा धारण करे और
अपनी पदवीके न्यून और अधिक कार्यको
प्रतिदिन निवेदन करे ॥ ३५ ॥

तदर्थी तत्कृतां वार्तां गृणुयाद्वापि कीर्तयेत् ।
चारसूचकदोषेण त्वन्यथायद्वेदन्तुः ॥ ३६

भाषार्थ—राजाके प्रजाजनकी और आज्ञाकी
की हुई वार्ताको सुने और आचार और

सूचकके दोषसे जो कुछ राजा अन्यथा
कहे ॥ ३६ ॥

गृणुयान्मौनमाश्रित्य तथ्यवन्नानुमोदयेत् ।
आपद्रुतं सुभर्तारं कदापि न परित्यजेत् ॥ ३७

भाषार्थ—तौ उसमें मौन होकर सुनें और
सत्यके समान उसमें संमति न दे और आप-
त्तिके समय श्रेष्ठ स्वामीको कदापि न
त्यागें ॥ ३७ ॥

एकवारमप्यशितं यस्यान्नं ह्यादरेण च ।
तदिष्टं चिंतयेन्नित्यं पालकस्याजसानकिं ॥

भाषार्थ—एकवारभी जिसके अन्नका आद-
रसे भक्षण किया हो उस पालकके इष्टकी
चिन्ता सुखसे क्यों न करे अर्थात् अवश्य
करे ॥ ३८ ॥

अप्रधानः प्रधानः स्यात्काले चात्यंतसेवनात्
प्रधानोप्यप्रधानः स्यात्सेवालस्यादिनायतः

भाषार्थ—क्योंकि समयपर अत्यंत सेवा
करनेसे अप्रधानभी मनुष्य प्रधान हो जात
है और सेवा करनेमें आलस्यसे प्रधानभी
अप्रधान होजाता है ॥ ३९ ॥

नित्यं संसेवनरतो भृत्यो राज्ञः प्रियो भवेत् ।
स्वस्वाधिकारकार्यं यद्वाहुर्यात्सुमनायतः

भाषार्थ—नित्यसेवामें जो तत्पर होता है
वह भृत्य राजाका प्रिय होता है क्योंकि अ-
पने २ अधिकारके कामको प्रसन्नमन होकर
शीघ्र करे ॥ ४० ॥

न कुर्व्यात्सहसार्थं नीचं राजापिनोदिशेत् ।
तत्कार्यकारकाभावे राज्ञा कार्यं सदैव हि ॥ ४१

भाषार्थ—और कार्यको शीघ्र न करे और
राजाभी नीच मनुष्यको कार्य करनेको न क-
हे यदि उस कार्यके करनेवाला न होय तो रा-
जा स्वयं उस कामको करे ॥ ४१ ॥

कालेयदुचितकर्तृनीचमप्युत्तमोर्हति ।

यस्मिन्प्रीतोभवेद्राजातदनिष्टंनचितयेत् ॥

भाषार्थ—और किसी समयपर उत्तम पुरुषभी नीचकर्म करनेको योग्य होता है और जिस मनुष्यपर राजाकी प्रसन्नता है उसके अनिष्टकी चिन्ता न करे ॥ ४२ ॥

नदर्शयेत्स्वाधिकारगौरवंतुकदाचन ।

परस्परनाभ्यसूयुर्नभेदंप्राप्नुयुःकदा ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—अपने अधिकारके गौरव (बड़ाई) को कदाचित्भी न दिखावे और राजाके वे पुरुष परस्पर निंदा और भेदको न करे ॥ ४३ ॥

राज्ञाचाधिकृताःसंतःस्वस्वाधिकारगुप्तये ॥

अधिकारिगणोराजासदृत्तौयत्रतिष्ठतः ४४

भाषार्थ—जो अपने २ अधिकारकी रक्षा के लिये राजाने नियतकिये हों—अधिकारियोंका समूह और राजा ये दोनों जहां सदा चारमें तत्पर रहते हैं ॥ ४४ ॥

उभौतत्रस्थिरालक्ष्मीर्विपुलांसंमुखीभवेत् ।

अन्याधिकारवृत्तंतुन्यूयाच्छ्रुतमप्युत ४५

भाषार्थ—वहां लक्ष्मी स्थिर और बहुत और संमुख होती है और अन्यके अधिकार के वृत्तांतको सुनकरभी न कहै ॥ ४५ ॥

राजानभृणुयादन्यमुखतस्तुकदाचन ।

नबोधयंतित्तिचहितमहितंचाधिकारिणः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—और राजाभी अन्यके मुखसे अन्यका वृत्तांत न सुने और अधिकारी हित और अहितका बोधन न करे ॥ ४६ ॥

प्रच्छन्नवैरिणस्तेतुदास्यरूपमुपाश्रिताः ।

हिताहितंनशृणोतिराजामंत्रिमुखाच्चयः ॥

भाषार्थ—वे दासरूपको प्राप्तहुए गुप्तवैरि हैं और जो राजा मंत्रियोंके मुखसे हित और अहितको न सुने ॥ ४७ ॥

सदस्पृराजरूपेणप्रजानांधनहारकः ।

सुपृष्टव्यवहारायेराजपुत्रैश्चमंत्रिणः ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—वह राजा राजाका रूप धारें प्रजाके धनका हरनेहारा चोर है और जो मंत्री राजा के पुत्रों के संग प्रबल व्यवहार करते हैं वेही मंत्री हैं ॥ ४८ ॥

विरुध्यंतित्तैःसाकंतेतुप्रच्छन्नतस्कराः ।

बालाअपिराजपुत्रानावमान्यास्तुमंतिभिः ॥

भाषार्थ—और जो मंत्री राजपुत्रोंके संग विरोध करते हैं वे गुप्त तस्कर हैं और बालकभी राजपुत्रोंका अपमान न करना ४९

सदासुवद्वचनैःसंवोध्यास्तेप्रयत्नतः ।

असदाचारितंतेषांकिंचिद्राज्ञेनदर्शयेत् ॥ ५० ॥

भाषार्थ—और राजाके पुत्रोंको सदा भली प्रकार बहुवचनक (यथा भो राजकुमाराः) संबोधन करे और उनके दुराचार राजाको न दिखावे ॥ ५० ॥

स्त्रीपुत्रमोहोबलवांस्तयोर्निंदानश्रेयसे ।

राज्ञोवश्यतरंकार्यंप्राणसंशयितंचयत् ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—स्त्री और पुत्रका मोह बलवान् है इससे उनकी निंदा कल्याणकारिणी नहीं है और राजाका अत्यंत आवश्यक कार्यकर्त्ता जो प्राणोंकाभी संशय जता हो ५१ ॥

आज्ञापयाग्रतश्चाहंकारिष्येतत्तुनिश्चितं ।

इतिविज्ञाप्यद्राक्कर्तुंप्रयतेतस्वशक्तितः ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—मैं आपके आगे स्थित हूं आज्ञा दी जायै और सब कार्यको निश्चयसे करूंगा ऐसे राजाकी आज्ञासे और अपनीशक्तिके अनुसार शीघ्र करनेमें यत्न करे ॥ ५२ ॥

प्राणानापिचसंदधान्महत्कार्येनृपायच ।

भृत्यःकुटुंबपुष्ट्यर्थनान्ययातुकदाचन ॥

भाषार्थ—बड़े कार्यमें राजा और अपने कुटुंबके निमित्त भृत्य अपने प्राणोंकोभी दग्ध करदे और इतरके निमित्त दग्ध न करें ॥ ५३ ॥

भृत्याधनहराःसर्वेयुक्त्याप्राणहरानृपः ।

युद्धादीसुमहत्कार्येभृत्याप्राणान्दरेनृपः ॥

भाषार्थ—वेतन (नौकरी) से धनके ह-
रनेहारे सब हैं और युक्तिसे प्राणोंको हरने
द्वारा राजा है क्योंकि युद्ध आदि बड़े कार्यों-
में राजा भृत्योंके प्राण हरता है ॥ ५४ ॥

नान्यथाभूतिरूपेणभृत्योराजधनंहरेत् ।

अन्यथाहरतस्तौतुभवतश्चस्वनाशकौ ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—भृत्य अपने वेतनसे राजाके ध-
नको हरेँ अन्यथा हरते हुए राजा और भृत्य
अपनेही नाश कर्ता होते हैं ॥ ५५ ॥

राजानुयुवराजस्तुमान्योमात्यादिकैःसदा ।

तन्मृणामात्यनवकंतन्मृणाधिकृतोगणः ५६

भाषार्थ—राजाके अनुसार युवराजकोभी
मंत्री आदि सदा मानें और युवराजसे न्यून
नो मंत्री और मंत्रीयोसे न्यून नीचेके अधि-
कारी गण हैं ॥ ५६ ॥

मंत्रितुल्यश्चायुक्तिकोन्यूनसाहस्रिकोमतः ।

नक्रीडयेद्वाजसमं क्रीडितेतंविशेषयेत् ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—दश सहस्रका अधिपति मंत्रीके
तुल्य है और उससे न्यून सहस्रका अधिपति
माना है और राजाके संग क्रीडा न करे करे
भी तो राजाको अधिक मानें ॥ ५७ ॥

नावमान्याराजपत्नीकन्याद्यापिचमंत्रिभिः ।

राजसंवाधिनःपूज्याःसुहृदश्चयथार्हतः ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—राजाकी पत्नी और कन्या आ-
दिका मंत्री आदि अपमान न करें इससे
राजाका संबंध और मित्र इनका यथायोग्य
पूजन करें ॥ ५८ ॥

नृपाहूतस्तुरंगच्छेत्यक्त्वाकार्यशतमहत् ।

मित्रायापिनवक्तव्यंराजकार्यसुमंत्रितं ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—राजाके बुलानेपर अपने बड़े स-
कड़ों कार्यको त्याग कर शांति जाई भली-
प्रकार मंत्रित (निश्चित) राजाका कार्य
मित्रकोभी न बतावें ॥ ५९ ॥

भृतिविनाराजद्रव्यमदत्तनाभिलाषयेत् ।

राजाज्ञयाविनानेच्छेत्कार्यमाध्यस्थिकीभृतिं

भाषार्थ—अपनी भृति (मासिक) के वि-
ना राजाके द्रव्यकी विना दिये इच्छा न करें
और राजाकी आज्ञाके विना मध्यस्थ अधिक
भृतिकीभी इच्छा न करें ॥ ६० ॥

ननिहन्याद्रव्यलोभात्सत्कार्यस्यकस्य-
चित् ।

स्वस्त्रीपुत्रधनप्राणैःकालेसंरक्षयेन्नृपं ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—और जिस किसीके कार्यको
द्रव्यके लोभसे नष्ट न करें और अपने स्त्री
पुत्र धन प्राणोंसे समयपर राजाकी रक्षा
करें ॥ ६१ ॥

उत्कोचंनैवगृण्हीयान्नान्यथाबोधयेन्नृपं ।

अन्यथादंडकंभूषानेत्यं प्रवल्दंडकं ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—और उत्कोच (रिसवत) को ग्र-
हण न करें और समयपर राजाको बोध
करादे कि अन्यथा दंड और प्रवल्दंड देने-
वाले राजाको ॥ ६२ ॥

निगृह्यबोधयेत्सम्यगेकांतैराज्यगुप्तये ।

हितंराज्ञश्चाहितंयल्लोकानांतत्रकारयेत् ६३

भाषार्थ—बलात्कारसे एकांतमें राज्यकी रक्षाके लिये भलीप्रकार बोधित करै (सम-झावे) और उससमय वह काम करवे जि-समें राजाका हित हो और लोकोंका अ-हित हो ॥ ६३ ॥

नवीनकरशुल्कादेर्लोकजद्विजतेततः ।
गुणनीतिबलद्वेषीकुलभूतोप्यधार्मिकः ॥

भाषार्थ—नवीन कर (दंड) और शुल्क (महसूल) से लोक दुःखित होतेहैं और कुलीनभी राजा जो गुणनीति सेनाका द्वेष करता है वह अधार्मिक है ॥ ६४ ॥

नृपोयदिभवेत्तत्तुत्यजेद्राष्ट्रविनाशकं ।
तत्पदेतस्यकुलगुणयुक्तपुरोहितः ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—और जो राजाही ऐसा हो कि जो अपने राज्यको नष्ट करता होय तौ पुरोहित उसके स्थानमें गुणयुक्त उसके कुलसे उत्पन्नको ॥ ६५ ॥

प्रकृत्यनुमतिं कृत्वा स्थापयेद्राज्यगुप्तये ।
सास्त्रोद्गूरुपातिष्ठेदस्त्रपाताद्वदिः सदा ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—प्रकृतियोंकी संमतिसे और राज्यकी रक्षाके निमित्त स्थापन करै अस्त्र धारी मनुष्य राजासे दूर अस्त्रके पातकी भयसे बाहर सदैव टिके ॥ ६६ ॥

सशस्त्रोदशद्वस्तंतुयथादिष्टं नृपप्रियाः ।
पंचद्वस्तंवसेयुर्वैमंत्रिणोल्लेखकाः सदा ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—शस्त्र सहित जो राजाके प्यारे हैं वे राजाकी आज्ञाके अनुसार दशहातके अंतरसे रहें ॥ ६७ ॥

सेनपैस्तु विना नैव सशस्त्रास्त्रोविशेत्सभां ।
पुरोहितः श्रेष्ठतरः श्रेष्ठः सेनापतिः स्मृतः ॥

भाषार्थ—शस्त्र और अस्त्र सहित कोईभी मनुष्य सेनापतियोंके बिना समामे न जावे

और पुरोहित सर्वोत्तमहैं और सेनापति उत्तम कहा हैं ॥ ६८ ॥

समः सुहृच्च संबंधी ह्युत्तमामंत्रिणः स्मृताः ।
अधिकारिगणो मध्यो धर्मो दर्शकलेखकौ ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—मित्र और संबंधी समहैं (न उत्तम न मध्यम) और मंत्री उत्तम कहें हैं अधिकारियोंका समूह मध्यमहैं और देख-नेहारे और लिखारी अधम हैं ॥ ६९ ॥

ज्ञेयो धर्मतमो भृत्यः परिचारगणः सदा ।
परिचारगणा न्यूनो विज्ञेयो नीचसाधकः ७०

भाषार्थ—दास और टहलवे अत्यंत अधम हैं और नीच कार्यके कर्त्ता इनसेभी अधम जानने योग्य हैं ॥ ७० ॥

पुरोगमनमुत्थानं स्वासनैः सन्निवेशनं ।
कुर्यात्सुकुशलप्रश्रं कर्मास्तुस्मितदर्शनं ॥

भाषार्थ—संमुख गमन अभ्युत्थान अपने आसन पर बैठाना कुशल पूछना हंसकर देखना इन्हें क्रमसे ॥ ७१ ॥

राजा पुरोहितादीनां त्वन्येषां स्नेहदर्शनं ।
अधिकारिगणादीनां सभास्थश्च निरालसः ॥

भाषार्थ—राजा पुरोहितादिकोंसे करै और इतर जनोंको प्रीतिसे देखे और सभामें स्थित पुरुष आलस्यको छोड़कर अधिपति आदिकोंसे इसी प्रकार आचरण करै ॥ ७२ ॥
विद्यावत्सुशरच्चंद्रो निदाघाको द्विपस्तुच ।

प्रजास्तु च वसंतां कृद्व स्यात्त्रिविधो नृपः ॥

भाषार्थ—विद्यावानोंमें शरद ऋतुके चंद्र-माके समान शत्रुओंसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान प्रजाओंमें वसंत ऋतुके सूर्यके समान तीन प्रकारसे राजा रहें ॥ ७३ ॥

यदि ब्राह्मणभित्ते पुमृदुत्वं धारयेन्नृपः ।
परिभवंति तं नीचा यथा हास्तिपका गजं ७४ ॥

भाषार्थ—जो राजा ब्राह्मणसे इतर जाति-
योंमें कोमल रहें तो नीच उसे इस प्रकार
तिरस्कृत करते हैं जैसे पीलवान हाथीको ७४
भृत्याद्यैर्यत्रकर्तव्याः परिहासाश्चक्रीडनं ।
अपमानास्पदं ते तुराज्ञानित्यं भयावहं ॥ ७५

भाषार्थ—भृत्यादिके संग हंसी और कीर्त्तन
न करे और तिरस्कारबालेके संग हंसी और
कीर्त्तन तो भयके दाता हैं ॥ ७५ ॥

पृथक्पृथक्ख्यापयतिस्वार्थासिद्धयैर्नृपायते ।
स्वकार्येण गुणवृत्तत्वात्सर्वस्वार्थपरायतः ७६ ॥

भाषार्थ—अपने २ प्रयोजनकी सिद्धिके
निमित्त वे अपमानी पुरुष पृथक् २ विख्यात
करते हैं और वे अपने कार्यके गुणके वक्ता
हैं इससे स्वार्थमें तत्पर हैं ॥ ७६ ॥

विकल्पं तेव मन्यंति लंघयंति च तद्वचः ।
राजभोज्यानि भुञ्जंति न तिष्ठति स्वके पदे ७७ ॥

भाषार्थ—और अपमान (तिरस्कार) के
भेदसे अर्थात् अनेक प्रकारसे वे तिरस्कार
करते हैं और राजाके वचनका अवलंघन
करते हैं और राजाके भोग्य पदार्थोंको भो-
गतें हैं और अपनी पदवी पर नहीं टिकते ७७
विस्त्रंसयंति तन्मंत्रं विवृण्वंति च दुष्कृतं ।
भवंति नृपवेषादिर्वचयंति नृपसदा ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—राजाके मंत्रका भेद करते हैं
और राजाके निन्दित कर्मका प्रकाश करते
हैं और राजाके समान वेषको धारते हैं और
सदा राजाको ठगते हैं ॥ ७८ ॥

तत्स्त्रियं सज्जयंति स्म राज्ञि क्रुद्धे हसंति च ।
व्याहरंति च निर्लज्जा हे लयंति नृपक्षणात् ॥

भाषार्थ—जो राजाकी स्त्रीके संग व्यभिचार
करते हैं और राजाके क्रोध हुए पर हंसते
हैं और निर्लज्ज होकर बोलते हैं और क्षण
भरमें राजाको ठगलेते हैं ॥ ७९ ॥

आज्ञामुलंघयंति स्म न भयं यांत्य कर्मणि ।
एते दोषाः परीहासस्य माक्रीडोद्भवानृपे ८० ॥

भाषार्थ—राजाकी आज्ञा अवलंघन करत
हैं और बुराकर्म कियेपर भय नहीं मानते ये
दोष राजामें मांत्रियोंके संग क्षमा और क्रीडासे
उत्पन्न होते हैं ॥ ८० ॥

न कार्यं भृत्यैः कुर्यान्नृपलेखाद्विना कचित् ।
नाज्ञापयेत्लेखनेन विना लपं वामहन्तृपः ८१ ॥

भाषार्थ—राजाके लेखविना कदाचित्भी
भृत्य कार्य न करे और राजाभी लेखविना
अल्प अथवा अधिककी आज्ञा न दे ॥ ८१ ॥
भ्रांतिः पुरुषधर्मत्वाल्लेख्यं निर्णायकं परं ।

अलेख्यमाज्ञापयति ह्यलेख्यं यत्करोति यः ॥

भाषार्थ—भ्रम पुरुषका धर्म है इससे ले-
खही परम निर्णय कर्ता है जो विना लिखें
राजा कार्यकी आज्ञा दे और विना लिखें
जो करे ॥ ८२ ॥

राजकृत्यमुभौ चोरौ तौ भृत्यनृपतीसदा ।
नृपसंचिह्नितं लेख्यं नृपस्तत्र नृपो नृपः ८३ ॥

भाषार्थ—वे दोनों भृत्य और राजा सदा
चोर हैं राजाकी मुद्रासे चिह्नित जो लेख
वही राजा है और राजा राजा नहीं है ॥ ८३ ॥

समुद्रं लिखितं राज्ञा लेख्यं तच्चोत्तमोत्तमं ।
उत्तमं राजलिखितं ध्यमं मयादिभिः कृतं ॥

भाषार्थ—मुद्रा (मोहर) सहित जो रा-
जाका लेख है वह उत्तमसेभी उत्तम है
और जो मंत्री आदिकोंका लेख है वह
मध्यम है ॥ ८४ ॥

पीरलेख्यं कानिष्ठं स्यात्सर्वसंसाधनक्षमं ।
यस्मिन् यस्मिन् हि कृत्ये तुराज्ञायोधिकृतो नरः

भाषार्थ—पुर्खासियोंका लेख अधम है
जो संपूर्ण साधनोंसे योग्य हो जिस कार्यमें

राजाने जिस २ को अधिकार देरखा है वह मनुष्य ॥ ८५ ॥

सामात्ययुवराजादिर्यथानुक्रमतश्चसः ।
दैनिकमासिकंवृत्तवार्षिकंवहुवार्षिकं ॥ ८६

भाषार्थ—मंत्री और युवराज सहित यथा क्रमसे दिन २ का दैनिक और महीनिका मासिक और वर्षोंका वार्षिक और बहुत वर्षोंका बहुवार्षिक ॥ ८६ ॥

तत्कार्यजातलेख्यंतुराज्ञेसम्यङ्निवेदयेत् ।
राजाद्यंकितलेख्यस्यधारयेत्स्मृतिपत्रकं ॥

भाषार्थ—और मासिक आदिकोंके लेखको अच्छीतरह निवेदन करे और राजाके मुद्रा-सहित लेखके स्मृतिपत्र (रसीद) कोभी धारण करे ॥ ८७ ॥

कालेतीतेविस्मृतिर्वाभ्रांतिःसंजायतेनृणां ।
अनुभूतस्यस्मृत्यर्थोलिखितंनिर्मितंपुरा ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—बहुत कालके बीते पीछे मनुष्योंको भूल अथवा भ्रम हो जाता है इससे अनुभूत (जाने हुए) की स्मृतिके वास्ते पूर्व (प्रथम) लेखको रचा है ॥ ८८ ॥

यत्नाच्चब्रह्मणावाचावर्णस्वरविचिन्हितं ।
वृत्तलेख्यंतथाचायव्ययलेख्यमितिद्विधा ॥

भाषार्थ—ब्रह्माने यत्नसे वाणी वर्ण स्वरसे युक्त लेखको और वृत्तांतको आयव्यय (लेंदेन) के भेदसे दो प्रकारका लेख रखा है ॥ ८९ ॥

व्यवहारक्रियाभेदादुभयंवहुतांगतं ।
यथोपन्यस्तसाध्यायसंयुक्तंसोत्तरक्रियं ॥

भाषार्थ—व्यवहारके कार्योंके भेदसे वह दोनों प्रकारका लेख बहुत हो जाता है और आज्ञाके अनुकूल कर्तव्य अर्थसे युक्त और उत्तर क्रिया आगे करना सहित ॥ ९० ॥

सावधारणकंचैवजयपत्रकमुच्यते ।

सामंतेष्वथभृत्यपुराष्ट्रपालादिकेषुयत् ॥

भाषार्थ—जिससे निश्चय जीतको माने उसे जयपत्र कहते हैं और जिससे सामंत (पासके राजा) भृत्य राष्ट्रपाल (जमीदार) आदिकोंमें आज्ञादी जाय ॥ ९१ ॥

कार्यमादिश्यतेयेनतदाज्ञापत्रमुच्यते ।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमन्येष्वभ्यर्चितेषुच ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त सामंत आदिकोंको जिससे कार्यकी आज्ञा दीजाय उसे आज्ञापत्र कहते हैं ऋत्विक्-पुरोहित-आचार्य-और इतर पूजितोंको ॥ ९२ ॥

कार्यनिवेद्यतेयेनपत्रंप्रज्ञापनायतत् ।

सर्वेश्वणुतकर्तव्यमाज्ञायाममनिश्चितं ॥ ९३

भाषार्थ—जिससे कार्यका निवेदन किया जाय उसे प्रज्ञापन पत्र कहते हैं—संपूर्ण मेरी आज्ञासे निश्चित कर्तव्यको सुनो ॥ ९३ ॥

स्वहस्तकालसंपन्नंशासनंपत्रमेवतत् ।

देशादिकंयस्यराजालिखितेनप्रयच्छति ९४

भाषार्थ—अपने हस्त और कालसे संयुक्त वह शिक्षापत्र कहाता है और राजा अपने लेखसे देश आदि जिसकी देता है ॥ ९४ ॥

सेवाशौर्यादिभिस्तुष्टःप्रसादलिखितंहितत् ।

भोगपत्रंतुकरदीकृतंचोपायनीकृतं ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—सेना अथवा शूरवीरतासे प्रसन्न होकर जो राजा देता है वह तोषपत्र कहाता है कर और भेटका पत्र भोगपत्र कहता है ॥ ९५ ॥

पुरुषावाधिकंतत्तुकलावधिकमेववा ।

विभक्तायेचभ्रात्राद्याःस्वरुच्यातुपरस्परं ॥

भाषार्थ—और वह पत्र पुरुषकी अवधि पर्यंत अथवा कालकी अवधि पर्यंत होता है और जो अपनी २ रुचिसे विभक्त (जुड़े हुए) भ्राता आदि ॥ ९६ ॥

विभागपत्रं कुर्वति भागलेख्यं तदुच्यते ।
गृहभूम्यादिकंदत्त्वापत्रं कुर्यात्प्रकाशकं ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—विभागके पत्रको करे उसे भाग-लेख्य कहते हैं—घर और भूमि आदिको देकर प्रकाशके अर्थ पत्रको करे ॥ ९७ ॥

अनाच्छेद्यमनाहार्यदानलेख्यं तदुच्यते ।
गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा तुल्यमूल्यप्रमाणयुक् ॥

भाषार्थ—और वह पत्र अनाच्छेद्य (मजबूत) हो और हरनेके अयोग्य हो उसे दान लेख्य कहते हैं—घर और क्षेत्र आदिका क्रयण (खरीद) कर तुल्यमूल्य और प्रमाणसे युक्त ॥ ९८ ॥

पत्रं कारयते यत्तु क्रयलेख्यं तदुच्यते ।
जंगमस्यावरं वद्धं कृत्वा लेख्यं करोतीत्यत् ॥

भाषार्थ—जो पत्र कराया जाता है उसे क्रयण लेख्य कहते हैं—जंगम और स्थावर का बद्ध करके जो संख्या किई जाती है ९९

ग्रामो देशश्च यत्कुर्यात्सत्यलेख्यपरस्परं ।
राजा विरोधि धर्मार्थसंवित्पत्रं तदुच्यते ३०० ॥

भाषार्थ—और ग्राम अथवा देश जो परस्पर लेख करतें हैं और राजाके अविरोधसे और धर्मके अर्थ जो किया जाता है उसे संवित्पत्र कहते हैं ॥ ३०० ॥

वृध्या धनं गृहीत्वा तु कृतं वा कारितं च यत् ।
स साक्षिमञ्च तत्प्रोक्तं ऋणलेख्यं मनीषिभिः ॥

भाषार्थ—व्याजपर धनको लेकर किया और कराया साक्षिक सहित जो लेख उसको बुद्धिमानोंने ऋणलेख्य कहा है ॥ १ ॥

अभिशापे समुत्तीर्णे प्रायश्चित्ते कृते बुधैः

दत्तं लेख्यं साक्षिमद्यच्छुद्धिपत्रं तदुच्यते २ ॥

भाषार्थ—लोकके अतिवादकी निवृत्ति हुए पीछे और प्रायश्चित्तके अनंतर पंडितोंने दिया साक्षिके युक्त लेख उसे शुद्धिपत्र कहते हैं ॥ २ ॥

भेलयित्वा स्वधनं शान्दव्यवहाराय साधकाः ।
कुर्वन्ति लेखपत्रं यत्तत्तत्सामायिकं स्मृतं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—अपने २ धनके भागको मिला कर किसी व्यवहारकी सिद्धिके अर्थ जो लेख पत्र करते हैं उसे सामायिक पत्र कहते हैं ॥ ३ ॥

सम्भाधिकारि प्रकृती सभासद्भिर्नयः कृतः ।
तत्पत्रं वाद्यमानं च ज्ञेयं संमतिपत्रकं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सभासदोंने जो लभ्य अधिकार और प्रजाओंका न्याय किया है तिसका जो जानने लिये पत्र उसे संमति पत्र कहते हैं ॥ ४ ॥

स्वकीयवृत्तज्ञानार्थं लिख्यते यत्परस्परं ।
श्रीमंगलपदाद्यं वा स पूर्वोत्तरपक्षकं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—अपने वृत्तांतके ज्ञानके अर्थ ऐसा जो पत्र जिसके श्री आदिमें हो अथवा मांगलिकपद आदिमें हो परस्पर लिखा जाता है और जिसमें पूर्व और उत्तर दोनों पक्ष हों ॥ ५ ॥

असंदिग्धमगूढार्थं स्पष्टाक्षरपदंसदा ।

अन्यव्यावर्तकस्वात्मपरपित्रादिनामयुक् ॥

भाषार्थ—और जिसमें संदेह न हो और जिसके पद—अक्षर—अर्थ ये स्पष्ट हों और जिसमें अन्यकी व्यावृत्तिके अर्थ अपने-पिता आदिका नाम हो ॥ ६ ॥

एकद्विवचनैर्यथाहस्तुतिसंयुतं ।
समामासतदर्धाहनामजात्यादिचिन्हितं ॥

भाषार्थ—एकवचन—द्विवचन और बहु-
वचनोंसे यथोचित स्मृतिके संयुक्त और
वर्ष—मास—पक्ष—नाम—जाति आदिसे नि-
श्चितहो ॥ ७ ॥

कार्यबोधिसुसंबंधनत्याशीर्वादपूर्वकं ।
स्वाम्यसेवकसेव्यार्थक्षेमपत्रंतुतस्मृतं ८ ॥

भाषार्थ—जो पत्र कार्यका बोधकहो और
जिसका संबंध भली प्रकार मिलताहो नम-
स्कार और आशीर्वाद जिसमें हो स्वामी-
सेवक सेवनेयोग्य जिससे प्रतीतहो उसको
क्षेमपत्र कहते हैं ॥ ८ ॥

एभिरेवगुणैर्युक्तंस्वाधर्षकविवोधकं ।
भाषापत्रंतुतज्ज्ञेयमथवावेदनार्थकं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—इनीगुणोंसे युक्त और अपने
दुःखका बोधक अथवा वतानेका जो पत्र उसे
भाषापत्र कहते हैं ॥ ९ ॥

प्रदर्शितंवृत्तलेख्यंसमासाल्लक्षणान्वितं ।
समासात्कथ्यतेचान्यच्छेपाव्ययबोधकं ॥

भाषार्थ—दिखाया जो वृत्तांत लेख्य और
संक्षेपसे जिसमें लक्षणहो और संक्षेपसे ही
जिसमें शेष आमदनी व्यय (खर्चहो) ॥ १० ॥

व्याप्यव्यापकभेदैश्चमूल्यमानादिभिःपृथक्
विशिष्टसंज्ञितैस्तद्विषयार्थैर्वहुभेदयुक् ११

भाषार्थ—न्यून और अधिकभेदों और
तोला और प्रमाण आदिसे और विशिष्ट
(उत्तम) हो और यथार्थ अनेक प्रकारके
भेदसे जो युक्त हो ॥ ११ ॥

वत्सरेवत्सरेवापिमासिमासिदिनेदिने ।

हिरण्यपशुधान्यादिस्वाधीनचायसंज्ञकं १२

भाषार्थ—वर्ष २ में और मास २ में और दिन
२ में होना पशु अन्न आदिको अपने आधी-
न रखते और आमदनीकोभी अपनेही आधी-
न रखते ॥ १२ ॥

पराधीनकृतंयत्तुव्ययसंज्ञधनंचतत् ।
साधकश्चैवप्राचीनआयःसंचितसंज्ञकः १३

भाषार्थ—पराधीनकी जो धन सो व्यय
खर्चहीहै वर्तमान और प्राचीन जो आय
(आमदनी) उसे संचित कहतेहैं ॥ १३ ॥

व्ययोद्विधाचोपभुक्तस्तथाविनिमयात्मकः ।
निश्चिंतान्यस्वामिकश्चानिश्चितस्वामिकं
तथा ॥ १४ ॥

भाषार्थ—व्यय दो प्रकारकाहै एक तो भुक्त
दूसरा देना—और तीन प्रकारका संचितहै
एक जिनके स्वामीका निश्चयहो दूसरा
जिनके स्वामीका निश्चय नहो ॥ १४ ॥

स्वस्वत्वनिश्चितंचेतित्रिधंविसंचितंमतं ।
निश्चितान्यःस्वामिकंयद्धनंतुत्रिविधंहितत्

भाषार्थ—और तीसरा जो अपने स्वत्वसे
निश्चितहो और निश्चितहै अन्यस्वामी जिस-
का ऐसा धन तीनप्रकारका है ॥ १५ ॥

औपनिध्यंचाचितकमौत्तमर्णिकमेवच ।
विस्त्रंभान्निहितंसाद्रिर्दौपनिधिकंहितत् ॥

भाषार्थ—१ औपनिध्य— २ पाचितक ३
औत्तमर्णिक जो विश्वाससे सत्पुरुषोंने अपने
यहां रखादिया हो उसी औपनिधिक कहते
हैं ॥ १६ ॥

अवृद्धिकंगृहीतान्यालंकारादिचयाचितं ।
सवृद्धिकंगृहीतंयद्दणतञ्चौत्तमर्णिकं ॥ १७ ॥

भाषार्थ—विना मूदके लिया जो अलंकारदि
उसे याचित कहतेहैं और मूतपर लिया जो
ऋण उसे औत्तमर्णिक कहतेहैं ॥ १७ ॥

निध्यादिकंचमार्गादौप्राप्तमज्ञातस्वामिकं ।
साहजिकंचाधिकंचाद्विधास्वस्वत्वनिश्चितं ॥

भाषार्थ—जो निधि आदि मार्गमें मिले
और स्वामीका निश्चय नहो स्वभावसे प्राप्त
और वृद्धि (व्याज) इन दो प्रकारका अपना
घन होता है ॥ १८ ॥

उत्पद्यतेयोनियतोदिनेमासिचवत्सरे ।
आयःसाहजिकःसैवदायाद्यश्चस्ववृत्तितः ॥

भाषार्थ— जो नियमसे दिन— मास और
वर्षमें उत्पन्नहो वह धनका आय (आमदनी)
साहजिकहै और वह धन अपनी वृत्तिसे
उत्पन्न होनेसे भाईका भाग होताहै ॥ १९ ॥

दायःपरिग्रहोयत्तुप्रकृष्टतत्स्वभावजं ।
मौल्याधिक्यकुसीदंचगृहीतंयाजनादिभिः

भाषार्थ—जो भाग पछिहसे मिले और
उत्तमभीहो उसे स्वभावज कहतेहैं और
मोलमें अधिक मिले (नफा) कृपिते और
यज्ञ करनेसे मिले ॥ २० ॥

पारितोष्यभृतिप्राप्तंविजिताद्यंधनंचयत् ।
स्वस्वात्वेधिकसंज्ञतदन्यत्साहजिकंस्मृतं ॥

भाषार्थ— जो पारितोषिक और वेतनसे
और जो जीतसे मिले वह धन अपने धनसे
अधिक कहाताहै उससे इतरधनको साह-
जिक कहतेहैं ॥ २१ ॥

पूर्ववत्सरशेषंचवर्तमानाब्दसंभवं ।
स्वाधर्निर्वाचितंद्विधाधनंसर्वप्रकीर्तितम् २२ ॥

भाषार्थ—पूर्व वर्षका शेष और वर्तमान
वर्षका जोद्रव्य वह अपने २. आधीनका
संपूर्ण धन दो प्रकारका संचित कहाहै ॥ २२ ॥

द्विधाधिकंसाहजिकंपार्थिवेतरभेदतः ।
भूमिभागसमुद्भूतआयःपार्थिवउच्यते ॥ २३ ॥

भाषार्थ—दोप्रकारका अधिकमासिकहै पा-
र्थिव और इतरभेदसे जो पृथिवीके भागसे
राजाको मिले उस आयको पार्थिव कहते
हैं ॥ २३ ॥

सदैवकृत्तिमजलैर्देशग्रामपुरैःपृथक् ।
बहुमध्याल्पफलतोभिद्यतेभुविभागतः ॥ २४ ॥

भाषार्थ— मेघके जलसे और कूपआदिके
जलसे देश—ग्राम और पुरोंसे जो बहुत
मध्यम अल्प भागके भेदसे वह धन अनेक
अनेक प्रकारका होताहै ॥ २४ ॥

शुक्रदंडाकरकरभाटकोपायनादिभिः ।
इतरःकीर्तितस्तज्जैरायोलेखविशारदैः २५ ॥

भाषार्थ—शुल्क (महसूल) दंड आकर
(खान) उपायन(भेट)आदिसे मिला जो आय
उसे लेखके कुशल मनुष्य इतर कहतेहैं ॥ २५ ॥

यन्निमित्तोभवेदाथोव्ययस्तन्नामपूर्वकः ।
व्ययश्चैवंसमुद्दिष्टोव्याप्यव्यापकसंयुतः ॥

भाषार्थ— जिस निमित्तसे आवे उसी
नामसे खर्चकरे और व्ययभी व्याप्य व्याप-
कभेदसे दोप्रकारका होताहै अर्थात् अल्प
और अधिक ॥ २६ ॥

पुनरावर्तकःस्वत्वनिवर्तकइतिद्विधा ।
व्ययोयन्निध्युपनिधिकृतोविनिमयैर्वृतः ॥

भाषार्थ— व्यय इस प्रकार दो भेदकाहै
१ पुनरावर्तक (फिर आजावे) और २ जिसमें
अपना स्वत्व न रहे और निधि उपनिधि
विनिमय भेदसे तीन प्रकारकाहै ॥ २७ ॥

सुकुसीदाकुसीदाधमर्णिकश्चावृत्तःस्मृतः ।
निधिभूमौविनिहितोन्यस्मिन्नुपनिधिःस्थि-
तः ॥ २८ ॥

भाषार्थ—व्याजके निमित्त दिया अथवा बिना
व्याजसे दिया जो ऋण उसे आयन (फिर

आनेवाला) कहतेहैं पृथ्वीमें रखेहुएकी निधि और इतर मनुष्यके पास रखेकी उपानीधि कहतेहैं ॥ २८ ॥

दत्तमूल्यादिसंप्राप्तःसर्वैविनिमयीकृतः ।
वृद्ध्यावृद्ध्याचयोदत्तोसवैस्यादाधमर्णिकः

भाषार्थ—दिये हुये मोलसे जो मिल उसे विनिमय कहतेहैं और व्याज अथवा विन-
व्याज ये दिया जाय उसे आधमर्णिक कहतेहैं
सवृद्धिकमृगंदत्तमकुसीदंतुयाचितं ।
स्वत्वंनिवर्तकोद्वेधात्त्वैदिकःपारलौकिकः॥

भाषार्थ—व्याजके निमित्त दिया अथवा
उधारा जो दिया दो प्रकारका आधमर्णिक
होताहै और खर्चके दोभेद हैं एक वह जो
इस लोकके लियेहो दूसरा जो वह पर-
लोकके लियेहो ॥ ३० ॥

प्रतिदानं पारितोष्यवेतनं भोग्यमैदिकः ।
चतुर्विधस्तथा पारलौकिको नंत भेदभाक् ॥

भाषार्थ—वदलेमें देना—पारितोषिक—वेतन
भोग्य—इस प्रकार ४ भेद ऐदिककेहैं और
पारलौकिकके अनंत भेदहैं ॥ ३१ ॥

शेषसंयोजयेन्नित्यं पुनरावर्तको व्ययः ।
मूल्यत्वेन च यद्दत्तं प्रतिदानं स्मृतं हितम् ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—और शेषमें जो व्यय प्रतिदिन हो
ताहै उसे पुनरावर्तक कहतेहैं और जो माल
लेकर दियाहो उसे प्रतिदान कहतेहैं ॥ ३२ ॥

सेवाशौर्यादिसंतुष्टैर्दत्तं तत्पारितोषिकं ।
भृतिरूपेण संदत्तं वेतनं तत्प्रकीर्तितं ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—सेवा शूरीरता आदिसे प्रसन्न
होकर जो दिया उसे पारितोषिक कहतेहैं और
जो भृतिरूपसे दियाहो उसे वेतन कहते
हैं ॥ ३३ ॥

धान्यं वस्त्रं गृहं दारमगोगजादिरथार्थकं ।
विद्याराज्याद्यर्जनार्थं धनाप्त्यर्थं तथैव च ॥

भाषार्थ—जो धन—वस्त्र—घर—वाग
हाथी—रथ इनके निमित्त खर्चहो और विद्या
राज्य और धनकी प्राप्तिके लिये जो खर्चहो ३४
व्ययीकृतं रक्षणार्थं मुपभोग्यं तदुच्यते ।

सुवर्णरत्नरजतनिष्कशालास्तथैव च ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—रत्नाकरनेमें जो खर्चहो उसे
उपभोग कहतेहैं सोना—रत्न—चांदी और मणि-
योंकी शाला इन पृथक् २ बनावे ॥ ३५ ॥

रयाम्भोगजोष्टाजावीनशालाः पृथक् पृथक्
वाद्यशस्त्रास्त्रवज्राणां धान्यसंभारयोस्तथा ॥

भाषार्थ—रथ—अथ और हाथी—ऊंट—वकरी
भेड़ इनकी शाला पृथक् २ और वाजे शस्त्र
अस्त्र और अन्नकी और संभारकी शाला
पृथक् २ बनावे ॥ ३६ ॥

मंत्रीशिल्पनाट्यवैद्यमृगाणां पाकपक्षिणां ॥
शालाभोग्ये निविष्टास्तु तद्व्ययो भोग्यं उच्यते ।

भाषार्थ—मंत्री शिल्प नाट्य वैद्य मृग
और पाकके योग्य पक्षी इनकी शालाओंके
भोगमें जो नियुक्तहैं उनके निमित्त जो व्यय
(खर्च)हो उसे भोग्य कहतेहैं ॥ ३७ ॥

जपहोमार्चनैर्दानैश्चतुर्था पारलौकिकः ।

पुनर्यातो निवृत्तश्च विशेषा व्यवयौ च तौ ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—जप होम पूजन दानके भेदसे
चार प्रकारका व्यय परलोकका होताहै जो
फिर आजाय और फिर न आवे वे दोनों
आय और व्यय विशेषसे होतेहैं ॥ ३८ ॥

आवर्तको निवर्तौ च व्यया यौ तु पृथग्निद्वया ।
आवर्तका विहीनौ तु व्यया यौ तैस्त्रिकोलिखेत् ॥

भाषार्थ—आनेवाला और न आने वाला
इन भेदसे व्यय और आय पृथक् २ दो प्रकार-

रकेहैं और जो फिर न लेंगे ऐसे आय और व्ययको लिखनेवाला लिखे ॥ ३९ ॥

क्रयाधमर्णघटनान्यस्थलातेविवर्तकः ।
द्रव्यलिखित्वादद्यात्तुगृहीत्वाविलिखेत्स्वयं ।

भाषार्थ—लेन-देन-कर्ज जो औरको दिया जाय वह निवर्तक (फिर न आनेवाला) होताहै द्रव्यको प्रथम लिखकरदे और प्रथम ग्रहण करके पीछे लिखे ॥ ४० ॥

दीयतेवर्धतेनैवमायव्ययविलेखकः ।
हेतुप्रमाणसंबंधकार्यागव्याप्यव्यापकैः ॥

भाषार्थ— न घटे और न बंद ऐसा जमा खर्च लिखे और उसके कारण प्रमाण संबंध कार्यके अंगभी न्यून अधिकभावसे लिखे ४१

आयाश्चवहुधाभिन्नाव्ययाःशेषंपृथक्पृथक् ।
मानेनसंख्ययाचैवोन्मानेनपरिमाणकैः ॥

भाषार्थ—आय (आमदनी) और व्यय (खर्च) ये दोनों अनेक प्रकारके होतेहैं मान (संख्या) उन्मान और परिमाणके भेदसे ॥ ४२ ॥

क्वचित्संख्याक्वचिन्मानमुन्मानपरिमाणकं ।
समाहारःक्वचिन्नेष्टेव्यवहारायतद्विदां ॥

भाषार्थ—कहीं संख्या और कहीं मान और कहीं उन्मान और कहीं परिमाण और कहीं चारों व्यवहारके अज्ञाताओंके व्यवहारके लिखे दृष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥

अंगुलाद्यंसमृतमानमुन्मानंचतुलास्मृता ।
परिमाणंपात्रमानंसंख्यैकव्यादिसंज्ञिका ॥

भाषार्थ—अंगुलीसे जो मापा जाय उसे मान कहते हैं बाटोंसे जो तोला जाय उसे उन्मान कहते हैं किसी पात्रसे जो मापा जाय उसे परिमाण कहते हैं और एक दो तीन आदि संख्या होती है ॥ ४४ ॥

यत्रयादृग्व्यवहारस्तत्रतादृक्प्रकल्पयेत् ।
रजतस्वर्णताम्रादिव्यवहारार्थमुद्रितं ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—जहां जैसा व्यवहार हो वहां वैसाही नियत करे—चांदी-सोना-तांबा-इनको व्यवहारके अर्थ मुद्रित करे ॥ ४५ ॥

व्यवहार्यवराटाद्यंरत्नांतद्रव्यमीरितं ।
सपशुधान्यवस्त्रादितृणांतंधनसंज्ञकं ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—कोड़ते लेकर रत्न पर्यन्तको द्रव्य कहते हैं पशु-अन्न-वस्त्र-तृण-आदि-को धन कहते हैं ॥ ४६ ॥

व्यवहारेचाधिकृतस्वर्णाद्यंमूल्यतामियात् ।
कारणादिसमायोगात्पदार्थस्तुभवेद्भुवि ॥

भाषार्थ—व्यवहारके लिये माना हुआ सोना आदि मोल हो जाता है और कारणके बलसे वही सोना आदि पदार्थ हो जाता है (जैसे भूषण) ॥ ४७ ॥

येनव्ययेनसंसिद्धस्तद्व्ययस्तस्यमूल्यकं ।
सुलभासुलभत्वाच्चागुणत्वगुणसंश्रयैः ॥

भाषार्थ—जितने व्ययसे मिले उतना व्यय उसका मूल्य होजाता है और सुलभ और कठिन और भले और बुरे भेदसे ॥ ४८ ॥

ययाकामात्पदार्थानामनर्थमधिकंभवेत् ।
नहीनमणिधातूनांक्वचिन्मूल्यंप्रकल्पयेत् ॥

भाषार्थ—अपनी कामनाके अनुसार पदार्थोंका मोल अधिक हो जाता है और मणि-धातु इनका मूल्य कभीभी न्यून न करे ४९ ॥

मूल्यहानिस्तुचैतेपाराजदौष्टेनजायते ।
दीर्घेचतुर्भागभूतपत्रोतिर्यग्गतावलिः ॥ ५० ॥

भाषार्थ—इनके मूल्यकी न्यूनता राजाकी दुष्टतासे होती है बड़े और चारभागके पत्रमें तिरछी आवली (पंक्ति) हो ऐसा पत्र हो ५०

ज्यंशगाभ्यंतरगताचार्धगापादगापिवा ।
कार्याव्यापकव्याप्यानांलेखनेपदसंज्ञिका ॥

भाषार्थ—तीन भागमें भीतरकी अथवा आ-
धे भागमें अथवा चौथाई भागमें श्रेणी हो ऐसे
पत्रको छोटे और बड़ेके लिखनेके निमित्त
बतावे ॥ ५१ ॥

श्रेष्ठाभ्यंतरगतासुवामनरूप्यंशगाप्यनु ।
दक्षज्यंशगताचानुवार्धगापादगाततः ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—उनमें भीतरकी श्रेष्ठ हैं उसमें बाढ़
ओरकी तीनभागकी और दांहनी ओरकी-
भी तीनभागकी और फिर चौथाई भागकी
ये सब क्रमसे हों ॥ ५२ ॥

स्वभ्यंतरेस्वभेदाःस्युःसदृशाःसदृशेपदे ।
स्वारंभपूतिसदृशेपदगेस्तःसदैवादि ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—अपने भीतरमें और अपने सदृश
भेद अपने २ और वे भेद अपनी समाप्तिके
सदृश हों और प्रत्येक भागमें वे सदा
रहें ॥ ५३ ॥

राजास्वल्लेख्यचिन्हंतुयथाभिलषितंतथा ।
लेखानुरूपेकुर्याद्विद्वद्वल्लेख्यंविचार्यच ॥

भाषार्थ—राजा अपनी इच्छाके अनुसार
अपने लेखका चिह्न ऐसा करे जो लेखके
अनुकूल हो और लेखको देखले और वि-
चारले ॥ ५४ ॥

मंत्रीचप्राड्विवाकश्चपंडितोदूतसंज्ञकः ।
स्वाविरुधंल्लेख्यमिदंलिखेयुःप्रथमंत्वमे ॥

भाषार्थ—मंत्री—वकील—पंडित—दूत वसये
पहले इस लेखको इसप्रकारसे लिखें जिस
प्रकार अपनी पदवीका विरोधी नहो ॥ ५५ ॥

अमात्यःसाधुलिसितमस्त्येतत्प्राक्लि-
खेदयं ।

सम्यग्विचारितामिति सुमंत्रोविलिखेत्ततः ॥ दखे

भाषार्थ—जो पहले भली प्रकार लिखा हो
उसे अमात्य लिखें और यह भली प्रकार वि-
चार है ऐसे तिसके अनंतर सुमंत्र लिखे ५६-
सत्यंयथार्थमितिच प्रधानश्चलिखेत्स्वयं ।
अंगीकर्तुंयोग्यमितिततःप्रतिनिधिलिखेत् ॥

भाषार्थ—यह पत्र सत्य और यथार्थ है यह
प्रधान स्वयं लिखें और तिसके अनंतर यह
पत्र स्विकार करनेके योग्य है यह प्रतिनिधि
लिखें ॥ ५७ ॥

अंगीकर्तव्यमिविचयुवराजालिखेत्स्वयं ।
लेख्यंस्वाभिमतंचेतद्विलिखेच्चपुरोहितः ५८

भाषार्थ—स्वीकार करो यह स्वयं युवराज
लिखें और यह लेख हमें संमत है यह पुरो-
हित लिखें ॥ ५८ ॥

स्वस्वमुद्राचिन्हितंचलेख्यातेकुर्युरेवादि ।
अंगीकृतमितिलिखेन्मुद्रयेच्चततोत्तपः ५९ ॥

भाषार्थ—अपनी मोहरसे चिह्नित संपूर्ण ले-
खको करे और तिसके अनंतर राजाभी अं-
गीकार किया यह लिखें और अपनी मोहरसे
मुद्रित करे ॥ ५९ ॥

कार्यांतरस्याकुलत्वात्संस्पृक्षद्रष्टुंशक्यते ।
युवराजादिभिर्लेख्यंतदानेनचदर्शितं ॥ ६० ॥

भाषार्थ—जो राजा इनकार्योंकी व्याकुलता-
से न देखसके तिस समयमें राजाके दि-
खाये पत्रको युवराज आदि लिखें ॥ ६० ॥

समुद्रंविलिखेयुर्वैसर्वेभंत्रिगणास्ततः ।

राजादृष्टमितिलिखेद्वागसंम्यद्दर्शनाक्षमः ॥

भाषार्थ—तिसके अनंतर सब मंत्रियोंके
समूह अपनी २ मोहरसे चिह्नित करके लिखें
यादि राजा भली प्रकार देखने असमर्थ हो
लिया ऐसे लिखें ॥ ६१ ॥

आयमादौलिखेत्सम्यग्व्ययंपश्चाद्यथागतं ।
वामेचायंव्ययंदक्षेपत्रभागेचलेखयेत् ॥ ६२

भाषार्थ—प्रथम आमदनीको लिखै पश्चात्
खर्चको-पत्रके वामभागमें आमदनीको लिखै
और दक्षिण भागमें खर्चको ॥ ६२ ॥

यत्रोभौव्यापकव्याप्यौवामोर्ध्वभागगौक्त्र-
मात् ।

आधाराधेयरूपौवाकालार्यौगणितंहितत् ॥

भाषार्थ—जिसमें अधिक और न्यून-वाम
और क्रमसे दक्षिण भागमें हों और अथवा
आधार और आधेयरूप हों वह कालके
निमित्त गणित हैं ॥ ६३ ॥

अधोधश्चक्रमात्रव्यापकंवामतोलिखेत् ।
व्याप्यानामूल्यमानादितत्पंक्त्यांविनिवे-
शयेत् ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—नीचें २ क्रमसे पत्रमें व्यापककों
वामभागमें लिखै और व्याप्योंका मोल
और प्रमाण आदिभी उसी पंक्तिमें लिखै ६४
ऊर्ध्वगानांतुगणितमधःपंक्त्यांप्रजायते ।
यत्रोभौव्यापकव्याप्यौव्यापकत्वेनसं-
स्थितौ ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—ऊपर लिखे हुआंकी गिनती नी-
चेकी पंक्तिमें होती है जहां दोनों व्यापक
और व्याप्यव्यापक समानही प्रतीत हो ६५

व्यापकंवहुवृत्तित्वंव्याप्यंस्यःपूनवृत्तिकां
व्याप्याश्चावयवाःप्रोक्ताव्यापकावयवी
स्मृतः ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—अधिक जगै जो वर्रै उसे व्या-
पक और अल्पजगे जो वर्रै उसे व्याप्य
कहते हैं और अवयवोंको व्याप्य और अव-
यवीको व्यापक कहते हैं ॥ ६६ ॥

सजातीनांचलिखनंकुर्याच्चसमुदायतः ।
यथाप्रातंतुलिखनमार्धनसमुदायतः ६७॥

भाषार्थ—सजातीय पदार्थोंको समुदाय रू-
पसे लिखै और समुदायमें प्रथम उसे लिखे
प्रथम आया हो ॥ ६७ ॥

व्यापकश्चपदार्थावायत्रसंतिस्यलानिहि ।
व्याप्यमायंव्ययंतत्रकुर्यात्कालेनसर्वदा ॥

भाषार्थ—व्यापक अथवा पदार्थ जहां स्थल
हों वहां आय और व्यय जो हैं उसे समयके
अनुसार व्याप्यसे करें ॥ ६८ ॥

स्थानटिप्पणिकाचैषाततोन्वत्संघटिप्पणं ।
विशिष्टसंज्ञिततत्रव्यापकंलेख्यभाषितं ६९

भाषार्थ—यह स्थानकी टिप्पण (पत्र) है
और इससे इतर संघटिप्पण होती है और
वहां विशिष्टनामका व्यापक भाषा (अर्जी)
लेख होता है ॥ ६९ ॥

आयाःकतिव्ययाःकस्यशेषंद्रव्यस्यचा-
स्तिवै ।

विशिष्टसंज्ञकैरेषांसंविज्ञानंप्रजायते ॥ ७० ॥

भाषार्थ—कितना आय (आमदनी) और
कितना व्यय (खर्च) हैं और किस आय-
का कितना शेष (बाकी) है इनका पृथक्-
नामोंसे ज्ञान होता है ॥ ७० ॥

आदौलेख्यंयथाप्रातंपश्चात्तद्वृणितंलिखेत् ।
यथाद्रव्यंचस्थानंचाधिकसंज्ञंचटिप्पणैः ॥

भाषार्थ—प्रथम जैसे आया हो वैसे लिखै
और पीछें उसकी संख्यां लिखै जैसा द्रव्य हो
और जैसा स्थान हो और जैसी अधिक
संज्ञा हो यह सब टिप्पण (वही) में लिखै
शेषायव्ययविज्ञानंक्रमाल्लेख्यैःप्रजायते ।
स्थलायव्ययविज्ञानंव्यापकस्यलतोभवेत् ॥

भाषार्थ—शेष आय व्ययका ज्ञान क्रमसे लेखोंसे होता है स्थान आय व्ययका ज्ञान बड़े स्थानसे अर्थात् इस जिल्लेके इस गांवसे इतना रुपया आया है ॥ ७२ ॥

पदार्थस्यस्थलानिस्त्युःपदार्थाश्चस्थलस्यतु व्याप्यास्तिथ्यादयश्चापियथेष्टालेखनेनृणां निश्चितान्यस्वामिकाद्याआयायेइतरांतगाः विशिष्टसंज्ञिकायेचपुनरावर्तकादयः ॥ ७४

भाषार्थ—पदार्थके स्थान होते हैं और स्थानके पदार्थ होते हैं और अपनी इच्छाके अनुसार व्याप्य (मासके अंग) तिथि आदिभी मनुष्योंको लिखनी ॥ ७४ ॥

व्ययाश्चपरलोकांताअंतिमव्यापकाश्चते ।
इच्छयाताडितंकृत्वादैप्रमाणफलंततः ॥

भाषार्थ—निश्चित है अन्य स्वामी जिसका ऐसे जो इतरोंके आय और पृथक् २ है संज्ञा जिनकी ऐसे जो पुनरावर्तक (फिर लौटने वाले) आदि ॥ ७५ ॥

प्रमाणभक्तंतल्लव्धंभवेदिच्छाफलंनृणां ।
समासतोलेख्यमुक्तंसर्वेषांस्मृतिसाधनं ॥

भाषार्थ—परलोक पर्यंत जो व्यय है ये सब अंतिम व्यापक कहाते हैं अपनी इच्छा से प्रथम इन्हें गिनें और फिर प्रमाणका फल लिखें ॥ ७६ ॥

गुंजामाषस्तथाकर्षःपदार्थप्रस्थएवाहि ।
यथोत्तरादशगुणापंचप्रस्थस्यचाढकाः ॥

भाषार्थ—गुंजा—मासा—कर्ष—पदार्थ—प्रस्थये क्रमसे दश २गुणे अधिक होते हैं और एक प्रस्थके पांच आढक होते हैं ॥ ७७ ॥

ततश्चाष्टाढकःप्रोक्तोह्यर्मणस्तेनुर्विंशतिः ।
खारिकास्माद्विद्यतेतद्देशेदेशेप्रमाणकं ॥

भाषार्थ—और आठ आढकका एक अर्मण कहा है और बीस आढककी एक खारी होती है और देशके भेदसे प्रमाणका भेद होता है ॥ ७८ ॥

पंचांगुलावटंपात्रंचतुरंगुलविस्वृतं ।
प्रस्थपादंतुतज्ज्ञेयंपीरमोणसदाबुधैः ॥ ७९

भाषार्थ—पांच अंगुल गहरा और चार अंगुल चौड़ा जो पात्र होता है उसे परिमाणके विषे विद्वान् सदा प्रस्थपाद जानि ॥ ७९ ॥

ऊर्ध्वाकश्चयथासंज्ञस्तदधस्थाश्चवामगाः ।
क्रमास्त्वदशगुणिताःपरार्थाःप्रकीर्तिताः ॥

भाषार्थ—ऊपरके अंककी जो संख्या हो और उसके नीचेके जो दश गुणे हैं वे परार्द्ध पर्यंत कहे हैं ॥ ८० ॥

नकर्तुंशक्यतेसंख्यासंज्ञाकालस्यदुर्गमात् ।
ब्रह्मणोद्विपरार्धतुआयुरुक्तमनीषिभिः ॥ ८१

भाषार्थ—दुर्गम होनेसे कालकी संख्याकी संज्ञा नहीं करसकते और मनीषियों (विद्वानों) ने ब्रह्माकी द्विपरार्द्ध आयुः कही है ८१

एकोदशशतंचैवसदस्त्रचायुतंक्रमात् ।
नियुतंप्रयुतंकोटिरर्बुदंचाब्जखर्वकौ ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—एक—दश—सौ—हजार—दशहजार लक्ष—दशलक्ष—किरोड—अर्व—अब्ज—खर्व—ये क्रमसे संख्या जाननी ॥ ८२ ॥

निखर्वपद्मसंख्याब्धिमध्यमांतपरार्धकाः ।
कालमानंत्रिधाज्ञेयंचांद्रसौरंचसावनं ॥ ८३

भाषार्थ—निखर्व—पद्म—शंख—अब्धि—मध्य अंत—परार्द्धभी संख्या जाननी और कालका मान तीन प्रकारका होता है सूर्यकी संक्रांति चन्द्रमाका उदय और सावनसे ८३

भृतिदानेसदासौरचांद्रकौसीदवृद्धिपु ।

कल्पयेत्सावननित्यंदिनभृत्येवधौसदा ॥

भाषार्थ—भृति (नौकरी) के देनेमें सूर्यकी संक्रांतिसे और खेती और व्याजमें चन्द्रोदयसे और भृति (मजूरि) और अवधिमें अमावससे मास लेना ॥ ८४ ॥

कार्यमानाकालमानाकार्यकालमितिस्त्रिधा ।

भृतिरुक्तातुतद्विज्ञैःसादेयाभापितायथा ॥

भाषार्थ—कार्य कालके मानसे और कार्य के कालसे भृति (नौकरी) भृतिके ज्ञाताओंन कहीं हैं और वह भृति जैसे कहती हो वैसेही देनी ॥ ८५ ॥

अयंभारस्त्वयातत्रस्थाप्पस्त्वैतावतीभृति ।

दास्यामिकार्यमानासाकीर्तितातद्विदेशकैः ।

भाषार्थ—ब्रह्म बोझ तेरेको वहां पहुंचा देना और इतनी भृति दूंगा इस भृतिको भृतिके उपदेश करनेवाले कार्यमाना कहते हैं ॥ ८६ ॥

चत्सरेवत्सरेवापिमासिमासिदिनेदिने ।

एतावतीभृतिंतेहंदास्यामीतिचकालिका ॥

भाषार्थ—वर्ष २ में अथवा महीने २ में इतनी भृति तुझे दूंगा इस भृति को कालिका कहते हैं ॥ ८७ ॥

एतावताकार्यमिदंकालेनापित्वयाकृतं ।

भृतिमेतावतींदास्येकार्यकालमिताचसा ॥

भाषार्थ—इतने कालमें इतना काम तुझे करना और इतनी भृति दूंगा इस भृतिको कार्यकालमिता कहते हैं ॥ ८८ ॥

नकुर्याद्भूतिलोपंतुतयाभृतिविलंबनं ।

अवश्यपौष्यभरणाभृतिर्मध्याप्रकीर्तिता ॥

भाषार्थ—भृतिका लोप (अभाव) और देनेमें विलंब न करे जिस भृतिसे भरण पोषण हो उस भृतिको मध्यमा कहते हैं ८९ ॥

परिपोष्याभृतिःश्रेष्ठासमात्राच्छादनीयका भवेदेकस्पभरणंययासाहीनसंज्ञिका ॥ ९० ॥

भाषार्थ—अन्न-वस्त्र-आदिसे जिस भृति से सबका पोषण हो वह भृति श्रेष्ठ होती है और जिससे एककाही पोषण हो उसे हीन भृति कहते हैं ॥ ९० ॥

यथायथातुगुणवान्भृतकस्तद्रूतिस्तथा ।

संयोज्यातुप्रयत्नेननृपेणात्महितायवै ॥

भाषार्थ—जैसे २ गुणवाला भृत्य हो वैसी ही उसकी भृति राजा अपने हितके अर्थ प्रयत्नसे नियत करे ॥ ९१ ॥

अवश्यपौष्यवर्गस्यभरणंभृतकाद्भवेत् ।

तथाभृतिस्तुसंयोज्यायद्योग्याभृतकायवै ॥

भाषार्थ—भृत्यके पोषण करने योग्यका पालन जिस प्रकार होसके वैसीही योग्य भृति (नौकरी) भृत्यके अर्थ संयुक्त करे ९२

येभृत्याहीनभृतिकाःशत्रवस्तेस्वर्यंकृताः ।

परस्वसाधकास्तेतुछिद्रकोशप्रजाहराः ॥

भाषार्थ—जिन भृत्योंकी भृति न्यून है वे अपनेही बनाये शत्रु हैं और वे दूसरेके साधक हैं और छिद्र कोश और पूजाके हरने वाले होते हैं ॥ ९३ ॥

अन्नाच्छादनमात्राहिभृतिःशूद्रादिपुरुषृता ।

तत्पापभाग्यन्यथास्यात्पोषकोमांसभोजिषु

भाषार्थ—शूद्र आदिकोंको ऐसी भृति दे जिससे भोजन वस्त्रका निर्वाह चले क्यों कि जो मांसके भक्षकोंको अधिक भरण पोषण करता है वे उनके हिंसा आदिक पापके भागी होते हैं ॥ ९४ ॥

यद्ब्राह्मणेनापहृतं धनं तत्परलोकदं ।

शूद्राय दत्तमपियन्नरकायैव केवलं ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—जो ब्राह्मणेने धन हरभी लिया है वह परलोकका देनेवाला है और जो धन शूद्रको अपने हाथसे भी दिया हो वह केवल नरकका ही देनेवाला होता है ॥ ९५ ॥

मंदो मध्यस्तथाशीघ्रस्त्रिविधो भृत्य उच्यते ।

समामध्याचश्रेष्ठाचभृतिस्तेषां क्रमात्स्मृता ।

भाषार्थ—मंद—मध्यम—शीघ्र—तीन प्रकारका भृत्य होता है और उनकी भृति भी सम मध्यम श्रेष्ठ भेदसे तीन प्रकारकी होती है ॥ ९६ ॥

भृत्यानां गृहकृत्यार्थं दिवायामं स मुत्सजेत् ।

निशियामत्रयं नित्यं दिनभृत्ये र्धयामकं ॥

भाषार्थ—अपने घरके कार्य करनेके अर्थ एक प्रहरकी छुट्टी भृत्योंको दिनमें और तीन प्रहरकी रात्रिमें और जो दिनका ही भृत्य हो उसे आधे प्रहरकी छुट्टी दे ॥ ९७ ॥

तेभ्यः कार्यकारणीतस्तुत्सवा हैर्विना नृपः ।

अत्यावश्यं तत्सर्वेपि हित्वा श्राद्धदिनं सदा ॥

भाषार्थ—राजा भृत्योंसे काम करावे परन्तु जो दिन उत्सव (दिवाली आदि) के हों उनके विना यदि कार्य आवश्यक होय तो उत्सवमें भी काम करावे परन्तु श्राद्धके दिनोंको सदा त्याग दे अर्थात् काम न ले ॥ ९८ ॥

पादहीनां भृतिं त्वाते दद्यात्त्रैमासिकीं ततः ।

पंचवत्सरभृत्येतु न्यूनानाधिक्यं यथा तथा ॥

भाषार्थ—रोगके समय तीन महीनेकी भृति एक वर्षके रोगीको दे एक चौथाई कम भृति भृत्यको दे और पांचवर्षके भृत्यको तो रोगकी अवस्थामें जैसे तैसे न्यून और अधिक भृति दे ॥ ९९ ॥

षाण्मासिकीं तु दीर्घातैतदूर्ध्वं न च कल्पयेत् ।

नैव पक्षार्धमातस्य हातव्याल्पापि वै भृतिः ।

भाषार्थ—और बहुत दिनके अधिक रोगीको वर्षमें छः महीनेकी भृति दे और इससे आगे न्यून भृतिकी कल्पना न करे और १८ आठ दिनके रोगीकी कुछ भी भृति न काटे ॥ १०० ॥

शश्वत्सदोषितस्यापि ग्राह्यः प्रतिनिधिस्ततः ।

सुमहद्गुणिनं त्वाते भृत्ये र्धकल्पयेत्सदा ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो भृत्य वार २ रोगसे ग्रस्त रहे उसकी जगह प्रतिनिधि रखले और जो भृत्य अत्यंत गुणी हो उसको रोगकी अवस्थामें भी सदा आधी भृति दे ॥ १ ॥

सेवां विना नृपः पक्षं दद्याद्भृत्याय वत्सरे ।

चत्वारिंशत्समानीताः सेवया येनैव नृपः २ ॥

भाषार्थ—भृत्यको एक वर्षमें १५ दिनकी भृति सेवाके विना भी राजा दे और जिसने सेवा करते २ चालीस वर्ष विताये हों उस भृत्यको राजा ॥ २ ॥

ततः सेवां विना तस्मै भृत्ये र्धकल्पयेत्सदा ॥

यावज्जीवं तु तत्पुत्रेक्षमेवालेतदर्थकं ॥ ३ ॥

भाषार्थ—तिसके अनंतर सेवाके विना ही तिसके लिये आधी भृति नियत जीनेतक करे और उसके बालके लिये आधीमेंसे आधी भृति नियत करे ॥ ३ ॥

भार्यायां वा सुशीलायां कन्यायां वा स्वश्रेयसे ।
अष्टमांशं पारितोष्यं दद्याद्भृत्याय वत्सरे ॥

भाषार्थ—सुशील स्त्री और कन्याको अपने कल्याणके अर्थ भृतिका आठवां भाग दे और भृतिका आठवां भाग पारितोषिक भृत्यको दे ॥ ४ ॥

कार्याष्टमांशंवादद्यात्कार्यैर्द्रागधिकंकृतं ।
स्वामिकार्येविनष्टोयस्तत्पुत्रेत्तद्भृतिवहेत् ॥

भाषार्थ—अथवा कामका आठवां भाग दे
और जो काम शीघ्र और मर्यादासे अधिक
किया हो और जो भृत्य स्वामीके कार्यमें
नष्ट हो गया हो तो उसकी भृति उसके
पुत्रको दे ॥ ५ ॥

यावद्दालान्यथापुत्रगुणान्द्राभृतिवहेत् ।
षष्ठांशंवाचतुर्यांशंभृतेर्भृत्यस्यपालयेत् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—इतने भृत्यका पुत्र बालक हो
तिसके अनंतर पुत्रके गुणोंको देखकर भृति
दे छठा भाग अथवा चौथा भाग भृत्यकी
भृतिको पालता रहे अर्थात् उसके भागको
देता रहे ॥ ६ ॥

दद्यात्तदर्धभृत्यायद्वित्रिवर्षेखिलंतुवा ।
वाक्पासुप्याभ्यूनभृत्यास्वामीप्रबलदंडतः

भाषार्थ—दो तीन वर्षमें मासिकका आधा
उस भृत्यको सेवाके बिना दे जो भृत्य कटु-
वचनी हो अथवा सेवाको जिसने यथार्थ न
किया हो ॥ ७ ॥

भृत्यं प्रशिक्षयेन्नित्यं शत्रुत्वं त्वपमानतः ।
भृतिदानेन संपुष्टमानेन पारिवर्धिताः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—अपमानसे भृत्य शत्रु होजाता है
इससे भृत्यको नित्य शिक्षा देता रहे मासि-
कके देनेसे भृत्य पुष्ट होते हैं और मान-
से बढ़ते हैं ॥ ८ ॥

सांत्वितामृदुवाचायेन त्यजन्त्यधिपं हि ते ।
यथागुणान्स्वभृत्यांश्च प्रजाः संरंजयेन्मृपः १

भाषार्थ—जिन भृत्योंको कोमल वचनोंसे
शांत रक्खा है वे अपने स्वामीको नहीं
त्यागते हैं गुणोंके अनुसार अपने भृत्य और
प्रजाकी भली प्रकार रक्षा करा करे ॥ ९ ॥

शाखाप्रदानतः कांश्चिदपरान्फलदानतः ।
अन्यान्सुचक्षुषाहस्यैस्तथाकोमलयागिरा

भाषार्थ—किसी भृत्यको शाखा (मासिकसे
अधिक) देनेसे और किसीको फल (द्रव्य
आदि) देनेसे और किसीको हंसीसे और
किसीको कोमलवाणीसे राजा प्रसन्न
रखे ॥ १० ॥

सुभोजनैः सुवसनैस्तान्बूलैश्च धनैरपि ।
कांश्चित्सुकुशलप्रश्नेरधिकारप्रदानतः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—किनी एक भृत्योंको सुंदर वस्त्रोंसे
और किनी एकांको पानोंसे और किनी एकां
को कुशल पूछनेसे और किनी एकांको अधि-
कारके देनेसे राजा प्रसन्न रखे ॥ ११ ॥

वाहनानां प्रदानेन योग्याभरणदानतः ।
छत्रातपत्रचमरदीपिकानां प्रदानतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—किनी एक भृत्योंको वाहनके
देनेसे और योग्य भूषणोंके देनेसे और छत्री
छतर चंवर और मसालके देनेसे राजा
प्रसन्न रखे ॥ १२ ॥

क्षमया प्रणिपातेन मानेनाभिगमेन च ।
सत्कारेण च ज्ञानेन ह्यादरेण शमेन च ॥ १३ ॥

भाषार्थ—किनी एक भृत्योंको क्षमासे और
नमस्कारसे और सत्कारसे और ज्ञानसे
और आदरसे और किनी एक भृत्योंको
शांतिसे राजा प्रसन्न रखे ॥ १३ ॥

प्रेम्णा समीपवासेन स्वाध्यासनप्रदानतः ।
संपूर्णासनदानेन स्तुत्योपकारकीर्तनात् ॥ १४ ॥

भाषार्थ—और किनी एक भृत्योंको प्रेमसे
और अपने समीप वासके देनेसे और अपने
आधे आसनपर बैठानेसे और संपूर्ण सुदा
आसन देनेसे और किनी एकांको किये हुए
उपकारकी प्रशंसासे प्रसन्न रखे ॥ १४ ॥

यत्कार्ये विनियुताये कार्यैर्करं कथं च तान् ।
लोहजैस्ताम्रजैरीतिभैरजतसंभवैः ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जिस कार्यमें जो भृत्य नियुक्त है
उसी कार्यकी मुद्रासे उन्हें अंकित करे और
वे मुद्रा लोहेकी हों अथवा ताँबेकी अथवा
पीतलकी अथवा चाँदिकी हों ॥ १५ ॥

सौवर्णरत्नजैर्वापि यया योग्यैः स्वलाञ्छनैः ।
प्रविज्ञानाय दूरात्तु वस्त्रैश्च मुकुटैरपि ॥ १६ ॥

भाषार्थ—सेनेकी हों अथवा रत्नोंकी हों
और दूरसे ज्ञानके अर्थ वस्त्र मुकुट आदि
अपने २ यथा योग्य चिह्नोंसे अंकित करे ॥ १६ ॥

वाद्यवाहनभेदैश्च भृत्यान् कुर्यात्पृथक्पृथक् ।
स्वविशिष्टं वयत्रिन्दं दद्यात्करुणचिह्नपः ॥

भाषार्थ—वाद्य (वाजे) और वाहनके भेदसे
भृत्योंको पृथक्कर करे और अपना जो विशिष्ट
चिह्न है उसे राजा किसीको भी न दे ॥ १७ ॥

दशप्रोक्ताः पुरोधाद्या ब्राह्मणाः सर्व एव ते ।
अभावे क्षत्रिया योज्यास्तदभावे तयोरुजाः ॥

भाषार्थ—जो दश पुरोहित आदि कहे हैं
वे सब ब्राह्मणही होने चाहियें जो ब्राह्मण न
मिलें तो क्षत्रिय और क्षत्रिय न मिलें तो
वैश्य होने चाहियें ॥ १८ ॥

नैव शूद्रास्तु संयोज्या गुणवंतोऽपि पार्ष्णिवैः ।
भागग्राही क्षत्रियस्तु साहसाधिपतिश्च सः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—और गुणवालेभी शूद्र पुरोहित
आदि पदविधोपर कदाचित् नियुक्त न करे
भागकरके ग्रहण करनेको और साहस
(फौजदारी) की पदवीपर क्षत्रियको नियुक्त
करे ॥ १९ ॥

ग्रामपोब्राह्मणयोऽप्युज्यः कायस्योलेखकस्तथा
शुल्कग्राही तु वैश्यो हि प्रतिहारश्च पादजः ॥ २० ॥

भाषार्थ—ग्रामका अधिपति ब्राह्मण और
लेखक कायस्य नियुक्त करना शुल्क (मह-
सूल)का अधिपति वैश्य और प्रतिहार (दूत)
शूद्र नियुक्त करना ॥ २० ॥

सेनाधिपः क्षत्रियस्तु ब्राह्मणस्तदभावतः ।
न वैश्यो न च वैशूद्रः कातरश्च कदाचन ॥ २१ ॥

भाषार्थ—सेनाका अधिपति क्षत्रिय और
उसके अभावमें ब्राह्मण और वैश्य और शूद्र
और कातर (कायर) इनकी कभीभी
नियुक्त न करे ॥ २१ ॥

सेनापतिः शूर एव योज्यः सर्वासु जातिषु ।
स संकरचतुर्वर्णधर्मेणैव याव नः ॥ २२ ॥

भाषार्थ—संपूर्ण जातियोंमें सेनापति शूद्रही
नियुक्त करना यह धर्म संकर सहित चारों
वर्णोंका है और यवनोंका नहीं है ॥ २२ ॥

यस्य वर्णस्य यो राजा स वर्णः सुखमेव ते ।
नोपकृतं मन्यते स्म न तु प्यति सुखे वनैः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—जिस वर्णका जो राजा होता है
वह वर्ण सुख पावता है न उपकारको मानता
है और न सेवा करनेसे प्रसन्न होता है ॥ २३ ॥
कयांतरे न स्मरति शंकेते प्रलपत्यपि ।

धुव्यस्तनोति मर्माणितं नृपं भृतकस्त्यजेत् ॥

भाषार्थ—कथन समय पर स्मरण न करे
और कहतेभी शंका रखे क्षोभके समय
मर्मको वीधे ऐसे राजाको भृत्य त्याग दे ॥ २४ ॥

लक्षणं युवराजादेः कृत्स्नमुक्तं समासतः ॥ २५ ॥

भाषार्थ—युवराज आदिकों का लक्षण और
कार्य संक्षेपसे कहा ॥ २५ ॥

इति शुक्रनीतौ युवराजाकथनं नाम ॥
द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

यह शुक्रनीतिमें युवराजके नाम जिसका
ऐसा दूसरा अध्याय समाप्त हुआ

श्रीः ।

शुक्रनीति

(भाषाटीकासहिता)



अध्याय ३ रा

अयसाधारणनीतिशास्त्रं सर्वेषु चोच्यते ।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

भाषार्थ—इसके अनंतर संपूर्णोंका साधारण नीतिशास्त्र कहते हैं संपूर्ण भूतोंकी सब प्रवृत्ति सुखके निमित्त होने वाली मानी है ॥ १ ॥

सुखं च न विना धर्मात् तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥

त्रिवर्गशून्यं नारंभं भजेत्तं चाविरोधयन् ॥ २ ॥

भाषार्थ—धर्मके बिना सुख नहीं होता इससे मनुष्य धर्ममें तत्पर रहे इससे जिसमें धर्म अर्थ काम हों ऐसे कार्यका आरंभ न करें और इनके अनुरोधसे ही आरंभ करें ॥ २ ॥

अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेऽप्युपमः ।

नीचरोमेन खड्गमश्रुनिर्मलां प्रिर्मलायनः ॥

भाषार्थ—सदा संपूर्ण धर्मोंके अनुकूल आचरण करें और रोम नख इमश्रु इनको न रक्खें चरणोंको निर्मल रक्खें मलसे दूर रहे ॥ ३ ॥

स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेषो नुल्लवणोज्ज्वलः
धारयेत्सततं रत्नसिद्धमंत्रमहौषधीः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—स्नानमें तत्पर रहे सुंदर सुगंधिको धारण करें वेषको धारें और उज्ज्वल रहे और निरंतर रत्न सिद्धमंत्र और उत्तम औषधियोंको धारण करें ॥ ४ ॥

सातपत्रपदत्राणो विचरेद्युगमात्रदृक् ।

निशिचातयिके कार्ये दंडी मौलौ सहायवाच ॥

भाषार्थ—छत्र और उपानह सहित विचरे और अपने आगे चापहात भूमिपर दृष्टि रक्खें और आवश्यक कार्यके निमित्त रात्रिमें दंड और मुकुटको धारण करके भृत्यसहित विचरे ॥ ५ ॥

न वे गितो न्यकार्योऽस्यान्न वे गात्रीरयेद्वलात् ।

भक्त्या कल्याणमित्राणि सेवेतेतरदूरगः ॥

भाषार्थ—वेगसे अन्यके कार्यको न करें और वेगसे जलमें न परें और कल्याण और मित्रोंको भक्तिसे सेवे और इतरो (शत्रुओं) से दूर रहें ॥ ६ ॥

हिंसास्तेयान्यथाकामपैशून्यंपरुषानृतं ।
संभिन्नालापव्यापादमभिरुघादृग्विपर्ययं ७

भाषार्थ—हिंसा—चेरि—दुष्टकर्म—खुगली—
कठोरता—झूठ—भेद—वृथावचन—द्रोह—चिंता—
दृष्टिकी विषमता—इनको त्याग दे ॥ ७ ॥

पापकर्मेतिदशधाकायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ।
अवृत्तिव्याधिशोकार्त्तानुवर्तेतशक्तिः ८॥

भाषार्थ—देववाणी मनसे यह दश प्रकार-
का पाप होता है इसको त्याग दे—और दरि-
द्री और रोग और शोकसे जो दुःखी है उ-
नकी अपनी शक्तिके अनुसार पालना
करै ॥ ८ ॥

आत्मवत्सततपश्येदपिकीटपिपीलिकं ।
उपकारप्रधानःस्यादपकारपरेष्वरौ ९ ॥

भाषार्थ—कीड़े—चेंटी—इनको सदा अपने
ही समान देखे और अपकारके योग्य शत्रुके
विषे भी उपकारही मुख्य समझै ॥ ९ ॥

संपद्विपत्स्वेकमनाहेतावीर्षेत्फलैर्न तु ।
कालोहितमिर्तंब्रूयादविसंवादिपेशलं १० ।

भाषार्थ—संपदा और विपत्तिमें एकरस म-
न रखखे कार्यके कारणमें ईर्ष्या करै और
कार्यमें न करै और समयपर हित और प्र-
मित यथार्थ सुंदर वचन कहै ॥ १० ॥

पूर्वाभिभाषीसुमुखःसुशीलःकरुणामृदुः ।
नैकःसुखीनसर्वत्रविस्त्रब्धोनचशंकितः ११

भाषार्थ—सुंदर मुखसे प्रथम बोले और
सुशील और दयावान् कोमल रहै सदा
एक सुखी और विश्वासी शंकावाला नहीं
होता ॥ ११ ॥

नकंचिदात्मनःशत्रुनात्मानंकस्यचिद्रिपुं ।
प्रकाशयेन्नापमानंनचनिःस्नेहतांप्रभोः १२

भाषार्थ—दूसरेको अपना शत्रु और अ-
पनेको दूसरेका शत्रु प्रकाश न करे और
प्रभुका अपमान और प्रीतिके अभावको
भी प्रकाशन करै ॥ १२ ॥

जनस्याशयमालक्ष्ययोयथापरितुष्यति ।
तंतयैवानुवर्तेतपराराधनपांडितः ॥ १३ ॥

भाषार्थ—पराई आराधना (सेवा) करनेमें
चतुर मनुष्य इतर मनुष्यके अभिप्राय को
देखकर जो जिसप्रकार प्रसन्न हो उसी प्र-
कार उसके संग वर्त्ताव करै ॥ १३ ॥

नपीडयेद्दिद्रियाणिनचैतान्यतिलालयेत् ।
इंद्रियाणिप्रमायीनिहरतिप्रसभंमनः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—मनुष्य न तौ इंद्रियोंको पीडा दे
और न अधिक इनके संग प्रीति करै क्यों-
कि मतवाली इंद्रियां बलात्कारसे मनको
हर लेती हैं ॥ १४ ॥

एणोगजःपतंगश्चभृंगोमीनस्तुपंचमः ।

शब्दस्पर्शरूपरसगंधैरेतेहताःखलु ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मृग हेडीके शब्दसे—हाथी ह-
थिनीके स्पर्शसे—पतंग दीपकके रूपसे—भ्र-
मर फूलके रससे—मीन अन्नकी गंधसे ये
पांचौ एक २ इंद्रियके विषयसे मारे जाते
हैं ॥ १५ ॥

एषुस्पर्शोवरस्त्राणांस्वांतहारीमुनेरपि ।

अतोप्रमत्तःसेवेतविषयांस्तुयथोचितान् १६

भाषार्थ—इन इंद्रियोंके निमित्त उत्तम
स्त्रियोंका स्पर्श मुनिकेभी मनको हरता
(बश करता) है इससे अप्रमत्त होकर वि-
षयोंको यथोचित सेवै ॥ १६ ॥

मात्रास्वस्त्रादुद्दित्रावानात्यंतैकांतिकंवसेत् ।
यथासंबंधमाहूयादभाष्याश्वास्यवैस्त्रियं ॥

भाषार्थ—माता-भगिनी—लडिकी—इनके संग बहुत एकांतमें न बैठे नातेके अनुसार संबोधन करके स्त्रियोंको बुलावे ॥ १७ ॥

स्वीयांतुपरकीयांवासुभगेभगिनीतिच ।
सहवासोन्यपुरुषैःप्रकाशमपिभाषणं ॥ १८ ॥

भाषार्थ—अपनी और पराई को सुभगे भगिनी इसप्रकारसे बोले और पुरुषोंके संग-चात और संभाषण न करने दे ॥ १८ ॥

स्वातंत्र्यनक्षणमपिह्यवासोन्यगृहेतथा ।
भर्तापित्रायवाराज्ञापुत्रश्वशुरवांधवैः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—एक क्षणभी स्त्रियोंको स्वतंत्रता न दे और दूसरे के घरमें भर्ता पिता राजा पुत्र श्वशुर भाई बंधु—ये सब स्त्रीको न बसने दे ॥ १९ ॥

स्त्रीणानैवतुदेयःस्याद्दृढकृत्यैर्विनाक्षणः ।
चंडपंडदंडशीलमकामसुप्रवासिनं ॥ २० ॥

भाषार्थ—घरके कार्यके विना स्त्रियोंको एक क्षणभी न रहने दे और जो पुरुष अत्यंत क्रोधी नपुंसक दंडकारक—कामरहित—परदेशवासी ॥ २० ॥

सुदारिद्र्यरोगिणंचह्यन्यस्त्रीनिरतसदा ।
पतिवृष्ट्याविरक्तास्यान्नारीवान्यंसमाश्रयेत् ॥

भाषार्थ—अत्यंत दरिद्री—रोगी सदा अन्यस्त्रीमें रहते उस पतिको देखकर विरक्त हो जाय अथवा दूसरे पुरुषके आश्रय हो ॥ २१ ॥

त्यक्त्वैतान्दुर्गुणान्यत्नात्तत्तोरक्ष्याःस्त्रियो नरैः ।
वस्त्रान्नभूषणप्रेममृदुवाग्भिश्चशक्तितः

भाषार्थ—वस्त्र—अन्न—भूषण—प्रीति—और कोमल वाणीसे शक्तिके अनुसार यत्नसे इन दुर्गुणोंको त्यागकर मनुष्य स्त्रियोंकी रक्षा ॥ २२ ॥

स्वात्यंतसन्निकर्षेणस्त्रियंपुत्रंचरक्षयेत् ।
चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुपाशु चीन् ॥ २३ ॥

भाषार्थ—अपनी अत्यन्त समीपतासे स्त्री और पुत्रकी रक्षा करे और चबूतरा पूज्य—ध्वजा उत्तमोंकी छाया—भस्म—जो अमंगल है इनका अवलंघन न करे ॥ २३ ॥
नाकामेच्छर्करालोष्ठबलिस्नानभुवोपिच ।
नदींतरेव्रवाहुभ्यानाग्निस्कन्नमभिप्रजेत् ॥

भाषार्थ—कंकर—डोला—भेट—स्नानकी भूमि इनकोभी अवलंघन न करे और भुजाओंसे नदीको न तैरे और विस्तारको प्राप्तहुई अग्निके सम्मुख न जाय ॥ २४ ॥

संदिग्धनावंवृक्षंचनारोहेद्दुष्टयानवत् ।

नासिकानंविकृष्णीयान्नाकस्माद्विलिखेच्चुर्वं
भाषार्थ—टूटी नाव और यान और वृक्षपर न चढ़े जैसे दुष्टसवारीमें अपनी नाकको न खुजावे और विना प्रयोजन पृथिवीको न खोदे ॥ २५ ॥

नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकंडूयेदात्मनःशिरः ॥
नागैश्चेष्टेताविगुणनाशीतोत्कटुकांचिरं ॥ २६ ॥

भाषार्थ—मिले हुए हाथोंसे अपने शिरको न खुजावे और अपने अंगकी निरर्थक चेष्टा न करे और बहुत दिनतक खड़े पदार्थको न खाय ॥ २६ ॥

देहवाक्चेतसांचेष्टाःप्राक्छमाद्विनिवर्तयेत्
नोर्ध्वजानुश्चिरंतिष्ठेन्नक्तंवेवेतनदुर्मं ॥ २७ ॥

भाषार्थ—श्रम करके अपने देह-वाणी-मन इनकी चेष्टाओंको त्यागदे और बहुत देरतक ऊपरको गोड़े करके न बैठे और रात्रिके समय वृक्षपर न रहे ॥ २७ ॥

तथाचत्वरचैत्यांतचतुष्पयसुरालयान् ।

शून्याटवीशून्यगृहस्मशानानिदिवापिन २८

भाषार्थ—चैत्य (चवूतरा)-शून्य आंगन चौराहा देवमंदिर और शून्यवन और शून्य गृह और श्मशान इनको दिनमें भी न सेवै अर्थात् इनमें न वसै ॥ २८ ॥

सर्वथेक्षेतनादित्यंनभारंशिरसावहेत् ।

नेक्षेतप्रततंसूक्ष्मदीप्तामेध्याप्रियाणिच २९

भाषार्थ—सूर्यको निरंतर न देखै शिरपर वोझ लेकर न चलै और सूक्ष्म पदार्थकोभी निरंतर न देखै और प्रकाशमान अपवित्र और अप्रिय इनकोभी निरंतर न देखै ॥ २९ ॥

संध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्राध्ययनचितनं ।

मद्यविक्रयसंधानदानादानानिनाचरेत् ३०

भाषार्थ—संध्याके समय भोजन-शय्या-पठना-इतनेकी चिंता न करै और मदिराका बेचना निकासना पीना और पिलाना इनको न करै ॥ ३० ॥

आचार्यःसर्वचेष्टासुलोकएवाहिधिमितः ।

अनुकुर्यात्तमेवातोलौकिकार्थेपरीक्षकः ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान मनुष्यका जगतके लोकही संपूर्ण कार्योंमें आचार्य है इससे परीक्षा करनेवाला मनुष्य आचार्यकाही अनुयायी रहै ॥ ३१ ॥

राजदेशकुलजातिसद्धर्मान्नैवदूषयेत् ।

शक्तोपलौकिकाचारंमनसापिनलंघयेत् ।

भाषार्थ—राजा-देश-कुल-जाति इनके उत्तम धर्ममें दूषण न लगावै और समर्थ होकरभी लौकिक आचरणका अवलंघन न करै ॥ ३२ ॥

अयुक्तंयत्कृतंचोक्तंनबलाद्धेतुनोद्धरेत् ।

दुर्गुणस्यचवक्तारःप्रत्यक्षंविरलाजनाः ॥

भाषार्थ—जो अयोग्य कर्मको किसीने किया हो अथवा कहा हो उसका बलसे स-

माधान करै कि प्रत्यक्ष दुर्गुणके कहनेवाले मनुष्य विरले होते हैं ॥ ३३ ॥

लोकतःशास्त्रतोज्ञात्वाह्यतस्त्याज्यांस्त्यजेत्सुधीः ।

अनयनयसंकाशंमनसापिनचितयेत् ॥ ३४

भाषार्थ—लोक और शास्त्रसे त्यागने योग्य कर्मोंको जानकर बुद्धिमान् मनुष्य त्यागदे और न्यायके समान प्रतीति होते अन्यायकी मनसेभी चिंता न करै ॥ ३४ ॥

अहंसहस्रापराधीकिमेकेनभवेन्मम ।

मत्वानाधंस्मरेदीषद्विदुनापूर्यते घटः ३५ ॥

भाषार्थ—मैं हजारों अपराधोंका करनेवाला हूँ इस एक पाप करिके मेरा क्या बुरा होगा यह मानकर किंचित्भी पापका स्मरण न करै क्योंकि बूढ़ २ से ही घटा भरता है ॥ ३५ ॥

नक्तंदिनानिमेयांतिकथंभूतस्यसंप्रति ।

दुःखभाग्नभवत्येवंनित्यंसन्निहितस्मृतिः ३६

भाषार्थ—अब मेरे रातदिन कैसे बीतते हैं इससे दुःखी न हो और नित्य स्मरण रखै ॥ ३६ ॥

समासव्यूहहेत्वादिकृतेच्छार्थविहायच ।

स्तुत्यर्थवादान्संत्यज्यसारंसंगृह्यतनतः ॥

भाषार्थ—संक्षेप और विस्तारके कारणके लिये अपनी इच्छाको त्याग दे और बड़ाईके वृथा वचनोंको भी त्यागकर सारको यत्न से ग्रहण करके ॥ ३७ ॥

धर्मतत्वंहिगहनमतःसत्सेवितनरः ।

श्रुतिस्मृतिपुराणानांकर्मकुर्याद्विचक्षणः ॥

भाषार्थ—सत्पुरुषोंने सेवन किया जो गहन (गंभीर) धर्मका तत्त्व उसको विचारै और श्रुतिस्मृतिमें कहे कर्मको ज्ञानवान् करै ॥ ३८ ॥

नगोपयेद्वासयेच्चराजामित्रंसुतंगुरुम् ॥
अधर्मनिरतंस्तेनमाततायिनमप्युतः ३९॥

भाषार्थ—राजा अधर्म करते हुएको और जो चौर आततायी हो ऐसे मित्र पुत्र और गुरुकोभी न छिपावे किंतु राजसे निकासदे ॥

अग्निदोगरदश्चैवशस्त्रोन्मत्तोधनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैतान्पट्टिद्यादाततायिनः ॥

भाषार्थ—ये छः आततायी होते हैं अग्नि लगानेवाला विष देनेवाला शस्त्रसे उन्मत्त धन चुरानेवाला खेत हरनेवाला और स्त्री हरनेवाला ॥ ४० ॥

नोपेक्षेतास्त्रियंवालरोगंदासंपशुंधनं ।
विद्याभ्यासंक्षणमपिसत्सेवावुद्धिमात्ररः ॥

भाषार्थ—बुद्धिवाला मनुष्य इनको एकक्षण भी न छोड़े स्त्री—वालक—रोग—दास—पशु—धन और विद्याका अभ्यास सज्जनसेवा ॥ ४१ ॥

विरुद्धोयत्रनृपतिर्धनिकःश्रोत्रियोभिपक् ।
आचारश्चतथादेशोनतत्रदिवसंवसेत् ४२ ॥

भाषार्थ—जिस देशमें राजा विरुद्ध हो वेदपाठी धनी हो वैद्य आचारवान् हो उस देशमें एक दिनभी न बसे ॥ ४२ ॥

नपुंसकश्चस्त्रीर्वालश्चंडोमूर्खश्चसाहसी ।
यत्राधिकारिणश्चैतेनतत्रदिवसंवसेत् ४३ ॥

भाषार्थ—जिस राजके राज्यमें नपुंसक—स्त्री—वालक अत्यंत क्रोधी मूर्ख साहसी अधिकारी हो वहां एकदिनभी न बसे ॥ ४३ ॥

अविवेकीयत्रराजासभ्यायत्रतुपाक्षिकाः ।
सन्मार्गोऽज्ञितविद्वांसःसाक्षिणोनृतवादिनः

भाषार्थ—जहां राजा अविवेकी हो सभासद पक्षपात करे पंडितजन सन्मार्गी न हों साक्षी (गवा) झूट बोले वहांभी न बसे ४४

दुरात्मनांचप्रावल्यंस्त्रीणांनीचजनस्यच ।
यत्रनेच्छेद्धनंमानंवसतितत्रजीवितम् ४५ ॥

भाषार्थ—जहां दुष्ट स्त्री नीच इनकी प्रवृत्ता हो वहां धन मान वास जीवन इनकी इच्छा न करे ॥ ४५ ॥

मातानपालयेद्वाल्येपितासाधुनक्षिपेत् ।
राजायदिहरेद्रितंकातत्रपरिदेवना ४६ ॥

भाषार्थ—जो वालकअवस्थामें माता पालन न करे और पिता भली प्रकार शिक्षा न दे और राजा अपने धनको हरेले तौ शोककी इसमें क्या बात है ॥ ४६ ॥

सुसेविताःप्रकुप्यंतिभिन्नस्वजनपार्थिवाः ।
गृहमग्न्यशनिहतंकातत्रपरिदेवना ४७ ॥

भाषार्थ—यदि भली प्रकार सेवा करनेसे भी मित्र वा अपने भाई बंधु और राजा क्रोध करे और अपना घर अग्नि वा विजलीसे नष्ट हो जाई तौ वहां शोककी क्या बात है ॥ ४७ ॥

आप्तवाक्यमनात्हत्यदर्पेणाचरितंयदि ।
फालितंविपरीतंतत्कातत्रपरिदेवना ४८ ॥

भाषार्थ—यदि किसीसज्जनके वचनको न मानकर अभिमानसे कोई काम किया होय और उसका फल विपरीत होजाय तौ वहां क्या शोककी बात है ॥ ४८ ॥

सावधानमनानित्यंराजानंदेवतांगुरुं ।
अग्निं तपस्विनंधर्मज्ञानवृद्धंसुसेवयेत् ४९ ॥

भाषार्थ—राजा—देवता—गुरु—अग्नि—तपस्वी और धर्ममें और विद्याज्ञानमें जो बड़ी इनकी सदैव सावधान होकर भली प्रकार सेवा करे ॥ ४९ ॥

मातृपितृगुरुस्वामीभ्रातृपुत्रसखिष्वपि ।
नविरुद्धेन्नापकुप्यान्मनसापिक्षणंकाचित् ॥

भाषार्थ—माता—पिता—गुरु—स्वामी—आई—
पुत्र—और मित्र इनके संग एकक्षण मात्रभी
मनसे कभी विरोध और इनका तिरस्कार न
करै ॥ ५० ॥

स्वजनैर्न विरुध्येत न स्पर्धेत बलीयसा ।

न कुर्यात्स्त्रीबालवृद्धमूर्खेषु च विवादनं ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—स्वजनों (कुटुंबके मनुष्यों) के
साथ बलसे विरोध न करै और स्त्री—बालक
वृद्ध—मूर्ख—इनके साथ विवाद न करै ॥ ५१ ॥

एकः स्वादु न भुंजीत एक अर्थान्नं चिंतयेत् ।

एको न गच्छेद्धान्नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥

भाषार्थ—अकेला स्वादु भोजन न करै
और अकेला अर्थकी चिन्ता न करै अकेला
मार्गमें न चलै और सोतेसे अकेला न
जागै ॥ ५२ ॥

नान्यधर्महिंसेष्वेत न द्रुह्याद्वैकदाचन ।

हीनकर्मगुणैः स्त्रीभिर्नासितैकासनैकचित् ।

भाषार्थ—अन्यके धर्मको न करै और कि-
सीके संग द्रोह न करै और नीच है कर्म
और गुण जिसके उनके संग और स्त्रियोंके
संग एक आसनपर कभी न बैठै ॥ ५३ ॥

षट्दोषा पुरुषेणेह हातव्याभूतिमिच्छता ।

निद्रातंद्राभयक्रोधआलस्यदीर्घसूत्रता ।

भाषार्थ—बड़ाई चाहनेवाला पुरुष इन छः
दोषोंको त्यागदे कि निद्रा—तंद्रा (उदासी
नता) भय—क्रोध—आलस्य—दीर्घसूत्रता ५४

प्रभवति विघाताय कार्यस्यैतेन संशयः ।

उपायज्ञश्च योगज्ञस्तत्त्वज्ञः प्रतिभानवान् ।

भाषार्थ—क्यों कि ये छःओं कार्यके नाश
करनेमें समर्थ हैं इसमें संशय नहीं है और
उपाय और युक्ति और तत्त्वको मनुष्य जाने
और सदैव पैनी बुद्धिवाला रहै ॥ ५५ ॥

स्वधर्मनिरतोनित्यं परस्त्रीपुत्राद्मुखः ।

वक्तो हवान् चित्रकथः स्यादकुंठितवाक् सदा ।

भाषार्थ—और सदैव अपने धर्ममें तत्पर
रहै और पराई स्त्रियोंका त्याग करै और
बोलनेमें तत्पर रहै विचित्र कथा कहै और
वाणी कुंठी कभी न कहै ॥ ५६ ॥

चिरं संशृणुयान्नित्यं जानीयात्क्षिप्रमेव च ।

विज्ञाय प्रभजेदर्थान्नकामं प्रभजेत्कचित् ॥

भाषार्थ—चिरकालतक नित्य सुने और
शीघ्र जाना करै जानकर द्रव्यका विभाग
और कचित् इच्छा न होय तौ विभाग न
करै ॥ ५७ ॥

क्रयविक्रयस्यातिलिप्सां स्वदैर्न्यदर्शयेन्न हि
कार्यं विनान्यगेहेन नाशातः प्रविशेदपि ५८ ॥

भाषार्थ—लेनेदेनकी अधिक इच्छाके
लिये अपनी दीनता न दिखावै और कार्यके
विना आशासे दूसरेके घरमें प्रवेश न
करै ॥ ५८ ॥

अपृष्टो नैव कथयेद्बहुकृत्यं तु कं प्राति ।

बह्वर्था ल्पाक्षरं कुर्यात्सिद्धापकार्यसाधकं ॥

भाषार्थ—घरका कार्य विनापुंछै किसीसे
न कहै और दूसरेके संग ऐसी बात चीत
करै जिसे अर्थ बहुत और अक्षर थोड़े हों
और जिसमें कार्यकी सिद्धि हो ॥ ५९ ॥

न दर्शयेत्स्वाभितममनुभूताद्दिना सदा ।

ज्ञात्वा परमतं सम्यक्तेनाज्ञातोत्तरं वदेत् ॥

भाषार्थ—अनुभूतके विना (अजानेको)
अपने अभिप्रायको न दिखावै (न बतावै)
और दूसरेके मत (अभिप्राय) को भली
प्रकार जानकर उत्तर दे ॥ ६० ॥

दंपत्योः कलहे साक्ष्यं न कुर्यात्पितृपुत्रयोः ।

सुगुप्तः कृत्यभंक्तः स्यान्नृत्यजेच्छरणगतं ॥

भाषार्थ—स्त्री और पुरुषकी और पिता पुत्रकी साक्षी न दे और संमति (सलाह) को छिपाकर कर और शरण आयेका परित्याग न करे ॥ ६१ ॥

ययाशक्तिचिकीपंतुकुर्यान्मुह्येन्ननापदि ।

कस्यचिन्नस्पृशेन्मर्ममिथ्यावादनं कस्यचित् ।

भाषार्थ—करनेको अभीष्ट कार्यका यथा शक्ति करे और आपत्तिकालमें मोहको न प्राप्त हो किसीके मर्मका न स्पर्श करे और किसीके मिथ्याअपवादको न करे ॥ ६२ ॥

नाष्टीलंकीर्तयेत्कांचित्प्रलापनचकारयेत् ।

अस्वर्ग्यस्याद्धर्म्यमपिलोकाविद्वेपितंतुयत् ॥

भाषार्थ—अयोग्य और अनर्थक वचन किसीके प्रति न कहें क्योंकि सब जगत्का जिसमें धरहो वह धर्मका कामभी स्वर्ग देने वाला नहीं होता ॥ ६३ ॥

स्वहेतुभिर्न हन्येत कस्य वाक्यं कदाचन ।

प्रविचार्योत्तरं देयं सहसान्वदेत्कचित् ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—अपने वनाये कारणोंसे किसीके वचनोंको नष्ट न करे और विचारकर उत्तर दे और शीघ्र उत्तर न दे ॥ ६४ ॥

शत्रोरापि गुणाग्राह्याशुरोस्त्याज्यास्तु दुर्गुणा

उत्कर्षो नैव नित्यः स्यान्नापकर्षस्तथैव ६५ ॥

भाषार्थ—शत्रुकेभी गुण ग्रहण करने और गुरुकेभी अपगुण त्यागने योग्य हैं क्योंकि बड़ाई और छोटापन सदा नहीं रहते ॥ ६५ ॥

प्राक्कर्मवशतो नित्यं सधनानिर्धनो भवेत् ।

तस्मात्सर्वेषु लोकेषु भैत्री नैव च हापयेत् ६६ ॥

भाषार्थ—पूर्वजन्मके कर्मोंसे धनवान् वा निर्धन होता है जिससे संपूर्ण लोकोंके संग मित्रताको न त्यागें ॥ ६६ ॥

दीर्घदर्शी सदा च स्यात्प्रत्युत्पन्नमतिः कश्चित् साहसी शालसी चैव चिरकारभिवेद्वाहि ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—सदा दीर्घदर्शी (होनहारको जो पहंचाने) रहे और कभी शतकाल बुद्धिभी रहे और शीघ्र करने वाला और आलसी और विलंबमें कार्य करने वाला न रहे ॥ ६७ ॥

यः सुदुर्निष्फलं कर्म ज्ञात्वा कर्तुं व्यवस्यति ।

द्रागादौ दीर्घदर्शी स्यात्सचिरं सुखमश्नुते ॥

भाषार्थ—वृथा कर्मोंको भी जानकर जो किया चाहता है और पहिलेही जो शीघ्र दीर्घदर्शी होता है वह चिरकाल तक सुख भोगता है ॥ ६८ ॥

प्रत्युत्पन्नमतिः प्राप्तां क्रियां कर्तुं व्यवस्यति ।

सिद्धिः सांशयिकी तत्र चापल्यात्कार्यं गौरवात् ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—बुद्धिको प्राप्त होकर जो कार्यके समयमेंही जो कार्यकिया चाहता है उसकार्य की सिद्धिमें मनुष्यही चपलताही और कार्यकी गौरवतासे संशय होता है ॥ ६९ ॥

यतते नैव कालेपि क्रियां कर्तुं च शालसः ।

नसिद्धिस्तस्य कुत्रापि स नश्यति च सान्वयः ॥

भाषार्थ—आलसी मनुष्य कार्यके समयमें भी कार्यकरनेमें यत्न नहीं करता उसमनुष्यकी कहींभी सिद्धि नहीं होती और वह वंशसहित नष्ट होजाता है ॥ ७० ॥

क्रियाफलमविज्ञाय यतते साहसी च सः ।

दुःखभागी भवत्येव क्रियायां तत्फलेन वा ७१ ॥

भाषार्थ—क्रियाफलमविज्ञाय यतते साहसी च सः । दुःखभागी भवत्येव क्रियायां तत्फलेन वा ७१ ॥

भाषार्थ— जो मनुष्य कार्यके फलको विनाजानकर यत्न करताहै वह साहसी शीघ्रकारीहै और कार्य और कार्यके फलमें वह मनुष्य दुःखकाही भागी होताहै ॥७१॥

महत्कालेनाल्पकर्मचिरकारीकरोति च ।

सशोचत्यल्पफलतो दीर्घदर्शी भवेदतः ॥७२॥

भाषार्थ—जो अल्पकार्यको बड़े कालमें करे उसे चिरकारी कहतेहैं और वह अल्प फलकी प्राप्तिसे पीछे शोचकरताहै इससे मनुष्यको दीर्घदर्शी होना चाहिये ॥ ७२ ॥

सुफलं तु भवेत्कर्म कदाचित्सहस्राकृतं ।

निष्फलं वापि प्रभवेत्कदाचित्सुविचारितम् ॥

भाषार्थ—और कभी शीघ्र किया हुआ भी कर्म अधिक फलदायी होजाताहै और भली प्रकारसेभी कियाहुआ कर्म कदाचित् निष्फल होजाताहै ॥ ७३ ॥

तथापि नैव कुर्वीत सहस्रानर्थकारितत् ।

कदाचिदपि संजातमकार्यादिष्टाधनम् ॥

भाषार्थ—तौभी सहसा (शीघ्र) कर्मको न करे क्योंकि वह अनर्थकारी होताहै और कदाचित् कुकर्मसेभी इष्टकी सिद्धि होजाताहै यदनिष्टं तु सत्कार्यान्नाकार्यप्रेरकं हितत् ।

भृत्यो भ्रातापि वा पुत्रः पत्नी कुर्यान्न चैव यत् ॥

भाषार्थ—और जिस सत्कर्मसे जो अनिष्ट हो जाय वह सत्कर्म उस अनिष्टका प्रेरक नहीं होता जिसकार्यको भृत्य भाई स्त्री न कर सकें ॥ ७५ ॥

विधास्यंति च मित्राणि तत्कार्यमविशंकितम् ।

अतो यतेत तत्प्राप्त्यै मित्रं लब्धिवर्षान्नुणाम् ॥

भाषार्थ—उसकार्यको निःसंदेह मित्र कर सकेंगे इससे मित्रकी प्राप्ति के लिये यत्न करे क्योंकि मनुष्योंको मित्रकी प्राप्ति बड़ी श्रेष्ठ है ७६

नात्यंतं विश्वसेत् किंचिद्विश्वस्तमपि सर्वदा ।

पुत्रं वा भ्रातरं भार्याममात्यमधिकारिणम् ॥

भाषार्थ—सदा विश्वासवालेका अत्यंत विश्वास न करे पुत्र भाई स्त्री मंत्री और अधिकारी इनकाभी विश्वास न करे ॥ ७७ ॥

धनस्त्रीराज्यलोभो हि सर्वेषामधिको यतः ।

प्रामाणिकं चानुभूतमाप्तं सर्वत्र विश्वसेत् ७८ ॥

भाषार्थ—क्योंकि धन स्त्री राज्य इनका लोभ सबसे अधिकहै और जो प्रामाणिकहै और जिसको बताय रखवाहो और जो यथार्थ वादी हो उसका विश्वास सदैव करे ॥ ७८ ॥

विश्वासित्वात्मवद्गूढस्तत्कार्यं विमृशेत् स्वयं ।

तद्वाक्यं तर्कतो नार्थविपरीतान् चिंतयेत् ॥७९॥

भाषार्थ— जो विश्वाससे समान हो गया हो उसके कार्यको स्वयं विचारें उसके वाक्य को तर्कनासे और विपरीत न जायें ॥ ७९ ॥

चतुःषष्टितमांशं तन्नाशितं शमयेदथ ।

स्वधर्मनीतिं बलवान्तेन मैत्री प्रधारयेत् ॥८०॥

भाषार्थ—चौसठवा जो सेवक नष्ट करदे उसपर क्षमा करे और अपना नीति धर्म बल इनवाला जो पुरुष उसके संग मित्रता करे ॥ ८० ॥

दानैर्मनैश्च सत्कारैः सुपूज्यान् पूजयेत् सदा ।

कदापि नो ग्रदं ह स्यात्कटुभाषणतत्परः ॥८१॥

भाषार्थ—दान मान और सत्कारोंसे पूजने योग्योंका सदैव पूजन करे और राजा उग्र दंडका दाता और कटुवचनका वक्ता कभी न हो ॥ ८१ ॥

भार्या पुत्रोऽप्युद्विजते कटुवाक्यात्प्रदंडतः ।

पशवोऽपि वश्यांति दानैश्च मृदुभाषणैः ॥८२॥

भाषार्थ—कटु वचन और उग्र दंडसे स्त्री और पुत्रभी कंपतेहैं और दान देना और कोमल वचनसे पशुभी वशमें होजातेहैं ८२ ॥

नविद्ययानशौर्येणधनेनाभिजनेनच ।

नवल्लेनप्रमत्तस्याच्चातिमानिकदाचन ८३ ॥

भाषार्थ—विद्या शूरवीरता धन कुल बल इनसे कभी प्रमत्त नहीं और न अत्यंत मान-करै ॥ ८३ ॥

नाप्तोपदेशसंवेत्तिविद्यामत्तस्वहेतुभिः ।

अनर्थमप्यभिप्रेतमन्यतेपरमार्थवत् ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—विद्यासे उन्मत्त पुरुष अपने हेतुओंसे आप्तोंके उपदेशको नहीं जानता और अपने वांछित अनर्थकोभी परमार्थके समान मानताहै ॥ ८४ ॥

शौर्यमत्तस्तुसहसायुद्धं कृत्वा जहात्यसून् ।

व्यूहादियुद्धकोशल्यतिरस्कृत्यचशात्रवान् ।

भाषार्थ—शूरवीरतासे उन्मत्त पुरुष शीघ्रही युद्धकरके और राजाओंके व्यूह (समूह) की कुशलतासे शत्रुओंका तिरस्कार करके अपने प्राणोंको त्याग देताहै ॥ ८५ ॥

श्रीमत्तपुरुषोवेत्तिनदुष्कृतिर्मजोयथा ।

स्वमूत्रगंधंमूत्रेणसुखमासिंचतेस्वकं ॥ ८६ ॥

भाषार्थ—लक्ष्मीसे उन्मत्त पुरुष अपनी कुकीर्तिको नहीं जानता और वह पुरुष अपने मूत्रकी दुर्गंधिवाले मुखको अपने मूत्रसे ही बकरके समान सींचताहै ॥ ८६ ॥

तथाभिजनमत्तस्तुसर्वानेवावमन्यते ।

श्रेष्ठानपीतरान्सम्यगकार्यंकुरुतेमतिं ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—तिसीप्रकार अपने कुलसे उन्मत्त संपूर्ण इन श्रेष्ठोंकाही तिरस्कार करताहै और निन्दित कामोंमें मतिको करताहै ॥ ८७ ॥

बलमत्तस्तुसहसायुद्धेविदधतेमनः ।

वल्लेनबाधतेसर्वानश्वादीनपिह्यन्यथा ८८ ॥

भाषार्थ—बलसे उन्मत्तपुरुष शीघ्रही युद्धमें मन लगाताहै यह पुरुष बलसे सबको पीटा देताहै और अश्व आदिभी वृथाहै ८८ मानमत्तोमन्यतेस्मत्पुणवच्चासिलंजगत् । अनर्होपिचसर्वेभ्यस्त्वत्पार्थासनमिच्छति ॥

भाषार्थ—मानसे उन्मत्त पुरुष संपूर्ण जगत्को टूणके समान मानताहै और सबसे अयोग्य होनेपरभी ऊंचे आसनकी इच्छा करताहै ॥ ८९ ॥

मदाएतेवाल्लिप्तानांसतामेतेदमाःस्मृताः ।

विद्यायाश्चफलंज्ञानंविनयश्चफलंश्रियः ९०

भाषार्थ—अभिमनियोंके ये मद होतेहैं और सत्पुरुषोंके येही दम कहेहैं विद्याका फल-ज्ञानहै और लक्ष्मीका फल विनयहै ॥ ९० ॥

यज्ञदानेवल्लफलंसद्रक्षणमुदाहृतं ।

नामिताःशत्रवःशौर्यफलंचकरदीकृताः ९१

भाषार्थ—यज्ञ और दानका फल और सज्जनोंकी रक्षा कहाहै और शूरवीरताका फल यहहै कि शत्रुओंको नवाना और उनसे कल्लेना ॥ ९१ ॥

शमोदमश्चार्जवंचाभिजनस्यफलंत्विदं ।

मानस्यतुफलंचैतत्सर्वस्वसदृशाइति ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—और उत्तम कुलका यह फलहै कि शांति ईद्रियोंका दमन और नम्रता करना और मान बढाईका फल यहहै सबको अपने समान समझना ॥ ९२ ॥

सुविद्यामंत्रमैषज्यस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ।

गृण्हीयात्सुप्रयत्नेनमानमुत्सृज्यसाधकः ॥

भाषार्थ—उत्तम विद्या मंत्र वैद्य विद्या उत्तमस्त्री इनको नीचे कुलसेभी साधक (कार्यकरने वाला) मानको त्यागकर ग्रहण-करै ॥ ९३ ॥

उपेक्षेतप्रनष्टयत्प्राप्तंयत्तदुपाहरेत् ।

नवालंनस्त्रियंचातिलालयेत्ताडयेन्नच १४॥

भाषार्थ—जो नष्टवस्तुकी उपेक्षा करै और प्राप्तवस्तुको ग्रहण करै बालक स्त्री इनका न अत्यंत लाड करै और न अत्यंत ताड़नादे ॥ १४ ॥

विद्याभ्यासेगृह्यकृत्येतावुभौयोजयेत्क्रमात् ।
परद्रव्यंक्षुद्रमपिनादत्तंसंहरेदणु ॥ १५ ॥

भाषार्थ—विद्याके अभ्यासमें और गृह्यकृत्यमें इन दोनोंको क्रमसे नियुक्त करै क्षुद्र और अल्पभी परद्रव्यको बिनादिये ग्रहण न करै ॥ १५ ॥

नोच्चारयेदधं कस्यस्त्रियंनैवचद्रूपयेत् ।
नब्रूयादनुतंसाक्ष्यंकृतंसाक्ष्यंनलोपयेत् १६

भाषार्थ—किसीके पापका उच्चारण न करै स्त्रीको दोष न लगावै और झूठी साक्ष्य (गवाही) नदे और साक्ष्यका लोपन करै १६

प्राणान्त्ययेनृतंब्रूयात्सुमहत्कार्यसाधने ।
कन्यादात्रेतुल्यधनंदस्यवेसधनंनरं ॥ १७॥

भाषार्थ—प्राणका नाशमें बड़े कार्यका साधनमें झूठ बोले और कन्याके देनेवालेको निर्धन और चौरको धनवाला ॥ १७ ॥

शुभंजिघांसवैनैवविज्ञातमपिदर्शयेत् ।
जायापत्योश्चपित्रोश्चभ्रात्रोश्चस्वामिभृत्य-
योः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हिंसा करनेवालेको रक्षित इन जाने हुएकोभी नबतवै जायापति स्त्री पुरुष माता पिता दोभाई स्वामी भृत्य (नोकर) ॥ १८ ॥

भगिन्योर्मित्रयोर्भेदंनकुर्व्याद्भरुशिष्ययोः ।
नमध्याह्नमनंभाषाशालिनोःस्थितयोरपि ॥

भाषार्थ—दोबहन और दोभाई गुरु शिष्य (चिला) इनमें भेद न करै वार्ता करते हुए दोपुरुषोंके और बैठे हुए दोपुरुषोंके बीचमें होकर नजाय ॥ १९ ॥

सुहृदंभ्रातरंबंधुमुपचर्यात्सदात्मवत् ।
गृहागतंक्षुद्रमपियथाहंपूजयेत्सदा ॥ २०० ॥

भाषार्थ—मित्र-भाई-बंधु-इनकी सदैव अपने समान सेवा करै और घरआये क्षुद्र भी इनकी यथायोग्य सदैव पूजा करै २००॥

तदीयकुशलप्रश्नःशक्त्यादानैर्जलादिभिः ।
सपुत्रस्तुगृहेकन्यांसपुत्रांवासयेन्नहि ॥ २१ ॥

भाषार्थ—और अपनी शक्तिके अनुसार जल आदि दानोंसे कुशल प्रश्न पूछै और पुत्र सहित (सपुत्र) पुत्र सहित कन्याको नवसावै ॥ २१ ॥

सभर्तृकांचभगिनीमनाथेतुपालयेत् ।
सर्पोभिर्दुर्जनोराजाजामाताभगिनीसुतः ॥ २२ ॥

भाषार्थ—भर्तार सहित भगिनीको घरन वसावै और अनाथ (असमर्थ) होतौ पालन करै-और सर्प-अग्नि-दुर्जन-राजा-जामाता-भगिनीसुत ॥ २२ ॥

रोगःशत्रुर्नावमान्योप्यल्पइत्युपचारतः ।
क्रौर्यात्तैक्ष्ण्यदुःस्वभावात्स्वामित्वात्पुत्रिका
भयात् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—रोग-शत्रु-इनको अल्प समझ कर उपचार (इलाज) से अपमान न करै किंतु क्रूरताके भयसे सर्पका तेजके भयसे अग्निका-दुःस्वभावके भयसे दुर्जनका-स्वामीके भयसे राजाका पुत्रिका (कन्या) के दुःखके भयसे जामाताका ॥ ३ ॥

स्वपूर्वजपिंडदत्तादृद्धिभीत्याउपाचरेत् ।
ऋणशेषरोगशेषशत्रुशेषनरक्षयेत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—और अपने पुरुषोंका पिंडका दाता होनेसे भानजेका और बढनेके भयसे रोगका—और भीतिसे शत्रुका सदैव उपचार (सेवा) करें और ऋण—रोग—शत्रु—इनके शेषकी रक्षा न करें अर्थात् इनको निर्मूल करदे ॥ ४ ॥

याचकाद्यैः प्रार्थितः सन्नतीक्ष्णंचोत्तरं वदेत् ।
तत्कार्यं तु समर्थं श्रेष्ठकुर्याद्वाकार्यं तच्च ॥ ५ ॥

भाषार्थ—और याचक आदि प्रार्थना करें तो उनको तीखा उत्तर न दे और समर्थ हो तो इनके कार्यको करें अथवा करादे ॥ ५ ॥

दातॄणां धार्मिकाणां च शूराणां कीर्तनं सदा ॥
शृणुयात्तु प्रयत्नेन तच्छिद्रं नैव लक्षयेत् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—दाता—धार्मिक—शूरा—इनकी—कीर्तिको बडे यत्नसे सुनै और छिद्रको न देखे ॥ ६ ॥

काले हितमिताहारा विहारी विधसाशनः ।
अदीनात्मा च सुस्वप्नः शुचिः स्यात्सर्वदानरः

भाषार्थ—समय पर हितकारी और प्रमित भोजन और विहार करें और यज्ञके शेषको भक्षण करें और अपने दीनता न करें सुखसे सोवें और सर्वदा पवित्र रहें ॥ ७ ॥

कुर्याद्विहारमाहारं निर्हारं विजने सदा ।
व्यवसायी सदा च स्यात्सुखं व्यायाममभ्यसेत् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—और विहार (क्रीडा) भोजन गमन इनको सदैव एकांतमें करें और सदा परिधीरहें और सुखसे व्यायाम (कसरत) का अभ्यास करें ॥ ८ ॥

अन्नं निन्द्यात्सुस्वच्छः स्वीकुर्यात्प्रीतिभोजनं ।

आहारं प्रवरं विद्यात्पद्मं संधुरोत्तरं ॥ ९ ॥

भाषार्थ—अच्छा मनुष्य अन्नकी निंदा न करे प्रीतिसे भोजनको ग्रहण करे और छः रसवाले उस आहारको उत्तम समझे जिस मधुर अधिक हो ॥ ९ ॥

विहारं चैव स्वस्तीभिर्वेद्याभिर्न कदाचन ।

नियुद्धं कुशलैः सार्धं व्यायामं नतिभिर्वरं ॥ १० ॥

भाषार्थ—विवाहित स्त्रियोंके साथ विहार करे और वेद्याओंके साथ कभी न करे और युद्धमें कुशल्लोंके साथ युद्ध और नाति (नमस्कार) करनेवालोंके साथ व्यायाम श्रेष्ठ होता है ॥ १० ॥

हित्वा प्राक्पश्चिमौ यामौ निशि स्वापो वरो मतः
दीनां धपंगु वधिरानोपहास्याः कदाचन ॥ ११ ॥

भाषार्थ—पहिले और पिछले प्रहरको छोडकर रात्रिमें सोना श्रेष्ठ होता है और दीन—अंधे—पंगु—वाहिर इनका हास्य कभी न करे ॥ ११ ॥

नाकार्यं तु मतिं कुर्याद्वा स्वकार्यं प्रसाधयेत् ।
उद्योगेन वलं नैव दुर्व्याधैर्यणसाहसात् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—अकार्यमें मति न करे अपने कार्यको शीघ्र सिद्ध करे उद्योग—बल—बुद्धि—धीरज—साहस ॥ १२ ॥

पराक्रमेणार्जवेन मानमुत्सृज्य साधकः ।

नानिष्टं प्रवदेत् कस्मिन्न छिद्रं कस्य लक्षयेत् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—पराक्रम—आर्जव—इनसे कार्यका साधक मानको त्यागकर और किसीको अनिष्ट न कहे और किसीके छिद्रको न देखे ॥ १३ ॥

आज्ञाभंगस्तु महता राज्ञः कार्यो न वै कश्चित् ।

असत्कार्यं नियोक्तां रंगं वापि प्रबोधयेत् ॥ १४ ॥

भाषार्थ—बड़ोंकी और राजाकी आज्ञा भंग कभी न करै असत्कार्यके नियुक्त करने वाले गुरुकोभी बोधन करावै ॥ १४ ॥

जातिक्रामेदपिलघुं कचित्सत्कार्यबोधकं ।
कुत्वास्वतंत्रांतरुणीस्त्रियंगछेत्रवैकचित् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—कार्यके बोधक लघु (छोटे) का भी अवलंघन न करै जवान और स्त्रीको स्वतंत्र छोड़कर कहीं न जाय ॥ १५ ॥

स्त्रियामूलमनर्थस्यतरुण्यः किंपरैः सह ।
न प्रमाद्येन्मदद्रव्यैर्न विमुह्येत्कुसंततौ ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जवान स्त्री अनर्थका मूल होती हैं तौ औरोंके साथ क्या है—मदकी द्रव्यसे प्रमादको और खोटी संतानसे मोहको प्राप्त न हो ॥ १६ ॥

साध्वीभार्यापितृपत्नीमातावालः पितास्तु वा ।

अभर्तुकानपत्यायासाध्वीकन्यास्वसापि च

भाषार्थ—साधुस्त्री पिताकी स्त्री—माता—बालक—पिता—और जो अनपत्य और भर्तार रहित कन्या—स्तुषा (पुत्रकी बहु) स्वसा (बहनि) ॥ १७ ॥

मातुलानीभ्रातृभार्यापितृमातृस्वसा तथा ।
मातामहानपत्यश्च गुरुश्च शुरमातुलाः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—माई—भावज—माता और पिताकी बहनि—नाना—संतानरहित गुरु—श्वशुर—मामा—
बालाः पिताचर्दौहित्रोभ्राताचभगिनीसुतः ।
एते वश्यं पालनीयाः प्रयत्नेन स्वशक्तितः ॥

भाषार्थ—बालक—रक्षक—धेवता—भ्राता—भानजा—ये अपनी शक्तिके अनुसार यत्नसे पालने ॥ १९ ॥

अविभवेपि विभवेपि तृमातृकुलं सुहृत् ।
पत्न्याः कुलं दासदासीभृत्यवर्गाश्च पोषयेत् ॥

भाषार्थ—धन नहीं होतेभी और होतेभी पिता और माताका कुल—मित्र स्त्रीका कुल—दास दासी भृत्यवर्ग इनकी पालना करै २०
विकलांगान्प्रजितान्दीनानाथांश्च पालयेत्
कुटुंबभरणार्थे यो यत्नवान्न भवेन्नरः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—विकलांग (एक अंग रहित) संन्यासी—दीन—अनाथ—इनकी पालना करै और कुटुंबके पोषण करनेमें जो मनुष्य यत्नवाला नहीं होता उसके ॥ २१ ॥

तत्सर्वशुणैः किंतु जीवन्नेव मृतश्च सः ।
न कुटुंबं भृत्येन नामिताः शत्रवोपि न ॥ २२ ॥

भाषार्थ—संपूर्ण गुणोंका क्या फल है वह मनुष्य जीताही हुआ मरा है जिसने कुटुंब—को पाला नहीं और शत्रुओंको नवाया नहीं ॥ २२ ॥

प्राप्तं संरक्षितं नैव कस्य किं जीवितेन वै ।
स्त्रीभिर्जितो ऋणी नित्यं सुदरिद्री च याचकः ॥

भाषार्थ—और हुए पदार्थकी जिसने रक्षा—ही की उसके जीनेसे क्या है स्त्रियोंके वशी भूत और सदैव ऋणी और महान् दरिद्री और याचक ॥ २३ ॥

गुणहीनो र्यधीनः सन् सृता एते स जीवकाः ।
आयुर्वित्तं गृहछिद्रं मंत्रमैथुनभेषजं ॥ २४ ॥

भाषार्थ—गुणहीन—शत्रुके आधीन ये सब मनुष्य जीतेही मृतकके समान हैं अवस्था—धन—घरका छिद्र—मंत्र—(सलाह)—मैथुन—औषध ॥ २४ ॥

दानमानापमानं च न वै तानि सुगोपयेत् ।
देशाटनं राजसभावेशं न शास्त्रचित्तनं ॥ २५ ॥

भाषार्थ—दान—मान—अपमान—इन नौ वस्तु—ओंको भली प्रकार गुप्त करै देशोंमें विचरना राजसभामें जाना शास्त्रका चिंतन ॥ २५ ॥

वेद्यानिदर्शनं विद्वन्मैत्रीक्षुर्यादतद्वितः ।

अनेकाश्च तथा धर्माः पदार्थाः पशवो नराः २६

भाषार्थ—वेद्याओंका परिचय—विद्वानोंकी मित्रता—इनको निरालस्य होकर करें और अनेक धर्म—पदार्थ—पशु—नर ॥ २६ ॥

देशाटणात्स्वानुभूताः पर्वतादेशरीतयः ।
कीदृशाराजपुरुषान्याय्यान्याय्यंचकीदृशं ॥

भाषार्थ—पर्वत—देशोंकी रीतिथे सब देशा-
टनसे जाने जाते हैं राजाके पुरुष कैसे हैं
न्याय और अन्याय कैसा है ॥ २७ ॥

मिथ्याविवादिनः केचन केवैसत्यविवादिनः ।
कीदृशीव्यवहारस्य प्रवृत्तिः शास्त्रलोकतः ॥

भाषार्थ—और कौन मिथ्यावादी हैं और
कौन सत्यवादी हैं शास्त्र और लोककी
रीतिसे व्यवहारकी प्रवृत्ति कैसी है ॥ २८ ॥

सभागमनशीलस्य तद्विज्ञानं प्रजायते ।
नाहंकारीच धर्माधिः शास्त्राणां तत्त्वचिंतनैः ॥

भाषार्थ—गजसभामें जानेंछूँ है शील
जिसका ऐसे मनुष्यको इन वस्तुओंका
ज्ञान होता है और शास्त्रके तत्त्वोंकी चिंतासे
मनुष्य अहंकारी और धर्ममें अंधा नहीं
होता ॥ २९ ॥

एकं शास्त्रमधीयानो निर्विद्यात्कार्यनिर्णयं ।
स्याद्ब्रह्मागमसंदर्शीव्यवहारो महानतः ॥

भाषार्थ—एकशास्त्रके पढ़नेवाला मनुष्य
कार्यके निर्णयको नहीं जान सकता इससे
मनुष्य अनेक शास्त्रको देखनेवाला हो
इसीसे महान् व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

बुद्धिमानभ्यसेन्नित्यं बहुशास्त्राण्यद्वितः ।
तदर्थं तु गृहीत्वा पितृदधीनो न जायते ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् आलस्य छोड़कर प्र-
तिदिवस शास्त्रोंका अभ्यास करे और शा-

स्त्रके अर्थको जानकरभी उसके आधीन
मनुष्य नहीं होता ॥ ३१ ॥

वेद्यातथाविधावापि वशीकर्तुं न रक्षमा ।
नैयात्कस्य वशं तद्वत्स्वाधीनकारयेज्जगत् ॥

भाषार्थ—और वेद्या किस प्रकारकी मनुष्य-
को वश करनेकी समर्थ होती है इससे
आप किसीके वशमें नहो और जगत्को
अपने वशमें करे ॥ ३२ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामर्थविज्ञानमेव च ।
सहवासात्पंडितानां बुद्धिः पंडाप्रजायते ॥

भाषार्थ—श्रुति—स्मृति—पुराण— इनके
अर्थका ज्ञान और पंडा बुद्धि पंडितोंके
संग वाससे होती है ॥ ३३ ॥

देवपित्रातिथिभ्यो नमदत्त्वानाश्रियात्कचि
त् ।

आत्मार्यः पचेन्मोहान्नरकार्थे स जीवति ॥

भाषार्थ—देवता—पितर—अतिथि—इनको
बिना अन्न दियें भोजन न करे जो अज्ञानसे
अपने लिये पकाता है वह नरकके लिये
जीवता है ॥ ३४ ॥

मार्गं गुरुभ्यो बलिभ्यो व्याधिताय शवाय च ।
राक्षे श्रेष्ठाय व्रतिने यानगाय समुत्सृजेत् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—इतने पुरुषोंको मार्ग छोड़दे अ-
र्थात् संमुख आते देखकर हटजा कि गुरु
बलवान् रोगी शव राजा—श्रेष्ठ व्रतवाला—
और यानमें चढ़ा ॥ ३५ ॥

शकटात्पंचहस्तंतु दशहस्तंतु वाजिनः ।
दूरतः शतहस्तंच तिष्ठेन्नागादृषादश ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—गाड़ीसे पांचहात घोड़ेसे दशहा-
त हाथीसे सौ हात और बैलसे दशहात—
दूर पर टिके— ॥ ३६ ॥

शृंगीणांचनखीनांचदंष्ट्रीणांदुर्जनस्य च ।
नदीनांवसतौस्त्रीणांविश्वासंनैवकारयेत् ॥

भाषार्थ—सिंग-नख-डाढ़-इनवाले जीवों का और दुर्जन नदीके समीपका वास-स्त्री इनका कदाचित् भी विश्वास न करै ॥३७॥

खादन्नगलेदध्वानंनचहास्येनभाषणं ।
शोकंनकुर्यान्नष्टस्यस्वकृतेरपिजल्पनं ॥३८॥

भाषार्थ—भोजन करता हुआ मार्गमें न चले हंसीसे भाषण न करै नष्ट हुई वस्तुका शोक न करै अपने कृत्यका कथन (प्रसंशा) न करै ॥ ३८ ॥

सशंकितानांसामीप्यंत्यजेद्वैनीचसेवनं ।
संछापनंवशृणुयाद्दुःखःकस्यापिस्वदा ३९

भाषार्थ—जिसकी तरफसे कुछ शंका हो उसके समीप न रहै और नीचकी सेवाको त्यागदे और किसीके संभाषणको कदाचित् भी छुपकर न सुनै ॥ ३९ ॥

उत्तमैरनुज्ञातंकार्यंनेच्छेच्चतैःसह ।
देवैःसाकंसुधापानाद्वाहोश्चिन्नंशिरोयतः ॥

भाषार्थ—बड़ोंकी आज्ञाके बिना और उनके साथकी इच्छा न करै क्योंकि देवताओंके संग अमृतपान करनेसे राहुका शिर छेदन होगयाथा ॥ ४० ॥

महतोसत्कृतमपिभवेत्तद्रूपणायवै ।
विषपानंशिवस्यैवत्वन्वेषामृत्युकारकं ॥

भाषार्थ—निंदितभी कर्म बड़ोंकेलिये भूषण होता है और अन्य पुरुषोंको मृत्युका दाता होता है ॥ ४१ ॥

तेजस्वीक्षमतेसर्वभोक्तुंवन्धिरिवानघः ।
नसांमुख्येगुरोःस्थेयंराज्ञःश्रेष्ठस्यकस्यचित्

भाषार्थ—तेजवाला मनुष्य संपूर्ण भक्षण करनेको इसप्रकार समर्थ होता है जैसे पवित्र अग्नि और गुरु राजा अथवा अन्य किसी श्रेष्ठ पुरुषके संमुख न टिके ॥४२॥
राजामित्रमितिज्ञात्वानकार्यमानसेप्लितं ।
नेछेन्मूर्खस्यस्वामित्वंदास्यामिछेन्महात्मनां ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—औ राजाको मित्र जानकर मन माने कार्य न करै और मूर्खको स्वामी बना नेकी इच्छा न करै और महात्माओंके दास बननेकी इच्छा करै ॥ ४३ ॥

विरोधंनज्ञानलवदुर्विदग्धस्यरंजनं ।
अत्यावश्यमनावश्यंक्रमात्कार्यसमाचरेत् ॥

भाषार्थ—ज्ञानके लेशसे जो दुर्विदग्ध है उसके संग विरोध और प्रीति न करै और आवश्यक और अनावश्यकको क्रमसे करै अर्थात् आवश्यक कार्यको करके अनावश्यकको करै ॥ ४४ ॥

प्राक्पश्चाद्वाग्विलंबेनप्राप्तंकार्यंतुद्विद्विमान् ।
पित्राज्ञातेनवैमातृवधरूपेसुपूजिता ॥४५॥

भाषार्थ—प्रथम पीछे शीघ्र और विलंबसे प्राप्तहुए कार्यको मनुष्य करै अर्थात् जो जिस समय करनेके योग्य हो उसको उसी समय करै पिताकी आज्ञासे माताके मारने रूप कार्यमें भली प्रकार पूजा ॥ ४५ ॥

धृतागौतमपुत्रेणह्यकार्यैश्चिरकारिता ।
प्रेम्णासमीपवासेनस्तुत्यानत्याचसेवया ॥

भाषार्थ—गौतमपुत्रको कुकर्ममेंभी चिरकालमें करनेसे मिली-और प्रेम समीप वास-स्तुति-नमस्कार सेवासे ॥ ४६ ॥

कौशल्येनकलाभिश्चकथाभिर्ज्ञानतोपिवा ।
आदरेणाजैवैवशौर्याद्दत्तेनविद्यया ॥४७॥

भाषार्थ—कुशलता—कला—कथाज्ञान—आ-
दर—नम्रता—श्रुता—दान—और विद्यासे ४७॥

प्रत्युत्थानाभिगमनैरानन्दस्मितभाषणैः ।

उपकारैः स्वाशयेन वशीकुर्याज्जगत्सदा ४८

भाषार्थ—और प्रत्युत्थान (देखकर उठना)
सन्मुखगमन—आनन्द—हँसकर भाषण—उप-
कार और अपने अन्तःकरणसे सदैव जगत्
को वशमें करे ॥ ४८ ॥

एते वश्यकरोपायादुर्जने निष्फलाः स्मृताः ।

तत्सन्निधित्यजेत्प्राज्ञः शक्तस्तददंतो जयेत् ।

भाषार्थ—परंतु ये सब वश करनेके उपाय
दुर्जनके विषय निष्फल कहे हैं इससे बुद्धि-
मान् मनुष्य दुर्जनके समीपको त्यागदे
समर्थ होय तो उसको दंडसे जीते ॥ ४९ ॥

छलभूतैस्तु तद्रूपैरुपायैरेभिरेव वा ।

श्रुतिस्मृतिपुराणानामभ्यासः सर्वदाहितः ॥

भाषार्थ—छलरूप जीतनेके उपायोंसे
अथवा इनही उपायोंसे जीते—श्रुति—स्मृति
पुराण—इनका अभ्यास सदैव हितकारी हो-
ता है ॥ ५० ॥

सांगानां सोपवेदानां सकलानां न रस्यही ।

मृगयाक्षास्त्रियोपानं व्यसना निवृणांसदा ॥

भाषार्थ—अंग और उपवेदों सहित संपूर्ण
वेदोंका अभ्यास मनुष्यको हित है—और मृ-
गया—छूत—स्त्री मदिराका पान ये मनुष्योंके
सदैव व्यसन कहे हैं ॥ ५१ ॥

चत्वार्येतानि संत्यज्य युक्त्या संयोजयेत्क-
चित् ।

कूटेन व्यवहारं तु वृत्तिलोपनं कस्यचित् ५२

भाषार्थ—इन चारोंको त्यागदे परंतु युक्त्या
से कचित् २ इनका योग करे (वर्ते) किसी

के छूटसे व्यवहार और किसीकी जीविका
का लोप ॥ ५२ ॥

न कुर्याच्चिंतयेत्कस्य मनसाप्यहितं कचित् ।

तत्कार्यं तु सुखं यस्माद्भवेच्चैकालिकं दृढं ५३ ॥

भाषार्थ—न करे—और मनसेभी किसीके
अहितकी चिन्ता न करे और वही काम
करे जिससे तीनों कालमें दृढ सुख मिले ५३
मृते स्वर्गजीवति च विद्यात्कीर्तिदंशुभा ।
जगतीति च संचितोयः आधिव्याधिसुपीडितः

भाषार्थ—मरे पीछे और जीवते समयमें
दृढ और उत्तम कीर्तिको पहिचाने—जो म-
नुष्य चिन्ता सहित है वा आधिव्याधिसे सु-
पीडित है वह जागता है अर्थात् उसको नि-
द्रा नहीं आती ॥ ५४ ॥

जारश्चोरो वा लिद्विष्टो विपथी धनलो लुपः ।

कुसहायी कुनृपतिर्भिन्नामात्यस्सुहृत्प्रजः ॥

भाषार्थ—जार—चोर—बलवान्का वैरी—
विपथी—धनका लोभी—जिसका सहायक बु-
राहो—वा जो राजा बुराहो—जिसके मंत्री भिन्न
हों वा जिसका प्रजा भिन्न हो अर्थात् मित्र-
तासे उनसे करन लेता हो ॥ ५५ ॥

कुर्याद्यया समीक्ष्यैतत्सुखं स्वप्याच्चिरं नरः ।

राज्ञो नानुकृतिं कुर्यान्न च श्रेष्ठस्य कस्यचित् ॥

भाषार्थ—इससे इन सब कामोंको यथार्थ
देखकर करे और मनुष्य चिरकालतक आ-
नन्दसे शयन करे—और राजाका अथवा
किसी श्रेष्ठ मनुष्यका अनुकरण न करे ॥ ५६
नैकी गळे व्याल व्याघ्र चोरे पुच प्रवाधिनुं ।
जिवांसंतं जिघांसीयाद्गुरुमप्याततायिनं ५७

भाषार्थ—और सर्प—सिंह—चोर इनकी हिं-
साके लिये अकेला न जाय—और मारते हुये
आततायी गुरुकीभी हिंसा करे ॥ ५७ ॥

कलहेनसहायः स्यात्संरक्षेद्गुहनायकं ।

गुरुणां पुरतो राज्ञो न चासीत महासने ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—और लडाईमें सहायता न करे और उसकी रक्षा करे जिसके समीप बहुत सेना हो और गुरु और राजा इनके आगे उच्च आसन पर न बैठे ॥ ५८ ॥

ग्रौढपादोनतत्कार्यहेतुभिर्विकृतिं नयेत् ।

यत्कर्तव्यं न जानाति कृतं जानाति चेत्तरः ॥

भाषार्थ—और ऊंचे पैर करके भी न बैठे और न उनके कार्यको विगाड़े जो मनुष्य करने योग्य कार्यको न जानि उसको इतर मनुष्य कैसे जान सकतें हैं ॥ ५९ ॥

नैव वक्ति च कर्तव्यं कृतं यश्चोत्तमो नरः ।

न प्रिया कथितं स म्यङ्मनुतेनु भव विना ६० ॥

भाषार्थ—और जो मनुष्य अपने करने योग्य वा किये कार्यको नहीं कहता वह मनुष्य उत्तम होता है अथवा जो स्त्रीके कथनको विना देखे सत्य नहीं मानता वह भी उत्तम है ॥ ६० ॥

अपराधं मातृस्नुषाभ्रातृपत्निसपत्निजं ।

षोडशाब्दात्परं पुत्रं द्वादशाब्दात्परं स्त्रियं ६१

भाषार्थ—अथवा जो माता-पुत्रवधू भ्राताकी स्त्री सपत्नी इनके अपराधको न माने वह उत्तम है सोलहवर्षसे ऊपर पुत्रकी और बारहवर्षसे ऊपर स्त्रीकी ॥ ६१ ॥

न ताडयेद्दुष्टवाक्यैः पीडयेन्न स्नुषादिकं ।

पुत्राधिकाश्च दौहित्राभाग्निनेयाश्च भ्रातरः ॥

भाषार्थ—ताडना न करे और पुत्रवधू आदिकोंको दुष्टवचनोंसे दुःख न दे और दौहित्र भानजे भाई ये सब पुत्रसे अधिक होतें हैं ॥ ६२ ॥

कन्याधिकाः पालनीया भ्रातृभार्यास्तु पास्व सा ।

आगमार्थे हियतते रक्षणार्थं हि सर्वदा ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—और भ्राताकी स्त्री पुत्रवधू भगिनी इनकी कन्यासे भी अधिक पालना करे और मेल और रक्षाके लिये सर्वदा यत्न करे ॥ ६३ ॥

कुटुंबपोषणे स्वामी तदप्येतस्फरा इव ।

अनृतं साहसमौख्यं कामाधिक्यं स्त्रियां यतः

भाषार्थ—स्वामी वही है जो कुटुंबका पोषण करे उससे अन्य चोरोंके समान होते हैं जिससे स्त्रियोंको झूठ साहस मूर्खता कामदेवकी अधिकता होता है ॥ ६४ ॥

कामादिनैकशयनेनैव सुप्यात्स्त्रिया सह ।

दृष्टा धनं कुलं शीलं रूपं विद्यां वलं वयः ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—इससे स्त्रीके संग एकशय्या पर कभी न सोवे और धन-कुल-शील-रूप-विद्या-बल-अवस्था इनको देखकर ॥ ६५ ॥

कन्यां दद्यात्तु तमंचेन्मैत्र्यै कुर्यादथात्मनः ।

भार्यायि न वयो विद्या रूपिणं निर्धनं त्वपि ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—कन्याको दे और अपनेसे उत्तम होंय तो उसके संग मित्रता करे और वर चाहे निर्धन हो परंतु विद्या और रूप वान् हो ॥ ६६ ॥

न केवलं रूपेण वयसानधनेन च ।

आदौ कुलं परीक्षेत ततो विद्यां ततो वयः ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—और केवल रूप अवस्था धनसे वरको न देखे किन्तु प्रथम कुलकी परीक्षा करे फिर विद्याकी फिर अवस्थाकी ॥ ६७ ॥

शीलं धनं वयो रूपं देशं पश्चाद्विवाहयेत् ।

कन्यावरयते रूपं मातावित्तं पिताश्रुतं ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—फिर शील धन अवस्था रूप इनकी परीक्षा करके विवाह करदे कन्या रूपको माता धनको पिता विद्याको चाहते हैं ॥ ६८ ॥

वांधवाःकुलमिच्छंतिमिष्टान्नमितरेजनाः ।

भार्यार्थवरयेत्कन्यामसमानपिंगोत्रजां ॥

भाषार्थ—वांधव कुलकी और इतर वराती मिष्टान्नकी इच्छा करतेहैं भार्याका अभिलाषी मनुष्य ऐसी कन्याको विवाह जो अपने प्रवर वा गोत्रकी नहो ॥ ६९ ॥

भ्रातृमतीमुकुलचयोनियोपविवर्जितां ।

क्षणक्षेत्रविद्यामर्थचसाधयेत् ॥

भाषार्थ—और जिसके भ्राता हो और अच्छे कुलकी हो और योनिका दोप जिसमें नहो ऐसी कन्याको विवाह क्षणमें और अल्प २ भी विद्या और धनका संचय करे ॥ ७० ॥

नत्याज्यौतुक्षणकर्णानित्यंविद्याधनार्थिना ।

सुभार्यापुत्रमित्रार्थदितंनित्यधनार्जनं ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—विद्या और धनके अभिलाषीको क्षण और कण अल्पता नही त्यागने और श्रेष्ठस्त्री और पुत्रके लिये नित्य धनका संचय करना अच्छाहै ॥ ७१ ॥

दानार्थचविनात्वैतैःकिंधनैश्चजनैश्चकिं ।

भविष्यत्क्षणक्षमधनयत्नेनरक्षयेत् ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—और दानके लियेभी इनके विना धन और जनोंसे क्याहै भविष्य कालमें जो रक्षाके योग्यहो उस धनकी यत्नेसे रक्षा करे ॥ ७२ ॥

जीवामिशतवर्षतुनंदाभिचयनेनवै ।

इतिबुध्यासंचिनुयाद्धनंविद्यादिकंसदा ॥

भाषार्थ—मैं सौ वर्षतक जीवोंगा और धनसे आनंद भोगोंगा इस बुद्धिसे धन और विद्या आदिका सदैव संचय करे ७३ ॥

पंचविंशत्यब्दपूरंतदर्थवातदर्धकं ।

विद्याधनंश्रेष्ठतरंतन्मूलमितरद्धनं ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—पचासवर्षतक अथवा साठे बारह वर्षतक अथवा सवाछः वर्षतक बुद्धिके अनुसार विद्या धन श्रेष्ठतर होताहै और सब धनोंका यही मूल कारण है ॥ ७४ ॥

दानेनवर्धतेनित्यंभारायननीयते ।

अस्तियावत्सुधनस्तावत्सर्वस्तुसेव्यते ॥

भाषार्थ—और विद्या धन दानसे नित्य वदताहै और विद्याका भार नहीं होता और न कोई लेजासकता और धनी मनुष्य इतने धनवान् रहताहै तितने सब सेवा करतेहैं ॥ ७५ ॥

निर्धनस्त्यज्यतेभार्यापुत्राद्यैःसगुणोप्यतः ।

संसृतौव्यवहारायसारभूतधनंस्मृतं ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—और गुणवान्भी निर्धनको स्त्री पुत्र आदिभी त्याग देतेहैं परंतु संसारके व्यवहारोंके लिये धनही सार कहाहै ॥ ७६ ॥

अतोयतेतत्तत्प्राप्त्येनरःसुपायसाहसैः ।

सुविद्ययासुसेवाभिःशौर्येणकृपिभिस्तथा ॥

भाषार्थ—इससे मनुष्य उत्तम उपाय वा साहससेभी धनकी प्राप्तिके लिये यत्न करे उत्तम विद्या—उत्तम सेवा शूरवीरता और खेतीसे ॥ ७७ ॥

कौसीदवृद्ध्यापण्येनकलाभिश्चप्रतिग्रहैः ।

ययाकयाचापिवृत्त्याधनवान्स्यात्तथाचरेत्

भाषार्थ—सूदकी वृद्धि व्यवहार—कला—प्रतिग्रह—वा जिस तिस वृत्तिसे ऐसा आचरण करे जिससे धनवान् हो ॥ ७८ ॥

तिष्ठतिसधनद्वारेणुनिनःकिंकराह्व ।
दोषाअपिगुणायतेदोषायतेगुणाअपि ७९॥

धनवतोनिर्धनस्यनिन्द्यतेनिर्धनोखिलैः ।
यथानजानन्तिधनसंचितकतिकुत्रवै ८०॥

भाषार्थ—धनवान् मनुष्यके द्वारपर गुण-
वान् मनुष्य किंकरके समान टिकते हैं
और धनवान् मनुष्यके दोषभी गुण-और
निर्धनके गुणभी दोष हो जाते हैं और निर्धन
मनुष्यकी सब निंदा करते हैं और जैसे संचित
धनको कितना है और कहाँ है ये न
जानें ॥ ७९ ॥ ८० ॥

आत्मास्त्रीपुत्रमित्राणिसलेखंधारयेत्तथा ।
नैवास्तिलिखितादन्यस्मार्कव्यवहारिणां

भाषार्थ—आत्मा—स्त्री—पुत्र—मित्र—इन सब
को लिखकर धनको रखे। अर्थात् जिस
लेखसे इनको धन प्राप्त हो सके क्योंकि लि-
खे बिना अन्य व्यवहारियोंको जतानेवाला
कोई नहीं है ॥ ८१ ॥

नलेखेनविनाकुप्याद्व्यवहारंसदाबुधः ।
निलोभेधनिकेराज्ञिविश्वस्तेक्षमिणांवरे ॥

सुसंचितंधनंधार्यगृहीतलिखितंतुवा ।
मैत्र्यर्थेयाचितंदद्यादकुसीदंधनंसदा ८३॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य लिखे बिना
कोई काम न करे और निलोभी धनवान्-
राजा—विश्वासके योग्य—क्षमाशील—इनके
समीप अपने संचित धनको रखे चाहै वह
धन ग्रहीत वा लिखाहो और मित्रताके लिये
बिना व्याजभी धनको सदैव दे ॥ ८३ ॥

तस्मिन्स्थितंचेन्नबहुहानिकृन्नतथाविधं ।
दृष्टाधमर्णवृद्ध्यापिव्यवहारक्षमंसदा ८४॥

भाषार्थ—और मित्रके पास स्थित हुआभी
लिखित धन अत्यन्त हानी, करनेवाला नहीं

होता और व्याजपरहींभी व्यवहारके योग्य
सदैव देखकर ॥ ८४ ॥

संवंधंसप्रतिभुवंधनंदद्याच्चसाक्षिमत् ।
गृहीतलिखितंयोग्यमानंप्रत्यागमेसुखम् ॥

भाषार्थ—अवधी—प्रतिभू—(जामिन) और
साक्षि—इनको लिखकर धनको दे क्योंकि ग्र-
हण करनेके समय लिखाहुआ जो प्रमाण है
सोलैंदानेके समय सुख दाई होता है ८५॥

नदद्याद्वद्विलोभेननष्टमूलधनंभवेत् ।
आहारेव्यवहारेचत्पत्तलज्जःसुखीभवेत् ॥

भाषार्थ—और ऐसी जगे व्याजके लोभसे
धनको न दे जहां मूलधनभी नष्ट हो जाय
क्योंकि आहार और व्यवहारमें जो लज्जाको
त्यागता है वही सुखी होता है ॥ ८६ ॥

धनंभेत्रीकरंदानेचादानेशत्रुकारकं ।
छुत्वास्थांतेतथौदार्यकार्पण्यंवहिरैवच ८७॥

भाषार्थ—देनेके समय धन—मित्रताको और
लौटानेके समय शत्रुताको करता है और
अपने चित्तमें उदारताको और बाहिर कृपण
ताको करके ॥ ८७ ॥

उचितंतुव्ययंकालेनरःकुर्यान्नचान्यथा ।
सुभार्यापुत्रमित्राणिशक्त्यासंरक्षयेद्धनैः ॥

भाषार्थ—मनुष्य समयपर उचित व्ययको
करै अन्यथा न करै और शक्तिके अनुसार
श्रेष्ठ स्त्री—पुत्र—मित्र—इनकी धनसे रक्षाकरै ॥

नात्मापुनरतोत्मानंसर्वैःसर्वपुनर्भवेत् ।
पश्यतिस्मसजीवश्चेन्नरोभद्रशतानिच ८९॥

भाषार्थ—अपनी आत्मा फिर नहीं होता
और अन्य सब फिर हो सक्ते हैं इससे
आत्माकी सबसे रक्षा करै क्योंकि यदि
मनुष्य जीवेगा तो सैंकड़ो आनन्दोंको दे-
खेगा ॥ ८९ ॥

सदारप्रौढपुत्रान्द्राक्श्रेयोर्धीविभजेत्पिता ।
सदारभ्रातरःप्रौढाविभजेत्युःपरस्परं ॥९०॥

भाषार्थ—अपने कल्याणका अभिलाषि पि-
ता—स्त्री—और व्यवहार करनेके योग्य पुत्रोंके
शीघ्र धनका विभाग करदे अथवा उक्त स्त्री
और पुत्र परस्पर धनका विभाग करलें ९०

एकोदराभ्यपिप्रायोविनाशायान्यथाखलु ।
नैकत्रसंवसेच्चापिस्त्रीद्वयंमनुजस्यतु ॥९१॥

भाषार्थ—क्योंकि विभागके न करनेसे
प्रायः सहोदरभाईभी नष्ट हो जाते हैं—और
मनुष्यकी दो स्त्री एक जगे नहीं वस सकती ॥

कथं वसेत्तद्बहुत्वं पशूनां तु नरद्वयं ।
विभजेयुर्न तत्पुत्राय दत्तं नृद्विकारणं ॥९२॥

भाषार्थ—और पशुके समान दो मनुष्य
अथवा बहुत स्त्री एक जगे किस प्रकार
वस सके हैं और जिस धनका व्याज आता
हो उस धनका विभाग पुत्र न करे ॥९२॥

अधमर्णस्थितं चापि यद्द्वयं चोत्तमर्णिकं ।
यस्येच्छेत्तु तमाभैर्त्रां कुर्यान्नार्याभिलाषकं ॥

भाषार्थ—और जो धन व्याजपर हो अथवा
जो ऋण देनाहो उसकोभी न वांटे और जि-
सके संग उत्तम मित्रताकी इच्छा करे उससे
धन लेनेकी इच्छा न करे ॥९३॥

परोक्षे तद्ब्रह्मश्चरत्तत्स्त्रीसंभाषणसंथा ।
तन्नूनदर्शनं नैव तत्प्रतीपविवादं ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—और परोक्षमें उसके रणवासमें
जाना और उसकी स्त्रीके बोलना उसकी
न्यूनताको देखना—उसके प्रतिकूल विवाद
इनको न करे ॥ ९४ ॥

असाहाय्यं च तत्कार्ये ह्यनिष्टोपेक्षणं न च ।
सकुसीदमकुसीदधनं यच्चोत्तमर्णिकं ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—उसके कार्यमें सहायताका त्याग
उसके अनिष्टकी उपेक्षा—इनकोभी न करे
और उत्तमर्णका जो धन व्याजपर हो वा
बिना व्याजपर हो उसको ॥ ९५ ॥

दद्याद्गृहीतामिव नोचोभयोः क्लेशकृद्यथा ।
नासाक्षिमञ्चालिखितं ऋणपत्रस्य पृष्ठतः ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार ग्रहण किया हो उ-
सी प्रकार उस रीतिसे दे जिससे दोनोंको
क्लेश न हो और बिना साक्षी और ऋण पत्र
(रुक्का) पीठपर बिना लिखे धनको न दे ९६
आत्मापितृमातृगुणैः प्रख्यातश्चोत्तमोत्तमः
गुणैरात्मभवैः ख्यातः पितृकैर्मतृकैः पृथक् ॥

भाषार्थ—अपने वा पिता माताके गुणोंसे
जिसकी कीर्ति है वह नर उत्तमसेभी उत्तम
है और जो अपने वा पिताके वा माताके
पृथक् २ गुणोंसे विख्यात है वह ॥ ९७ ॥
उत्तमो मध्यमो नीचो धमो मातृगुणैर्नरः ।

कन्यास्त्रीभगिनीभाग्योनरसोव्यधमाधमः

भाषार्थ—क्रमसे उत्तम मध्यम नीच होता
है और माताके गुणोंसे जो प्रसिद्ध हो वह
अधम और—कन्या—स्त्री—भगिनी—इनके भा-
ग्यसे जो जीवे वह अधमसेभी अधम होता
है ॥ ९८ ॥

भूत्वा महाधनः सम्यक्पोष्यवर्गं तु पोषयेत् ।
अदत्त्वा यत्किंचिदपि न नयेद्दिवसं बुधः ॥ ९९ ॥

भाषार्थ—महाधनी हो कर पालन करने
योग्य पुत्र आदिकोंकी भली प्रकार पालना
करे और दानके बिना एक दिनभी व्यतीत
न करे ॥ ९९ ॥

स्थितो मृत्युमुखे चाहं क्षणमायुर्ममास्ति न ।
इति मत्वा दानधर्मौ यथेष्टौ तु समाचरेत् ॥ १०० ॥

भाषार्थ—और यह मानकर यथेष्ट दान और धर्म करे कि मैं मृत्युके सुखमें वैठा हूं और मेरी अवस्था एक क्षणकी है ॥ २०० ॥

नतौविनाभेपरत्रसहायाःसंतिचेतरे ।

दानशीलाश्रयाहोकोवर्ततेनशठाश्रयात् १

भाषार्थ—और यह बुद्धि रखे कि दान और धर्मके विना परलोकमें मेरे कोई सहायक न ही क्योंकि जगत्का व्यवहार दान शील मनुष्यके आसरेसे चलता है शठके आसरे से नहीं ॥ १ ॥

भवंतिमित्रादानेनद्विपंतोपिचकिंपुनः ।

देवतार्थचयज्ञार्थब्राह्मणार्थगवार्थकम् ॥२॥

भाषार्थ—और तो क्या शत्रुभी देनेसे मित्र होजाते हैं और देवता—यज्ञ—ब्राह्मण—गौ—इनके लिये ॥ २ ॥

यदत्तंत्वारलीक्यंसंविदत्तंतदुच्यते ।

वंदिमागधमल्लादिनटानर्थचदीयते ॥ ३॥

भाषार्थ—जो दिया हो वह परलोकमें काम आता है और उसको संविदत्त कहते हैं और जो वंदीजन भाट—मल्ल—नट—इनके लिये दिया जाता है ॥ ३ ॥

पारितोष्यंशोर्थतच्छ्रयादत्तंतदुच्यते ।

उपायनीकृतंयत्सुहृत्संवधिबन्धुषु ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यह पारितोषिक (इनाम) यज्ञके लिये होता है उसको श्रियादत्त कहते हैं और जो धन मित्र—सम्यन्धी—बन्धुओंको उपायन (भेट) किया हो ॥ ४ ॥

विवाहादिपुवाचारदत्तंद्दीदत्तमेवतत् ।

राज्ञेनचलिनेदत्तंकार्यार्थकार्यघातिने ॥५॥

भाषार्थ—अथवा विवाह आदिमें व्यवहारसे जो दिया हो उसको ही दत्त कहते हैं—

और राजा बलवान अथवा कार्यके नष्ट करनेवालेको जो दिया हो ॥ ५ ॥

पापभीत्याथवायच्चतत्तुभीदत्तमुच्यते ।

यदत्तंहिंस्रवृद्ध्यर्थनष्टंयत्तुविनाशितं ॥ ६॥

भाषार्थ—अथवा पापके भयसे जो दियाहो उसकोभी दत्त कहते हैं—और जो धन हिंसा बुद्धिके लिये अथवा द्यूतमें विनाशित नष्ट होता है ॥ ६॥

चौरैर्हृतपापदंतत्परस्त्रीसंगमार्थकं ।

आराधयति यदेवंतमुत्कृष्टतरंवेदेत् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जा चोरोने हरा हो अथवा परस्त्री संगमके लिये दिया हो उसको पापदत्त कहते हैं—और जिस धनसे देवता की आराधना करे उसको अत्यन्त उत्कृष्ट कहते हैं ७ तनूयूनतानैवकुर्याज्जोपयेत्तस्यसेवनं ।

विनादानार्जवाभ्यानभुव्यस्तिचवशीकरं ८

भाषार्थ—उसकी न्यूनता न करे किन्तु सदैव सेवन करे दान और नम्रताके विना पृथ्वीपर बस करनेवाली कोई वस्तु नहीं ८॥

दानक्षीणोविवर्धिष्णुःशशीवक्रोप्यतःशुभः ।

विचार्यस्नेहद्वेषंवाकुर्यात्कृत्वानचान्यथा ९

भाषार्थ—जो मनुष्य दानसे क्षीण हो वह कभी न कभी बढ़ने योग्य होता है जैसे वक्र भी चन्द्रमा शुभ होता है और विचार कर श्रेष्ठ वा द्वेषको करे और अन्यथा इनको न करे ॥ ९ ॥

नापकुर्यान्नोपकुर्याद्भवतो नर्थकारिणौ ।

नातिक्रौर्यं नातिशाठ्यं धारयेन्नातिमार्दवम् ।

भाषार्थ—न किसीका तिरस्कार वा उपकार विना विचार न करे क्योंकि विना विचार किये ये दोनों अनर्थकारी होते हैं अति क्रूरता अति शठता अति मृदुता इनको न करे ॥ १० ॥

नातिवादनातिकार्यासक्तिमत्याग्रहंनच ।
अतिसर्वनाशहेतुह्यतोत्यंतंविवर्जयेत् ॥ ११

भाषार्थ—और तिसी प्रकार अत्यन्त वाद
अत्यन्त कारियोंमें आशक्ति अत्यन्त आग्रह
न करे क्योंकि सब जग अतिनाशका हेतु
होता है—इससे अतिको वर्जदे ॥ ११ ॥

उद्वेजतेजनःक्रौर्यात्कार्पण्यादतिनिन्दति ।
मार्दवान्नैवगणयेदपमानोतिवादतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—क्रूरतासे मनुष्य कंपता है कृप-
णतासे अत्यन्त निन्दाको प्राप्त होता है
मृदुल कोई गिनता नहीं अत्यन्त वादसे
अपमान होता है ॥ १२ ॥

अतिदानेनदारिद्र्यंतिरस्कारोतिलोभतः ।
अत्याग्रहान्नरस्यैवमौर्यैर्भजायतेसख १३

भाषार्थ—अत्यन्त दानसे दरिद्रता अत्यन्त
लोभसे तिरस्कार और अत्यन्त आग्रहसे
मनुष्यकी निश्चय मूर्खता होती है ॥ १३ ॥

अनाचाराद्धर्महानीरत्याचारस्तुमूर्खता ।
ह्यधिकोस्मीतिसर्वेभ्योह्याधिकज्ञानवानहं १४

भाषार्थ—विना आचार किये धर्मकी हानि
और अत्यन्त आचारसे मूर्खता होती है
मैं सबसे अधिकहुं और अधिक ज्ञान
वानहुं ॥ १४ ॥

धर्मतत्त्वमिदमिति नैव मन्येत बुद्धिमान् ।
नेच्छेत्स्वार्थं तु देवपुंगोपुत्रब्राह्मणपुत्र १५

भाषार्थ—और यही धर्मका तत्त्व है अन्य
नहीं इसको बुद्धिमान् मनुष्य कभी न माने
और देवता-गौ-ब्राह्मण-इनके स्वामि होने
की इच्छा न करे ॥ १५ ॥

महानर्थकरं ह्येतत्समग्रकुलनाशनं ।
भजनं पूजनं सेवामिच्छेदेतेषु सर्वदा ॥ १६ ॥

भाषार्थ—क्योंकि इनकी स्वामिता महान्
अनर्थको और समग्र कुलको नष्ट करती है
किन्तु इनके भजन-पूजन-सेवनकी सदैव
इच्छा करे ॥ १६ ॥

नज्ञायते ब्रह्मतेजः कस्मिन्कीदृक्प्रतिष्ठितं ।
पराधीनं नैव कुर्यात्तरुणीधनपुस्तकम् १७ ॥

भाषार्थ—और किस ब्राह्मणमें कैसा ब्रह्म-
तेज है यह प्रतीत नहीं हो सकता और तरुण
स्त्री-धन-पुस्तक-इनको पराधीन न करे १७
कृतं चेच्छ्रम्यते दैवाच्चष्टं विमर्दिता ।
वद्वयं न त्यजेदल्पहेतुनाल्पं न साधयेत् १८ ॥

भाषार्थ—यदि पराधीन किये हुये ये दैवसे
मिलभी जाय तो क्रमसे भ्रष्ट-नष्ट-मर्दन
किये हुये मिलते हैं अल्प कारणसे बड़े
अर्थको न त्यागे और अल्पकी सिद्धि ॥ १८ ॥

वद्वयं व्ययतो धीमानाभिमानेन वैकाचित् ।
वद्वयं व्ययभीत्यानुसत्कीर्तिं न त्यजेत्सदा ॥

भाषार्थ—बहुत धनके व्ययसे न करे और
बुद्धिमान् मनुष्य अभिमानसे वा अधिक
खर्चके भयसे सदैव सत्कीर्तिको न त्यागे १९
भटानामसद्वक्त्यानुनापेक्षुप्यानतैः सह ।
लज्यते न सुहृद्यो न भिद्यते दुर्मना भवेत् ॥

भाषार्थ—और वीरोंके असद्वचनोंसे न डरे
और न उनके संग कोप करे जिस मित्रको
लज्जा नहीं होती वह फट जाता है वा उदा-
सीन हो जाता है ॥ २० ॥

वक्तव्यं न तयार्किचिद्विनोदेषि च धीमता ।
आजन्मसेवितैर्दानैर्मनैश्च परिपोषितं ॥ २१

भाषार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य विनोदमें भी
तैसे वचनको न कहे जिससे दूसरा उदास
हो जिसको-दान-या मानसे जन्मपर्यंत प्रसन्न
रक्खा हो उसको कटु वचन न कहे ॥ २१ ॥

तीक्ष्णवाक्यान्मित्रमपितत्कालंयातिशयतां
वक्रोक्तिशल्यमुद्धर्तुंनशक्यमानसंयतः ॥ २२

भाषार्थ—कठोर वचनसे मित्रभी उसी
समय शत्रु हो जाता है क्योंकि कठोर वच-
नका शल्य (शस्त्र) को मनसे कोई नहीं
छखाड सकता ॥ २२ ॥

वहेदमित्रंस्कंधेनयावत्स्यात्स्ववलाधिकः
ज्ञात्वानष्ट्रलं तंतुभिद्यात्घटमिवाश्मनि ॥

भाषार्थ—शत्रु जवतक अपने बलसे अधि-
क हो तबतक अपने कांधे पर लेचले और
जब उसका बल नष्ट हो जाय तब इस
प्रकार नष्ट करे जैसे पत्थरपर पटक कर
घटको ॥ २३ ॥

नभूषयत्यलंकारो नराज्यंनचपौरुषं ।
नविद्यानधनंतादृक्यादृक्सौजन्यभूषणं ॥

भाषार्थ—अलंकार—राज्य—पुरुषार्थ—विद्या
इनसे मनुष्यकी वैसी शोभा नहीं होती
जैसी सौजन्य (भलाई) रूप भूषणसे होती
है ॥ २४ ॥

अश्वेजवोवृषेधैर्यमणौकांतिःक्षमानृपे ।
हावभावौचैवदेयायांगायकेमधुरस्वरः ॥ २५ ॥

भाषार्थ—अश्वका वेग—वैलका धैर्य—म-
णिकी कान्ति—राजाकी क्षमा—वेद्याके हाव
भाव—गानेवालेका मधुर स्वर—भूषण होते
हैं ॥ २५ ॥

दातृत्वंधनिकेशौर्यसैनिकेबहुदुग्धता ।
गोषुदमस्तपस्वीषुविद्वत्सुवादूकता ॥ २६ ॥

भाषार्थ—धनवानका दातृत्व (देना)
सैनिक (शिपाई) का शूरता—गौओंका
बहुत दुग्ध—तपस्वियोंका इन्द्रियोंमें दमन—
विद्वानोंका वावदूकता (सबामें बहुत बोल-
ना) भूषण होता है ॥ २६ ॥

सभ्येष्वपक्षपातस्तुतथासाक्षिपुसत्यवाक् ।
अनन्यभक्तिभृत्येषुसुहितोक्तिश्चमंत्रिषु ॥

भाषार्थ—सभासदोंमें पक्षपात न करना—
साक्षियोंमें सत्यवाणी—भृत्योंमें स्वामिकी
अनन्य भक्ति—और मंत्रियोंमें राजाके हित-
के वचन—भूषण होते हैं ॥ २७ ॥

मौनंमूर्खेषुचस्त्रीपुपातिव्रत्यंसुभूषणं ।
महादुर्भूषणचैताद्विपरीतमभीषुच ॥ २८ ॥

भाषार्थ—मूर्खोंमें मौन—और स्त्रियोंमें पाति
व्रत्य—भूषण होते हैं इन पूर्वोक्त संपूर्णोंमें
इनके विपरीत दुष्टभूषण होते हैं अर्थात्
शोभाको नहीं देते ॥ २८ ॥

भात्येकनायकंनित्यंनैवनिर्बहुनायकं ।
नचहिंस्रमुपेक्षतशक्तोहन्याच्चतत्क्षणे ॥ २९ ॥

भाषार्थ—एक नायक (स्वामी) होय तो
शोभाको प्राप्त होता है नायक नहीं अथवा
बहुत नायक हों तो शोभा नहीं होती और
हिंसा करनेवालेकी उपेक्षा न करें समर्थ
होयतो उसी समय नष्ट करदे ॥ २९ ॥

पैशून्यंचंडताचौर्यमात्सर्यमतिलोभता ।
असत्यंकार्यवातित्वं तथा लसकताप्यलं ॥

भाषार्थ—पैशून्य—(जुगली खाना) चंड
ता—चोरी—मात्सर्य—(परायेगुणोंमें दोषदेखना)
आति लोभ—असत्य—कार्यको नष्ट करना
और अत्यन्त आलसी ये सब होना ॥ ३० ॥

गुणिनामपिदोषायगुणानालाद्यजायते ।
मातुःप्रियायाःपुत्रस्यधनस्यचविनाशनं ॥

भाषार्थ—गुणियोंकीभी गुणोंको ढककर
दोषके लिये होते हैं माता—स्त्री—पुत्र—और
धन—इनका नष्ट होना व क्रमसे ॥ ३१ ॥
वाल्येमध्येचवार्धक्येमहापापफलंक्रमात् ।
श्रीमतामनपत्यत्वमधनानांचमूर्खता ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—शाल्य-यौवन-वृद्ध-अवस्थामें म-
हापापका फल होता है और धनवानोंको
सन्तानका न होना और निर्धन होकर मू-
र्खता होनी ॥ ३२ ॥

स्त्रीणांपंढपतित्वंचनसौख्यायेष्टनिर्गमः ।
मूर्खःपुत्रोऽधवाकन्याचंडीभार्यादरिद्रता॥

भाषार्थ—स्त्रियोंको नपुंसक पति इनसे
सुख और इष्टकी प्राप्ति नहीं होती मूर्ख पुत्र
और विधवा कन्या-और चंडी स्त्री-दरि-
द्रता ॥ ३३ ॥

नीचसेवादनित्यनैतत्पट्कंसुखायच ।
नाध्यापनेनाध्ययनेनदेवेनगुरोर्द्विजे॥ ३४ ॥

भाषार्थ—नीचकी सेवा नित्य भ्रमना-इन
छसे सुख नहीं होता-पढ़ानेमें पढ़ने-देवता
गुरु-ब्राह्मण-इनमें और ॥ ३४ ॥

नकलामुनसंगीतिसेवायानार्जवेस्त्रियां ।
नशौंयैनचतपसिसाहित्यैरमतेमनः॥ ३५ ॥

भाषार्थ—कला-संगीत-सेवा-नम्रता-स्त्री-
श्रुता-तप-साहित्य-(काव्योंकी रचना)
इनमें जिसका मन न रमे ॥ ३५ ॥

यस्यमुक्तःखलःकिंवानरूपपशुश्वसः ।
अन्योदयासहिष्णुश्चछिद्रदशींविनिंदकः॥

भाषार्थ—वह छोटा हुआ खल-नररूप-
धारी पशु होता है और जो अन्यके उद-
यको न सहे अथवा छिद्र देखे वा निन्दा
करे ॥ ३६ ॥

द्रोहशीलःस्वांतमलःप्रसन्नास्यःखलःस्मृतः
एकस्यैव न पर्याप्तमस्ति यद्रहस्यकोशजम् ३७
आशावद्धस्योज्झितस्यतस्याल्पमपिपूर्तिं कृ-
त् ।

करोत्यकार्यंसाशान्यंबोधयत्यनुमोदते ३८

भाषार्थ—जो द्रोहमें मन रक्खे जिसका
अन्तःकरण मलिन हो और मुख प्रसन्न हो
वहभी खल कहा है-और ब्रह्माके सम्पूर्ण
कोश (जगत्) का सम्पूर्ण धन आशा-
वान एक मनुष्यकीभी पूर्ती नहीं करसक्ता
और आशाहीन मनुष्य की अल्पधनसेभी
पूर्ती हो जाती है और आशावान मनुष्य
अकार्यको करताहै-उपदेश देता है और
सम्मति देता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

भवत्यन्योपदेशार्थेधूर्ताःसाधूसमाःसदा ।
स्वकार्यार्थंप्रकुर्वन्तिह्यकार्याणांशतंतुते ३९॥

भाषार्थ—धूर्त मनुष्य अन्यके उपदेशार्थ
सदैव साधुओंके समान होते हैं और
वे अपने प्रयोजनके लिये सैंकड़ों कुकर्म
करते हैं ॥ ३९ ॥

पित्रोराज्ञापालयतिसेवनेचनिरालसः ।
छायेववर्ततेनित्यंयततेचागमायवै ॥ ४०॥

भाषार्थ—जो पुत्र माता-पिताकी आज्ञा
पाले और सेवा आलस्य न करे और छाया
के समान नित्य वर्तें और प्राप्तिके लिये
नित्य यत्न करे ॥ ४० ॥

कुशलःसर्वविद्यासुसपुत्रःप्रीतिकारकः ।
दुःखदोविपरीतोयोदुर्गुणीधननाशकः॥

भाषार्थ—सब विद्याओंमें कुशलहो वह
पुत्र पिताकी प्रसन्नताका कारक होता है
और जो पूर्वोक्तसे विपरीत दुर्गुणी-धन
का नाशक हो वह पिताको दुःखदाई
होता है ॥ ४१ ॥

पत्यौनित्यंचानुरक्ताकुशलागृहकर्मणि ॥
पुत्रप्रसुसुशीलायाप्रियापत्युःसुयौवना ४२

भाषार्थ—जो स्त्री पतिमें नित्य अनुरक्त-
ग्रहके कार्यमें कुशल-पुत्रवती-सुशीला-

श्रेष्ठ गूति-हो वह स्त्री पतिको प्यारी होती है ॥ ४२ ॥

पुत्रापराधान्क्षमतेयापुत्रपरिपेविणी ।
सामाताप्रीतिदानित्यंकुलटान्यातिदुःखदा

भाषार्थ-जो माता पुत्रके अपराधोंको सहकर पुत्रकी पालना करे वह माता नित्य प्रीतिको देती है और पूर्वोक्त अन्य जो व्यभिचारिणी वह दुःख देनेवाली होती है ४३
विद्यागमार्थपुत्रस्यवृत्त्यर्थयत्ततेचयः ।

पुत्रंसदासाधुशस्तिप्रीतिकृत्सपितामृणी ॥

भाषार्थ-जो पिता पुत्रको विद्यालाभके अथवा जीविकाके लिये यत्न करे और सदैव पुत्रको अच्छी शिक्षादे वह पिता प्रीति करनेवाला अनृणी (पुत्रके ऋणसे छूटा) होता है ॥ ४४ ॥

यःसाहायंसदाकुर्यात्प्रीतिपन्नवदेत्काचित् ।
सत्यंहितंवक्तियातिदत्तेगृह्णातिमित्रतां ४५

भाषार्थ-और जो सदैव सहाय करे कभी भी प्रतिकूल न कहे और सत्य हित वचनको कहे माने और दे वह मित्र होता है ॥ ४५ ॥

नीचस्यातिपरिचयोह्यन्यगेहेसदागतिः ।
जातौसंचेप्रातिकूल्यमानहानिर्दरिद्रता ४६

भाषार्थ-नीचोंका अत्यन्त परिचय अन्यके घरमें सदैव गमन और जातिके समुदायमें विरोध और मानकी हानि-दरिद्रता ॥ ४६ ॥

व्याघ्राग्निसर्पहिंस्रानान्हिसंघर्षणंहिंसं ।
सेवितत्त्वानुराज्ञोनैतेमित्राःकस्यसंतिहि ४७

भाषार्थ-सिंह-अग्नि-सर्प-हिंस्र-इनका संबंध हितकारी नहीं होता-और सेवा करनेसे राजाके भी मित्र नहीं होते ॥ ४७ ॥

दौर्मनस्यंचसुहृदांसुप्राबल्यंरिपोःसदा ।

विद्वत्स्वपिचदारिद्र्यंदारिद्र्याद्ब्रह्मपत्यता ४८

भाषार्थ-मित्रोंका दुष्टमन होता है और शत्रुकी सदैव प्रबलता होती है-और विद्वानोंकी दरिद्रता और दरिद्रता अधिक संतान होती है ॥ ४८ ॥

धनीगुणैवेद्यनृपजलहीनेसदास्थितिः ।

दुःखायकन्यकाप्येकापित्रोरपिचयाचनं ॥

भाषार्थ-धनी-गुणी-वैद्य-राजा-जल इनसे रहित स्थानमें सदैव स्थिति (वास) और एकभी कन्या और माता पितासे भी याचना ये सब दुःख के लिये होते हैं ॥ ४९ ॥

सुरूपःसधनःस्वामीविद्वानपिबलाधिकः
नकामयेद्यथेष्टयःस्त्रीणानैवसुसौख्यकृत् ॥

भाषार्थ-जो मनुष्य श्रेष्ठ रूपवान् धनी-विद्वान् अधिक बलवान् होकर स्त्रियोंकी यथेष्ट कामना न करे वह सुखका भोगी नहीं होता ॥ ५० ॥

योयथेष्टंकामयतेस्त्रीतस्यवशगाभवेत् ।

संधारणालालनाञ्जयथायांतिवशंशिशुः ५१

भाषार्थ-जो स्त्रीकी यथेष्ट कामना करता है उसके वशमें स्त्री होजाती है जैसे भली प्रकार रखने और लाडले वालक वशमें हो जाता है ॥ ५१ ॥

कार्यतत्साधकादींश्चतद्व्ययंसुविनिर्गमं ।

विचिंत्यकुरुतेज्ञानीनान्यथालघ्वपिक्वचित्

भाषार्थ-जिसके व्ययका भलीप्रकार जाने उस कामको साधक आदिके द्वारा करे-और ज्ञानी मनुष्य विचार कर कामको करता है और अन्यथा लघुकार्यको कभी भी नहीं करता ॥ ५२ ॥

नचव्ययाधिकं कार्यं कर्तुमीहेतुपंडितः ।

लाभाधिक्यं यत्क्रियते चेष्टाव्यवसायिभिः

भाषार्थ—और अधिक व्यय न करै और पंडित मनुष्य कार्य करनेकी चेष्टा करै—और व्यवसायी (परिश्रमी) मनुष्य थोड़े-भी उस कामको करते हैं जिसमें अधिक लाभ हो ॥ ५३ ॥

मूल्यमानंचपण्यानां याथात्म्यान्मृग्यते सदा
तपःस्त्रीकृषिसेवासोपभोग्येनापि भक्षणे ॥ ५४

भाषार्थ—और पण्य (बेचने योग्य) वस्तुओंके मोल और मानको सदैव दूँदे-तप और स्त्री भोगनेके लिये और कृषिकी सेवा भक्षणके लिये होती है ॥ ५४ ॥

हितःप्रतिनिधिर्नित्यं कार्ये न्येतानियोजयेत् ।
निर्जनत्वं मधुरभुक् नारश्चोरः सदेच्छति ॥ ५५

भाषार्थ—प्रतिनिधि सदैव हित होता है—उसको अन्य काममें नियुक्त करै—मधुरका भोगी जाए—चोर ये सदैव निर्जन देशको चाहते हैं ॥ ५५ ॥

साहार्यं तु बलिद्विष्टे वेद्याधनिकमित्रतां ।
कुनृपश्च छलं नित्यं स्वाभिद्रव्यं कुसेवकः ॥ ५६

भाषार्थ—और बलवान्का वैरी सहायता और वेद्या धनवान्की मित्रता—और खोटा राजा नित्य छल और खोटा सेवक स्वामीके द्रव्यकी सदैव इच्छा करते हैं ॥ ५६—
तत्त्वंतु ज्ञानवान्दंभतपोर्गिनदेवजीवकः ।
योग्येकांतं च कुलटाजारं वैद्यं च व्याधितः ॥ ५७

भाषार्थ—ज्ञानी मनुष्य—तत्त्वकी—दंभ—तपकी—देवजीवक—अग्निकी—योगी—एका—न्तकी—व्यभिचारिणी—जारकी—रोगी—वैद्यकी—और ॥ ५७ ॥

धृतपण्यो महर्षत्वं दानशीलं तु याचकः ।

रक्षितारं मृगयते भीतिः छिद्रं तु दुर्जनः ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—जिसके माल पड़ा हो—वह महर्षेकी याचक—दानकी—भयभीत—रक्षा करनेवालेकी दुर्जन छिद्रकी—इच्छा करते हैं ॥ ५८ ॥

चंडायते विवदते स्वपितृश्रातिमादकं ।

करोति निष्फलं कर्म मूर्खो वास्वेष्टनाशनं ॥ ५९

भाषार्थ—मूर्ख मनुष्य प्रचंड होजाय—विवाद करे—सोवे—मादक वस्तु भक्षण करे—वा निष्फल कर्म करे—अथवा अपने इष्टकी अनिष्ट करे ॥ ५९ ॥

तमोगुणाधिकं क्षात्रं ब्राह्मं सत्त्वगुणाधिकं ।

अन्यद्रजोधिकं तेजस्ते पुंसत्त्वाधिकं वरं ॥ ६०

भाषार्थ—क्षत्रियमें तमोगुण—ब्राह्मणमें सत्त्वगुण—इनसे अन्योंमें रजो गुण अधिक होता है—इन तीनोंमें जिसमें सत्त्वगुण अधिक हो वह श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥

सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणा ।

तत्तेजसो नृतेजांसि सति च क्षत्रियादिषु ॥ ६१

भाषार्थ—ब्राह्मण अपने कर्मसे सबसे अधिक होता है और क्षत्रिय आदिकोंमें उसके तेजसे न्यूनतेज होता है ॥ ६१ ॥

स्वधर्मस्य ब्राह्मणं हि दृष्ट्वा विभ्यति चेतः ।

क्षत्रियादिनान्यथा स्वधर्मं चातः समाचरेत् ॥

भाषार्थ—अपने धर्ममें टिके हुये ब्राह्मणको देखकर क्षत्रिय आदि डरते हैं अन्यथा नहीं इससे ब्राह्मण अपने धर्मका आचरण करे ६२
न स्यात्स्वधर्महानिस्तु यया नृत्या च सावरा ।
सदेशः प्रवरो यत्र कुटुंबभरणं भवेत् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—वही जीविका श्रेष्ठ होती है—जिसमें अपने धर्मकी हानि न हो—वही देश

उत्तम होता है जिसमें कुटुम्बका पालन होय ॥ ६३ ॥

कृषिस्तुचोत्तमावृत्तिःयासरिन्मातृकामता मध्यमावैश्यवृत्तिश्चशूद्रवृत्तिस्तुचाधमा ॥

भाषार्थ—जो नदीके तीरपर कीजाय वह खेती उत्तम वृत्ति होती है—और वैश्यकी वृत्ति मध्यम और शूद्रवृत्ति अधम होती है ॥ ६४ ॥

याज्ञचाधमतरावृत्तिर्धर्मशीलनृपस्यच ॥ कचित्सेवोत्तमावृत्तिर्धर्मशीलनृपस्यच ॥

भाषार्थ—याचनाकी वृत्ति अति अधम होती है—परन्तु तपस्वियोंमें वह याचना उत्तम वृत्ति होती है—और कहीं २ धर्मशील राजा की सेवामी उत्तम होती है ॥ ६५ ॥

अध्वर्यवादिकं कर्म कृत्वा यो गृह्यते भृतिः । स किं महाधनयैव वाणिज्यमलभे वा किं ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—अध्वर्यु आदिके कर्मको करिके जो वेतनको ग्रहण करता है वह क्या महा धनी होता है और क्या वाणिज्यसे (लेन देन) से महाधन होता है अर्थात् नही होते ॥

राजसेवां विना द्रव्यं विपुलं नैव जायते ।

राजसेवातिगहना बुद्धिमाद्भिर्विन्नानसा ॥

भाषार्थ—राजसेवाके विना विपुल धन नही होता और राजसेवा अत्यन्त कठिन होती है बुद्धिमान मनुष्योंके विना ॥ ६७ ॥

कर्तुं शक्याचेतरेण ह्यसिधारेव सर्वदा ।

व्यालग्राहीयथा व्यालं मंत्रीमंत्रवलान्नृपं ॥

भाषार्थ—राजसेवाको कोई नहीं करसक्ता क्योंकि राजसेवा सदैव खड़गधाराके समान होती है सर्पका पकडनेवाला जैसे सर्पको इसी प्रकार मंत्रीमंत्रके बलसे राजाको ॥ ६८ ॥

करोत्यधीनं तु नृपेभ्यं बुद्धिमतां महत् ।

ब्राह्मतेजो बुद्धिमत्सु क्षात्रं राज्ञि प्रतिष्ठितं ६९

भाषार्थ—आधीन करलेता है और बुद्धिमान मनुष्योंको राजाका बड़ा भय होता है बुद्धिमानोंमें ब्रह्मतेज और राजाओंमें क्षत्रियोंका तेज रहता है ॥ ६९ ॥

आरादेव सदा चास्ति तिष्ठन् दूरेऽपि बुद्धिमान् । बुद्धिपाशैर्विधायित्वा संताडयति कर्षति ॥

भाषार्थ—दूर टिकाभी बुद्धिमान मनुष्य सदैव समीप रहता है बुद्धिकी पासोमें बांध कर ताडता है और वसना करता है ॥ ७० ॥ समीपस्थोऽपि दूरे स्तिष्ठत्यक्षसहायवान् । नानुवाकहता बुद्धिर्व्यवहारक्षमा भवेत् ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—जिसको साहायताका प्रत्यक्ष (ज्ञान) न होय वह समीपमें टिकाभी दूर होता है और शास्त्रके ज्ञानसे हीन बुद्धि व्यवहार के योग्य नहीं होती ॥ ७१ ॥

अनुवाकहता या तु न सा सर्वत्र गामिनी ।

आदौ वरनिर्धनत्वं धनिकत्वमनंतरं ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—और जो बुद्धि शास्त्रके ज्ञानसे हीन है वह सबजगह नहीं पहुंचती पहिले निर्धन होना—और पीछेसे धनवान होना अच्छा होता है ॥ ७२ ॥

तथा दौपादगमनं यानगत्वमनंतरं ।

सुखाय कल्पते नित्यं दुःखाय विपरीतकं ७३

भाषार्थ—तिसी प्रकार पहिले पैरों चलना—और पीछेसे यान (सवारी) में चलना—सदैव सुखदाई होता है और इससे विपरीत दुःख दायी होता है ॥ ७३ ॥

वरं हित्व न पत्यत्वमृतापत्यत्वतः सदा ।

दुष्टयानात्पादगमो ह्यौदासिन्यं विरोधतः ॥

भाषार्थ—सन्तानके मरनेसे सन्तानका न होना और दुष्टयानसे पैरों चलना और विरोध करनेसे उदासीन रहना सदैव अच्छा होता है ॥ ७४ ॥

वरदेशाच्छादनतश्चर्मणापादगूहनं ।
ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञताप्रवरामता ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—और देशके आच्छादनसे चर्मसे पैरोंका ढकना अच्छा होता है—और ज्ञानके लेशसे दुर्विदग्ध (अल्पज्ञता) से मूर्खता अच्छी कही है ॥ ७५ ॥

परगृहनिवासात्परिणिवसनंवरं ।
प्रदुष्टभार्यागार्हस्थ्यद्वैक्ष्यं वामरणंवरं ७६ ॥

भाषार्थ—अन्यके घरमें निवाससे वनमें रहना और दुष्टभार्यावाले गृहस्थसे भिक्षा वा मरणा श्रेष्ठ होता है ॥ ७६ ॥

श्वमैथुनमृगं गर्भाधानं स्वामित्वमेव च ।
खलसख्यमपथ्यं तु प्राक्सुखंदुःखनिर्गमं ॥

भाषार्थ—श्वा (कुत्ता) का मैथुन—ऋण—गर्भाधान—स्वामी होना—खलकी—मित्रता अपथ्य—इनमें पहिले सुख और पीछे निकासने के समयमें दुःख होता है ॥ ७७ ॥

कुगं त्रिभिर्नृपो रोगी कुर्वेद्यैः कुनृपैः प्रजा ।
कुसंतत्याकुलं चात्मा कुबुद्ध्या हीयतेऽनिशं ॥

भाषार्थ—कुमंत्रियोंसे राजा कुर्वेद्योंसे रोगी—कुत्सित राजाओंसे प्रजा—खोटी सन्तानसे कुल—कुबुद्धिसे आत्मा—सदैव नष्ट होते हैं—
हस्त्यश्ववृषवाल्मीशुकानां शिक्षको यथा ।
तथा भवति ते नित्यं संसर्गगुणधारकाः ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—हाथी—अश्व—बैल—वाल्मीक—श्री—शुक—(तोता) इनकी शिक्षा देने वाले जैसे हों वैसेही गुण हाथी आदिकोंमें संसर्गसे होता है ॥ ७९ ॥

स्याज्जयो वसरोत्तया सद्गसनैः सुप्रसिद्धता ।
सभायां विद्ययामानखितयं त्वधिकारतः ॥

भाषार्थ—समयके अनुसार वचनसे—जय—अच्छे वस्त्रोंसे—प्रसिद्धि—विद्यासे सभामें मान (वडाई) होता है और ये तीनों अधिकार मिलनेसे होते हैं ॥ ८० ॥

सुभार्या सुपुत्रा पत्युं सुविद्या सुधनं सुहृत् ।
सुदासदास्यो सदेहः सद्भस्म सुनृपः सदा ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ भार्या—अच्छी सन्तान—उत्तम विद्या—उत्तम धन—उत्तम मित्र—उत्तम दास और दासी—श्रेष्ठ देह—श्रेष्ठ घर—और उत्तम राजा—ये सदैव ॥ ८१ ॥

गृहीणां हि सुखायालं दशैतानि न चान्यथा ।
वृद्धाः सुशीला विश्वस्ताः सदा चारास्त्रियो नराः ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—ये दस गृहस्थियों पूर्ण सुखके होते हैं और अन्यथा नहीं वृद्ध—सुशील—विश्वासके योग्य—सदाचारमें तत्पर—स्त्री—वा मनुष्य ॥ ८२ ॥

स्त्रीवातांतः पुरे योज्या न युवामित्रमप्युत ।
कालं नियम्य कार्याणि ह्याचरेन्नान्यथा क्वचित् ॥

भाषार्थ—वा नपुंसक इनको रणवासमें नियत करे और युवा चाहे मित्रभी हो तथापि नियुक्त न करे—और समयके नियमसे कार्योंको करे अन्यथा कभी न करे ॥ ८३ ॥

गवादिष्व्वात्मवज्ज्ञानमात्मानं चार्थधर्मयोः ।
नियुंजीता त्रसंसिध्यै मातरां शिक्षणे गुरुं ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य आत्मज्ञानी हो उसको गौ आदिकोंकी सेवामें और आत्माको धन और धर्ममें और अन्नके पाकमें माताका और शिक्षा देनेमें गुरुको नियुक्त करे ८४ ॥

गच्छेदनियमेनैवसदैवांतःपुरेनरः ।

भार्यानपत्यासद्यानंभारवाहीसुरक्षकः ॥८५॥

भाषार्थ—मनुष्य अपने रणवासमें सदैव विना नियम गमन करे—और जिसके सन्तान नहो ऐसी भार्या—अच्छा यान—और भारका लेजानेवाला अच्छा रक्षक ॥ ८५ ॥

परदुःखहराविद्यासेवकश्चनिरालसः ।

षडैतानिमुखायालंघ्रवासेतुनृणांसदा ॥८६॥

भाषार्थ—और पर दुःख हरनेवाली विद्या—और निरालसी सेवक—ये छः परदेशमें मनुष्योंको सदैव सुखदाई होते हैं ॥ ८६ ॥

मार्गानिरुध्यनस्थेयंसमर्थेनापिकर्हिचित् ।

सद्यानंनापिगच्छेन्नहृदमार्गेनृपोपिच ॥८७॥

भाषार्थ—समर्थभी मनुष्य मार्गको रोककर कदाचित्भी खड़ा नहो और राजाभी हृदमार्ग (वाजार) में अच्छे यानसे गमन न करे ८७

ससाहायःसदाचस्यादध्वगोनान्यथाकचित्
समीपसन्मार्गजलोभयग्रामेध्वगोवसेत् ८८

भाषार्थ—और अध्वग (मार्ग चलनेवाला) सदैव सहायको रक्खे और अन्यथा कभी नरहे और ऐसे गाममें रात्रिको वसे जिसके समीप अच्छा मार्ग और जल दोनों अच्छे हों ॥ ८८ ॥

तथाविधेवाविरमेन्नमार्गेविपिनेपिन ।

अत्यटनंचानशनमतिमैथुनमेवच ॥८९॥

भाषार्थ—और ऐसेही ग्राममें विश्राम करे और मार्ग और वनमें विश्राम न करे अति भ्रमण—अति भोजन—अति मैथुन ॥ ८९ ॥

अत्यायासश्चसर्वेषांद्राजराकरणंभवेत् ।

सर्वविद्यास्वनभ्यासोजराकारीकलासुचं ॥

भाषार्थ—अति परिश्रम—ये चारों सब मनुष्योंका शीघ्र जरा करनेवाला होते हैं और संपूर्ण विद्याओंमें वा कलाओंमें अभ्यास न करना जरा करनेवाला होता है ॥ ९० ॥

दुर्गुणंतुगुणीकृत्यकीर्तयेत्सप्रियोभवेत् ।

गुणाधिक्यंकीर्तयतिःकिंस्यान्नपुनःसखा

भाषार्थ—जो मनुष्य दुर्गुणकोभी गुणरूपसे वर्णन करे वह प्यारा होता है जो अधिक गुणोंका कीर्तन करता है वह तो मित्र क्यों न होगा ॥ ९१ ॥

दुर्गुणंवक्तिसत्येनप्रियोपिसोप्रियोभवेत् ।

गुणाहिदुर्गुणीकृत्यवक्तियःस्यात्कथंप्रियः ॥

भाषार्थ—जो प्यारा होकरभी दुर्गुणोंको स्पष्ट कहे वह शत्रु होता है—और जो गुणकोहि दुर्गुण कहकर वर्णन करे वह प्रिय कैसे होसक्ता है ॥ ९२ ॥

स्तुत्यावश्यांतिदेवाहांजसाकिंपुनर्नराः ।

प्रत्यक्षदुर्गुणान्नैववक्तुंशक्नोतिकोप्यतः ॥

भाषार्थ—स्तुति करनेसे देवताभी सुखसे वशमें हो जाते हैं नर क्यों न होंगे—इससे कोईभी मनुष्य दुर्गुणोंको प्रत्यक्ष नहीं कह सक्ता ॥ ९३ ॥

स्वदुर्गुणान्स्वयंचातोविमृशेल्लोकशास्त्रतः ।

स्वदुर्गुणश्रवणतोयस्तुप्यतिनक्रुध्यति ९४

भाषार्थ—अपने दुर्गुणोंको लोक वा शास्त्रसे स्वयं विचारे और अपने दुर्गुणोंके सुननेसे न प्रसन्नहो न क्रोध करे ॥ ९४ ॥

स्वोपहासप्रविज्ञानेयततेत्यजतिश्रुते ।

स्वगुणःश्रवणान्नित्यंसमस्तिष्ठतिनाधिकः ॥

भाषार्थ—और अपने अधिक ज्ञानमेंभी उपहास समझकर यत्न करे और दुर्गुणोंको

सुनकर त्यागि और अपने गुणोंको सुनकर
समरह अधिक नहो ॥ ९५ ॥

दुर्गुणानां खनिरहं गुणाधानं कथं मयि ।
मन्ये वचाज्ञताप्यस्ति मन्यते सोधिको खिला
तु ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—मैं दुर्गुणोंकी खानहूँ मेरेमें गुण
कैसे होसकेहैं और मेरेहीमें मूर्खता है इस
प्रकार जो मानताहै वही सबसे अधि-
कहै ॥ ९६ ॥

ससाधुस्तस्य देवाहिकलालेशं भंति न ।
सदाल्पमप्युपकृतं महत्साधुषु जायते ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—वही साधुहै जिसकी कलाके
लेशको देवताभी प्राप्तहो नहीं और साधु-
ओंमें अल्पभी उपकार सदैव महान् होताहै
मन्यते सर्पपादल्पं महच्चोपकृतं खलः ॥

तथानकीडयेत्कौश्चित्कलहाय भवेद्यथा ॥ ९८ ॥

भाषार्थ—बड़ेभी उपकारको खल मनुष्य
सरसोंसे अल्प मानताहै और उस प्रकारकी
क्रीडा किसीके संगभी नकरे जिससे कल-
ह हो ॥ ९८ ॥

विनोदेषि शपेन्नैवं ते भार्याकुलटास्ति किं ।

अपशब्दाश्च नोवाच्यामित्रभावाच्च केप्यपि ॥

भाषार्थ—विनोदमेभी ऐसा शाप नदे कि
तेरी भार्या क्या व्यभिचारिणी है और मित्र-
भावसे किसीको अपशब्द न कहें ॥ ९९ ॥

गोप्यं न गोपयेन्मित्रे तद्गोप्यं न प्रकाशयेत् ।

वैरीभूतोपि पश्चात्प्राक्कथितं वापि सर्वदा ॥ १०० ॥

भाषार्थ—और मित्रसे छिपाने योग्य
वस्तुको न छिपावे और मित्रकी गोप्य
वस्तुका प्रकाश न करे और पहिले कहीं
हुई अयोग्यवातका वैरी होनेपर कभीभी
प्रकाश न करे ॥ १०० ॥

विज्ञातमपि यदौघ्यं दर्शयेत्तन्न कर्हि चित् ।
प्रतिकर्तुं यतैतैव गुप्तः कुर्यात्प्रतिक्रियां ॥ १०१ ॥

भाषार्थ—और जो दुष्टता जानभी लीनहो
उसको कदाचित् न दिखावे और प्र-
तिकार करने का यत्न करे जिसने अपनी
रक्षा कीहो उसका प्रतिकार करे ॥ १०१ ॥

यथार्थमपि न द्रूयाद्बलवद्विपरीतकं ।

दृष्टं स्वदृष्टवत्कुर्यात् श्रुतमप्यश्रुतं कचित् ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—और बलवान् मनुष्यके यथार्थभी
विपरीतको नकहे देखेकू न देखेके समान
व सुनेकू न सुनेके समान करे ॥ १०२ ॥

मूर्को धोषधिरः खंजो स्वापत्काले भवेन्नरः ।

अन्यथा दुःखको व्यवहारसे हानिकी प्राप्त
होतहै ॥ ३ ॥

भाषार्थ—और मनुष्य अपनी आपत्तिके
समयमें—मूर्क—अन्ध—ब्रधिर— खंज होजाय
अन्यथा दुःखको व्यवहारसे हानिकी प्राप्त
होतहै ॥ ३ ॥

वदेद्ब्रह्मणु कूलं यन्नवालसदृशं कचित् ।

परवेद्भगवत्तत्स्त्रीवीक्षणं न चकारयेत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—और बृद्धोंके अनुकूल वचनको
कहे बालकोंके सदृश कभीभी न कहें और
पराये घरमें जाकर उसकी स्त्रीको न देखे ॥ ४ ॥

अधनादननुज्ञातान्न गृहीयात्तु स्वामिना ।

स्वशिशुं शिक्षयेदन्यशिशुनाप्यपराधिनं ॥ ५ ॥

भाषार्थ—और निर्धन होकरभी स्वामीकी
आज्ञाके बिना कोईवस्तु ग्रहण न करे अपने
बालकको शिक्षादे और अन्यके बालकका
अपराध न करे ॥ ५ ॥

अधर्मनिरतो यस्तु नीतिहीनश्च लोभः ।

संकर्षकोतिदं दीतद्व्याप्तं त्वान्यतो वसेत् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जो ग्राम अधर्ममे सदैव रत नीतिसेही न मनमे छली लोभी अत्यन्त दण्ड वालाहो उस ग्रामको त्यागकर अन्यत्र वसे ॥ ६ ॥

यथार्थमपिविज्ञातमुभयोर्वादिनोर्मतं ।
अनियुक्तो न वै ब्रूयाद्धीनश्नुर्भवेदतः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—दोनों वादी प्रतिवादियोंके यथार्थ जाने हुयेभी मतको राजाज्ञाके बिना नकहे इससे मनुष्यका शत्रु कोई नहीं होता ॥ ७ ॥

गृहीत्वान्यविवादंतु विवेकैव केनचित् ।
मिलित्वा संघशो राजमंत्रं नैव तु तर्कयेत् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—अन्यके विवादको ग्रहण करके किसीके संग विवाद नकरे और किसीसमूह दायमे राजाके मंत्रकी तर्कना न करे ॥ ८ ॥

अज्ञातशास्त्रेण ब्रूयाज्ज्योतिषधर्मनिर्णयं ।
नीतिदण्डचिकित्सांच प्रायश्चित्तं क्रियाफलं १

भाषार्थ—विनाशास्त्रके जाने ज्योतिष-धर्मनिर्णय—नीति—दण्ड—चिकित्सा प्रायश्चित्त क्रियाका फल इनको नकहे ॥ ९ ॥

पारतन्त्र्यात्परंदुःखं न स्वातन्त्र्यात्परं सुखं ।
अप्रवासी गृहीनित्यं स्वतंत्रः सुखमेधते ॥ १० ॥

भाषार्थ—पराधीनसे परेदुःख और स्वतन्त्रतासे परे सुख नहीं होता जो गृहस्थी अप्रवासी और स्वतन्त्र होताहै वह नित्य सुख पाताहै—१०

नूतनप्राक्तनानांच व्यवहारविदां धिया ।
प्रतिक्षणंचाभिनवा व्यवहारो भवेदतः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—नवीन और पुराने व्यवहारोंके जो जानने वालेहैं उनको बुद्धिसे देखे क्यों-कि व्यवहार क्षण २ में नवीन होताहै ॥ ११ ॥

वक्तुं न शक्यते प्रायः प्रत्यक्षादनुमानतः
उपमानेन तज्ज्ञानं भवेदात्तोपदेशतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—व्यवहारको प्रत्यक्ष कोई कह नहीं सकता किन्तु प्रत्यक्ष अनुमान—उपमान—आसों (बडे) के उपदेशसे व्यवहारका ज्ञान होताहै ॥ १२ ॥

कथितं तु समासेन सामान्यं नृपराष्ट्रयोः
नीतिशास्त्रं हितायालयद्विशिष्टं नृपस्मृतं ॥

भाषार्थ—राजा और प्रजाके हितार्थ यह सामान्य नीतिशास्त्र संक्षेपसे कहा जो राजाके लिये उत्तम कहाहै ॥ १३ ॥

तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

श्रीः ।

शुक्रनीति

(भाषाटीकासहिता)

अध्याय ४ था

अयमिश्रप्रकरणं प्रवक्ष्यामि समासतः ।

लक्षणं सुहृदादीनां समासाच्छृणुताधुना ॥ १

भाषार्थ—अब संक्षेपसे कहता हूँ अब मित्र आदिके लक्षणकी संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

मित्रः शत्रुश्चतुर्धा स्यादुपकारापकारयोः ।

कर्ता कारयिता चानुमता यश्च सहायकः ॥ २

भाषार्थ—मित्र और शत्रु उपकार और अपकारके करने कराने अनुमति देने सहायता करनेसे चार प्रकारके होते हैं ॥ २ ॥

यस्य सुद्रवते चित्तं परदुःखेन सर्वदा ।

इष्टार्थे यत्तत्तन्मन्यस्याप्रेरितः सत्करोति यः ॥ ३

भाषार्थ—पराये दुःखसे जिसका चित्त संदेव पिघले और बिना प्रेरणाके अन्यके इष्टार्थ यत्न करे वा सत्कार जो करे ॥ ३ ॥

आत्मस्त्री धनगुह्यानां शरणं समये सुहृत् ।

प्रोक्तो तत्तमो यमन्यश्च द्विव्येकपदमित्रकः ॥

भाषार्थ—वह मित्र जीव स्त्री धन गुप्त वस्तु इनके लिये समय पर शरण (रक्षक) और उत्तम कहाँ और अन्यतो एक दो तीन परें तक मित्र होता है ॥ ४ ॥

अनन्यस्वत्वकामत्वमेकस्मिन्विषये द्वयोः ।
वैरिलक्षणमेतद्वान्येष्टनाशनकारिता ॥ ५ ॥

भाषार्थ—एक वस्तुके विषय दो मनुष्यों की ऐसी बुद्धि हो कि यह अन्यकी नहीं यह वा अन्यके इष्टको नष्ट करना वैरीका लक्षण होता है ॥ ५ ॥

भ्रातृभावेऽपि तुर्द्रव्यमखिलं ममैव भवेत् ।
न स्यादेतत्स्ववश्यं यममैव स्यात्परस्परं ॥ ६

भाषार्थ—भाईके विद्यमान होनेपर सम्पूर्ण पिताका द्रव्य मुझे मिले और मैं इसके वसमे नहूँ और ये मेरे वशमें रहे ऐसी परस्पर मति हो ॥ ६ ॥

भोक्ष्ये खिलमहं चैतद्विना न्यस्तस्तु वैरिणौ ।
द्वेष्टिद्विष्टलभौ शत्रूस्तश्चेकतरसंज्ञकौ ॥ ७ ॥

भाषार्थ—इस सबको मैं भोगूँगा और अन्यनहीं वे परस्पर वैरी होते हैं जो द्वेष करे और जिसके संग वैर करे वह दोनों एकसे शत्रु होते हैं ॥ ७ ॥

शूरस्योत्थानशीलस्य बलनीतिमतः सदा
सर्वमित्रागृहवैरागृपाः कालप्रतीक्षकाः ॥ ८

भाषार्थ—जो राजा सदैव शूरहै उत्थान शील (दूसरे पर चढ़ना) है सेना और नीतिवाला है उसके सब मित्रभी राजा गूढ़ (छिपे) समयके देखने वाले वैरी होतेहैं— भवन्तीतिकेमाश्वर्यराज्यलुब्धानतेहिर्किं । नराज्ञोविद्यतेमित्रंराजामित्रंनकस्यैव ॥१॥

भाषार्थ—इसमें कुछ आश्चर्य नहीं क्या उनको राज्यका लोभ नहीं न राजाका कोई मित्रहै न राजा किसीका मित्रहै ॥ १ ॥

प्रायःकृत्रिममित्रेतेभवतश्चपरस्परं । केचित्स्वभावतोमित्राःशत्रवःसंतिसर्वदा ॥

भाषार्थ—प्रायः वे दोनों परस्पर कृत्रिम (मतलबी) मित्र परस्पर होतेहैं और कोई मनुष्य सुभावसे मित्रभी सदैव शत्रु होतेहैं १० मातामातृकुलंचैवपितातत्पितरौतथा । पितृपितृन्यात्मकन्यापत्नीतत्कुलमेवच ॥

भाषार्थ—माता—माताका कुल—पिता—पिताके माता पिता पिताके चाचा—अपनी कन्या—पत्नी—और पत्नीका कुल ॥ ११ ॥

पितृमातात्मभगिनीकन्यकासंततिश्चया । प्रजापालोगुरुश्चैवमित्राणिसहजानिहि ॥

भाषार्थ—पिता माताकी और अपनी भगनी—कन्याकी संतान—प्रजाना पालक—(राजा) गुरु—ये सब सदैव स्वाभाविक मित्र होतेहैं ॥ १२ ॥

विद्याशौर्यचदाक्ष्यंचबलंधैर्यचपंचमं । मित्राणिसहजान्याहुर्वर्तयंतितिहैर्बुधाः १३

भाषार्थ—विद्या—शूरवीरता—चतुराई—बल—और पांचवी धीरता येभी स्वाभाविक मित्र कहेहैं क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य इनसेही वर्ततेहैं ॥ १३ ॥

स्वभावतोभवत्येतेहिंस्रोदुर्बृत्ताएवच ।

ऋणकारीपिताशत्रुर्मातास्त्रीव्यभिचारिणी॥

भाषार्थ—और हिंसक—दुराचारी ये स्वभावसे शत्रु—और ऋणका कर्ता पिता—और व्यभिचारिणी माता और पत्नी ये सब शत्रु—होतेहैं ॥ १४ ॥

आत्मपितृभ्रातरश्चतत्स्त्रीपुत्राश्चशत्रवः ।

स्तुषाश्वश्रूःसपत्नीचनानांदायातरस्तथा ॥

भाषार्थ—अपने और पिताके भाई उनकी स्त्री और पुत्र—पुत्रकी वधू और सास और सपत्नी ननद—और याता—(दुपानी—जिठानी) ये सब परस्पर शत्रु होतेहैं ॥ १५ ॥

सूखःपुत्रःकुवैद्यश्चरक्षकस्तुपिताप्रभुः ।

चंडोभवेत्यजाशत्रुरदाताधनिकश्चयः ॥

भाषार्थ—सूखपुत्र—कुवैद्य—रक्षा नकरने वाला पिता—और राजा—और चंड(क्रोधी) और धनवान होकरके अदाता—ये सब प्रजाके शत्रु होतेहैं ॥ १६ ॥

आसमंताच्चतुर्दिक्षुसन्निकृष्टाश्चयेनृपाः ।

तत्परास्तत्परायेन्येकमाद्धीनबलारयः १७

भाषार्थ—और राजाके चारों दिशाओंमें चारों तरफ जो राजा होतेहैं और उनसे परले और उनसेभी परले हीनबल शत्रु १७

शत्रुदासीनमित्राणिक्रमात्तेस्युस्तुप्राकृताः । अरिर्मित्रमुदासीनोनेतरस्तत्परस्परम् ॥ १८

भाषार्थ—ये सब क्रमसे—शत्रु—उदाशीन—मित्र—प्राकृतहो (स्वाभाविक) होतेहैं—शत्रु—मित्र—उदाशीन और उसके अनन्तर (समीपवर्ती) येभी परस्पर ॥ १८ ॥

क्रमशोवातयाज्ञेयाश्चतुर्विधस्तथारयः ।

स्वसमीपतराभृत्याह्यमात्याद्याश्चकीर्तिताः ।

भाषार्थ—क्रमसे चारों दिशाओंमें उसीप्रकार शत्रु जाननें और अपने अत्यन्त समीपके भृत्य और मंत्री आदिभी शत्रु कहेहैं ॥ १९ ॥

वृंहयेत्कर्षयेन्मित्रंहीनाधिकबलक्रमात् ।

भेदनीयाःपिडनीयाःकर्षणीयाश्चशत्रवः ॥

भाषार्थ—हीनबल-मित्रको बढ़ावें और अधिकबलकों घटावे अर्थात् उससे कुछ सहायता लें और शत्रुओंकी सदैव भेदन-पीडन कर्षण (हिंसा) करे ॥ २० ॥

विनाशनीयास्तेसर्वेसामादिभिरुपक्रमैः ।

मित्रशत्रूयथायोगैःकुर्यात्स्ववशवर्तिनौ ॥

भाषार्थ—और साम आदि उपायोंसे उन सबका विनाश करें मित्र और शत्रुओंभी यथोचित उपायोंसे अपने वशमें करे २१

उपायेनयथाव्यालोगजःसिंहोपिसाध्यते ।

भूमिष्ठाःस्वर्गमायांतिवज्रंभिदत्युपायतः ॥

भाषार्थ—जैसे उपायसे सर्प-हाथी-सिंह-कोभी साधलेतेहैं और पृथ्वीके वसनेवाले स्वर्गमें उपायसे जातेहैं और उपायसे ही वज्रको वीधतेहैं ॥ २२ ॥

सुहृत्संबन्धिस्त्रीपुत्रप्रजाशत्रुपुत्रपृथक् ।

सामदानभेददंडाश्चित्नीयाःस्वयुक्तिभिः

भाषार्थ—मित्र-सम्बन्धी-स्त्री-पुत्र-शत्रु-इन सबमें पृथक् २ सामदान-भेद-दण्ड-इनकी चिन्ता (विचार) अपनी युक्तियोंसे करे ॥ २३ ॥

एकशीलवयाविद्याजातिव्यसनवृत्ततः ।

साहचर्यान् भवेन्मित्रमेभिर्थादितुसार्जवैः ॥ २४

भाषार्थ—एक स्वभाव—एक अवस्था—एक विद्या—एक जाति—एक व्यसन—एक जीविका—एकवास—यदि ये सब नम्रता सहित हों तो इनसे मित्रता होजातीहै ॥ २४ ॥

त्वत्समस्तुसखानास्तिमित्रेसाममिमंस्मृतं ।
ममसर्वतैवैवास्तिदानंमित्रेसजीवितं ॥ २५ ॥

भाषार्थ—मित्रके विषय साम यह कहाहै कि तेरी बराबर कोई मित्रनहीं जो मेरे पास है वह सब तेराहै और दान जीवितकाभी मित्रके लिये कहाहै ॥ २५ ॥

मित्रेन्यमित्रसुगुणान्कीर्तयेद्भेदनंहितम् ।

मित्रेदंडोनाकारिष्येमैत्रीमेवंविधोसिचेत् ॥ २६

भाषार्थ—और भेदन यह होताहै कि मित्रके आगे दूसरे मित्रके गुणोंका कीर्तन करना और मित्रके लिये दण्ड यह होताहै कि यदि तू ऐसाहै तो तेरे संग मित्रता न करूंगा २६ योनसंयोजयेदिष्टमन्यानिष्टमुपेक्षते ।

उदासीनःसनकयंभवेच्छत्रुःसुसांधिकः ॥ २७

भाषार्थ—जो मनुष्य इष्टका संयोगन करे और अन्यके अनिष्टकी उपेक्षा करे वह उदासीनभी संघी (मेल) करनेके समय शत्रु क्यों नहीं होता ॥ २७ ॥

परस्परमनिष्टंनचिंतनीयंत्वयामया ।

सुसहाय्यंहिकर्तव्यंशत्रौसामप्रकीर्तितं ॥ २८

भाषार्थ—मुझे और तुझे परस्पर अनिष्टकी चिन्ता न करनीचाहिये—किन्तु परस्पर सहायता करनी यह शत्रुके लिये साम कहाहै ॥ २८ ॥

करैर्वाप्रमितैर्ग्रामैर्वत्सरेप्रबलंरिपुं ।

तोषयेत्तद्धिदानंस्याद्यथायोग्येषुशत्रुषु ॥ २९

भाषार्थ—कर देने वा प्रमित (दो चार) ग्रामोंसे वर्ष भरके लिये प्रवल शत्रुको प्रसन्न करदे यह यथायोग्य शत्रुओंके लिये दान होता है ॥ २९ ॥

शत्रुसाधकहीनत्वकरणात्प्रवलाश्रयात् ।
तद्धीनतोज्जीवनाच्चशत्रुभेदनमुच्यते ३० ॥

भाषार्थ—और शत्रुकी साधकसे हीन करना प्रवलाका आश्रयलेना उससे हीन हो कर जाना यह शत्रुके लिये भेदन कहाँ ३०
दस्युभिःपीडनशत्रोःकर्पणधनधान्यतः ।
ताच्छिद्रदर्शनादुग्रवलैर्नान्त्याप्रभीषणं ॥ ३१

भाषार्थ—चोरोसे शत्रुके पीडा देना और धनधान्यकी हिंसा करनी उसके छिद्रोंको देखना उग्रवल नीतिसे भय दिखाना और ३१
प्राप्तयुद्धानिवातित्वैच्चासनंदंडउच्यते ।

क्रियाभेदादुपायाहिभिद्यंतैचयथार्हतः ३२

भाषार्थ—प्राप्तहुये युद्धमें न हटकर त्रास देना यह शत्रुके लिये दण्ड कहाँ है—और क्रियाके भेदसे उपायोंकाभी यथा योग्य भेद हो जाता है ॥ ३२ ॥

सर्वोपायैस्तथाकुर्यान्नीतिज्ञःपृथिवीपतिः ।
यथास्वाभ्यधिकानस्युर्मित्रोदासीनशत्रवः

भाषार्थ—नीतिका ज्ञाता राजा तिस प्रकार सम्पूर्ण उपायोंसे आचरण करे जैसे मित्र उदासीन—शत्रु—ये तीनों अपनेसे अधिक नहो ॥
सामैवप्रथमंश्रेष्ठंदानंतुतदनंतरं ।

सर्वदाभेदनशत्रोर्दंडनंप्राणसंशये ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—शत्रुके लिये सबसे पहले साम श्रेष्ठ है—उसके पीछे दान—और भेदन तो सदैव श्रेष्ठ है और प्राणके संशयमें दण्ड कहाँ है—

प्रवलेरौसामदानैःसामभेदौधिकेस्मृतौ ।
भेददंडौसमेकायांदंडःपूज्यःप्रहीनक ॥ ३५

भाषार्थ—प्रवल शत्रुके लिये साम दान—अधिकके लिये—साम भेद—कहें हैं—समशत्रुके लिये भेद दण्ड करने और हीनके लिये दण्ड श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥

मित्रेचसामदानौस्तोनकदाभेददंडने ।
रिपोःप्रजानांसंभेदःपीडनंस्वजयायवै ॥ ३६

भाषार्थ—मित्रके लिये सामदान—होते हैं भेद और दण्ड कभीनहीं शत्रु और प्रजाका भेद—और पीडा अपनी जयके लिये होते हैं
रिपुप्रपीडितानांचसाम्राटोन्नतसंग्रहः ।

गुणवतांचदुष्टानांहितंनिर्वासनंसदा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—शत्रुओंने दाँहि पीडा जिनको ऐसे गुणवानोंका साम और दण्डसे संग्रहकरे और दुष्टोंका सदैव निर्वासन (निकासना) करे ॥ ३७ ॥

स्वप्रजानांभेदनैवदंडेनपालनं ।
कुर्वीतसामदानाभ्यांसर्वदायत्नमास्थितः ॥

भाषार्थ—और अपनी प्रजाओंका भेद और दण्डसे पालन न करे किन्तु यत्नमें टिकाहु वा राजा साम और दानसे पालन करे ३८ ॥

स्वप्रजादंडभेदैश्चभवेद्राज्याविनाशनं ।
हीनाधिकायथानस्युःसदारक्ष्यास्तथाप्रजाः

भाषार्थ—अपनी प्रजाके दण्ड और भेदसे राज्यका विनाश होता है—इससे राजा प्रजाकी इस प्रकार रक्षा करे जैसे प्रजाहीन और अधिक न हो ॥ ३९ ॥

निवृत्तिसदाचारादमनंदंडतश्चतत् ।
येनसंदम्यतेजंतुरुपायोदंडएवसः ॥ ४० ॥

भाषार्थ—असत् आचरणसे जो निवृत्ति उसको दण्डसे दमन कहते हैं जिससे प्राणी दमनको प्राप्त होउ वह उपायभी दण्ड होता है ॥ ४० ॥

सउपायोऽनृपाधीनः ससर्वेषां प्रभुर्यतः ।
निर्भर्त्सनं चापमानो नाशनं वधनं तथा ॥ ४१ ॥

ताडनं द्रव्यहरणं पुरा त्रिर्वासनां कने ।
व्यस्तक्षीरमसद्यानमंगछेदो वधस्तथा ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—वह उपाय राजाके आधीन है क्यों-कि वह सबका प्रभु है निर्भर्त्सन (झिड़कना) द्रव्यका हरना पुरसे निकासना—अंकित करना—उलट कराना असतियान (गधा आदि) परचढ़ाना अंगका छेदन और वध ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

युद्धमेतल्लुपायास्युर्दंडस्यैव प्रभेदकाः ।
जायंते धर्मानिरताः प्रजादंडभयेन च ॥ ४३ ॥

करोत्या धर्षणं नैव तथा चासत्यभाषणं ।
क्रूराश्च मार्दव्यांति दुष्टादौष्ट्यं त्यजंति च ॥

भाषार्थ—और युद्ध ये सब उपाय दण्डके ही भेद कहें हैं क्योंकि दण्डके भयसे प्रजा धर्ममें निरत होती है दण्डके भयसे आधर्षण (जबरदस्ती) असत्य भाषण कोई नहीं करता और क्रूर कोमल हो जाते हैं और दुष्ट मनुष्य दुष्टताको त्याग देते हैं ४३ ॥ ४४ ॥

पशवोऽपि वश्यांति विद्रवांति च दस्यवः ।
पिशुना मूकर्तायांति भयं यांत्याततायिनः ॥

भाषार्थ—पशुभी वशमें होते हैं चोर भाग जाते हैं पिशुन (जुगल खोर) मूक होते हैं आतताई (हिंसक) डर जाते हैं ॥ ४५ ॥

करदाश्च भवंत्यन्ये वित्रासं यांति चापरे ।
अतो दंडधरो नित्यं स्यान्नृपो धर्मरक्षणे ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—कोई दण्डके मारे कर देने लगते हैं और कोई त्रासको प्राप्त हो जाते हैं इससे राजा सदैव धर्म रक्षाके लिये दण्डधारी हो ॥ ४६ ॥

गुरोरप्यवलितस्य कार्यार्थमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनं ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—जो गुरुभी अभिमानी हो कार्य और अकार्यको न जाने और कुमार्गमें चले तो राजा उसकोभी शिक्षा दे ॥ ४७ ॥

राज्ञां स दंडनीत्याहिं सर्वसिध्यं त्युपक्रमाः ।
दंड एवाहिधर्मणां शरणं परमं स्मृतं ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—राजाकी दण्ड सहित नीतिसे सब उपक्रम (आरंभ) सिद्ध होते हैं—और दण्डही सम्पूर्ण धर्मोंका उत्तम शरण कहा है ॥ ४८ ॥

अहिंसे वा साधुहिंसा पशुवच्छ्रुतिचोदनात् ।
दंड्यस्या दंडनानित्यमदंड्यस्य च दंडनात् ॥

भाषार्थ—दुर्जनोकी हिंसा—वेदकी आज्ञाके अनुसार पशुके समान अहिंसा होती है—दंड देने योग्यको दण्ड न देना—दण्ड देने अयोग्यको दण्ड देना ॥ ४९ ॥

अतिदंडाच्च गुणिभिरित्यज्यते पातकी भवेत् ।
अल्पदानान्महत्पुण्यं दंडप्रणयनात् फलं ॥ ५० ॥

भाषार्थ—अथवा अत्यन्त दण्ड देना इनसे गुणी लोग राजाको त्याग देते हैं और वह राजा पातकी होता है—अल्पदानसे बड़ा पुण्य जैसे होता है तैसे राजाको दण्ड देनेसे फल मिलता है ॥ ५० ॥

शास्त्रे पूक्तं मुनिवरैः प्रवृत्त्यर्थं भयाय च ।
अश्वमेधादिभिः पुण्यं तर्कितं स्यात्स्तौत्रपाठ तः ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—शास्त्रोंके विषय श्रेष्ठ मुनियोंने प्रवृत्ति और भयके लिये जो पुण्य अश्वमेधादि यज्ञोंका कहा है वह क्या स्तोत्रके पाठसे होता है अर्थात् नहीं होता ॥ ५१ ॥

क्षमयायत्तुपुण्यस्यात्तत्किंदंडनिपातनात् ।
स्वप्रजादंडनाच्छ्रेयःकथंराज्ञोभविष्यति ५२

भाषार्थ—क्षमासे जो पुण्य होता है वह क्या दण्ड देनेसे हो सकता है अपनी प्रजाके दण्डसे राजाका कल्याण कैसे होगा ॥ ५२ ॥

तदंडाज्जायतेकीर्तिधनपुण्यविनाशनं ।
नृपस्यधर्मपूर्णत्वादंडःकृतयुगेनहि ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—प्रजाके दण्डसे—कीर्ति—धन—पुण्यका नाश होता है—और राजाको धर्म पूर्ण होनेसे सतयुगमें दण्ड नहीं ॥ ५३ ॥

त्रेतायुगेपूर्णदंडःपादाधर्माप्रजायतः ।
द्वापरेचाधर्मत्वात्त्रिपादंडोविधीयते ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—त्रेता युगमें पूर्ण दण्ड इसलिये थाकि प्रजामें चौथाई अधर्म रहा और द्वा परमें आधा धर्म रहनेसे त्रिपाद—(३ हिस्से) दण्ड देना कहा है ॥ ५४ ॥

प्रजानिस्वाराजदौष्ट्यादंडोर्धेतुकलौयुगे ।
युगप्रवर्तकोराजाधर्माधर्मप्रशिक्षणात् ॥

भाषार्थ—राजाकी दुष्टतासे कलियुगमें प्रजा निर्धन होजाती है इसलिये आधा दण्ड कहा है और धर्म और अधर्म की शिक्षासे युगोंकी प्रवृत्ति राजासे होतीहै ५५ ॥

युगानानंप्रजानानंदोषःकिंतुनृपस्यहि ।
प्रसन्नयेननृपतिस्तदाचरतिवैजयः ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—न युगोंका न प्रजाओंका दोष है किन्तु राजाका दोष है क्योंकि मनुष्य वही आचरण करता है जिससे राजा प्रसन्न रहे ॥ ५६ ॥

लोभाद्रयाच्चकितेनशिक्षितनाचरेत्कथं ।

सुपुण्योयन्नृपतिर्धर्मिष्ठास्तत्रहिप्रजाः ॥

भाषार्थ—जो राजाने लोभ वा भयसे शिक्षा की है उसको प्रजा कैसे नकरेगी जहां राजा पुण्यवान् होता है वहां प्रजाभी धर्मिष्ठ होती है ॥ ५७ ॥

महापापीयन्नराजातत्राधर्मपरोजनः ।

नकालवर्षीर्पञ्चन्यस्तत्रभूर्नमहाफला ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—जहां राजा महापापी होता है वहां मनुष्य अधर्ममें तत्पर होजाते हैं न समय पर मेघ वर्षता है—न भूमिमें बहुत फल होते हैं ॥ ५८ ॥

जायतेराष्ट्रंहासश्चशत्रुवृद्धिर्धनक्षयः ।

सुराप्यभिवरोराजानस्त्रैणोनातिकीपवात् ॥

भाषार्थ—देशकी हानि—शत्रुकी वृद्धि—धनका नाश—होता है मदिराका पीनेवाला भी राजा अच्छा परन्तु व्यभिचारी अत्यन्त क्रोधी अच्छा नहीं ॥ ५९ ॥

लोकाश्चंदस्तापयतिस्त्रैणोवर्णान्विलुंपति ।

मद्यप्येकश्चभ्रष्टःस्याद्बुद्ध्याचव्यवहारतः ॥

भाषार्थ—क्रोधी राजा लोकोंको दुःख देता है व्यभिचारी वर्णोंका नाश करता है मदिरा पीने वाला तो बुद्धि और व्यवहारसे एकही भ्रष्ट होता है ॥ ६० ॥

कामक्रोधौमद्यतमौसर्वमद्याधिकौयतः

धनप्राणहरोराजाप्रजायांश्चातिलोभतः ६१

भाषार्थ—काम—और क्रोध—ये दोनों बड़े भारी मद हैं और सब मद्योंसे अधिक हैं और राजा अत्यन्त लोभसे प्रजाके धन और प्राणोंको हरता है ॥ ६१ ॥

तस्मादेतन्नयत्यक्त्वादंधारीभवेन्नृपः
अंतर्भुदुर्विहःकूरोभूत्वास्वादंडयेत्प्रजां ॥

भाषार्थ—इससे राजा इन तीनोंको छोड़
कर दण्डधारी हो भीतर कोमल और बाहरसे
कूर अपनी प्रजाको दण्ड दे ॥ ६२ ॥

अन्युग्रदंडकल्पःस्यात्स्वभावाहितकारिणः
राष्ट्रकर्णेजपैर्नित्यंहन्यतेचस्वभावतः ६३ ॥

भाषार्थ—सुभावसे जो अपने अहितकारी
हैं उनको अतिउग्र दंड दे जो स्वभावसे सूच-
क (चुगल) हैं उनसे देश नष्ट होताहै ६३
अतोन्नृपःसूचितोपिविमृशेत्कार्यमादरात् ।
आत्मनश्चप्रजायाश्चदोषदर्शयुक्तमोन्नृपः ॥

भाषार्थ—इससे राजा सूचना करने परभी
कार्यको आदरसे विचारे जो राजा अपना
और प्रजाका दोष देखता है वह उत्तम होता
है ॥ ६४ ॥

विनियच्छतिचात्मानमादौभृत्यांस्ततः

प्रजाः । कायिकोवाचिकोमानसिकःसांस्
गिकस्तथा ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—राजा प्रथम अपनी आत्माका
फिर भृत्योंका फिर प्रजाका नमन करे और
देहसे वाणीसे मनसे और संगसे ॥ ६५ ॥

चतुर्विधोपराधःसबुद्धचतुर्द्विकृतोद्धिधा ।
पुनर्द्विधाकारितश्चतयाज्ञेयोनुमोदितः ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—यह चार प्रकारका अपराध १
जानकर किया और २ विना जाने किया दो प्र-
कारका कहाहै फिर वो दो प्रकारका होता-
है एक कराया और दूसरा अनुमोदन
किया ॥ ६६ ॥

सकृदसकृदभ्यस्तःस्वभावैःसचतुर्विधः ।
नेत्रवक्त्रविकाराद्यैर्भावैर्मानसिकंतथा ॥

भाषार्थ—फिर वह चार प्रकारका होताहै
कि एकवार किया बारबार किया अभ्यास
किया और सुभावसे किया—नेत्र—मुखके
विकार आदिभावोंसे मानसिक अपराधको ॥
क्रिययाकायिकंवीक्ष्यवाचिकंकूरशब्दतः ।
सांसर्गिकंसाहचर्यंज्ञात्वागौरवलाघवं ६८ ॥

भाषार्थ—और देहके अपराधको करनेसे
और वाणीके अपराधको कठोर शब्दसे सां-
सर्गिक अपराधको साहचर्यसे देखकर लाघव
और गौरवको जानकर ॥ ६८ ॥

उत्पन्नोत्पत्त्यमानानांकार्याणांदंडमावहेत् ।
प्रथमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—पैदाहुये और पैदाहोने वाले
कार्योंका दंडदे जो उत्तम पुरुष पहिलेही
साहस करे वह उत्तमदण्डके योग्य होता-
है ॥ ६९ ॥

न्याय्याकिमितिसंपृच्छेत्तवैवेयमसत्कृतिं ।
उपहासंयथोक्तंचद्विगुणंत्रिगुणंततः ॥ ७० ॥

भाषार्थ—क्या न्यायहै यह पूछे और यह
असत्कर्म तैने कियाहै—फिर दोवार वा तीन-
वार यथोक्त उपहासको पूछे ॥ ७० ॥

मध्यमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ।
धिग्दंडंप्रथमंचाद्यसाहसंतदनंतरं ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—यदि उत्तम पुरुष मध्यम साहस
करे तो वह दण्डके योग्य होताहै उसको
पहिले धिक्कारका दंड और पीछे साहसका
दंड होताहै ॥ ७१ ॥

यथोक्तनुतथासम्यग्यथावृद्धिह्यनंतरं ।
उत्तमंसाहसंकुर्वन्नुत्तमोदंडमर्हति ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—प्रथम भली प्रकार यथोक्त दंड
और पीछेसे दण्डकी वृद्धि होतीहै यदि उत्तम
पुरुष उत्तम साहसकरे तो वह दंडके योग्य
होताहै ॥ ७२ ॥

प्रथमंसाहसंचादौमध्यमतदनंतरं ।

यथोक्तद्विगुणं पश्चादवरोधततः परं ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—और उसको पहिले साहसका दण्ड फिर मध्यम साहसका फिर शास्त्रोक्तसे दूना दण्ड फिर अवरोध (कैद) होताहै ७३

बुद्धिपूर्ववृथातेन विनैतदंडकल्पनं ।

उत्तमत्वं मध्यमत्वं नीचत्वं चात्र कीर्त्यते ७४

भाषार्थ—और जो जानकर मनुष्यको मारे उसको बिना विचारे दण्डकी कल्पना करे—यहांपर उत्तम मध्यम नीच दण्डको कहते हैं ॥ ७४ ॥

गुणेनैव तु मुख्यं हि कुलेनापि धनेन च ।

प्रथमंसाहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—गुण—कुल वा धनसे मुख्यता होतीहै—मध्यम पुरुष प्रथम साहसको करे तो दण्डके योग्य होताहै ॥ ७५ ॥

धिगदंडमर्धदंडं च पूर्णदंडमनुक्रमतः ।

द्विगुणं त्रिगुणं पश्चात्संरोधनीचकर्म च ७६ ॥

भाषार्थ—उसको क्रमसे धिक्कारका दंड आधादण्ड पूर्णदण्ड दूना वा तिगुनादण्ड होताहै और पीछेसे संरोध (कैद) वा नीचकर्म करनेका दण्ड देना ॥ ७६ ॥

मध्यमं साहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ।

अर्धयथोक्तद्विगुणं त्रिगुणं वंधनततः ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—मध्यम पुरुष मध्यम साहसको करे तो दण्डयोग्य होताहै उसको आधा दण्ड वा शास्त्रोक्तसे दुगुना तिगुना दण्ड होताहै और फिर बंधन (कैद) ॥ ७७ ॥

मध्यमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ।

पूर्वसाहसमादौ तु यथोक्तद्विगुणततः ७८ ॥

भाषार्थ—नीच जो मध्यम साहस करे तो दण्डके योग्य होताहै उसको पहिले प्रथम साहसका दण्ड पीछे शास्त्रका दण्ड होताहै ॥ ७८ ॥

उत्तमंसाहसंकुर्वन्मध्यमोदंडमर्हति ।

मध्यमंसाहसंचादौ यथोक्ततदनंतरं ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—यदि मध्यम पुरुष उत्तम साहस करे तो दण्डके योग्य होताहै—उसको पहिले मध्यम साहसका दण्ड पीछे शास्त्रोक्त होताहै ॥ ७९ ॥

द्विगुणं त्रिगुणं पश्चाद्यावज्जीवंतु वंधनं ।

प्रथमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ॥ ८० ॥

भाषार्थ—फिर शास्त्रोक्तसे दूना वा तिगुना दण्ड फिर जन्मभर वंधन होताहै यदि अधम मनुष्य प्रथम साहस करे तो दण्डके योग्य होताहै ॥ ८० ॥

ततः संरोधनं नित्यं मार्गसंस्करणार्थकं ।

उत्तमंसाहसंकुर्वन्नधमोदंडमर्हति ॥ ८१ ॥

भाषार्थ—फिर संरोध और नित्य मार्गका संस्कार (सड़ककी सफाई) अधम मनुष्य उत्तम साहसकरे तो वह दण्डके योग्य होताहै ॥ ८१ ॥

मध्यमंसाहसंचादौ यथोक्तद्विगुणततः ।

यावज्जीवं वंधनं च नीचकर्मैव केवलं ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—उसको प्रथम मध्यम साहसका दण्ड पीछे शास्त्रोक्त और फिर शास्त्रोक्त दूना फिर जन्मभर वंधन फिर केवल नीचकर्म कराना कहाहै ॥ ८२ ॥

हरेत्पादंधनात्तस्य यः कुर्याद्धनगर्वतः ।

पूर्वततोर्धमखिलं यावज्जीवंतु वंधनं ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य धनके अभिमानसे पहला अपराध करे उसके चौथाई धनको

राजा इरले फिर आधे धनको फिर सब धनको हरे फिर जन्मभर बंधन करे ॥ ८३ ॥

सहायगौरवाद्द्विधामदाच्चबलदर्पतः ।

पापं करोति यस्तंतु बंधये ताडयेत्सदा ८४ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य किसीको सहायताके घमण्डसे वा विद्या और बलके मदसे पापकरे उसका बंधनकरे वा सदैव ताडनादे ८४

भार्यापुत्रश्च भगिनी शिष्यो दासः स्तुपाऽनुजः

कृतापराधास्ताड्यास्ते तनुरज्जुमुवेणुभिः ॥

भाषार्थ—भार्या—पुत्र—बहन—शिष्य—दास—पुत्रबधू—छोटाभाई ये अपराध करें तो छोटी रस्सी और बांससे ताडनादे ॥ ८५ ॥

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन ।

अतो न्ययातु प्रदरे चो रवदंडमर्हति ॥ ८६ ॥

भाषार्थ—और वेभी देहकी पीठपर मारे उत्तम अंगमें कभी नमारे इससे अन्यथा जो जो प्रहार करता है वह चारके दण्डका भागी होता है ॥ ८६ ॥

नीचकर्मकरं कुयाद्वंधयित्वा तु पापिनं ।

मासमात्रं त्रिमासं वा पण्मासं वा पित्सरं ८७

भाषार्थ—पापी मनुष्यसे बांधकर एकमास तीनमास छः मास वा वर्षभर नीचकर्म करावे ॥ ८७ ॥

यावज्जीवं तु वाकश्चित्रकश्चिद्रथमर्हति ।

न निहन्याच्च भूतानि त्विति जागर्ति वै श्रुतिः ॥

भाषार्थ—अथवा जीवन पर्यन्त—कोईभी जीव वधके योग्य नहीं होता क्योंकि श्रुतिमें यह लिखा है कि प्राणियोंकी हत्या न करे ८८

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वधदंडं त्यजेन्नृपः ।

अवरोधाद्वंधनेन ताडनेन च कर्षयेत् ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—तिससे सम्पूर्ण यत्नसे वधके दण्डको राजा त्यागदे अवरोध—बंधन—ताडनासेही दण्डदे ॥ ८९ ॥

लोभाग्रकर्षयेद्ग्राजा धनदंडेन वै प्रजां ।

नासहायास्तु पित्राद्यादंडाच्चास्युरपराधिनः

भाषार्थ—और राजा लोभसे धनका दण्ड देकर प्रजाको दुःखी नकरे अपराध करनेवाले पिता आदिकोंका यदि कोई सहायक नहीं तो दण्ड नदे ॥ ९० ॥

क्षमाशीलस्य वै राज्ञो दंडग्रहणमीदृशं ।

नापराधंतु क्षमते प्रचंडो धनहारकः ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—जो राजा क्षमाशील है उसका दण्ड ऐसा (पूर्वोक्त) होता है और जब राजा प्रचण्ड और धनका हरनेवाला और अपराधकी क्षमा नहीं करता ॥ ९१ ॥

नृपो यदा तदालोकः क्षुभ्यते भिद्यते परैः ।

अतः सुभागदंडी स्यात्क्षमावान्जको नृपः ॥

भाषार्थ—तब सम्पूर्ण जगत चलायमान और दूसरोंसे पीड़ित होता है इससे राजा सुभाग (थोडा) दण्ड दे—और क्षमासे प्रजाकी प्रसन्न रखे ॥ ९२ ॥

मद्यपः कितवस्ते नो जारश्चंडश्चर्हिसकः ।

त्यक्तवर्णाश्च माचारो नास्तिकः शठ एव च ॥

भाषार्थ—राजा इतने मनुष्योंको राज्यसे निकास दे कि मदिरा पीनेवाला—धूर्त—चौर—जार—क्रोधी—हिंसक—वर्ण और आश्रमके आचरणका त्यागी—नास्तिक और शठ ९३ ॥

मिथ्याभिशापकः कर्णेजपार्यदेवदूषकौ ।

असत्यवाक्यासहारी तथा वृत्तिविधातकः ॥

भाषार्थ—मिथ्या दुःख दाई—सूचक—सज्जन और देवताओंके दूषक—झूठा—न्यास—

(धरोर) का चोर—जीविकाका नष्ट करने-
वाला ॥ ९४ ॥

अन्योदयासहिष्णुश्चलुत्कोचग्रहणे रतः ।

अकार्यकर्तृमंत्राणां कार्याणां भेदकस्तथा ॥

भाषार्थ—जो दूसरेके प्रतापको न सह-
उत्केच (ऋसवत्) का ग्रहण करनेवाला-
कुर्मकारि—मन्त्र और कार्योंका नष्ट
करनेवाला ॥ ९५ ॥

अनिष्टवाक्पुरुषवाजलारामप्रवाधकः ।

नक्षत्रसूचीराजद्विदुःकुमन्त्रीकूटकार्यवित् ॥

भाषार्थ—अनिष्ट वा कठोर वचन कहने-
वाला—जल और वागका हिंसक—नक्षत्र-
सूचि—(जो दुकान २ नक्षत्रोंको बेतावे
ऐसा ज्योतिषि) राजाका वैरो—खोटा मंत्री-
कपटी ॥ ९६ ॥

कुवैद्यामंगलाशौचशीलामार्गनिरोधकाः ।

कुसाक्षयुद्धतवेपश्चस्वामिद्रोहीन्याधिकाः ।

भाषार्थ—खोटा वैद्य—अमंगली—सदा अशु-
द्ध—मार्गके रोकने वाला—खोटा साक्षी जिसका
वेप उद्धत हो—वा स्वामीका द्रोही—अधिक
व्ययका कर्ता ॥ ९७ ॥

अग्निदीगरदोवेद्यासक्तः प्रबलदण्डकृत् ।

तथापाक्षिकसभ्यश्चबलाल्लिखितग्राहकः ॥

भाषार्थ—अग्नि लगानेवाला—विष देने-
वाला—वेद्यागामी—प्रबल दण्डका दाता-
पक्षपाती सभासद—बलसे लिखाई लेने-
वाला ॥ ९८ ॥

अन्यायकारीकलहशीलोयुद्धेपराङ्मुखः ।

साक्ष्यलोपीपितृमातृसतीस्त्रीमित्रद्रोहकः ॥

भाषार्थ—अन्याय कर्ता—कलही—युद्धमें
पराङ्मुख—साक्षीने जो कहा हो उसका

नाश करनेवाला और पिता—माता—सती
स्त्री—मित्र—इनके संग द्रोहका कर्ता ॥ ९९ ॥

असूयकः शत्रुसेवीमर्मछेदीचंचकः ।

स्वकीयाद्विदुःशत्रुवृत्तिर्गुप्तपलाग्रामकंटकः ॥

भाषार्थ—पराये गुणोंमें दोषोंको जो दूँदे-
शत्रुका सेवक—मर्मका छेदक—चंचक—अप-
नोंका द्वेषी—गुप्त (छिपी) जिसकी जीवि-
का हो—शत्रु—और ग्रामका कंटक ॥ १०० ॥

विनाकुटुम्बभरणात्तपोविद्याश्रितं सदा ।

तृणकाष्ठादिहरणेशक्तः सन्भैक्ष्यभोजकः ॥

भाषार्थ—जो कुटुम्बका भरण पोषण किये
विना तप करे वा विद्या सीखे और तृण
और काष्ठ आदिके लानेमें समर्थ होकर
जो भिक्षा मांगकर भोजन करे ॥ १ ॥

कन्यायाऽपिषिक्रेताकुटुम्बवृत्तिर्हासकः ।

अधर्मसूचकश्चापिराजानिष्टमुपेक्षकः ॥ २ ॥

भाषार्थ—जो कन्याको बेचे—जो कुटुम्बकी
जीविकाको कमकरे—जो अधर्मकी सूचना
करे जो राजांक अनिष्टकी अपेक्षा करे ॥ २ ॥

कुलटापतिपुत्रस्त्रीस्वतंत्रावृद्धनिदिता ।

गृहकृत्योज्झितानित्यंदुष्टाचाराप्रियस्तुषा

भाषार्थ—व्यभिचारिणीका पति—स्वतन्त्र
पुत्र और स्त्री—वृद्धोंका निंदक और जो
पुत्रकी वधू घरके कृत्यको न करे संदेव
दुष्टाचरण करे ॥ ३ ॥

स्वभावदुष्टानेतान्दिज्ञात्वारारुद्राद्विवासयेत् ।
द्वीपेनिवासितव्यास्तेवध्वाद्गोदरेथवा ॥

भाषार्थ—इन / सम्पूर्ण सुभांव दुष्टोंको
राजा देशसे निकाल दे और किसी द्वीपमें
वा बांधकर किलेमें इन सबको बसादे ॥ ४ ॥

मार्गसंरक्षणे योज्याः कदन्नन्यूनभोजनाः ।

तत्तज्जात्युक्तकर्माणिकारयति तच्चैर्नृपः ॥

भाषार्थ—और खोटा अन्न—और अल्प भोजन देकर इनको मार्गकी रक्षामें नियुक्त करे और इनसे तिस २ जातिके जो कर्म है वे करावे ॥ ५ ॥

एवंविधानसाधूंश्चसंसर्गेणचदूषितान् ।
दंडयित्वाचसन्मार्गेशिक्षयेत्तान्नृपःसदा ॥

भाषार्थ—इस प्रकारके असाधुओंको और जो संसर्गसे दूषित हैं उनको दण्ड देकर राजा सन्मार्गकी शिक्षा सदैव दे ॥ ६ ॥

राज्ञोराष्ट्रस्यविकृतिंतयामंत्रिगणस्यच ।
इच्छंतिशत्रुसंबन्धाद्येतान्हन्पाद्विद्राड्नुपः ॥

भाषार्थ—और जो मनुष्य शत्रुओंके सम्बन्धसे राजा देश मंत्रियोंका गण इनके विगाढनेकी इच्छा करे उनको राजा शीघ्रही नष्ट करदे ॥ ७ ॥

नेच्छेच्चयुगपद्भासंगणदौष्ट्येगणस्यच ।
एकैकंघातयेद्राजावत्सोश्चातियथास्तनं ८ ॥

भाषार्थ—यदि किसी समुदायकी दुष्टता हो तो समुदायकी एकवार हानिको न चाहे किन्तु एक२का नाश इस प्रकार करे जैसे वत्स एक २ स्तनकी पीता है ॥ ८ ॥

अधर्मशीलानृपतिर्यदातंभीषयेज्जनः ।
धर्मशीलातिवलवद्विपोराश्रयतःसदा ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जब राजा अधर्मशील हो तब प्रजा उसको धर्मशील अत्यन्तवलवान् जो शत्रु उसके आश्रयसे सदैव भयदे ॥ ९ ॥
यावत्तुधर्मशीलःस्थान्सनृपस्तावदेवहि ।
अन्यथानश्यतेलोकोद्राड्नुपौपिविनश्यति

भाषार्थ—इतने राजा धर्मशील रहता है उतनेही कालतक वह राजा होता है और अन्यथा जगत् और राजा दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

मातरं पितरं भार्यायः संत्यज्य विवर्तते ।
निगडैर्वैधयित्वा तं योजयेन्मार्गं संसृतौ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—माता—पिता—भार्या—इनको जो त्यागकर वर्ते उसको वेडियोंसे बांधकर संसारके मार्गमें लवे ॥ ११ ॥

तद्भृत्यवर्तुत्संदद्यात्तेभ्यो राजा प्रयत्नतः ।
विद्यात्पणसहस्रं तु दंड उत्तमसाहसः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—और उसको आधि भृति उन-माता आदियोंसे राजा प्रयत्नसे दिवावे एक सहस्रपण दण्ड उत्तम साहस होता है ॥ १२ ॥

दशमापमितं तान्प्रतत्पणो राजमुद्रितं ।
वराट्सिर्धशतकमूल्यं कार्पापणश्चसः ॥ १३ ॥

भाषार्थ—दशमासे तांवा जो राजमुद्रासे अंकित हो उसे पण कहते हैं और १५० वराटी (कोडी) योंका जो मोल हो उसे कारखापण कहते हैं ॥ १३ ॥

तदर्धश्चतदर्धश्चमध्यमः प्रथमः क्रमात् ।
प्रथमेसाहसेदंडः प्रथमश्चक्रमात्परौ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—और पूर्वोक्तसे आधेको मध्यम और उससे आधेको प्रथम साहस कहते हैं पहले साहसमें प्रथम फिर क्रमसे मध्यम और उत्तम दंड होते हैं ॥ १४ ॥

मध्यमेमध्यमो धार्यश्चोत्तमेत्तमो नृपैः ।
सोपायाः कथितामि श्रेमित्रोदासीनशत्रवः ॥

भाषार्थ—और राजा मध्यम साहसमें मध्यम और उत्तम साहसमें उत्तम दंडदे इस मिश्र प्रकरणमें—मित्र—उदासीन—शत्रु—और उनके उपाय कहे हैं ॥ १५ ॥

अथकोशप्रकरणं ब्रुवेमि श्रे द्वितीयकं ।
एकार्थसमुदायोयः सकोशः स्यात्पृथक्पृथक्

भाषार्थ—अब मिश्र प्रकरणमें दूसरा कोश-का प्रकरण कहते हैं—जो एक प्रकारके धन-का समुदाय हो उसे पृथक् २ कोश (ख-जाना) कहते हैं ॥ १६ ॥

येन केन प्रकारेण धनं संविनुयाद्वृषः ।

तेन संरक्षयेद्वाष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः १७ ॥

भाषार्थ—राजा जिस किसी प्रकारसे धन-का संचय करे और उस धनसे देश-सेना-की रक्षा-और यज्ञ आदि कर्म करे ॥ १७ ॥

बलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोशसंग्रहः ।

परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दुःखदः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—सेना-और प्रजाकी रक्षा-और यज्ञ इनके लिये कोशका संग्रह परलोक और इस लोकमें सुखदाई होता है और अन्यकोश दुःखका दाता कहा है ॥ १८ ॥

स्त्रीपुत्रार्थं कृतो यश्च सोपभोगाय केवलः ।

नरकायैव स ज्ञेयो न परत्र सुखप्रदः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जो कोश-स्त्री-और पुत्रके ही लिये किया हो वह केवल उपभोगके लिये होता है-और परलोकमें नरकार्थ है सुख-दाई नहीं ॥ १९ ॥

अन्यायेनार्जितो यस्माद्येन तत्पापभाक् च सः

सुपात्रतो गृहीतं यद्दत्तं वा वर्धते च यत् ॥ २० ॥

भाषार्थ—अन्यायसे जिसने कोशका संचय किया वह उसके पापका भागी होता है जो धन सुपात्रसे ग्रहण किया हो अथवा वह दत्ते हैं ॥ २० ॥

स्वागभीसंस्थायी पात्रमपात्रं विपरीतकं ।

अपात्रस्य धनं सर्वहरेद्राजानदोषभाक् २१

भाषार्थ—जो मनुष्य सुमार्गसे संचय और सुमार्गमें व्यय करता है वह पात्र होता है

और इससे विपरीत कुपात्र और कुपात्रक संपूर्ण धन हरनेसे राजा दोषका भागी नहीं होता ॥ २१ ॥

अधर्मशील नृपतेः सर्वतः संहरेद्धनं ।

छलाद्बलादस्युवृत्त्या परराष्ट्राद्धरेत्तथा २२ ॥

भाषार्थ—अधर्मशील राजाके धनको सब प्रकारसे हरले कि छल-बल-चोरी-परके देशसे हरे ॥ २२ ॥

त्यक्त्वानीति बलं स्वीयप्रजापीडनतो धनं ।
संचितं येन तत्तत्स्य स्वराज्यं शत्रुसाद्रवेत् ॥

भाषार्थ—जिस राजाने-नीति-और बलको त्यागकर अपनी प्रजाको पीडासे धनका संचय किया हो उस राजाका राज्य शत्रु-ओंके आधीन होजाता है ॥ २३ ॥

दंडभूभागशुल्कानामाधिक्यात्कोशवर्धनं ।
अनापदिनकुर्वीत तीर्थदेवकग्रहात् ॥ २४ ॥

भाषार्थ—दण्ड-पृथ्वीका भागशुल्क-(महसूल) इनकी-अधिकतासे कोश बढ़ता है उसको और तीर्थ देवसे कर लेकर राजा कोशकी वृद्धि न करे ॥ २४ ॥

यदाशत्रुविनाशार्थं बलसंरक्षणोद्यतः ।

विशिष्टदंडशुल्कादि धनं लोकात्तदाहरेत् ॥

भाषार्थ—जब राजा शत्रुके विनाशार्थ-से-नाकी रक्षामें उद्यत हो उस समय अधिक दण्ड-और शुल्क आदिद्वारा धनको ग्रहण करे ॥ २५ ॥

धनिकेभ्यो भृतिं दत्त्वा स्वापत्तौ तद्धनं हरेत् ।
राजा स्वापत्तसमुत्तीर्णस्तत्संदद्यात्स वृद्धिकं

भाषार्थ—और अपनी आपत्तिमें राजा शू-द्रपर धनियोंसे धन ले और जब आपत्तिसे उत्तीर्ण (रहित) होजाय-तब-शूद्रसहित दे- ॥ २६ ॥

प्रजान्यथाहीयतेचराज्यंकोशोत्पस्तथा ।
हीनाप्रबलदंडेनसुरथाद्यानृपायतः २७ ॥

भाषार्थ—अन्यथा प्रजा—राज्य—कोश—राजा ये सब हीन होजात हैं—क्योंकि प्रबल दण्डसे सुरथ आदि राजा हीन होगये हैं ॥ २७ ॥

दंडभूभागशुलैकैस्तुविनाकोशाद्रलस्यच ।
संरक्षणंभवेत्सम्यग्यावद्विशतिवत्सरं २८ ॥

भाषार्थ—दण्ड भूमिका कर और कोश इनके विना बलकी रक्षा इतने बीस वर्ष-तक भली प्रकार न हो ॥ २८ ॥

तयाकोशस्तुसंधार्यःस्वप्रजारक्षणक्षमः ।
बलमूलोभवेत्कोशःकोशमूलंवलंसृजतं ।

भाषार्थ—तिस प्रकार अपनी प्रजाकी रक्षाके योग्य कोशकी रक्षा राजा करे क्योंकि कोशका मूल बल—और बलका मूल कोश कहा है ॥ २९ ॥

बलसंरक्षणात्कोशराष्ट्रवृद्धिररिक्षयः ।
जायतेतत्रयस्वर्गःप्रजासंरक्षणेनवै ३० ॥

भाषार्थ—बलकी रक्षासे कोश—और देशकी वृद्धि और शत्रुका क्षय होते हैं य तीनों और स्वर्ग प्रजाकी रक्षासे होते हैं ३० ॥

यज्ञार्थद्रव्यमुत्पन्नंयज्ञःस्वर्गसुखायुषे ।
अर्यभावोवलंकोशोराष्ट्रवृद्धैत्रयत्विदं ३१ ॥

भाषार्थ—द्रव्य यज्ञके लिये और—यज्ञ—स्वर्ग—सुख—अवस्थाके लिये होते हैं शत्रुका अभाव बल कोश ये तीनों राष्ट्र (देश) वृद्धि-के लिये होते हैं ॥ ३१ ॥

तद्वृद्धिर्नीतिनैपुण्याक्षमाशीलनृपस्यच ।
जायतेतोयतेतवयावद्वृद्धिबलोदयं ३२ ॥

भाषार्थ—क्षमाशील राजाकी नीतिनिपुण-तासे उनकी वृद्धि होती है इससे जितनी

वृद्धि और बलका उदय हो तितने कोश-वृद्धिका यत्न करे ॥ ३२ ॥

मालाकारस्यवृत्त्यैवस्वप्रजारक्षणेनच ।
शत्रुहिकरदीकृत्यतद्धनैःकोशवर्धनं ३३ ॥

भाषार्थ—जो राजा मालिकी वृत्ति और अपनी प्रजाकी रक्षासे और शत्रुओंको क-र देनेवाले बनाकर शत्रुओंके धनसे कोशको बढ़ावे ॥ ३३ ॥

करोतिसनृपःश्रेष्ठोमध्यमोवैश्यवृत्तितः ।
अधमःसंवयादंडतीर्थदेवकरग्रहैः ३४ ॥

भाषार्थ—वह राजा उत्तम होता है और जो वैश्यवृत्ति करे वह मध्यम और सेवा करे वा दण्ड तीर्थ—और देवतासे करले वह अधम होता है ॥ ३४ ॥

प्रजाहीनधनारक्ष्याभृत्यामध्यघनाःसदा ।
ययाधिकृत्यतिभुवोधिकद्रव्यास्तथोत्तमाः

भाषार्थ—जो प्रजा धनहीन हों उनकी जो भृत्योंके मध्यम धन हो उनको सदैव रक्षा करे और साक्षि जितने अधिक धनी हों उ-तनेही उत्तम होते हैं ॥ ३५ ॥

धनिकाश्चोत्तमधनानहिनानाधिकावृषैः ।
द्वादशाब्दप्रपूरयद्धनंतन्नीचसंज्ञकं ३६ ॥

भाषार्थ—और जो धनी उत्तम धनवाले हों और न नहो न अधिक हों उनको राजा रखे जिस धनसे १२ वर्षतक निर्वाह हो-सके वह धन नीच होता है ॥ ३६ ॥

पर्याप्तषोडशाब्दानामध्यमंतद्धनंसृजतं ।
त्रिंशदब्दप्रपूरयत्कुटुंबस्योत्तमं धनं ३७ ॥

भाषार्थ—और जिससे १६ वर्षतक कुटुम्ब-की पालना हो वह धन मध्यम कहा है और जिससे ३० वर्षतक पालना हो वह उत्तम धन होता है ॥ ३७ ॥

क्रमादर्धरक्षयेद्वास्वापत्तौनृपण्युवै ।

मूलैर्व्यवहरन्त्यर्धैर्नृध्यावणिजः कश्चित् ॥

भाषार्थ—राजा अपने आपत्तिके लिये इन धनिक आदिकोंमें क्रमसे आधे धनकी रक्षा करे जो व्यापारी आधेमूल धनसे (जमासे) झूदके लिये व्यापार करता है वह कभी व्यापारी नहीं होता ॥ ३८ ॥

विक्रीणंतिमहाधेतुहीनार्धेसंचयंतिहि ।

व्यवहारेधृतवैश्येस्तद्धनेनविनासदा ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—और जो द्रव्य व्यवहारमें लग रहा है उसके बिना सदैव महंगेमें बेचते हैं और मँदेमें लेते हैं ॥ ३९ ॥

अन्यथास्वप्रजातापोनृपंदहतिसान्वयं ।

धान्यानांसंग्रहः कार्योवत्सरत्रयपूर्तिदः ४० ॥

भाषार्थ—अन्यथा प्रजाका सन्ताप वंश-सहित राजाको नष्ट करता है—और इतने अन्नका संग्रह करे जिससे ३ वर्ष पूरा पड़ जाय ॥ ४० ॥

तत्तत्कालेस्वराष्ट्राथर्तृपेणात्माहितायच ।

चिरस्थायीसमृद्धानामधिकोवापिचेप्यते ॥

भाषार्थ—तिस २ समयमें अपने देशके और अपने लिये अन्नसंग्रह रखे और जो समृद्ध हैं उनको चिरकालतक रहने योग्य अथवा अधिक अन्नभी अच्छा है ॥ ४१ ॥

सुपुष्टं कंतिमज्जातिश्रेष्ठं शुष्कं नवीनकं ।

समुग्धवर्णरसधान्यं संवीक्ष्य रक्षयेत् ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—जो वस्तु पुष्ट वा कान्तिवाली है वे सूखी और नवीन अच्छी होती है और जो सुगंध वर्ण रसवाली हैं उनकी देख र कर रक्षा करे ॥ ४२ ॥

सुसमृद्धं चिरस्थायीमहार्थमपिनान्यथा ।

विषवन्दिह हिमव्याप्तं कीटजुष्टं न धारयेत् ॥ ४३ ॥

निःसारतानि हि प्राप्तं व्यग्रेतावन्नियोजयेत् ।

व्ययीभूतं तु यद्दृष्टात्तुल्यं तु नवीनकं ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—जो वस्तु अधिक हो और चिर-कालतक रहसके वह महंगीभी अच्छी अ-न्यथा नहीं और जो वस्तु विष आग्नि-शीत-जीव इनकी मारी हो उसे न रखे ४३ और जिस वस्तुका सार बन रहा हो उसे ही खर्चमें लावे—और जितनी खर्च हो चुकी हो उसकी तुल्य नवीन ॥ ४४ ॥

गृह्णीयात्सुप्रयत्नेन वत्सरवत्सरनृपः ।

औषधीनांच धातूनां तृणकाष्ठादिकस्य च ॥

भाषार्थ—वर्ष २में बड़े यत्नसे ग्रहण करता रहे और औषधी तृणकाष्ठादिकाभी संचय रखे ॥ ४५ ॥

यन्नशस्त्रास्त्राग्निचूर्णभांडादेवासंतां तथा ।

यद्यच्च साधकं द्रव्यं यद्यत्कार्यं भवेत्सदा ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—जो शस्त्र-अस्त्र-आग्नि-चूर्ण- (दारू) भाण्ड-वस्त्र-इनकाभी संचय रखे और कार्योंमें जो जो द्रव्य साधक हो स-दैव ॥ ४६ ॥

संग्रहस्तस्य तस्यापि कर्तव्यः कार्यसिद्धिदः ॥

संरक्षयेत्प्रयत्नेन संगृहीतं धनादिकं ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—उस २का कार्य सिद्धिके लिये संग्रह करना और संग्रह किये हुये धन आ-दिकी प्रयत्नसे रक्षा करे ॥ ४७ ॥

अर्जने तु महद्दुःखं रक्षणे तच्चतुर्गुणं ।

क्षणंचोपेक्षितं यत्तद्दिनां श्रावसमाप्नुयात् ॥

भाषार्थ—धनके संचयमें महादुःख और उसकी रक्षामें उससे चांगुना दुःख होता है यदि क्षणमात्रभी धनरक्षाकी उपेक्षा की जाय तो शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

अर्जकस्यैवयदुःखंस्याद्यथाजितनाशने ।

स्त्रीपुत्राणामपितथानान्येषानुक्त्यंभवेत् ॥

भाषार्थ—संचय करनेवाले मनुष्यको संचित धनके नाशमें जो दुःख होता है वह दुःख स्त्री—पुत्र—और अन्योको कैसे हो सकता है ४९ स्वकार्यंशितिलोयः स्यात्किमन्येनभवंतिहि जागरूकः स्वकार्यंस्तत्सहायाश्चतत्समाः

भाषार्थ—जो मनुष्य अपने कार्यमें शिथिल होता है तो अन्य क्यों न होंगे और जो अपने काममें जागता है उसके सहायकभी जागते हैं ॥ ५० ॥

योजानात्यर्जितुंस्मयगर्जितंनहिरक्षितुं ।

नातःपरत्तरोमूर्खोवृथातस्यार्जनाश्रमः ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य संचय करना जानता है और संचयकी रक्षा भली प्रकार नहीं कर सकता उससे परे कोई मूर्ख नहीं उसका संचय करना बृथा है ॥ ५१ ॥

एकस्मिन्नधिकारेतुयोद्वाधिकरोतिसः ।

मूर्खो जीवद्भिर्भार्यश्चह्यतिविस्त्रंभवांस्तथा ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य एक काममें दोहों अधिकार देता है जिसके पहिलीके जीवते दूसरी स्त्री हो और जिसके अत्यन्त विद्वत्ता हो उससे परे कोई मूर्ख नहीं ॥ ५२ ॥

महाधनाशोरसतःस्त्रीभिर्निर्जितएवहि ।

तथायःसाक्षितांपृच्छैरजारततायिपु५३

भाषार्थ—जो मनुष्य महालोभी हो और जिसको हावभावसे स्त्रियोंने जीत लिया हो

और जो मनुष्य—चोर—जार—आततायी—(हिंसक) इनको साक्षी पूछे वह भी मूर्ख है ५३ संरक्षयेत्कृपणवत्कालेदद्याद्विरक्तवत् ।

वस्तुयाथात्म्यविज्ञानेस्वयमेवयतेत्सदा५४

भाषार्थ—कृपणके समान धनकी रक्षा करे और समयपर विरक्तके समान दे और वस्तुके यथार्थ जाननेके लिये सदैव स्वयं यत्न करे ५४ परीक्षकैः स्वयंराजारत्नादीन्वीक्ष्यरक्षयेत् । वज्रंमुक्तप्रवालंचगोमेदश्चंद्रनीलकः ५५ ॥

भाषार्थ—और राजा परीक्षकों (जाहरी) से और स्वयं परीक्षा करके रत्न आदिकी रक्षा करे कि वज्र—मोती—मृंगा—गोमेद इन्द्रनील ५५ वैदूर्यः पुष्करागश्रपाचिर्माणिक्यमेवच ।

महारत्नानिचैतानिनवप्रोक्तानिसुरिभिः ॥

भाषार्थ—वैदूर्य—पुष्कराज—पाची—माणिक्य सूदियोने ये नौ ९ महारत्न कहे हैं ॥ ५६ ॥

रवेःप्रियंरक्तवर्णमाणिक्यंतिवद्रगोपरुक् । रक्तपीतसितश्यामच्छविर्मुक्ताप्रियाविधौः

भाषार्थ—लाल वर्णका इन्द्रगोपके समान जिसकी कान्तिहो ऐसा माणिक्य सूर्यके प्यारा है लाल—पीला—सपेद—श्याम—कान्ति—वाला मोती चन्द्रमाको प्रिय है ॥ ५७ ॥

सपीतरक्तरुग्भौमप्रियंविद्रुममुत्तमं ।

मयूरचापपत्राभापाचिर्बुधहिताहरित् ५८ ॥

भाषार्थ—पीला जिसकी रक्त कान्ति हो ऐसा मृंगा मंगलको प्रिय है—मोर वा चासके पंखोंके समान जिसका वर्ण हो ऐसी पाची बुधको हित होती है ॥ ५८ ॥

स्वर्णच्छविःपुष्करागःपीतवर्णोऽगुरुप्रियः । अत्यंतविशदं वज्रं तारकाभं कवेः प्रियम् ५९

भाषार्थ—स्वर्णकी जिसमें झलक हो ऐसा पीला पुखराज गुरुको प्यारा है और तारोंके समान जिसकी कांति हो ऐसा वज्र शुक्रको प्रिय है ॥ ५९ ॥

हितःशनेरिंद्रनीलोद्भासितोघनमेघरूक् ।
गोमेदःप्रियकृद्राहोरीपत्पीतारुणप्रभः ॥ ६० ॥

भाषार्थ—सजल मेघके समान जिसकी कांति हो ऐसा कृष्ण इंद्रनील शनैश्वरको प्रिय है किंचित् पीला लाल कांतिवाला गोमेद राहुको प्रिय है ॥ ६० ॥

औत्पल्लभाभश्चलक्तंतुवैदूर्यःकेतुप्रीतिकृत् ।
रत्नश्रेष्ठतरं वज्रनीचंगोमेदविद्रुमं ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—विलावके नेत्रोंके समान जिसकी कांति हो और जिसमें लकीर हों ऐसा वैदूर्य केतुको प्रिय है—रत्नोंमें वज्र श्रेष्ठतर है और गोमेद और मूंगा नीच होते हैं ॥ ६१ ॥

गारुत्मतंचमाणिक्यमौक्तिकंश्रेष्ठमेवाहि ।
इंद्रनीलपुष्करागौवैदूर्यमध्यमंस्मृतं ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—गारुत्मत (पाचो) माणिक्य—मोति ये श्रेष्ठ कहे हैं—इंद्रनील—पुखराज—वैदूर्य ये मध्यम कहते हैं ॥ ६२ ॥

रत्नश्रेष्ठोदुर्लभश्चमहाद्युतिरहेर्मणिः ।
अजालगर्भसद्गर्णरेषाविंदुविवर्जितं ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—सर्पकी मणिरूप जो रत्नोंमें श्रेष्ठ है वह कांतिवाली दुर्लभ होती है—जिसके गर्भमें जालनहो उत्तम वर्ण हो—जिसमें रेखा और बिंदुसे वर्जित हो ॥ ६३ ॥

सत्कोणसुप्रभंरत्नंश्रेष्ठरत्नविदोविदुः ।
शर्कराभंदलाभंचपिपिटवर्तुलंहितम् ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—जिसमें कोण अच्छीहों और कांतिभी अच्छी हो और जो खांडकी आकृति

हो वा कमलदल तुल्य हो चिकना और गो लहो ऐसे रत्नोंको रत्नके ज्ञाता श्रेष्ठ जानते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णाःप्रभाःसितारक्तपीतकृष्णास्तुरत्नजाः
यथावर्ण्यथाछायंरत्नंयदोषवर्जितं ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—रत्नके रंग सपेद—रक्त—शीला कृष्ण—होते हैं जिस रत्नकी शास्त्रोक्त कांति और वर्ण हों और दोषसे जो रहित हो ॥ ६५ ॥

श्रीपुष्टिकीर्तिसौर्यायुःकरमन्यदसत्स्मृतं ।
पद्मरागस्तुमाणिक्यभेदःकोकनदच्छविः ॥

भाषार्थ—वह रत्न—लक्ष्मी—पुष्टि—कीर्ति—शूरता अवस्था—इनको करता है और अन्य रत्न असत् कहा है—कमलके समान जिसकी कांति हो ऐसा पद्मराग माणिक्यकाही एक भेद कहा है ॥ ६६ ॥

नधारयेत्पुत्रकामानारीवज्रकंदाचन ।
कालेनहीनंभवतिमौक्तिकंविद्रुमंघृतं ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—पुत्रकी कामना जिसे हो वह स्त्री वज्रको कभीभी धारण न करे—और बहुत धारण कियों मोती और मूंगा हीन हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

गुरुत्वात्प्रभयावर्णाद्विस्तारादाश्रयादपि ।
आकृत्यात्वाधिमूल्यस्याद्रत्नंयदोषवर्जितं ॥

भाषार्थ—गुरु (भारीपन) कांति—वर्ण—विस्तार और आश्रय आकृति—इनसे रत्नका अधिक मोल हो जाता है जो दोषोंसे वर्जित हो ॥ ६८ ॥

नायसोल्लिख्यतेरत्नंविनामौक्तिकविद्रुमात् ।
पाषाणेनापिचप्रायइतिरत्नविदोविदुः ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—मोति और मूंगेसे अन्य जितने रत्न हैं उनपर लोहे और पत्थरकी लकीर प्रायः नहीं होती यह रत्नोंके ज्ञाताओंने कहा है ॥ ६९ ॥

मूल्याधिक्यायभवतियद्रत्नंलघुविस्मृतं ।
गुर्वल्पहीनमौल्यंस्याद्रत्नंयद्विचसद्गुणं ७० ।

भाषार्थ—जो रत्न हलके और बड़े होते हैं उनका मोल अधिक होता है—और सद्गुण भी जो रत्न गुरु भारी और अल्प होता है उसका मोल कम होता है ॥ ७० ॥

शर्कराभंहीनमौल्यंचिपिटंमध्यमस्मृतं ।
दलाभंश्रेष्ठमूल्यंस्याद्यथाकामाचुवर्तुलं ७१

भाषार्थ—खांडके समान जिसकी कांति हो वह कम मोलका—और चिपटा मध्यम मोलका होता है कमलदलके समान जिसकी कांति हो और यथोचित गोलहो वह श्रेष्ठ मोलका होता है ॥ ७१ ॥

नजरांयांतिरत्नानिविद्रुमंमौक्तिकंविना ।

राजदौष्ट्याच्चरत्नानामूल्यंहीनाधिकंभवेत् ।

भाषार्थ—विद्रुम मूंगा और मोती इनके विना सब रत्नों वृद्धावस्था (हीनपना) को नहीं प्राप्त होते हैं और राजाके मूर्खपनासे रत्नोंका मौल्य न्यूनाधिक होता है ॥ ७२ ॥

मत्स्याहिशंखवाराहवेणुजीमूतशुक्तिः ।

जायतेमौक्तिकंतेपुभूरिशुक्तयुद्धवंस्मृतं ७३ ।

भाषार्थ—मत्स्य—सर्प—शंख—वाराह—वास-
मेध—शुक्ति (सीप) इनसे मोती पैदा हो-
ता है—परंतु शुक्तिसे अधिक पैदा होता है
कृष्णसितपीतरक्तद्विचतुःसप्तकंचुकं ।

कनिष्ठमध्यमंश्रेष्ठंरमाच्छुक्कृत्युद्धवंविदुः ॥

भाषार्थ—काला—सपेद—पीला— रक्त जि-
समें दो चार सात कंचुक (पड़दे) हों ऐ-

सा मोती कनिष्ठ—मध्यम श्रेष्ठ शुक्तिसे उत्पन्न कहा है ॥ ७४ ॥

तदेवहिभवेद्वेध्यमवेध्यानीतराणितु ।

कुर्वतिकृत्रिमंतद्वत्सिंहलद्वीपवासिनः ७५ ।

भाषार्थ—और वह वींधने योग्य होता है और इतर नहीं वींधे जाते हैं—और सिंहल-
द्वीपके वासी कृत्रिमभी मोती बनाते हैं ७५ ॥
तत्संदेहविनाशार्थमौक्तिकंमुपरीक्षयेत् ।

उष्णसलवणस्नेहेजलेनिश्चुपितंहितत् ७६ ।

भाषार्थ—उस संदेहकी निवृत्तिके लिये-
मोतीकी परीक्षा भलीप्रकार करें— उष्ण—ल-
वण वा स्नेहसंयुक्त जलमें रात्रिमें बसकर ७६ ॥
ग्रीहिभिर्मर्दितेनेयाद्वैवर्ण्यतदकृत्रिमं ।

श्रेष्ठाभंशुक्तिजंविद्यान्मध्याभंत्वितरद्रुदुः

भाषार्थ—जो मोती धानोंमें मलनेसे विवर्ण
(मँला) न हो जाय—वह अकृत्रिम (असल)
होता है जो शुक्तिसे पैदा होता है उसकी
कांति श्रेष्ठ और अन्यकी मध्यम कांति हो-
ती है ॥ ७७ ॥

तुलाकल्पितमूल्यंस्याद्रत्नंगोभेदकंविना ।

क्षुमाविंशतिभीरत्कीरत्नानामौक्तिकंविना ॥

भाषार्थ—गोभेदके विना सब रत्नोंका तोलसे
मोल होता है— बीस अलसीयोंकी रत्ती
सब रत्नोंकी होती है एक मोतीके विना ७८
रक्तित्रयंतुमुक्तायाश्चतुःकृष्णलकैर्भवेत् ।

चतुर्विंशतिभिस्ताभीरत्नटंकस्तुरक्तिभिः ॥

भाषार्थ—मोतीकी तीन रत्ती चार कृष्ण-
लोंकी होती है और २४ चौबीस रत्तियोंका
एक टंक रत्नोंका होता है ॥ ७९ ॥

टंकैश्चतुर्भिस्तोलाःस्यात्स्वर्णविद्रुमयोःसदा ।

एकस्यैवहिवज्रस्यत्वेकरक्तिमितस्यच ॥

भाषार्थ—चार टकोंका एक तोला—सोने
और मूंगेका सदैव होता है—जो वज्र एक
रत्तीभर का एकहो ॥ ८० ॥

सुविस्तृतदलस्यैवमूल्यं पंचसुवर्णकं ।

रक्तिकादलविस्ताराच्छ्रेष्ठं पंचगुणं यदि ८१ ॥

भाषार्थ—और जिसके दलका विस्तारभी अच्छा हो उसका मोल पांच सुवर्ण होता है जो रक्तिके दलसे पांच गुना विस्तारही ८१ ॥

यथायथाभवेद्यूनहीनमौल्यं तथा तथा ।

अत्राष्टरक्तिको माषो दशमाषैः सुवर्णकः ८२

भाषार्थ—जितना न्यून हो उतना २ ही कम मोल होता है और यहां ८ रक्तियोंका १ माषा और दशमाषोंका एक सुवर्ण होता है ८२ ॥

मूल्यं पंचसुवर्णानां राजताशीतिकर्षकं ।

यथागुरुतरं वज्रं तन्मूल्यं रक्तिवर्गतः ८३ ॥

भाषार्थ—और पांच सुवर्णोंका मोल चांदीके अस्सी कर्षक (रुपैया) होता है जितना भारी वज्र हो उसका मोलभी रक्तियोंके समूहसे होता है ८३ ॥

त्रितीयांशविहीनं तु चिपिटस्य प्रकीर्तितं ।

अर्धं तु शर्कराभस्य चोत्तमं मूल्यमिरीतं ॥

भाषार्थ—जो तृतीयांश कम हो उसका मोल चिपिटसे कहा है—जो शर्कराकी कांतिवालेसे तोलमें आधा हो उसका मोल उत्तम कहा है ८४ ॥

रक्तिकायाश्च द्वे वज्रं तदर्थं मूल्यमर्हतः ।

तदर्थं वहवोर्हीति मध्याहीनायथागुणैः ८५ ॥

भाषार्थ—जो दो वज्र एक रत्तीके हो उनका उससे आधा मोल कहा है और जो गुणोंसे जैसे मध्य वा हीन हों वे उससे भी आधे मोल योग्य होते हैं ८५ ॥

उत्तमार्धं तदर्थं वा हीरका गुणहीनतः ।

शतादूर्ध्वं रक्तिवर्गाद्भस्मे द्विशतिरक्तिकाः ॥

भाषार्थ—जो हीरे गुणहीन होनेसे उत्तमसे आधे वा उस आधेसे भी आधे हों उनमें सौ १०० रक्तियोंसे ऊपर बीस २० रत्ती कम समझले अर्थात् २० का मोल कम करदे ८६ ॥

प्रतिशतानुवज्रस्य सुविस्तृतदलस्य च ।

तथैव चिपिटस्यापि सुविस्तृतस्य च हासयेत् ॥

भाषार्थ—और जिसका दल विस्तार अच्छा हो वज्रके प्रति सौ और विस्तृत चिपिटके भी २० रत्ती कम करदे ८७ ॥

शर्कराभस्य पंचाशच्चत्वारिंशच्चैकतः ।

रत्नं नधारयेत् कृष्णं रक्तं विंदुयुतं सदा ८८ ॥

भाषार्थ—और शर्करा (कंकर) के वज्रकी पचास वा चालीस रत्ती मोल कम करे और काले और रक्तविंदुवाले रत्नको कभी न धारे ८८ ॥

गारुत्मकं तु तमं चेन्माणि क्यं मूल्यमर्हतः ।

सुवर्णं रक्तिमात्रं च यथारक्तिं ततो गुरु ८९ ॥

भाषार्थ—जो उत्तम गारुत्मत होय तो माणिक्यके मोल योग्य होता है—यदि रत्तीमात्र सुवर्णसे रत्तीमात्र भारी हो ८९ ॥

रक्तिमात्रः पुष्करागो नीलः स्वर्णार्धमर्हतः ।

चलत्रिसूत्री वैदूर्यश्चोत्तमं मूल्यमर्हति ९०

भाषार्थ—एक रत्तीका नीला पुष्कराजका आधा सुवर्ण मोल होता है जिस वैदूर्यमें तीन सूत्र हों वह उत्तम मोलके योग्य होता है ९०

प्रवालंतोलकभित्तं स्वर्णार्धं मूल्यमर्हति ।

अत्यल्पमूल्यो गोमेदो नोन्मानंतु यतोर्हति ॥

भाषार्थ—एक तोला मुंगेका आधा सुवर्ण मोलयोग्य होता है अतिअल्प मोलका गोमेद उन्मान (तोलना) के योग्य नहीं होता ९१ ॥

संख्यातः स्वल्परत्नानां मूल्यस्याद्धीरका
दिना ।

अत्यन्तरमणीयानां दुर्लभानां च कामतः १२

भाषार्थ—छोटे रत्नों का मोल हीरेको छो-
टकर गिनतीसे होता है जो अति रमणीय
वा यथार्थमें दुर्लभ हैं ॥ १२ ॥

भवेन्मूल्यं न मानेन तथा तिगुणशालिनां ।

व्यंघ्रिश्रतुर्दशहोतवर्गामौक्तिकरक्तिजः १३

भाषार्थ—और तैसेही अत्यन्त गुणवालों-
का मोल मानसे नहीं होता—और मोतियोंकी
रक्तियोंके समूहकी चौथाई कम करके
चाँदइगुना कर ॥ १३ ॥

चतुर्विंशतिभिर्भक्तौल्वान्मूल्यं प्रकल्पयेत्
उत्तमंतु सुवर्णार्थमूनमूनययागुणं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—फिर चौबीसका भाग दे उसमें
जो लव्हहो उससे मोलकी कल्पना करें—
उत्तमका मोल आधा सुवर्ण और न्यून
न्यूनका गुणके अनुसार होता है ॥ १४ ॥

मुक्ताधारक्तिवर्गस्य प्रतिरत्नौ कलानव ।
कल्पयेत्पंचभागान्दित्रिंशद्भिः प्रागभजेच्च
तान् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—मोतियोंकी रत्नोंके समूहमें
प्रति रत्नि नौ ९ कला समझे उनमेंसे पाँ-
चभागोंमें तीसका भागदे ॥ १५ ॥

लव्वंकलासुसंयोज्यकलाः षोडशभिर्भजेत् ।
मूल्यंतलव्वतो योज्यं मुक्ताया वा ययागुणं ॥

भाषार्थ—जो लव्ह हो उसे कलाओंमें मि-
लादे और कलाओंमें सोलहका भागदे—
उससे जो लव्हहो उसीसे मोतिका मोल
जाने वा गुणके अनुसार ॥ १६ ॥

रक्तपीतवर्तुलं चेन्मौक्तिकं चोत्तमं सितं ।

अधमं चिपटं शंकराभमन्यत्तुमध्यमं ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जो मोती रक्त—पीला—सपेद हो
और गोलहो वह उत्तम और जो केकरके
समान वा चिपटा हो वह अधम—और अन्य
मध्यम होता है ॥ १७ ॥

रत्ने स्वाभाविका दोषाः संति धातुपुच्छत्रिमाः ।
अतो धातुन्संपरीक्ष्य तन्मूल्यं कल्पयेद्बुधः ॥

भाषार्थ—रत्नमें दोष स्वाभाविक और
धातुओंमें दोष कृत्रिम होते हैं—इससे
बुद्धिमान् मनुष्य धातुओंकी परीक्षा करके
उनके मोलकी कल्पना करे ॥ १८ ॥

सुवर्णरजतं तां प्रवर्गं सीसं च रजकं ।

लोहं च धातवः सप्त ह्येषामन्येतु संकराः १९ ॥

भाषार्थ—सुवर्ण—चाँदी—तांबा—वंग—सीसा-
रांग—लोहा—ये सात धातु होती हैं और वा
की तो संकर (मेलजोल) ॥ १९ ॥

यथा पूर्वतु श्रेष्ठं स्यात्स्वर्णं श्रेष्ठतरं मतं ।

वंगतां प्रभवं कां स्यात्पितलं तां प्ररजं २० ॥

भाषार्थ—ये पूर्व २ की श्रेष्ठ होती हैं और
इनमें सोना अत्यन्त श्रेष्ठ होता है वंग और
तांबेसे कांसी—और तांबा और रांग मि-
लाकर पीतल होती है ॥ २० ॥

मानसममपि स्वर्णं तनु स्यात्पृथुलाः परे ।

एकच्छिद्रसमाकृष्टे समसंखंडे द्वयोर्यदा ॥ २१ ॥

भाषार्थ—सोना मानके समानभी पतला
होसकता है और धातु पृथुल (मोटी)
रहती है—एक छिद्रमें खींचनेसे जब दोनों-
के खंड समान हो जाय ॥ २१ ॥

धातोः सूत्रं मानसमं निर्दुष्टस्य भवेत्तदा ।

यंत्रशस्त्राखरूपं यन्महामूल्यं भवेत्तदा ॥ २२ ॥

भाषार्थ—तब—निर्दुष्ट (शुद्ध) धातुका सूत्र
मानके समान होता है—और जिस लोहेके
यंत्र शस्त्र अख बनें वहभी बहुत मोलका
होता है ॥ २२ ॥

रजतं षोडशगुणं भवेत्स्वर्णस्य मूल्यकं ।
ताम्रं रजतमूल्यस्यात्प्रायोशीतिगुणं तथा ॥

भाषार्थ—सोनेका मोल चांदीसे सौलह गुना होता है और चांदीसे अस्सी गुना (भाग) तांबेका मोल होता है ॥ ३ ॥

ताम्राधिकं सार्धगुणं वंगं वंगान्तथा परं ।
रंगसीसे द्वित्रिगुणे ताम्राहो हेतुपद्गुणं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—तांबेसे डेढ़गुणा अधिक वंग और तैसेही वंगसे अन्य धातु होती हैं—वंग और सीसा क्रमसे दूने तिगुने और तांबेसे छःगुना लोहा होता है ॥ ४ ॥

मूल्यमेतद्विशिष्टं तु ह्युक्तं प्रादुर्गुणं कल्पनं ।
सुशृंगवर्णासु दुग्धावदुग्धासु वत्सका ॥ ५ ॥

भाषार्थ—यह विशिष्ट (उत्तम) मोल कहा और मोलकी कल्पना तो पहिले कह आये और जिसके अच्छे सींग—दुहने में सुशील—बहुत दूधदे—बछड़ा अच्छा हो ५

तरुण्यल्पावामहती मूल्याधिक्याय गौर्भवेत् ।

पीतवत्साप्रस्थदुग्धातन्मूल्यं राजतं पलं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जवान हो—चाहै वह छोटी हो चाहै घड़ी—पर वह गौ अधिक मोलकी होती है—जिसका दूध वत्सने पीलियाहो और प्रस्थभर दूधदे उस गौका मोल एकपल चांदी होता है ॥ ६ ॥

अजायाश्च गवार्धस्यान्मेप्यामूल्यमजार्धकं ।
दृढस्य युद्धशीलस्य पलं मेघस्थराजतं ॥ ७ ॥

भाषार्थ—बकरीका मोल गौसे आधा और भेड़का मोल बकरीसे आधा होता है और जो माँदा दृढ़ और युद्धके योग्य हो उसका मोल एक पल चांदी होता है ॥ ७ ॥

दशवाद्यौ पलं मूलं राजतं तूत्तमं गवां ।
पलं मेप्या अवैश्चापिराजतं मूल्यमुत्तमं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—दश वा आठ पल चांदी गोलका उत्तम मूल होता है और मेपी और भेड़ का मोल एकपल चांदी उत्तम होता है ॥ ८ ॥
गवांसमं सार्धगुणं महिष्यामूल्यमुत्तमं ।
सुशृंगवर्णबालिनो वोढुः शीघ्रगमस्य च ॥ ९ ॥

भाषार्थ—गौओंके समान वा डेढ़गुना भैंसका उत्तम मोल उत्तम है—जिस बैलके सींग अच्छे हो—बलवान् हो—बौझ लेजानेमें समर्थ हो और तेज चलता हो ॥ ९ ॥

अष्टतालवृषस्यैव मूल्यं पष्टिपलं स्मृतं ।
महिषस्योत्तमं मूल्यं सप्तचाद्यौ पलानि च १०

भाषार्थ—और आठ ताल (धिलस्त) ऊँचाहो ऐसे बैलका मोल ६० साठपल चांदी है—और भैंसेका उत्तम मोल—सात वा आठ पल चांदी है ॥ १० ॥

द्वित्रिचतुःसहस्रं वामूल्यं श्रेष्ठं गजाश्वयोः ।
उष्ट्रस्य माहिषसमं मूल्यमुत्तममपीरितं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हाथी और अश्वका उत्तम मोल दो तीन वा चार—सहस्र पल है—और ऊँटका मोल भैंसेके समान उत्तम कहा है ॥ ११ ॥

योजनानां शतं गताचैकेनाह्वाश्वोत्तमः ।
मूल्यं तस्य सुवर्णानां श्रेष्ठं पंचशतानि हि ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जो घोड़ा सौ योजन एक दिनमें चले वह उत्तम होता है उसका उत्तम मोल पाँच शत ५०० सुवर्ण होता है ॥ १२ ॥

त्रिंशद्योजनं गता वै उष्ट्रः श्रेष्ठस्तु तस्य वै ।
पलानां तु शतं मूल्यं राजतं परिकीर्तितं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—तीस योजन चलनेवाला ऊँट उत्तम होता है उसका उत्तम मोल चांदीके सौ पल कहा है ॥ १३ ॥

चतुर्मापमितस्वर्णनिष्कइत्यभिधीयते ।
पंचरक्तिमितोमापोगजमौल्येप्रकीर्तितः ॥

भाषार्थ—चार मापे सोनेको निष्क कहते हैं हाथीके मोलमें पांचरत्तीका मापा कहा है ॥ १४ ॥

रत्नभूतंतुत्तत्स्याद्यद्यदप्रतिमंभुवि ।

यथादेशंयथाकालंमूल्यंसर्वस्यकल्पयेत् १५

भाषार्थ—और जो २ वस्तु पृथ्वीपर अ-
प्रतिम (नायाव) हो वह सब रत्न रूप हैं
और देश वा समयके अनुसार सबके मोल
की कल्पना करले ॥ १५ ॥

नमूल्यंगुणहीनस्यव्यवहाराक्षमस्यच ।

नीचमध्योत्तमतत्त्वंचसर्वस्मिन्मूल्यकल्पने ॥

भाषार्थ—जो वस्तु गुणसे हीन वा व्यवहार
के अयोग्यहो उसका कुछ मोल नहीं—सब
जगह मूल्यकी कल्पनामें नीच मध्यम उ-
त्तमहै ॥ १६ ॥

चिंतनीयंयुधैर्लोकाद्भस्तुजातस्यसर्वदा ।

विक्रेतुर्क्रेतुतोरारजभागःशुल्कमुदाहृतं १७

भाषार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य लोकसे वस्तु
ओंके मूल्यकी सदैव चिन्ता करे बेचनेवाले
और लेनेवालेसे जो राजभाग लिया जाय
उसको शुल्क कहते हैं ॥ १७ ॥

शुल्कदेशादृष्टमार्गाःकरसीमाःप्रकीर्तिताः ।

वस्तुजातस्यैकवारंशुल्कंग्राह्यंप्रयत्नतः १८

भाषार्थ—शुल्कके देश—दृष्टके मार्ग—करकी
सीमा कही है और वस्तुओंका शुल्क एक
वारही ग्रहण करे ॥ १८ ॥

कचित्रैवाप्तकृच्छुल्कंराष्ट्रेग्राह्यंनृपैःश्रद्धालात् ।

द्वात्रिंशंशंहरेद्राजाविक्रेतुःक्रेतुरेवा १९ ॥

भाषार्थ—और देशमेंसे बारबार शुल्कको

राजा छलसे कभी ग्रहण न करे और राजा बे-
चनेवाले वा लेनेवालेसे ३२ वत्तीस भाग
ग्रहण करे ॥ १९ ॥

विंशंशंवापोडशंशंशुल्कंमूलाविरोधकं ॥
नहीनसममूल्याद्विशुल्कंविक्रेतुतोहरेत् २०

भाषार्थ—अथवा २० बीसमा वा १६ मा
भाग लाभमेंसे ग्रहण करे मूल धनका नाश
न करे और मोलसे कम वा बराबर बेचने
वालेसे न ले ॥ २० ॥

लामंदद्वाहरेच्छुल्कंक्रेतुतश्चसदानृपः ।

बहुमध्याल्पफलतांभुवंमानमितांसदा २१

भाषार्थ—और राजा लाभको देखकर खरी
दनेवालेसे शुल्कले और अधिक मध्यम-
अल्प—फलको पृथ्वीमें प्रमाणसे सदैव ॥ २१ ॥

ज्ञात्वापूर्वभागमिच्छुःपश्चाद्भागंविकल्पयेत् ।
हरेच्चकर्षकाद्भागंययानष्टोभवेन्नसः ॥ २२ ॥

भाषार्थ—पहिले जानकर भागका अभिला-
षी राजा पीछेसे भागकी कल्पना करे और
किशानसे ऐसा मांगले जिससे किशान न
विगड़े ॥ २२ ॥

मालाकारश्चयाहोभागोनांगारकारवत् ।

बहुमध्याल्पफलतस्तारतम्यंविमृश्यच २३ ॥

भाषार्थ—और मालीके समान भागको ले
कोले करनेवालेके समान न ले और पहिले
बहुत—मध्यम अल्प फलकी न्यूनाधिकको
विचारले ॥ २३ ॥

राजभागादिव्ययतोद्विशुणंलभ्यतेयतः ।

कृषिकृत्यंतुतच्छ्रेष्ठतश्चनृण्डुःखदंनृणां २४ ॥

भाषार्थ—जिस खेतमें राजाका भाग और
खर्चसे दूना लाभ हो वह श्रेष्ठ और उससे
न्यून मनुष्योंको दुःखदाई होती है ॥ २४ ॥

तडागवापिकाकूपमातृकाद्विमातृकात् ।
देशान्नदीमातृकाचतुराजानुक्रमतःसदा ॥२५॥

भाषार्थ—जिनदेशोंमें तलाव-बावडी-कूप
नदी-बहुत हो उनमेंसे क्रमसे सदैव ॥२५॥
तृतीयांशंचतुर्थींशमर्धांशंतुहरेत्फलं ।
षष्ठांशमुखरात्तद्वत्पाषाणादिसमाकुलात् ॥

भाषार्थ—तीसरा-चौथा-आधा-छठा-भाग
राजा ग्रहण करे जो भूमि उत्तरवा पथरोंसे
व्याकुल युक्त हो उससे छठाभाग ग्रहण करे
राजभागस्तुरजतशतकर्षमितोयतः ।
कर्षकालभ्यतेतस्मैविंशंशमुत्सृजेनृपः ॥

भाषार्थ—और जिस भूमिमें १०० कर्ष
चांदीके पैदा हों उसमें खेत किशानके
पास २० भाग राजा छोड़दे ॥ २७ ॥

स्वर्णादथचरजतात्तृतीयांशंचताम्रतः ।
चतुर्थींशंतुषष्ठांशंलोहाद्वंगान्चसीसकात् ॥

भाषार्थ—सोने और चांदीसे तीसरा भाग
तांबेसे चौथा लोहा वंग शिसेसे छठाभाग
ग्रहण करे ॥ २८ ॥

रत्नार्धचैवक्षारार्धखनिजाद्रचयशेषतः ।
लाभाधिक्यं कर्षकादेर्यथादृष्टाद्वरेत्फलं ॥

भाषार्थ—रत्न-और खार- (लवणादि)
इनका आधा खर्वसे वचाकर ग्रहण करे
और किशानके अधिक लाभको देखकर
करले ॥ २९ ॥

त्रिधावापंचधाकृत्वासप्तधादशधापिवा ।
तृणकाष्ठादिहरकाद्रिंशत्यंशंहरेत्फलं ॥

भाषार्थ—तीन-पांच-सात-दश भाग क-
रके भूमिसे करले तृण काष्ठ आदिके बेचने
वालोंसे २० बीसमा भाग करले ॥ ३० ॥

अजाविगोमहिष्यश्ववृद्धितोष्टांशमाहरेत् ।
महिष्यजाविगोदुग्धात्षोडशांशंहरेन्नृपः ३१

भाषार्थ—बकरी-भेड़-गौ-भैंस इनकी वृ-
द्धिसे आठवां भाग ले और इनके दूधमेंसे
राजा सोलहवा भागले ॥ ३१ ॥

कारुशिल्पगणात्पक्षेदैर्निकं कर्मकारयेत् ।
तस्यवृद्धयेतडागंवावापिकांकृत्रिमांनदीं ॥

भाषार्थ—कारीगर शिल्पि इनके समूहसे
पक्षमें एक दिन काम करले और ये बहुत
हों—तलाव बावडी-कृत्रिम नदी (नहर)
इनको ॥ ३२ ॥

कुर्वत्यन्यंतद्विधंवाकर्षत्यभिनवांभुवं ।
तद्वचयद्विगुणंयावन्नतेभ्योभागमाहरेत् ३३

भाषार्थ—बनाते हों वा अन्य ऐसाही काम
करते हों अथवा नई भूमिको खोदते हों
उनसे तबतक कर नले जबतक उनके ख-
र्वसे दूना लाभ हो ॥ ३३ ॥

भूविभागंभूतिशुल्कंवृद्धिमुत्कोचकंकरं ॥
सद्यएवहरेत्सर्वंनतुकालविलंबनैः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—भूमिका भाग-भूतिका शुल्क-
व्याज-उत्कोच-(ऋसवत्) इनके करको
उसी समयले विलम्ब न करे ॥ ३४ ॥

दद्यात्प्रतिकर्षकायभागपत्रंसचिन्हितं ।
नियम्यग्रामभूभागमेकस्माद्विनिकाहरेत् ॥

भाषार्थ—और किशानको मोहर लगाकर
करका पत्र (रसीद) दे ग्रामकी भूमिके
करको नियत करके एक धनी (चौधरी)
सेले ॥ ३५ ॥

गृहीत्वातत्प्रतिभुवंधनंप्राक्तत्सुभंतुना ।
विभागशोगृहीत्वापिमासिमासिऋतौऋतौ ॥

षोडशद्वादशदशाष्टांततोवाधिकारिणः ।

स्वांशात्पष्टांशभागेनग्रामपान्साग्नियोजयेत्

भाषार्थ—और उस धनीके प्रतिभू (जामिन) को पहिले ग्रहण करले और जिसके पास उसकी बराबर धन हो उस प्रतिभू न करे और महीने २ वा ऋतु २ में विभागसे ग्रहण करके १६-१२-१०-८-अधिकारी नियत करे अपने अंशमेंसे छठा भाग ग्रामके अधिपतिको नियुक्त करे ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥

गवादिदुग्धान्नफलकुटुंबार्थाद्धरेन्नृपः ।

उपभोगेधान्यवस्त्रक्रेतुतोनाहरेत्फलं ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—गा आदिका जो दूध कुटुम्बकेही लायक हो उससे और जो उपभोगके लिये अन्न वस्त्र खरीदे उससे राजा कर न ले ॥ ३८ ॥

वार्षिकपिकाचकौसीदाह्यात्रिंशांशहरेन्नृपः ।

गृहाद्याधारभूशुल्कंकृष्टभूमिरेवाहरेत् ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—व्यापारी और व्याज लेनेवालेसे ३२ मा भाग राजा ले जिस भूमिमें घर हों उसका कर (दंड) भूमिके समान ग्रहण करे ॥ ३९ ॥

तथाचापणिकेभ्यस्तुपण्यभूशुल्कमाहरेत् ।

मार्गसंस्काररक्षार्थमार्गगेभ्योहरेत्फलं ॥ ४० ॥

भाषार्थ—और हाटवालोंसे हाटकी भूमिके करको ले और मार्ग चलनेवालोंसे मार्ग (सड़क) की रक्षाकेलिये कर ले ॥ ४० ॥

सर्वतःफलभुग्भूत्वादासवत्स्याचतुरक्षणे ।

इतिकोशप्रकरणंसमाप्तात्कथितं किल ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—और सबसे कर लेकर दासके समान रक्षा करे यह कोशका प्रकरण संक्षेपसे कहा ॥ ४१ ॥

अथमिश्रेतृतीयंतुराष्ट्रवक्ष्येसमासतः ।

स्यावैरंजंगमंवापिराष्ट्रशब्देनगीयते ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—अब मिश्र प्रकरणमें राष्ट्र (देश) को संक्षेपसे कहते हैं स्थावर और जंगम भेदसे दो प्रकारका कहा है ॥ ४२ ॥

यस्याधीनंभवेद्यावत्तद्राष्ट्रतत्स्यवैभवेत् ।

कुवेरताशतगुणाधिकासर्वगुणात्ततः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—जितना देश जिसके आधीन हो और उससे सौगुनी और सब गुणवाली कुवेरता होती है ॥ ४३ ॥

ईशताचाधिकतरासानाल्पतपसःफलं ।

सदीव्यतिष्ठेय्यांतुनान्योदेवोयतःस्मृतः

भाषार्थ—और ईशता (राजाहोना) उससेभी अधिक है और वह अल्प तपका फल नहीं वह पृथ्वीमें क्रीडा करता है इससे राजासे अन्य पृथ्वीमें देवता नहीं कहा ॥ ४४ ॥

तस्याश्रितोभवेल्लोकस्तद्वदाचरतिप्रजा ।

भुंक्तेराष्ट्रफलंसम्यगतौराष्ट्रकृतं त्वयं ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—जगत् उसके आश्रय होता है प्रजा उसीके समान आचरणकरती है राजा देशके फल (पुण्य) और पापको भोगता है ॥ ४५ ॥

स्वस्वधर्मपरोलोकोयस्यराष्ट्रेप्रवर्तते ।

धर्मनीतिपरोराजाचिरंकीर्तिसचाश्रुते ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—जिसके राज्यमें प्रजा अपने २ धर्ममें तत्पर रहे धर्म और नीतिमें तत्पर राजा चिरकालतक कीर्तिको भोगता है ४६ भूमौयावद्यस्यकीर्तिस्तावत्स्वर्गेंसतिष्ठति । अकीर्तिरेव नरकोनान्योस्ति नरकोदिवि ॥

भाषार्थ—जिसकी कीर्ति जबतक भूमिमें टिकती है तबतक वह स्वर्गमें रहता है अ-

कीर्तिही नरक है दूसरा नरक परलोकमें नहीं ॥ ४७ ॥

नरदेहाद्रिनात्वन्योदेहोनरकएवसः ।
महत्पापफलंविद्यादाधिंव्याधिस्वरूपकं ॥

भाषार्थ—मनुष्यके देहसे जो अन्यदेहवही नरक है क्योंकि वह आधी और व्याधी रूप महा पापका फल होता है ॥ ४८ ॥

स्वयंधर्मपरोभूत्वाधर्मेसंस्थापयेत्प्रजाः ।
प्रमाणभूतंधर्मिष्ठमुपसर्पत्यतःप्रजाः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—स्वयं धर्ममें तत्पर होकर प्रजाको धर्ममें टिकावे और प्रामाणिक और धर्मिष्ठ राजाके समीप सब प्रजा प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥
देशधर्माजातिधर्माःकुलधर्माःसनातनाः ।
मुनिप्रोक्ताश्रयेधर्माःप्राचीनानूतनाश्रये ॥

भाषार्थ—देशके धर्म—जातिके धर्म—और सनातन जो कुलके धर्म जो मुनियोंने कहे हैं और जो प्राचीन और नवीन धर्म हैं ॥ ५० ॥

तेराष्टगुप्त्यैसंधार्याज्ञात्वायत्नेनसंभृपैः ।
धर्मसंस्थापनाद्राजाश्रयंकीर्तिप्रविदति ५१

भाषार्थ—वे जानकर यत्नसे उत्तम राजा देशरक्षाके लिये धारण करे धर्मकी स्थापनासे राजाको लक्ष्मी और कीर्ति मिलती है ॥ ५१ ॥

चतुर्धाभेदिताजातिर्ब्रह्मणकर्मभिःपुरा ।
तत्तत्सांकर्यसांकर्यात्प्रातिलोमानुलेमतः ॥

भाषार्थ—प्रथम कर्मसे ब्रह्मने चार प्रकार जातिका विभाग किया उनके प्रतिलोम और अनुलोम संकर और संकरोंके संकरसे ५२ ॥

जात्यानंत्यंतुसंप्राप्ततद्रक्तुनैवशक्यते ।
मन्यतेजातिभेदयमनुप्याणांतुजन्मना ॥

भाषार्थ—अनंत जाती होगई जिनको कह नहीं सके जो मनुष्योंके जन्मसे जातिभेदको मानते हैं ॥ ५३ ॥

तएवहिविजानंतिपार्यक्यंनमकर्मभिः ।
जरायुजांडजाःस्वेदोद्विज्जाजातिसुसंग्रहात्

भाषार्थ—वेही पृथक् २ नाम कर्मसे जातिभेदको जानते हैं जरायुज—अण्डज स्वेदज उद्विज्ज जाति संग्रहसे होती है ॥ ५४ ॥

उत्तमोनीचसंसर्गाद्वेनीचस्तुजन्मना ।
नीचोभवेन्नोत्तमस्तुसंसर्गाद्वापिजन्मना ॥

भाषार्थ—जो जन्मसे उत्तम है वह नीचके संसर्गसे नीच हो जाता है और जो जन्मसे नीच है वह संसर्गसे उत्तम कभी नहीं होता ॥ ५५ ॥

कर्मणोत्तमनीचत्वंकालतस्तुभवेदुणैः ।
विद्याकलाश्रयेणैवतन्नाम्नाजातिरुच्यते ॥

भाषार्थ—गुण और समयसे कर्मके द्वारा उत्तम नीच होता है विद्या और कलाके आश्रयसे उसी नामकी जाति कहाती है ५६ ॥
इज्याध्ययनदानानिकर्माणितुद्विजन्मना ।
प्रतिग्रहोभ्यापनंचयाजनंब्राह्मणेधिकं ५७ ॥

भाषार्थ—यज्ञ करना—पढ़ना—दानदेना—ये द्विजातियोंके कर्म हैं और ब्राह्मणके ये तीन कर्म अधिक हैं प्रतिग्रह—यज्ञकराना और पढ़ाना ॥ ५७ ॥

सद्रक्षणंदुष्टनाशःस्वांशदानंतुंक्षत्रिये ।
कृषिगोगुस्तिवाणिज्यमधिकंतुविशांस्मृतं ॥

भाषार्थ—सज्जनोंकी रक्षा—दुष्टोंका नाश—अपने भागका लेना ये काम क्षत्रियके और खेती गौओंकी रक्षा व्यवहार ये वैश्यके अधिक कहा है ॥ ५८ ॥

दानं सर्वैव शूद्रादेर्नीचकर्मप्रकीर्तितं ।

क्रियाभेदेस्तु सर्वेषां भृतिवृत्तिरनिदिता ॥

भाषार्थ—शूद्र आदिका कर्म दान और सेवाही नीचकर्म कहा है और कामके भेदसे भृति (नोकरी) सबकीही निंदासे रहित वृत्ति है ॥ ५९ ॥

सीरभेदैः कृपिः प्रोक्ता मन्वाद्यैर्ब्राह्मणादिषु ।

ब्राह्मणैः षोडशगवंचतुर्गुण्ययापरैः ॥ ६० ॥

भाषार्थ—मनुआदि ऋषियोंने ब्राह्मण आदिकोंके लिये सीर (हल) के भेदसे खेती कहा है कि ब्राह्मण एक हलपर सांलह बेल और अन्यवर्ण चार २ बेल कम बेलोंको रखें ॥ ६० ॥

द्विगवन्वात्यजैः सीरं हृष्टाभूमादर्वतथा ।

ब्राह्मणेन विनान्येषां भिक्षावृत्तिर्विगर्हिता ॥

भाषार्थ—और अंत्यज दो बेल रखें अथवा जैसा भूमि कोमल हो वैसीही बेलोंकी संख्या कम रखें और ब्राह्मणके बिना अन्यवर्णोंको भिक्षाकी वृत्ति निंदित है ॥ ६१ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्ब्रतैश्च विधिचोदितैः ।

वेदः कृत्स्नोधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥

भाषार्थ—तपोंके भेदोंसे—शास्त्रोक्त विविध ब्रतोंसे रहस्यों सहित संपूर्ण वेदोंको द्विजाति पढ़े ॥ ६२ ॥

यो धीतविद्यः सकलः स सर्वेषां गुरुर्भवेत् ।

न च जात्यानधीतो गुरुर्भवेत् ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—जिसने संपूर्ण विद्या पढ़ी हो वह सबका गुरु होता है जो पढ़ा हुआ नहीं वह जातिसे गुरु नहीं होता ॥ ६३ ॥

विद्या ह्यनन्ताश्च कलाः संख्यातुं नैव शक्यते ।

विद्या मुख्याश्च द्वात्रिंशच्चतुः षष्टिकलाः स्मृताः ।

भाषार्थ—विद्या और कला अनंत हैं वे गिननेको शक्य नहीं हैं और मुख्य विद्या बत्तीस ३२ हैं और चौसठ कला मुख्य हैं ॥ ६४ ॥

यद्यत्स्याद्वाचिकं सम्यक् कर्माविद्याभिसंज्ञकं शक्तो मूकोऽपि यत्कर्तुं कलासंज्ञतु तत्स्मृतं ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—जो २ कर्म वाणीका विषय हैं उसकाही नाम विद्या है और जिसको मूक (मूगा) भी करसके उसको कला कहते हैं ॥ ६५ ॥

उक्तसंक्षेपतो लक्ष्मविशिष्टं पृथगुच्यते ।

विद्यानांच कलानांच नामानि तु पृथक् पृथक् ।

भाषार्थ—संक्षेपसे यह लक्षण कहा अब पृथक् २ विशेष लक्षण कहते हैं—और विद्या और कलाओंके पृथक् २ नामभी कहते हैं ॥ ६६ ॥

ऋग्यजुः सामचाथर्ववेदाः आयुर्धनुः क्रमात् ।

गांधर्वश्चैव तत्राणि उपवेदोः प्रकीर्तिताः ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—ऋक्—यजु—साम—अथर्व ये चार वेद हैं—आयुर्वेद—धनुर्वेद—गांधर्ववेद और तंत्र ये चार उपवेद कहे हैं ॥ ६७ ॥

शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।

छंदः षडंगानीमानि वेदानां कीर्तितानि हि ॥

भाषार्थ—व्याकरण—शिक्षा—कल्प—निरुक्त—ज्योतिष—छंद—ये छः वेदोंके अंग कहे हैं ६८ भीमांसातर्कसांख्यानि वेदानां योग एव च ॥

इतिहासः पुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतं

भाषार्थ—भीमांसा—तर्क (न्याय) सांख्य—वेदांत—योग—इतिहास—पुराण—स्मृति—नास्तिक—कोंका मत ॥ ६९ ॥

अर्थशास्त्रकामशास्त्रतथाशिल्पमलंकृतिः
काव्यानिदेशभाषावसरोक्तिर्यावनमंतं ७०

भाषार्थ—अर्थशास्त्र—कामशास्त्र—शिल्पशा-
स्त्र—अलंकार—काव्य—देशभाषा—अवसरकी
उक्ति—यवनोंका मत ॥ ७० ॥

देशादिधर्माद्वात्रिंशदेताविद्याभिसंज्ञिताः ।
मंतब्राह्मणयोर्वेदनामप्रोक्तमृगादिपु॥ ७१ ॥

भाषार्थ—बत्तीस देश आदिके धर्म इनका
विद्या नाम है और ऋक् आदिकोंमें मंत्र
और ब्राह्मणकाभी वेद नाम कहा है ॥ ७१ ॥

जपहोमार्चनयस्यदेवताप्रीतिदंभवेत् ।
उच्चारान्मंतसंज्ञतद्विनियोगिचब्राह्मणं ७२ ॥

भाषार्थ—जिसके उच्चारणसे जप होम पू-
जन देवताको प्रसन्न करै उसको मंत्र कह
ते हैं और जिसमें विनियोग हो उसे ब्राह्मण
कहते हैं ॥ ७२ ॥

ऋरूपायत्रयेमंत्राःपादशोधर्चशोपिवा ।
येषांहोत्रंसंक्रुग्भागःसमाख्यानंचयत्रवा ॥

भाषार्थ—ऋग्वेदरूप जो मंत्र हैं चाहै वे
पादहों चाहै आधीऋचाके हों जिनसे होता
को करनेका कर्म होता है अथवा जिसमें
इतिहास हों वह ऋग्वेदका भाग है ॥ ७३ ॥

प्रक्षिष्टपठितामंत्रावृत्तगीतविषजिताः ।
आध्वर्यव्यंत्रकर्मत्रिगुणयत्रपाठनं ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जो मंत्र भिन्न २ पढ़े हैं और जि-
नमें वृत्तांत और गीत नहो—और जिसमें
अध्वर्युका कर्म हो और जो तिगुना पढ़ा
जाय ॥ ७४ ॥

मंत्रब्राह्मणयोरेवयजुर्वेदःसउच्यते ।
उद्गीथयस्यशस्त्रादेर्यज्ञेतरसामसंज्ञकं ७५ ॥

भाषार्थ—वह मंत्र और ब्राह्मण रूप यजुर्वे-
द कहा है जिसमें यज्ञके बीच शस्त्रआदि-
का ऊंचेस्वरसे गाना है उसको सामवेद क-
हते हैं ॥ ७५ ॥

अथर्वागिरसोनामह्यपास्योपासनात्मकः ।
इतिवेदचतुष्कंतुह्यदिष्टंचसमासतः ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—जिसमें उपासना (पूजा) और
उपास्य (पूजा के योग्य) वर्णन हो वह
अथर्व और अंगिरा हैं ये संक्षेपसे चारों वेद
कहे ॥ ७६ ॥

विंदत्यायुर्वेत्तिसम्यगाकृत्यौषधिहेतुतः ।
यस्मिन्ऋग्वेदोपवेदःसचायुर्वेदसंज्ञकः ७७ ॥

भाषार्थ—जिसमें आकृति और हेतुसे भ-
ली प्रकार अवस्थाका ज्ञान हो वह ऋग्वेद-
का उपवेद आयुर्वेद कहाता है ॥ ७७ ॥

युद्धशस्त्रास्त्रकुशलोचनाकुशलोभवेत् ।
यजुर्वेदोपवेदोयधनुर्वेदस्तुयेनसः ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—जिससे युद्ध शस्त्र अस्त्र रचना
आदिमें कुशल हो वह यजुर्वेदका उपवेद
धनुर्वेद होता है ॥ ७८ ॥

स्वरैरुदात्तादिधर्मैस्तंत्रीकंठोत्थितैःसदा ।
सतालैर्गानविज्ञानं गांधर्वोवेदएवसः ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—स्वर और उदात्त आदि स्वरोंके
धर्मोंसे जो वीणा वा कंठसे निकसते हैं और
ताल सहित हैं इनसे जिसमें गानेका ज्ञान
हो वह गांधर्व वेद है ॥ ७९ ॥

विविधोपास्यमंत्राणांप्रयोगास्तुविभेदतः ।
कथिताःसोपसंहारास्तद्धर्मनियमैश्चषट् ८०

भाषार्थ—जिसमें अनेक प्रकारकी पूजाके
मंत्रोंके प्रयोग और उनकी समाप्ति धर्मनिय-
मों सहित कही हो वे छः ॥ ८० ॥

अयर्थणांचोपवेदस्तंत्ररूपःसएवहि ।

स्वरतःकालतःस्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः ॥

भाषार्थ—अथर्व वेदका उपवेद तंत्र रूपहै जिसमें स्वर—काल—स्थान—प्रयत्न—और अनुप्रदानसे और ॥ ८१ ॥

सवनाद्यैश्चसाक्षिणावर्णानांपाठशिक्षणात् ।
प्रयोगोयत्रयज्ञानामुक्तोब्राह्मणशेषतः ८२

भाषार्थ—सवन आदिसे वर्णोंके पढ़नेकी शिक्षाहो वह शिक्षा होती है—और ब्राह्मणके शेषभागसे यज्ञोंका प्रयोग (विधान) हो ८२
श्रौतकल्पःसविज्ञेयःस्मार्तकल्पस्तथेतरः ।
व्याकृताप्रत्ययाद्यैश्चधातुसंधिसमासतः ॥

भाषार्थ—वह श्रौतकल्प जानना और उससे भिन्न स्मार्त कल्प होता है—जिसमें प्रत्यय आदि धातु संधि—समाससे ॥ ८३ ॥
शब्दापशब्दाव्याकरणएकद्विवहुलिंगतः ।
शब्दनिर्वचनयत्रवाक्यार्थकार्यसंग्रहः ८४ ॥

भाषार्थ—शब्द और अपशब्दका व्याख्यान हो और एक दो बहुत लिंगके भेदसे शब्दोंका वर्णन हो वह व्याकरण कहा है और जिसमें वाक्यार्थोंसे एक अर्थका संग्रह हो ॥ ८४ ॥

निरुक्ततत्समाख्यानाद्वेदांगंश्रौत्रसंज्ञकं ।
नक्षत्रग्रहगमनैःकालोद्येनविधीयते ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—वह श्रौत नामका वेदांग कहा है और जिसमें नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिसे समयकी विधि हो ॥ ८५ ॥

संहिताभिश्चहोराभिर्गणितज्यौतिषंहितत् ।
म्यरस्तजभनगैलैतैःपद्यान्यत्रप्रमाणत ८६

भाषार्थ—संहिता और होरासे गणितहो बहु ज्योतिष होता है—और जहां मगण-यग-

ण—रगण—सगण—तगण—जगण—भगण—नगण गुरु और लघुके प्रमाणसे पद्य (श्लोक) हैं ॥ ८६ ॥

कल्पांतच्छंदःशास्त्रंतद्वेदानांपादरूपधृक् ।
यत्रव्यवस्थिताचार्यकल्पनाविधिभेदतः ८७

भाषार्थ—वह कल्प रूप छंदः शास्त्र वेदोंका अंग है जहां अर्थकी कल्पना विधिके भेदसे अर्थकी कल्पना हो ॥ ८७ ॥

मीमांसावेदवाक्यानांसैवन्यायश्चकीर्तितः ।
भावाभावपदार्थानांप्रत्यक्षादिप्रमाणतः ८८

भाषार्थ—वह मीमांसा और वेदवाक्योंका न्याय कहा है—भाव और अभाव रूप पदार्थों प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे ॥ ८८

सविवेकोयत्रतर्कःकणादादिमतंचयत् ।
पुरुषोष्टौप्रकृतयोविकाराःषोडशेतिच ८९

भाषार्थ—विवेक सहित वर्णन हो वह कणाद आदिका मत तर्कशास्त्र है—और जिसमें पुरुष (ईश्वर)—आठप्रकृति और सोलह विकार ८९

तत्त्वादिंसंख्यावैशिष्ट्यात्सांख्यमित्यभिधीयते ।

ब्रह्मैकमद्वितीयस्यान्नानेहास्तिकिंचन ॥

भाषार्थ—और तत्त्व आदिकोंकी संख्या युक्त होनेसे वह सांख्य कहाता है—और ब्रह्मही एक अद्वितीय है और नाना (माया) कुछभी नहीं है ॥ ९० ॥

मायिकंसर्वमज्ञानाद्भातिवेदांतिनामतं ।
चित्तवृत्तिनिरोधस्तुप्राणसंयमनादिभिः ॥

भाषार्थ—संपूर्ण अज्ञानसे मायारूपही भासता है यह वेदांतियोंका मत है—और जिसमें प्राणिके संयम आदिसे चित्तकी वृत्तिका निरोध ॥ ९१ ॥

तद्योगशास्त्रं विज्ञेयं यस्मिन् ध्यानसमाधितः ।

प्राग्वृत्तकथनचैकराजकृत्यमिषादितः ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—वा ध्यान समाधिसे चित्तवृत्तिका अवरोध हो वह योगशास्त्र कहाता है राजाके कर्म आदिके मिषसे जिसमें प्राचीन वृत्तांत का कथन हो ॥ ९२ ॥

यस्मिन्स इति हांसः स्यात्पुरावृत्तः स एव हि ।

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ ९३ ॥

भाषार्थ—वह इतिहास और पुरावृत्त कहा है—और जिसमें सर्ग—प्रतिसर्ग वंश और मन्वंतर ॥ ९३ ॥

वंशानुचरितं यस्मिन् पुराणं तद्विकीर्तितं ।

वर्णादिधर्मस्मरणं यत्र वेदाविरोधकं ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—और वंशोंके चरित्रोंका वर्णन हो वह पुराण कहा है—और जिसमें वेदके अनुकूल वर्ण आदिकोंके धर्मका स्मरण हो ॥ ९४ ॥

कीर्तनचार्थशास्त्राणां स्मृतिः सा च प्रकीर्तिता युक्तिर्वलीयसी यत्र सर्वस्वाभाविकं मतं ॥

भाषार्थ—और अर्थशास्त्रका जिसमें कीर्तन हो वह स्मृति कही है—और जिसमें युक्ति बलवान् हो और अन्य सब वर्णन स्वाभाविक हो ॥ ९५ ॥

कस्यापि नेश्वरः कर्तानवेदो नास्तिकं मतं ।

श्रुतिस्मृत्यविरोधेन राजवृत्तांहिंसासनम् ॥

भाषार्थ—और ईश्वर किसीका भी कर्ता न ही है और न वेद है वह नास्तिक मत है—और श्रुति और स्मृतिके अनुकूल जिसमें राजाके वृत्तांतकी शिक्षा हो ॥ ९६ ॥

सुयुक्त्यार्यार्जनं यत्र ह्यर्थशास्त्रं तदुच्यते ।

शशादिभेदतः पुंसामनुकूलादिभेदतः ॥

भाषार्थ—और युक्तिसे धनके संचयका वर्णन हो वह अर्थशास्त्र कहाता है—और जिसमें शश आदिके भेद और अनुकूल आदि भेदसे पुरुषोंके ॥ ९७ ॥

पंद्भिर्न्यादिप्रभेदेन स्त्रीणां स्वीयादिभेदतः ।

तत्कामशास्त्रं सत्त्वादिलक्ष्मयत्रास्ति चोभयोः

भाषार्थ—और पद्भिनी आदिभेद और स्वीय आदि भेदसे स्त्रियोंके लक्षण और सत्त्व आदि दोनोंके लक्षणोंका वर्णन हो वह कामशास्त्र कहा है ॥ ९८ ॥

प्रासादप्रतिमारा मगृहवाप्यादिसत्कृतिः ।

कथिता यत्र तच्छिल्पशास्त्रमुक्तं महर्षिभिः ॥

भाषार्थ—जिसमें प्रासाद (मंदिर) प्रतिमा—आराम—(वगीचा) घर—और वावड़ी आदिका बनाना कहा हो वह बड़े २ ऋषियोंने शिल्पशास्त्र कहा है ॥ ९९ ॥

समन्यूनाधिकत्वेन सारूप्यादिप्रभेदतः ।

अन्योन्यगुणभूषादिवर्ण्यते लंकृतिश्च सा ॥

भाषार्थ—सम—न्यून—अधिक—आदिसे और सारूप्य आदिके भेदसे जहां परस्परके गुण और भूषा (शोभा) आदिका वर्णन हो वह अलंकारशास्त्र कहाता है ॥ १०० ॥

सरसालंकृतादुष्टशब्दार्थकाव्यमेव तत् ॥

विलक्षणचमत्कारबीजपद्यादिभेदतः ॥ १०१ ॥

भाषार्थ—जिसमें रसों सहित अलंकार और शब्दोंका शुद्ध अर्थ हो और पद्य (श्लोक) आदिके भेदसे विलक्षण चमत्कारका बीज हो वह काव्य कहाता है ॥ १ ॥

लोकसंकेततोर्यानां सुग्रहावाक्पुद्गैशिकी ॥

विना कौशिकशास्त्रीयसंकेतैः कार्यसाधिका ॥

भाषार्थ—जिसमें जगत्की रीतिसे देशकी वाणीका ज्ञान भली प्रकार हो और कोश और

शास्त्रके संकेतोंके बिना कायोंकी सिद्धि
जिससे हो ॥ २ ॥

यथाकालोचितावाग्यावसरोक्तिश्चसास्मृता
ईश्वरः कारणयन्त्रादृशोस्तिजगतःसदा ॥

भाषार्थ—ऐसी समयके अनुसार जो वाणी
उसे अवसरोक्ति कहते हैं—जिसमें जगत्का
कारण ईश्वर सदैव अदृश्य माना है ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतिविनाधर्मधर्मस्तस्तच्चयावनं ।
श्रुत्यादिभिन्नधर्मोस्तियत्रतद्यावनंमतं ४ ॥

भाषार्थ—श्रुति और स्मृतिके बिना धर्म
अधर्मका वर्णन हो वह यावन (यवनोंका
शास्त्र फारसी) माना है और श्रुति आदिसे
भिन्न धर्म जिसमें हो वह यवनोंका मत है ४
कल्पितश्रुतिमूलोवामूलैर्लोकैर्धृतःसदा
देशादिधर्मःसन्नेयोदेशेदेशकुलेकुले ॥२॥

भाषार्थ—कल्पित हो वा श्रुतिके अनुसार
हो और जिसको लोकोंने मूल (सत्य)
मान रखाहो वह देश आदिका धर्म कहाहै
और देश २ और कुल २ में ॥ ५ ॥

पृथक्पृथक्तुविद्यानांलक्षणसंप्रकाशितं ॥
कलानानंपृथङ्नामलक्ष्मचास्तीहकेवलं ६

भाषार्थ—भिन्न २ होता है—यह विद्याओंका
लक्षणप्रकाश किया—कलाओंका पृथक् २
नाम नहीं है केवल लक्षण है ॥ ६ ॥

पृथक्पृथक्क्रियाभिर्हिकलाभेदस्तुजायते
यांयांकलांसमाश्रित्यतन्नाम्नाजातिरुच्यते

भाषार्थ—भिन्न २ कर्मोंसे क्रियाका भेद
हता है और जिस २ कलाका आश्रय हो
उसी २ नामसे जाति कहाती है ॥ ७ ॥

हावभावीदंसयुक्तनर्तनंतुकलास्मृता ।
अनेकवाद्यविकृतौज्ञानंतद्वाद्नेकला ॥८॥

भाषार्थ—हाव भाव आदि सहित जो नृत्य
उसे कला कहते हैं और अनेक प्रकारके
वाजोंके विकारका ज्ञान हो वहां उसके वजा
नेमें कला होती है ॥ ८ ॥

अनेकरूपाविर्भावकृतिज्ञानंकलास्मृता
वस्त्रालंकारसंधानंस्त्रीपुंसोश्चकलास्मृता ९ ॥

भाषार्थ—अनेक रूपोंके आविर्भाव (प्रक-
टता) से जिसमें कायोंका ज्ञानहो वह कलाक-
ही—स्त्री—और पुरुषके वस्त्र और भूषणोंके
संधान (धारण) कोभी कला कहते हैं ९

शय्यास्तरणसंयोगेपुष्पादिग्रथनंकला
धूताद्यनेकक्रीडाभीरंजनंतुकलास्मृता १०

भाषार्थ—शय्या और बिछोने पर पुष्प आ-
दिके ग्रंथनको कला कहते हैं—और धूत
आदि अनेक क्रीडासे जो रंजन उसे कला
कहते हैं ॥ १० ॥

अनेकासनसंधानैरतेज्ञानंकलास्मृता ।
कलासप्तकमेतद्विगांधर्वसमुदाहृतं ॥११॥

भाषार्थ—अनेक आसनोंसे रति (मैथुन)
के संधानके ज्ञानको कला कहते हैं—ये सात
कला गांधर्वोंने कही हैं ॥ ११ ॥

मकरंदसवादीनामद्यादीनांकृतिःकला ।
शल्यमूढाहतौज्ञानंशिरात्रणव्यधेकला १२

भाषार्थ—मकरंद और आसव आदि मद्यों-
के आकारको कला कहते हैं—छिपे हुये श-
ल्य (घाव) के निकासनेके ज्ञानको और न
सोंके बांधनेको कला कहते हैं ॥ १२ ॥

हीनाधिरससंयोगोन्नादिसंपाचनंकला ।
वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिःकला १३

भाषार्थ—हीन और अधिक रसके संयोगसे
अन्न आदिके पचानेको कला कहते हैं—और

वृक्ष आदिके पेड़ोंके लगाने और पालनेको कला कहते हैं ॥ १३ ॥

पाषाणादिद्रुतिर्धातोस्तद्रस्मकरणेकला ।

यावदिक्षुविकाराणांकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

भाषार्थ—पत्थर आदि धातुओंको गलाना और उनकी भस्म करनेकी कला—और संपूर्ण इक्षुओंके गुड आदि विकारोंको जाननेकी कला कहीहै ॥ १४ ॥

धात्वौषधीनांसंयोगक्रियाज्ञानंकलास्मृता ।

धातुसांकर्यपार्थक्यकरणंतुकलास्मृता १५

भाषार्थ—धातु औषधि इनके संयोगकी क्रियाके ज्ञानकी कला—और मिलीहुयी धातुओंके पृथक् करनेकी कला कहीहै—॥ १५ ॥

संयोगापूर्वविज्ञानंधात्वादीनांकलास्मृता ॥

क्षारनिष्कासनज्ञानंकलासंज्ञंतुतस्मृतं १६

भाषार्थ—धातु आदिके अपूर्व संयोगके ज्ञानको कला और क्षार आदिके निकासनेके ज्ञानको कला कहतेहैं ॥ १६ ॥

कलादशकमेतद्विद्यायुर्वेदागमेषुच ।

शस्त्रसंधानविक्षेपःपदादिन्यासतःकला १७

भाषार्थ—ये दश कला आयुर्वेदके आगमोंमें होतीहैं—और शस्त्रको लगाना और चरण आदिके न्यास (रखने) से फेंकनेको कला कहते हैं—॥ १७ ॥

संध्याधाताकृष्टिभैदर्मल्लयुद्धंकलास्मृता ।

कलाभिलक्षितेदेश्यंत्राद्यस्त्रनिपातनं ॥ १८

भाषार्थ—संधि (मेल) आघात (पटकना) और आकृष्टि (खींचने) के भेदसे मल्लयुद्धको और कलाओंसे जाने हुये देशमें अस्त्रके निपातन (गेरने) को कला कहतै हैं—१८ ॥

वाद्यसंकेततोव्यूहरचनादिकलास्मृता ।

गजाश्वरथगत्यादिद्युद्धसंयोजनंकला ॥ १९

भाषार्थ—वाजेके संकेतसे व्यूह (सेना) की रचनाको कला कहतेहैं—और गज—अश्व—रथ आदिकी गतिके द्वारा युद्धके मेलको कला कहतेहैं ॥ १९ ॥

कलापंचकमेतद्विधनुर्वेदागमेस्थितं ।

विविधासनमुद्राभिर्देवतातोषणंकला २० ॥

भाषार्थ—ये पांचकला धनुर्वेदके आगम (ग्रंथो) में स्थितहैं—और अनेक प्रकारके आसन और मुद्राओंसे देवताकी प्रसन्नताको कला कहतेहैं ॥ २० ॥

सारथ्यंचगजाश्वदेर्गतिशिक्षाकलास्मृता ।

मृत्तिकाकाष्ठपाषाणधातुभांडादिसक्तिया

भाषार्थ—गज अश्व आदिकी गति (चलने) की शिक्षा और सारथिके कामको कला कहतेहैं मट्टी—काष्ठ—पत्थर—धातु—इनके अच्छे २ पात्र बनानेको कला कहतेहैं २१ ॥

पृथक्कलाचतुष्कंतुचित्राद्यालेखनंकला ॥

तडागवापीप्रासादसमभूमिक्रियाकला २२

भाषार्थ—ये चारकला पृथक्हैं चित्र आदिके लिखनेको कला कहतेहैं—और तलाव बावडी—प्रासाद इनकी समभूमिका जो करना उसकोभी कला कहतेहैं ॥ २२ ॥

घट्याद्यनेकयंत्राणांवाद्यानांतुकृतिःकला ॥

हीनमध्यादिसंयोगवर्णद्यैरंजनंकला ॥ २३

भाषार्थ—घटी आदिके अनेकयंत्र और वाजोंके बनानेको कला कहतेहैं—और अल्प मध्य आदि वर्णों (रंगों) से रंगनेको कला कहतेहैं ॥ २३ ॥

जलवाय्वग्निसंयोगनिरौधैश्चक्रियाकला ।

नौकारथादियानानांकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

भाषार्थ—जल-वायु-आग्नि इनके संयोग और निरोधको कला कहते हैं—और नाव-स्थ-आदि यानोंके बनानेकी रीतिको कला कहते हैं ॥ २४ ॥

सूत्रादिरज्जुकरणविज्ञानंतुकलास्मृता ।

अनेकतंतुसंयोगैःपटवंधःकलास्मृता ॥ २५ ॥

भाषार्थ—सूत आदिकी रज्जु करनेका जो ज्ञान उसेभी कला कहते हैं अनेक तंतुओंके संयोगसे जो पट (कपड़ा) का बुनना उसको कला कहते हैं ॥ २५ ॥

वेधादिसदसज्ज्ञानरत्नानांचकलास्मृता ।

स्वर्णादीनांतुयाथात्म्यविज्ञानंचकलास्मृता

भाषार्थ—रत्नोंके बंधनेमें सत् असत् का जो ज्ञान वहभी कला और सोने आदि धातुओंके यथार्थ स्वरूपका जो विज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ २६ ॥

कृत्रिमस्वर्णरत्नादिक्रियाज्ञानंकलास्मृता ।

स्वर्णाद्यलंकारकृतिःकलात्पेदादिसत्कृतिः

भाषार्थ—कृत्रिम (नकली) सुवर्ण रत्न आदिकी क्रियाका जो ज्ञान उसको कला—और सुवर्ण आदिके भूषणोंको बनाने और लेप आदिके भली प्रकार करनेको कला कहते हैं ॥ २७ ॥

मार्दवादिक्रियाज्ञानंचर्मणांतुकलास्मृता ।

पशुचर्मगानिर्हारक्रियाज्ञानंकलास्मृता २८

भाषार्थ—चर्म आदिकी कोमलताके ज्ञानको कला कहते हैं—और पशुके चर्म और अंगके निर्हार (स्वच्छता) करनेके ज्ञानको कला कहते हैं ॥ २८ ॥

दुग्धदोहादिविज्ञानेधृतांतुकलास्मृता ।

सार्वनंकचुकादीनांविज्ञानंहिकलात्मकं २९ ।

भाषार्थ—दूधके दुहने और घीके निकालने आदिके ज्ञानको कला कहते हैं—और कंचुक आदिके सीनिका जो अच्छा ज्ञान उसको भी कला कहते हैं ॥ २९ ॥

वाह्यादिभिश्चतरणकलासंज्ञंजलेस्मृतं ।

मार्जनंगृहभांडादेर्विज्ञानंतुकलास्मृता । ३०

भाषार्थ—जलमें भुजा आदिसे तरना उसकोभी कला—और घरके पात्र आदिके मांजनेका जो ज्ञान उसकोभी कला कहते हैं ३० वस्त्रसंमार्जनंचैवक्षुरकर्मकलेह्युभे ।

तिलमांसादिस्नेहानांकलानिष्कासनेकृतिः

भाषार्थ—वस्त्रोंका धोना और क्षुरकर्म (केशछेदन) ये दोनोंभी कला—और तिल मांस आदिके स्नेह (तेल) आदिका जो ज्ञान उसकोभी कला कहते हैं ॥ ३१ ॥

सीराद्याकर्षणज्ञानंवृक्षाद्यारोहणंकला ।

मनोतुकूलसेवायाःकृतिज्ञानंकलास्मृता ॥

भाषार्थ—दल चलानेका ज्ञान—और वृक्षपर चढ़ना इनको कला—और स्वामीके मनके अनुकूल सेवाका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ ३२ ॥

वेणुवृणादिपात्राणांकृतिज्ञानंकलास्मृता ।

काचपात्रादिफरणविज्ञानंतुकलास्मृता ॥ ३३

भाषार्थ—वांस—और वृण आदिके पात्रोंका जो ज्ञान उसको कला—और काँचके पात्र करनेको कला कहते हैं ॥ ३३ ॥

संसेचनंसंहरणंजलानांतुकलास्मृता ॥

लोहाभिसारशस्त्रास्त्रकृतिज्ञानंकलास्मृता ।

भाषार्थ—जलोंका सौंचने और निकालनेके ज्ञानको कला कहते हैं और लोहा और अभिसारके शस्त्र अस्त्रके बनानेका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ ३४ ॥

गजाश्ववृषभोष्ट्राणांपल्याणादिक्रियाकला ।

शिशोः संरक्षणज्ञानंधारणे क्रीडने कले ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—हाथी—अश्व—वैल—उंट—इनके पल्याण आदिके करनेका जो ज्ञान उसको कला—और बालककी रक्षाके ज्ञानमें बालक धारण और क्रीडा ये दोनों कला हैं ॥ ३५ ॥

सुयुक्तताडनज्ञानमपराधजनेकला ।

नानादेशीयवर्णानां सुसम्पलेखनेकला ॥

भाषार्थ—अपराधीकी ताडनामें उचित ताडनाके ज्ञानको कला—और नाना देशके अक्षरोंको अच्छी तरह लिखनेका जो ज्ञान उसको कला कहते हैं ॥ ३६ ॥

तांबूलरक्षादिकृतिविज्ञानंतुकलास्मृता ।

आदानमाशुकारित्वंप्रतिदानंचिरक्रिया ॥

भाषार्थ—पानोंकी रक्षा करनेकी जो विधि उसकोभी कला कहते हैं—सीखना और शीघ्र करना—प्रतिदान (सिखाना) और विलंबसे करना ॥ ३७ ॥

कलासुद्वौगुणौज्ञेयौद्विकलेपरिकीर्तिते ।

चतुःषष्टिकलाह्येताः संक्षेपेण निदर्शिताः ३८

भाषार्थ—ये पूर्वोक्त जो कलाओंमें दो गुण हैं येभी दो कला कही हैं—ये पूर्वोक्त चौसठ कला संक्षेपसे दिखाई ॥ ३८ ॥

यांयांकलांसमाश्रित्य तांतांकुर्यात्स एव हि
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिः क्रमात् ॥

भाषार्थ—जो जिस २ कलाका आश्रय ले उस २ कोही वह करे—ब्रह्मचारी—गृहस्थ—वानप्रस्थ—और यति (संन्यासी) क्रमसे ३९

चत्वार आश्रमाश्चैते ब्राह्मणस्य सदैव हि ।

अन्येषामंत्यहीनाश्च सत्रविदः शुद्रकर्मणां ४०

भाषार्थ—ये चार आश्रम ब्राह्मणके सदैव कहे हैं—और संन्यासको छोड़कर क्षत्री वंश्य शूद्रोंके तीन आश्रम होते हैं ॥ ४० ॥

विद्यार्थब्रह्मचारी स्यात्सर्वपांपालने गृही ।

वानप्रस्थः संदमने संन्यासी मोक्षसाधने ४१

भाषार्थ—विद्याके लिये ब्रह्मचर्य और सबकी पालनाके लिये गृहस्थ और इंद्रियोंके दमन करनेके लिये वानप्रस्थ और मोक्ष की सिद्धिके लिये संन्यास—आश्रम—है ४१

वर्तयंत्यन्यथा दंडं दद्याद्वर्णाश्रमजातयः ।

जपस्तपस्तीर्थसेवाप्रव्रज्यामंत्रसाधनं ४२ ॥

भाषार्थ—जो २ वर्ण और आश्रमकी जाति जप—तप—तीर्थ सेवा—संन्यास—मंत्रकी सिद्धि अन्यथा वर्ताव करती हैं वे दंड देने योग्य हैं ॥ ४२ ॥

यदि राज्ञोपेक्षितानि दण्डतोऽशिक्षितानि च ।

कुलान्यकुलतांयांति ह्यकुलानि कुलीनताम् ॥

भाषार्थ—यदि राजा दंड और शिक्षा न दे तो कुलभी अकुल और अकुलही कुलीन होजाते हैं ॥ ४३ ॥

देवपूजां नैव कुर्यात्स्त्रीशूद्रस्तु पतिं विना ।

न विद्यते पृथक् स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥

भाषार्थ—देवताकी पूजा स्त्री और शूद्र अपने पतिकी आज्ञा विना न करें पतिसे पृथक् स्त्रियोंकी धर्म अर्थ काम संबंधी कोई विधि नहीं है ॥ ४४ ॥

पत्युः पूर्वसमुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ।

उत्थाप्य शयनीयानि कृत्वा वैश्वमिशोधनम् ॥

भाषार्थ—स्त्री पतिसे पहिले उठकर देहकी शुद्धि करके शय्याके वस्त्रोंको उठावे और घरकी शुद्ध करे (बुझावे) ॥ ४५ ॥

मार्जनैर्लपनैः प्राप्यसानलंयवसाङ्गणं ।
शोधयेद्यज्ञपात्राणिस्निग्धान्युष्णेनवारिणा ॥

भाषार्थ—मार्जन—लीपनेसे आग्निशाला और
आंगनको शुद्ध करें और चिकने यज्ञके
पात्रोंको उष्ण जलसे धोवे ॥ ४६ ॥

प्रोक्षणीयानितान्येवयथास्थानं प्रकल्पयेत् ।
शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥

भाषार्थ—और उनको धोकर जहाँके तहाँ
रखदे और पात्रोंको शुद्ध करके जलभर कर
रखदे ॥ ४७ ॥

महानसस्य पात्राणि वहिः प्रक्षाल्य सर्वशः ।
मृद्भिस्तु शोधयेच्चुल्लोतत्राग्निं संधनं न्यसेत् ॥

भाषार्थ—महानस (रसोईके) सब पात्रों-
को बाहिर धोवे और चुल्लूको लीपकर
अग्नि और इंधन उसमें रखदे ॥ ४८ ॥

स्मृत्या नियोगपात्राणि रसाक्षद्विषानि च ।
कृतपूर्वाह्णिकाभ्येयं च शुरावाभिवदयेत् ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—जोड़के पात्रोंका और रस अन्न
द्रव्य इनका स्मरण और प्रातः कालके
कामको करके सास और श्वशुरको नम-
स्कार करें ॥ ४९ ॥

ताभ्यां भर्त्रापितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबांधवैः ।
वध्वालंकाररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ ५० ॥

भाषार्थ—जो वस्त्र सास ससुर माता पिता
भाई मातुल बांधव इन्होंने वस्त्र वा भूषण
दिये हों उनकोही धारण करें ॥ ५० ॥

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धपतिदेशानुवर्तिनी ।
छायेवानुगतास्वच्छासखीवहितकर्मसु ५१

भाषार्थ—मन वाणी कर्मसे शुद्ध और पति-
की आज्ञा करिणी—छायाके समान अनु-
कूल सखीके समान हित करिणी रहे ५१ ॥

दासीवदिष्टकार्येषु भार्याभर्तुः सदा भवेत् ।
ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य सा ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—इष्ट कामोंमें दासीके समान ही
स्त्री अपने भर्ताकी सदा रहे फिर अन्नको
सिद्ध करके और पतिको निवेदन करके ५२

वैश्वदेवोद्धृते रत्रैर्भाजनीयांश्चैर्भाजेयत् ।
पतिंचतदनुज्ञाता शिष्टमन्नाद्यमात्मना ।

भुक्त्वा न ये दहः शेषं सदाऽऽयव्ययचित्तया

भाषार्थ—वैश्वदेवसे वचे हुये अन्नोसे कुटुं-
बके मनुष्योंको जिमावे—पतिको जिमाकर
उसकी आज्ञासे शेष अन्नको खा भोजन
करके शेष दिनको आय और व्यय (खर्च)
की चिन्तामें ही वितवे ॥ ५३ ॥

पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ।

कृतान्नसाधना साध्वी सभृत्यं भोजयेत्पतिम्

भाषार्थ—फिर सायंकाल फिर प्रातःकाल
घरकी शुद्धि करके और भोजन बनाकर
भृत्यों समेत पतिको जिमावे ॥ ५४ ॥

नातिवृत्तास्वर्गमुक्तागृहनीतिं विधाय च ।

आस्तृत्य साधुशयनं ततः परिचरेत्पतिम् ५५

भाषार्थ—आप अधिक न खाकर और
घरकी नीतिको करके और भली प्रकार
शय्याको विछाकर पतिकी सेवाकरें ॥ ५५ ॥

सुप्ते पत्यौ तदध्यास्य स्वयंतद्रतमानसा ।

अनग्राचा प्रमत्ता च निष्कामात्रजितेंद्रिया ॥

भाषार्थ—जब पति सोजाय तब आपबी
उनके समीप उनमें ही मन लगाकर सौ
जाय नंगी न सोवै मतवाली न रहे कामदेवकी
त्यागै इंद्रियोंको जातै ॥ ५६ ॥

नोच्चैर्वदेन्न परुषं न वद्वारुतिमप्रियम् ।

न केनचिच्च विवदेदप्रलापविवादिनी ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—पतिके संग ऊंचे स्वरसे कड़वा चिल्लाकर—कुप्यारा वचन न बोले किसीके संग विवाद लड़ाई न करे और वृथान न बके ॥ ५७ ॥

नचास्यव्ययशीलास्यान्नधर्मार्थविरोधिनी प्रमादोन्मादरोषिर्ष्यावचनान्यतिनिघतां ॥

भाषार्थ—पतिके धनमेंसे बहुत खर्च न करे और धर्मको वा धनको न विगाड़े और प्रमाद—उन्माद—रुसना—ईर्ष्या इनको न कहै और निंदा न करे ॥ ५८ ॥

पैशून्यहिंसाविषयमोहाहंकारदर्पताम् ।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान्साध्वीविवर्ज-
येत् ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—चुगली—हिंसा—मोह अहंकार अभिमान—नास्तिकता—साहस अविचारसे करना चोरी दंभ इन सबको साध्वी स्त्री त्यागदे ॥ ५९ ॥

एवंपरिचरन्तीसापत्तिपरमदैवतं ।
यशस्यमिहयात्येवपरत्रैषासलोकताम् ६०

भाषार्थ—इस प्रकार परदेवतारूप अपने पतिकी जो सेवा करतीहै वह इसलोकमें यश और मरकर पतिलोकमें जातीहै ॥ ६० ॥

योषितोनित्यकर्मोक्तनैमित्तिकमथोच्यते ।
रजसोदर्शनादिषासर्वमेवपरित्यजेत् ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—यह स्त्रीका नित्यकर्म कहा अब नैमित्तिक कर्म कहतेहैं रजके दर्शनसे स्त्री सबको त्यागदे ॥ ६१ ॥

सर्वैरलक्षिताशीघ्रंलज्जितांतर्गृहेवसेत् ।
एकावराकुशादीनास्नानालंकारवर्जिता ॥
स्वपेद्भूमावप्रमत्ताक्षपेदेवमहस्त्रयः ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—ऐसे भीतरके घरमें बसे जहां को ई न देखै और एक वस्त्र धारे और स्नान

भूषणोंको त्यागदे भूमिमें सोवे प्रमाद न करे ऐसे जब तीन दिन भीतजाय ॥ ६२ ॥

स्नायीतसात्रिरात्रांतेसचैलाभ्युदितेरवौ ।
विलोक्यभर्तृवदनंशुद्धाभवतिधर्मतः ६३ ॥

भाषार्थ—चौथे दिन सूर्योदय होने पर स्नानकरे और पतिके मुखको देखकर शुद्ध होतीहै ॥ ६३ ॥

कृतशौचापुनःकर्मपूर्ववच्चसमाचरेत् ।
द्विजस्त्रीणामयं धर्मः प्रायोऽन्यासामपीष्यते

भाषार्थ—इसप्रकार शुद्ध होकर स्त्री पूर्ववत् कर्म आचरे यह धर्म द्विजाति स्त्रियोंकाहै और प्रायः अन्योकाभीहै ॥ ६४ ॥

कृषिपण्यादि कृत्येषु भवेयुस्ताः प्रसाधिकाः
संगीतैर्मधुराऽऽलपैः स्वायत्तस्तुपतिर्यथा ॥

भाषार्थ—और वे जाति खेती व्यापारके कृत्योंमें चतुर होतीहै—उत्तम गाना—मीठा वचन—इनसे जिस प्रकार अपना पति अपने आधीन रहै ॥ ६५ ॥

भवेत्तथाऽऽचरेयुर्वैमायाभिः कार्यकलिभिः ।
नास्तिभर्तृसमोनाथोनास्तिभर्तृसमं सुखं ॥

भाषार्थ—तिसप्रकार ही माया और कार्य की केलीसे स्त्री आचरण करे क्योंकि पतिके समान नाथ नहीं और पतिके समान सुख नहीं ॥ ६६ ॥

विसृज्य धनसर्वस्वभर्तावैश्रणंस्त्रियः ।
मितंददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ६७

भाषार्थ—संपूर्ण धन और सर्वस्वको छोड़कर स्त्रीका शरण भर्ता ही है—पिता—भाई पुत्र—ये सब मित (थोडासा) ही देते हैं ॥ ६७ ॥

अमितस्यप्रदातारंभर्तारंकानपूजयेत् ।
शूद्रैर्वर्णचतुर्योऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—अमित (अनतुले) के देनेवाले
भर्ताको कोन स्त्री न पूजेगी—चौथावर्ण
शूद्रभी वर्ण होनेसे धर्मके योग्य है ॥ ६८ ॥
वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ।
पुराणाद्युक्तमंत्रैश्चनमोतैःकर्मकेवलं ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—वेदकेमंत्र—स्वधा—स्वाहा—वषट्-
कार आदिके विना केवल पुराण आदिके नमो
त मंत्रोंसेही शूद्रका कर्म होता है ॥ ६९ ॥
विप्रवद्विप्रवित्रासुक्षत्रवित्रासुक्षत्रवत् ।
प्रजाताःकर्मकुर्युर्वैश्यवित्रासुवैश्यवत् ७०

भाषार्थ—ब्राह्मणने विवाहीमें पैदा हुये ब्राह्म-
णके समान—और क्षत्रियने विवाहीमें पैदा हुये
क्षत्रियके समान—और वैश्यने विवाहीमें पै-
दाहुये वैश्यकेही समान कर्मोंको करै अर्थात्
जिस वर्णकी स्त्री हो उस वर्णके कर्म न
करै ॥ ७० ॥

वैश्यासुक्षत्रविप्रभ्यांजातःशूद्रासुशूद्रवत् ।
अधमादुत्तमायांतुजातःशूद्राधमःस्मृतः ७१

भाषार्थ—क्षत्रिय और ब्राह्मणसे वैश्या वा
शूद्रा में पैदा हुये माताके समान कर्मोंको
करै और अधम वर्णसे उत्तमवर्णकी स्त्रीमें
पैदा हुआ तो शूद्रसेभी अधम कहाहै ॥ ७१ ॥

सशूद्रादनुसत्कुर्यान्नाममंत्रेणसर्वदा ।
ससंकरचतुर्वर्णाएकत्रैकत्रयावनाः ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—वह शूद्रके अनुसारही नाममंत्रसे
कर्मको सदैव करै—संकरजातियों सहित
चारों वर्ण एक २ जगह यवन होते हैं ॥ ७२ ॥
वेदभिन्नप्रमाणास्तेप्रत्यगुत्तरवासिनः ।
तदाचार्यैश्चतच्छास्त्रनिर्मितंतद्धितार्थकं ७३

भाषार्थ—उनके मतमें वेदप्रमाण नहीं है
और पश्चिम और उत्तरमें वसते हैं—उनकेही
आचार्योंने उनके हितके लिये उनका शास्त्र
रचाहै ॥ ७३ ॥

व्यवहाराययानीतिरुभयोरविवादिनी ।
कदाचिद्वीजमाहात्म्यक्षेत्रमाहात्म्यतःक-
चित् ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जो नीतिव्यवहारके लिये विवाद
वाली नहो वह नीतिहै कदाचित् वीजके मा-
हात्म्यसे और कदाचित् क्षेत्र (स्त्री) के मा-
हात्म्यसे ॥ ७४ ॥

नीचोत्तमत्वंभवतिश्रेष्ठत्वक्षेत्रवीजतः ।
विश्वामित्रश्वबासिष्ठोमातंगोनारदादयः ७५

भाषार्थ—नीचता और उत्तमता होती है—
क्षेत्र वा वीजसे श्रेष्ठता होतीहै जैसे विश्वा-
मित्र वसिष्ठ मातंग और नारद आदि ॥ ७५ ॥
स्वस्वजात्युक्तधर्मोयःपूर्वराचरितःसदा ।
तमाचरेच्चसाजातिर्देव्यास्यादन्यथानृपैः ७६

भाषार्थ—अपनीर जातिके लिये कहाहुआ
जोर धर्म बढोंन सदासे कियाहो वह जाति
उसको ही करै अन्यथा करै तो राजानें
दंड देने योग्य है ॥ ७६ ॥

जातिवर्णाश्रमान्सर्वानृप्यक्विचक्षैःसुलक्षयेत्
यंत्राणिधातुकाराणांसंरक्षेन्नशिसर्वदा ७७

भाषार्थ—जाति वर्ण आश्रम इन सबको
पृथक् चिन्होंसे भलीप्रकार चिन्हवाले करै
और धातु बनानेवालोंके यंत्रोंकी रात्रिमें
सदैव रक्षा करै ॥ ७७ ॥

कारुशिल्पिगणान्प्रेरक्षेत्कार्यानुमानतः ।
अधिकान्कृषिकृत्सेवाभृत्यवर्गेनियोजयेत्

भाषार्थ—कारीगर और शिल्पी इनके समूह
की देशमें कार्यके अनुमानसे रक्षा करै—यादि

अधिक होंजाय तो खेती सेवा भृत्योंमें नियुक्त करदे ॥ ७८ ॥

चौराणांपितृभूतास्तेस्वर्णकारादयस्त्वतः ।
गंजागृहपृथग्ग्रामात्तस्मिन्क्षेत्रेचमुद्यमान् ॥

भाषार्थ—क्यों कि सुनार आदि वे सब चौरोंके पितारूप होते हैं—और मदिरा बनाने के या पीनेके घरको गांवसे पृथक् करै और मदिरापानेवालोंकी उसमें रक्षा करै ॥ ७९ ॥

नदिवामद्यपानं हिराष्ट्रेकुर्याद्विकर्हिचित् ।
ग्रामेग्राम्यान्वेनवन्यान्वृक्षान्संरोपयेन्नृपः ॥

भाषार्थ—और अपने राज्यमें मदिराका पान दिनमें कभी न करावे—और गांवमें गांवके वृक्षोंको और वनमें वनके वृक्षोंको राजा लगवावे ॥ ८० ॥

उत्तमान्विंशतिकैर्मध्यमांस्तिथिहस्ततः ।
सामान्यान्दशहस्तैश्चकनिष्ठान्पंचभिःकरैः ॥

भाषार्थ—बहुत बड़े उत्तम २ वृक्षों वीसहाथके मध्यम वृक्षोंको पंद्रह हाथके सामान्य वृक्षोंको दश हाथके और छोटे २ वृक्षोंको पांच हाथके अंतर पर लगवावे ॥ ८१ ॥

अजाविगोशक्रुद्धिर्वाजलैर्मसैश्चपोषयेत्
उदुंबराश्वत्थवटचिंचाचंदनजंभलाः ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—और उनको बकरी भेड़ गौके गोबरसे और जल और मांससे पुष्ट करावे गूलर—पीपल—वड—इमली—चंदन—जंभल और ॥ ८२ ॥

कदंवाशोकवकुलविल्वाम्रातकपित्तकाः ।
राजादनाम्रपुन्नागतुदकाष्टाम्रचंपकाः ८३ ॥

भाषार्थ—कदंब—अशोक—वकुल—बेल—आम्रातक—कैथ—राजादनाम्र—(मालदाआदि) पुन्नाग—तुदकाष्ट—आम्र—चंपा और ॥ ८३ ॥

नीपकोकाम्रसरलदाडिमाक्षोटभिःसटाः ॥
शिशिपाशिशुवदरनिवजंभीरक्षीरिकाः ८४ ॥

भाषार्थ—नीप—कोकाम्र—सरल—अनार—अखरोट—भिस्सट—शीसम—शिशु—वेरी—निवजंभीरी—क्षीरिक और ॥ ८४ ॥

खर्जूरदेवकरजफल्युतापिच्छसिंभलाः ।
कुद्दालोलवलीधानीकुमकोमातुलंगकः ८५ ॥

भाषार्थ—खर्जूर—देवकरज—फल्यु—तापिच्छ (तमाल) सिंभल—कुद्दाल—लवली—आवला—कुमक—मातुलंग (सुपारी) और ॥ ८५ ॥

लकुचोनारिकेलश्चरंभान्येसत्फलाद्गुमाः ।
सुपुष्पाश्चैवयेवृक्षाग्रामाभ्यर्णेनिषो जयेत् ॥

भाषार्थ—बहेडा—नारियल—रंभा (केला) ये सब और जो अच्छे फलवाले वृक्ष हैं अथवा अच्छे पुष्पवाले वृक्ष हैं इन सबको ग्रामके समीपमें लगवावे ॥ ८६ ॥

येचकंटकिनोवृक्षाः खदिराद्यास्तथापरे ।
आरण्यकास्तेविज्ञेयास्तेषांतत्रनियोजनं ८७ ॥

भाषार्थ—और जो कांटेवाले और खदिर (खैर) आदि अन्य जो वृक्ष हैं वे वनके समझने इससे उनको वनमें लगवावे ॥ ८७ ॥

खदिराश्मंतशाकाग्निमंथस्योनाकबच्चुलाः ।
तमालशालकुटजधवार्जुनपलाशकाः ८८ ॥

भाषार्थ—खैर—अश्मंतक—शाक—अग्निमंथ (अमलतास) स्योनाक—बच्चुल—तमाल—शाल—कुटज—धव—अर्जुन—ढाक—और ॥ ८८ ॥

सप्तपर्णशमीतूनदेवदारुविकंकताः ।

करमर्दंगुदीभूर्जविषमुष्टिकरीरकाः ८९ ॥

भाषार्थ—सप्तपर्ण—शमी—छोंकर—तून—देवदारु—विकंकत—करमर्द—इंगुदी—भोजपत्र—विषमुष्टि—करीर और ॥ ८९ ॥

शल्लकीकाश्मरीपाठातिदुकोवीजसारकः ।
हरितकीचभल्लातःशम्याकोर्कश्चपुष्करः१०

भाषार्थ—शल्लकी—काश्मरी —पाठा—तैदु-
विजयसार—हरडे—भिलावे—शम्याक आक—
पोहकर मूल और ॥ १० ॥

अरिमेदश्चपीतद्रुःशालमलिश्चविभीतकः ।
नरवेलोमहावृक्षोऽपरेयेयधुकादयः॥ ११ ॥

भाषार्थ—अरिमेद—पीतवृक्ष—शालमली—वि-
भीतक—नरवेल—महावृक्ष—और अन्य जो म-
धुक (महुआ) आदि हैं ॥ ११ ॥

प्रतानवंत्यःस्तंविन्योगुल्मिन्यश्चतथैवच ।
ग्राम्याग्रामेवनेवन्यानिज्यास्तेप्रयत्नतः

भाषार्थ—फलनेवाली—और गुच्छेवाली—
और गुल्मवाली जो लता हैं—इन सबको गा-
वके योग्य गांवोंमें और वनमें लगाने योग्य
वनमें प्रयत्नसे लगावे ॥ १२ ॥

कूपवापीपुष्करिण्यस्तडागाःसुगमास्तथा ।
कार्याः स्वातद्वित्रिगुणविस्तारपदधानिकाः

भाषार्थ—और कूप—बावडी—पुष्करिणी—त-
लाव—इनको सुगम कंर और खादनेसे दूनी
वा तिगुनी इनकी पदधानी (मणघाटआदि)
वनवावे ॥ १३ ॥

ययातथाह्यनेकाश्चराष्ट्रेभ्याद्विपुलंजलं ।
नदीनांसंतवःकार्याविवंधाः सुमनोहराः ॥

भाषार्थ—जैसे २ देशमें बहुत जलहो ऐसे
२ अनेक कूप आदि वनवे—और नदियोंके
पुल और बांध अच्छे मनोहर करावे ॥ १४ ॥

नौकादिजलयानानिपारगानिनदीपुच ।
यज्जातिपूज्यायेदेवस्तद्विधाय्याश्चयोगुरुः

भाषार्थ—और नदियोंमें पार जानेके लिये
नाव और जलके यान आदि करावे—जिस

जातिके पूजने योग्य जो देव हो और उस
जातिकी विद्याका जो गुरु हो ॥ १५ ॥

तदालयानितज्जातिगृहपंक्तिमुखेन्यसेत् ।
शृंगाटकग्राममध्येविष्णोर्वाशंकरस्यच १६

भाषार्थ—उनके स्थान उसी जातिके घरों-
की पंक्तिके सन्मुख वसावे—शृंगाटकमें और
गांवके मध्यमें विष्णु वा शिवका वा ॥ १६ ॥

गणेशस्यरवेदेव्याःप्राज्ञादाःक्रमतोऽन्यसेत् ।
मेर्वादिपोडशविधलक्षणान्सुमनोहरान् ॥

भाषार्थ—गणेश—सूर्य—देवी—इनके मंदिर
क्रमसे वनवावे—मेरु आदि सोलह प्रकारके
और बड़े मनोहर—और ॥ १७ ॥

वर्तुलांश्चतुरस्रान्वायंत्राकारान्समंडपान् ।
प्राकारगोपुरगणयुतांश्चित्रिगुणोच्छ्रितान् ॥

भाषार्थ—गोल—चतुष्कोण—मंडपसहित—
यंत्रोंके आकार—और परकोटा—गोपुष्के समू-
होंसे युक्त—दूने वा तिगुने ऊंचे वनवावे १८ ॥

यथोक्तांतःसुप्रतिमाजलमूलान्विचित्रि-
तान् ।

रम्यःसहस्रशिखरःतपादशतभूमिकः॥ १९

भाषार्थ—और जिनके भीतर शास्त्रोक्त
प्रतिमा हो ऐसे विचित्र जलके मूल (बड़े २
तलाव) जो रमणीक हो—सहस्र जिसकी
शिखर हों—सवासौ हाथ जिसकी भूमिहो १९
सहस्रहस्तानिस्तारोच्छ्रायःस्यान्मेरुसंज्ञकः
ततस्ततोष्टांशहीनाअपरमंदरादयः १०० ॥

भाषार्थ—सहस्र हाथका जिसका विस्तार
और उंचाई हो—उसका मेरु नाम है—उससे
आठ २ अंशसे जो कम हों वे क्रमसे मंदर
आदि होते हैं ॥ १०० ॥

मंदरऋक्षमालीचक्षुमणिश्चंद्रशेखरः ।
माल्यवान्वापारियात्रोरत्नशीर्षोहिधातुमान्

भाषार्थ—मंदर—ऋक्षमाली—क्षुमणि—चंद्र-
शेखर—माल्यवान्—पारियात्र—रत्नशीर्ष—धातु-
मान् ॥ १०१ ॥

पद्मकोशःपुष्पहासःश्रीकरःस्वस्तिकाभिधः
महापद्मःपद्मकूटःषोडशोविजयाभिधः २॥

भाषार्थ—पद्मकोश—पुष्पहास—श्रीकर—स्व-
स्तिक—महापद्म—पद्मकूट—विजय ये सोलह
मेरु आदि लक्षण होते हैं ॥ १०२ ॥

तन्मंडपश्चतुल्यःपादन्यूनोच्छ्रितःपुरः ।
स्वाराध्यदेवताध्यानैःप्रतिमास्तेषुयोजयेत्

भाषार्थ—इनका मंडपभी इनकेही तुल्य
होता है—इनसे चौथाई कम जिसकी ऊंचाई
हो वह पुर होता है—और अपनी २ आरा-
धनाके योग्य देवताओंके ध्यानसे इनमें
प्रतिमा नियत करै ॥ ३ ॥

सात्विकीराजसीदेवप्रतिमातामसीत्रिधा ।
विष्ण्वादीनांचयायत्रयोग्यापूज्यातुतादृशी

भाषार्थ—सात्विकी—राजसी—तामसी यह
तीन प्रकारकी विष्णु आदिकी प्रतिमा होती
है जो जहां योग्य हो उसकोही वहां पूजे ॥४॥

योगमुद्रान्वितास्वस्थावराभयकरान्विता ।
देवेंद्रादिस्तुतनुतासात्विकीसाप्रकीर्तिता५॥

भाषार्थ—जिस प्रतिमामें योगमुद्रा हों जो
स्वस्थ हो—और जिसके सुंदर और भयरहित
कर हों और जिसकी देव और इंद्र आदि
स्तुति करै वह प्रतिमा सात्विकी कही है ५॥

तिष्ठतीवाहनस्थावानानाभरणभूषिता ।
याशस्त्राभयवरकरासाराजसीस्मृता ॥६॥

भाषार्थ—जो प्रतिमा खड़ी हो वा वाहन
परस्थित हो—नाना भूषणोंसे भूषित हो और
शस्त्र अस्त्र अभय वर दायक जिसके कर
हो वह राजसी कही है ॥ ६ ॥

शस्त्रास्त्रैर्देत्यहंत्रीयाहुप्ररूपधरासदा ।
युद्धाभिर्नादिनीसातुतामसीप्रतिमोच्यते७॥

भाषार्थ—जो शस्त्र अस्त्रोंसे दैत्योंको हतने
वाली और सदैव उग्ररूप धारे हो—और
युद्ध जिसको प्रिय हो वह प्रतिमा तामसी
कही है ॥ ७ ॥

संक्षेपतस्तुध्यानादिविष्ण्वादीनांतथोच्यते
प्रमाणंप्रतिमानांचतदंगानांसुविस्तरं ॥८॥

भाषार्थ—अब संक्षेपसे विष्णु आदिकोंका
यथार्थ ध्यान और प्रतिमा और उनके अंगों
का विस्तारसे प्रमाण वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

स्वस्वमुष्ट्रेश्चतुर्थोशोहंगुलंपरिकीर्तितं ।
तदंगुलैर्द्वादशभिर्भवेत्तालस्यदीर्घता ॥९॥

भाषार्थ—अपनी २ मुष्टिके चौथे भागको
अंगुल कहते हैं—और बारह अंगुलकी एक
ताल दीर्घता (विलस्त) होती है ॥ ९ ॥

वामनीसप्ततालास्यादष्टतालातुमानुषी ।
नवतालास्मृतादैवीराक्षसीदशतालिका १०

भाषार्थ—वामन साततालकी—और मानुषी
आठ तालकी—नौ तालकी दैवी—और दश
तालकी राक्षसी—प्रतिमा कही है ॥ ११० ॥

सप्ततालाहुच्चतावामूर्तीनांदेशभेदतः ।
सदैवस्त्रीःसप्ततालासप्ततालश्चवामनः ११

भाषार्थ—अथवा देशके भेदसे मूर्तियोंकी
ऊंचाई साततालकी होती है—और स्त्री और
वामन सदैव सात तालके होते हैं ॥ ११ ॥

नरोनारायणोरामो नृसिंहो दशतालकः ।
दशतालकृतयुगे त्रेतायां नवतालिका ॥ १२

भाषार्थ—नर—नारायण—राम—नृसिंह—ये
सब दश तालके होते हैं—परन्तु सत्ययुगके
दश तालके—त्रेतामें नौ तालके और ॥ १२ ॥

अष्टतालाद्वापरे तु सप्ततालाकलौ स्मृता ।
नवतालप्रमाणे तु मुखं तालमितं स्मृतं ॥ १३

भाषार्थ—द्वापरमें आठ तालके कलियुगमें
सात तालके कहे हैं नौ तालकी मूर्तिके
प्रमाणमें एक तालका मुख कहा है ॥ १३ ॥

चतुरंगुलं ललाटस्यादधो नासात् थैव च ।
नासिकाधश्च हन्तं चतुरंगुलमीरितं ॥ १४ ॥

भाषार्थ—और चार अंगुलका मस्तक
और नाकका अधोभाग कहा है—नासिकासे
नीचे हनु (ठोड़ी) तक चार अंगुलका
कहा है ॥ १४ ॥

चतुरंगुलाभवेद्ग्रीवा तालेन हृदयं पुनः ।
नाभिस्तस्मादधः कार्या तालेनैकेन शोभिता

भाषार्थ—चार अंगुलकी ग्रीवा और एक
तालका हृदय कहा है—और हृदयके नीचे
एक तालकी शोभायमान नाभि करनी ॥ १५ ॥

नाभ्यधश्च भवेन्मेढ्रं भागेनैकेन वा पुनः ।
द्वितालौ ह्यायता वृक्षजानुनी चतुरंगुले ॥ १६ ॥

भाषार्थ—नाभिके नीचे एक भागसे लिंग
इंद्रिय और दो ताल लंबे ऊरू और चार
अंगुलके जानु बनवावे ॥ १६ ॥

जंघे ऊरुसमे कार्ये गुल्फाधश्चतुरंगुलं ।
नवतालात्मकमिदमूर्ध्वमानं बुधैः स्मृतं ॥ १७

भाषार्थ—नीचे की जंघा (पींडि) ऊरूके
समान करने—गुल्फके नीचे का भाग चार

अंगुलका करना—नौ ताल ऊंची मूर्तिके
प्रमाण पंडितोंने यह कहा है ॥ १७ ॥

शिखाविधितु केशांतं यंगुलं सर्वमानतः ।
दिशानयाच विभजेत्सप्ताष्टदशतालिकं ॥ १८

भाषार्थ—केशोंसे शिखा पर्यंत संपूर्ण भाग
तीन अंगुलके मानसे करना—इसी रीतिसे
सात आठ दश तालकी मूर्तिमें भी अंगोंके
मान समझने ॥ १८ ॥

चतुस्तालात्मकौ बाहुं ह्यंगुल्यं तावुदाहृतौ ।
स्कंधादिकूर्परान्तं च विंशत्यंगुलमुत्तमं ॥ १९ ॥

भाषार्थ—अंगुली पर्यंत चार तालकी भुजा
कही है और स्कंधसे कूर्पर (ताल) पर्यंत
बीस अंगुलका प्रमाण उत्तम कहा है ॥ १९ ॥

त्रयोदशांगुलं चाधः कक्षायाः कूर्परान्तकं ।
अष्टाविंशत्यंगुलस्तु मध्यमांताः करः स्मृतः ॥

भाषार्थ—कुक्षिके नीचेसे कूर्परपर्यंत त्रयो
अंगुलका और मध्यमा अंगुलीके अंततक
अठारह अंगुलका कर कहा है ॥ २० ॥

सप्तांगुलं करतलं मध्यापंचांगुलामता ।
सार्धत्रयांगुलं गुष्ठस्तर्जनीमूलपूर्वभाक् ॥ २१

भाषार्थ—सात अंगुलका हाथका तल और
पांच अंगुलका मध्यम कहा है—साढ़ेतीन
अंगुलका अँगूठा तर्जनीके मूलके पूर्वभागसे
होता है ॥ २१ ॥

पर्वद्वयात्मको न्यासां पर्वणि त्रीणि त्रीणि तु ।
अर्धांगुलेनांगुलेन हीनानामाचतर्जनी ॥ २२ ॥

भाषार्थ—अँगूठके दो पर्व होते हैं अन्य अं-
गुलियोंके तीन २ पर्व होते हैं अनामिका
और तर्जनी आधा अंगुल और अंगुल कम
होती है ॥ २२ ॥

कनिष्ठिकानामिका तौ गुलेना च प्रकीर्तिता ।
चतुर्दशांगुलौ पादौ ह्यंगुष्ठो द्वयंगुलो मतः ॥ २३

भाषार्थ—कनिष्ठिका अनामिकासे एक अंगुल कम होती है चौदह अंगुलका पाद और दो अंगुलका अँगूठा होता है ॥ २३ ॥

प्रदेशिनीद्व्यंगुलातुसार्धांगुलमथेताराः ।
शिरोज्जितौपाणिपादौगूढगुल्फौप्रकीर्तितौ

भाषार्थ—प्रदेशिनी (अंगूठेके पासकी अंगुली) दो अंगुलकी अन्य अंगुलियां डेढ़ अंगुलकी होती हैं—शिरके बिना हाथ और पैर ऐसे अच्छे होते हैं जिनके गुल्फ छिपे हुये हों ॥ २४ ॥

तद्विज्ञेःप्रस्तुतायेयेमूर्तैरवयवाःसदा ।
नहीनानाधिकामानात्तेतेज्ञेयाःसुशोभनाः ॥

भाषार्थ—जो २ शरीरके अवयवहैं वे २ विद्वानोंकी प्रशंसा योग्य और शोभित तभी होते हैं जब मानसे न्यून न हों न जादै ॥ २५ ॥

नस्थूलानकृशावापिसर्वैसर्वमनोरमाः ।
सर्वांगैःसर्वरम्योद्दिहिकश्चिच्छ्लक्षेप्रजायते ॥ २६

भाषार्थ—जो न अधिक स्थूल हो न कृश हो और सबप्रकारसे उत्तमहों और ऐसा लक्ष्योंमे कोईही होता है जो सबप्रकारसे संपूर्ण अंगोंमें रमणीक हो ॥ २६ ॥

शास्त्रमानेनयोरम्यःसरम्योनान्यएवहि ।
शास्त्रामानविहीनंयदरम्यंतद्विपश्चितां ॥ २७

भाषार्थ—शास्त्रके मानसे जो रमणीकहो अर्थात् जिसके अंगोंका प्रमाण शास्त्रोक्त हो और अन्य नहीं जो शास्त्रोक्त मानसे हीन है वह विद्वानोंकी अपेक्षा रमणीक नहीं ॥ २७ ॥

एकेषामेवतद्रम्यलग्रंयत्रचयस्यहत् ।
अष्टांगुलंलटाटस्यात्तावन्मात्रौभ्रुवौमतौ ॥

भाषार्थ—जिसमनुष्यमें जिसका हृदां लग्न (आसक्त) हो जाइ यह बात किसीकोही

प्रतीत होती है—आठ २ अंगुलको मस्तक और दोनों भ्रुकुटी होती हैं ॥ २८ ॥

अर्धांगुलाभ्रुवोलेखामध्येधनुरिवायता ।
नेत्रेचयंगुलायामद्व्यंगुलेविस्तृतेशुभे २९ ॥

भाषार्थ—ऐसी हो जिसका और भ्रुकुटी की लेखाके मध्यमें धनुषके समान विस्तार हो और आधा अंगुल चौड़ी हो तीन अंगुल लंबे और दो अंगुल चौड़े शुभ होते हैं ॥ २९ ॥
तारकातटतीयांशानेत्रयोःकृष्णरूपिणी ।
द्व्यंगुलंतुभ्रुवोर्मध्यंनसासामूलमथांगुलं ॥ ३०

भाषार्थ—नेत्रोंके तारे कृष्ण और नेत्रोंकेसरे हिस्सेके होते हैं भ्रुकुटियोंका मध्य दो अंगुल और नासिकाका मूल १ एक अंगुलका होता है ॥ ३० ॥

नासाग्रविस्तरंतद्व्यंगुलंतद्विलद्वयं ।
शुक्रमुखाकृतिर्नासासरलावद्विधाशुभा ॥

भाषार्थ—नासिकाके अग्रभागका विस्तार और दोनों विल दो अंगुलके होते हैं तोतिके मुखके समान जिसका आकार अथवा सीधी जो हो वह दो प्रकारकी नासिका शुभ होती है ॥ ३१ ॥

निष्पावसदृशंनसापुटयुग्मंसुशोभनं ।
कर्णौचभ्रूसमौज्ञेयौदीर्घौतुचतुरंगुलौ ॥ ३२

भाषार्थ—निष्पावके तुल्य जो हा ऐसे नासिकाके दोनों पुट श्रेष्ठ कहे हैं और भ्रुकुटियोंके समान और दीर्घ (लंबे) चार अंगुल कान उत्तम होते हैं ॥ ३२ ॥

कर्णपालीद्व्यंगुलास्यात्स्थूलाचार्धांगुलामता
नासावंशोर्धांगुलस्तुश्लक्ष्णाग्रःकिंचिदुन्नतः

भाषार्थ—कानोंकी पाली (पिछली) त्वचा दो अंगुल लंबी और आधा अंगुल मोटी कही है और नाकका वांस आधाअंगुल मोटा

और आगेसे चिकना और कुछ ऊंच हो तो अच्छा है ॥ ३३ ॥

ग्रीवामूलान्त्रस्कंधांतमष्टांगुलमुदाहृतं ।

बान्धंतरद्वितालस्यात्तालमात्रंस्तनांतरं ३४

भाषार्थ—ग्रीवाके मूलसे स्कंधतक जो भाग है वह आठ अंगुल होना चाहिये दोनों भुजाओंका अंतर (बीच) दो ताल और स्तनोंका अंतर एक ताल होता है ॥ ३४ ॥

पोडशांगुलमात्रंतु कर्णयोरंतरं स्मृतं ।

कर्णहन्वयांतरंतु सदैवाष्टांगुलमंतं ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—दोनों कानोंका अंतर सोलह अंगुलका कहा है और कान और हनु (ठोड़ी) इनका अंतर सदैव आठ अंगुलका कहा है ॥ ३५ ॥

नासाकर्णांतरं तद्वत्तदर्थकण्ठनेत्रयोः ।

मुखं तालीतृतीयांशमोष्ठावर्धांगुलौ मतौ ३६

भाषार्थ—इसी प्रकार आठ अंगुलका अंतर नाक और कानोंका होता है और इससे आधा अंतर कान और नेत्रोंका होता है तालका तीसरा भाग मुखका होता है और आधा अंगुलके ओष्ठ होते हैं ॥ ३६ ॥

द्वात्रिंशदंगुलः प्रोक्तः परिधिर्मस्तकस्य च ।

दशांगुलाविस्तृतिस्तु द्वादशांगुलदीर्घता ॥

भाषार्थ—मस्तक (शिर) की परिधि बत्तीस अंगुलकी कही है और दश अंगुलका विस्तार और बारह अंगुलकी लंबाई कही है ॥ ३७ ॥

ग्रीवामूलस्य परिधिर्द्वाविंशत्यंगुलात्मकः ।

हन्मूलपरिधिर्ज्ञेयश्चतुःपंचाशदंगुलः ३८ ॥

भाषार्थ—ग्रीवाके मूलकी परिधि बाईस अंगुलकी कही है हृदयके मूलकी परिधि (फेर) चम्पन ५४ अंगुल कही है ॥ ३८ ॥

हीनांगुलचतुस्तालपरिधिर्हृदयस्य च ।

आस्तनात्पृष्ठदेशात्तापृथुताद्वादशांगुला ॥

भाषार्थ—और चार अंगुल कम एकताल परिधि हृदयकी होती है और स्तनोंसे लेकर पृष्ठ देशतक बारह अंगुलकी मोटाई होती है ॥ ३९ ॥

सार्धत्रितालपरिधिः कव्याश्चष्टांगुलाधिकः ।

चतुरंगुलवत्सेधोविस्तारः स्यात्षडंगुलः ४०

भाषार्थ—दो अंगुल ऊपर साढ़ेतीन ताल परिधि कटी (कमर) की होती है और चार अंगुल बँचाई और छः अंगुलका विस्तार होता है ॥ ४० ॥

पश्चाद्गोनेतित्वस्य स्त्रीणामंगुलतोधिकः ।

बान्धग्रमूलपरिधिः पोडशाष्टादशांगुलः ४१

भाषार्थ—और स्त्रियोंके पश्चात्भाग (नितंब) के एक अंगुल अधिक होते हैं और भुजाओंके अग्र भागकी परिधि सोलह अंगुल और मूल भागकी अठारह अंगुल होती है ॥ ४१ ॥

हस्तमूलाग्रपरिधिश्चतुर्दशदशांगुलः ।

पंचांगुलापादकरतलयोर्विस्तृतिः स्मृता ४२

भाषार्थ—और हाथके मूलकी परिधि चौदह अंगुल और अग्रभागकी परिधि दश अंगुल होती है और हाथ और पादोंके तलका विस्तार पांच अंगुलका होता है ॥ ४२ ॥

ऊरुमूलस्य परिधिर्द्वात्रिंशदंगुलात्मकः ।

ऊनर्विशत्यंगुलः स्यादूर्ध्वग्रपरिधिः स्मृता ४३

भाषार्थ—ऊरु (एन) के मूलकी परिधि बत्तीस अंगुलकी होती है और अग्रभागकी परिधि उन्नीस अंगुलकी होती है ॥ ४३ ॥

जंघामूलग्रपरिधिःषोडशद्वादशांगुलः ।

मध्यमामूलपरिधिविज्ञेयश्चतुरंगुलः ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—जंघाके मूलकी परिधि सोलह अंगुल और अग्रभागकी परिधि बारह अंगुल कही है और मध्यमाके मूलकी परिधि चार अंगुलकी होती है ॥ ४४ ॥

तर्जन्यनामिकामूलपरिधिःसार्धत्र्यंगुलः ।

कनिष्ठिकायाःपरिधिमूलैत्र्यंगुलएवाहि ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—तर्जनी और अनामिकाके मूलकी परिधि सद्वितीन अंगुल होती है और कनिष्ठिकाके मूलकी परिधि तीन अंगुल होती है ॥

स्वमूलपरिधेःपादहीनोग्रेपरिधिःस्मृतः ।

हस्तपादांगुष्ठयोश्चचतुःपंचांगुलंक्रमात् ॥

भाषार्थ—और अपने मूलकी परिधिसे चौथाई कम अग्रभागकी परिधि होती है हाथ और पैरके अंगुठोंकी परिधि क्रमसे चार पांच अंगुलकी होती है ॥ ४६ ॥

पादांगुलीनांपरिधिस्थंगुलःसमुदाहृतः ।

मंडलंस्तनयोन्याभेःसार्धांगुलमयांगुलं ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—पैरकी अंगुलियोंकी परिधि तीन अंगुल होती है स्तनोंका मंडल डेढ़ अंगुल और नाभिका मंडल एक अंगुल होता है ४७

सर्वांगानांययाशोभिपाटवंपरिकल्पयेत्
नोर्ध्वदृष्टिमधोदृष्टिमीलितार्क्षीप्रकल्पयेत् ॥

भाषार्थ—संपूर्ण अंगोंका पाटव (उत्तमता) शोभाके अनुसार बनावें—और ऊपर और नचिको जिसकी दृष्टि हो और जिसके नेत्र मिचे हो ऐसी प्रतिमा न बनावें ॥ ४८ ॥

नोग्रदीष्टुप्रतिमांप्रसन्नार्क्षीविचिंतयेत् ।

प्रतिमायास्तृतीयांशमर्धांशंतत्सुपीठकं ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—जिसकी दृष्टि उग्रहो ऐसीभी न बनावें—और जिसके नेत्र प्रसन्नहों ऐसी बनावें—और प्रतिमाके प्रमाणसे साद्वितीन अंश कम पीठ (आसन) बनावें ॥ ४९ ॥

द्विगुणांत्रिगुणंद्वारंप्रतिमायाश्चतुर्गुणं ।

एकद्वित्रिचतुर्हस्तंपीठंदेवालयस्यच ॥ ५० ॥

भाषार्थ—प्रतिमासे दूना व त्रिगुना वा चौगुना मंदिरका द्वार बनावें—एक दो तीन वा चार हात देवायतनका पीठ बनावें ॥ ५० ॥

पीठतस्तुसमुच्छ्रायोभिस्तेर्दशकरात्मकः ।

द्वारात्तुद्विगुणोच्छ्रायःप्रासादस्योर्ध्वभूमिभाक् ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—और पीठसे दशहाथ ऊंची भीत बनावें—और द्वारसे द्विगुण ऊंचा मंदिरका ऊपरका भाग बनावें ॥ ५१ ॥

शिखरंचोच्छ्रायसमंद्विगुणांत्रिगुणंतुवा ।

एकभूमिसमारभ्यसपादशतभूमिकं ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—ऊंचाईके समान द्विगुना वा त्रिगुना शिखर बनावें और एक भूमि (मंजिल) से लेकर सचासे भूमितक ॥ ५२ ॥

प्रासादंकारयेच्छत्प्राहाष्टपञ्चसन्निभं ।

चतुर्दिग्मंडपंवापिचतुःशालंसमततः ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—शक्तिके अनुसार अष्टपद्मके समान मंदिरको बनावें और चारों दिशाओंमें मंडप और घर्मशाला बनावें ॥ ५३ ॥

सहस्रस्तंभसंयुक्तश्चोत्तमोन्यःसमोद्यमः ।

प्रासादंमंडपेवापिशिखरंयदिकल्प्यते ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—जिसमें सहस्र स्तंभ हो ऐसा मंदिर उत्तम और अन्य मध्यम और अधम होते हैं यदि प्रासाद वा मंडपमें शिखर बनाया जाय तो ॥ ५४ ॥

स्तंभास्तत्रनकर्तव्याभित्तिस्तत्रसुखप्रदा ।
प्रासादमध्यविस्तारःप्रतिमायाःसमन्ततः ॥

भाषार्थ—वहां स्तंभ न बनावै भीतिही वहाँ
सुखदायक होती है और मंदिरके मध्यका
विस्तार प्रतिमाके चारों तरफ ॥ ५५ ॥

षड्गुणोष्टगुणोवापिपुरतोवासुविस्तरः ।
वाहनंमूर्तिसदृशंसार्ववाद्दिगुणंस्मृतं ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—छद्गुणा वा आठगुणा अथवा
प्रतिमाके आगे विस्तारपूर्वक बनाना चा-
हिये और मूर्तिके तुल्य-डेढ गुणवा दूना वा-
हन कहा है ॥ ५६ ॥

यत्रनोक्तदेवतायारूपंतत्रचतुर्भुजं ।
अभयंचवरंदद्याद्यत्रनोक्तयदायुधं ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—जहां देवताका रूप न कहाहो वहां
चतुर्भुजी रूप और जहां आयुध न कहाहो
वहां अभय और वर आयुध बनावै ॥ ५७ ॥
अधःकरेत्तूर्ध्वकरेशंखंचक्रंतथांकुशं ।
पाशंवाडमरुंशूलंकमलंकलशंशंखं ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—हाथके नीचे और ऊपर शंख-
चक्र-अंकुश-पाश-डमरू-शूल-कमल-
माला ॥ ५८ ॥

लङ्घुकंमातुलुंगंवावीणांमालांचपुस्तकं ।
मुखानांयत्रवाहुल्यंतत्रपङ्क्त्यानिवेशनं ॥

भाषार्थ—लङ्घू-मातुलिंग-वीणा-माला-और
पुस्तक बनावै और जहां मुख बहुतहों वहां
पंक्तिसे मुख बनावै ॥ ५९ ॥

तत्पृथग्ग्रीवमुकुटंमुखंस्वक्षिकर्णयुक् ।
भुजानांयत्रवाहुल्यंतत्रस्कंधभेदनं ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—और उन मुखोंकी-ग्रीवा-और
मुकुट पृथक्-२ हों और जिसमें नेत्र मुख

कान ये अच्छे हो वही अच्छा होताहै और
जिसकी भुजा बहुत हों वहां स्कंध भेद
न करे ॥ ६० ॥

कूर्परोर्ध्वतुसूक्ष्माणिचिपिटानिदृढानिच ।
भुजमूलानिकार्याणिपक्षमूलानिवैयथा ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—कूर्पर (कुक्षि) के ऊपर सूक्ष्म-
चिकने दृढ-भुजाओंके मूल इस प्रकारके
बनावे जैसे पंखोंके मूल होते हैं ॥ ६१ ॥

ब्रह्मणस्तुचतुर्दिक्षुमुखानांधिनियोजनं ।
हयग्रीवोवराहश्चनृसिंहश्चगणेश्वरः ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—ब्रह्माके मुख चारों दिशाओंमें व-
नावे-हयग्रीव-वराह-नृसिंह-गणेशजी ॥ ६२ ॥
मुखैर्विनानराकारानृसिंहश्चनखैर्विना ।
तिष्ठंतींस्सुपविष्टांवास्वासनेवाहनस्थितां ६३

प्रतिमामिष्टदेवस्यकारयेदुक्तलक्षणां ।
हीनश्मश्रुनिमेषांचसदाषोडशवार्षिकीं ६४

भाषार्थ—इनका आकार मुखके विना म-
नुष्यके समान बनावै और नृसिंहकी मूर्ति
नखोंके विना मनुष्याकारकी बनावै और
सुंदर आसन और वाहनपै बैठी अथवा खड़ी
हुई इष्टदेवकी प्रतिमाको उक्त रीतिसे बन-
वावै-और जिसके श्मश्रु और निमेष नहो
और सदा सोलह वर्षकी प्रतीतिहो ऐसी
प्रतिमाको बनावै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

दिव्याभरणवस्त्रादयांदिव्यवर्णक्रियांसदा ।
हीनांग्योनाधिकांग्यश्चकर्तव्यादेवताःक-
चित् ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—जिसके भूषण-वस्त्र-वर्ण-क्रिया
सदैव दिव्य हो ऐसी बनावै और अंगहीन
और अधिकांगी देवप्रतिमा कदाचित् न
बनावै ॥ ६५ ॥

हीनांगीस्वामिनंहतिह्यधिकांगीचशिल्पिनं ।
कृशादुर्भिक्षदानित्वंस्थूलरोगप्रदासदा ॥

भाषार्थ—अंगहीन प्रतिमा स्वामीकी और अधिकांगी शिल्पी (वनानेवाल) की नष्ट करती है—और कृश प्रतिमा दुर्भिक्षको स्थूल रोगको सदैव देती है ॥ ६६ ॥

गूढसंध्यस्थिधमनीसर्वदासौख्यवर्धिनी ।
वराभयान्नशंखाव्यहस्ताविष्णोश्चसा-
त्विकी ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—जिस प्रतिमाकी संधि-अस्थि-नाडी ये छिपेहुए हो वह सर्वदा सुखकी वृद्धि करती है और जिसके हाथमें—वर-अभय-शंख हों ऐसी विष्णुकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥ ६७ ॥

मृगवाद्याभयवरहस्तासोमस्यसात्विकी ।
वराभयान्नलडूकहस्तेभास्यस्यसात्विकी

भाषार्थ—मृगवाद्य अभय वर जिसके हाथ में हों ऐसी शिवजीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है—और वर अभय कमल लडू जिसके हाथमें हों ऐसी गणेशजीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ॥ ६८ ॥

पद्ममालाभयवरकरासत्वाधिकारवेः ।

वीणाहंभाभयवरकरासत्त्वगुणाश्रियाः ६९

भाषार्थ—पद्म माला अभय वर जिसके हाथमें हों ऐसी सूर्यप्रतिमा सत्त्वगुणी होती है—वीणा हंभा अभय वर जिसके हाथमें हों ऐसी लक्ष्मीकी प्रतिमा सत्त्वगुणी होती है ६९।
शंखचक्रगदापद्मैरायुधैरादितःपृथक् ।

षट्षट्भेदाश्चमूर्तीनांविष्णवादीनांभवंतिहि

भाषार्थ—शंख चक्र गदा पद्म और आयुधोंसे विष्णुआदिकोंकी मूर्तियोंके पृथक्छः २ भेद होते हैं ॥ ७० ॥

ययोपाधिप्रभेदेनसंसंयोगविभागतः ।

समस्तव्यस्तवर्णादिभेदज्ञानंप्रजायते ७१ ॥

भाषार्थ—और यथोचित उपाधिके भेद और संयोग विभागसे समस्त और व्यस्त वर्ण आदि भेदका ज्ञान होता है ॥ ७१ ॥

लेख्यालेप्यासैकतीचमृन्मयीपैष्टिकीतया ।
एतासांलक्षणाभावेनकैश्चिदोषैरितः ७२

भाषार्थ—लिखी-लिपी-रैतेकी-और मिट्टी-की चूर्णकी प्रतिमाओंमें लक्षणोंके अभाव-मेंभी कोई दोष नहीं कहा है ॥ ७२ ॥

वाणलिंगेस्वयंभूतेचंद्रकांतसमुद्भवे ।

रत्नजेगंडिकोद्भूतेमानदोषोनसर्वथा ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—स्वयमेव पैदा हुये अथवा चंद्र-कांतमणिसे पैदा हुये वाणलिंगमें रत्नसे पैदा हुये अथवा गंडकीनदीसे पैदा हुयों में प्रमाणका दोष सर्वथा नहीं है ॥ ७३ ॥

पाषाणधातुजायांतुमानदोषान्विचिंतयेत् ।
श्वेतपीतारक्तकृष्णपाषाणैर्युगभेदतः ७४ ॥

भाषार्थ—पाषाण और धातुसे पैदाहुई प्रति-माओंमें प्रमाणके दोषोंकी चिंता करें और युगोंके भेदसे श्वेत पीत रक्त कृष्ण पाषाण-के भेदसे ॥ ७४ ॥

प्रतिमांकरूपयोच्छिल्पीयथारुच्यपरैःस्मृता ।
श्वेतास्मृतासात्विकीतुपीतारक्तातुराजसी ॥

भाषार्थ—प्रतिमाकी कल्पना शिल्पी करै अन्य पाषाणोंकी यथारुचि करनी कही है श्वेत प्रतिमा सत्त्वगुणी पीत और रक्त रजो गुणी होती हैं ॥ ७५ ॥

तामसीकृष्णवर्णांतुह्युक्तलक्ष्मयुतायादि ।

सौवर्णीराजतीताम्रीरैतिकीवांकृतादिषु ७६

भाषार्थ—कृष्णवर्ण प्रतिमा तमोगुणी होती है यदि उक्तलक्षणांसे युक्त हो अथवा सतयुग आदिमें सुवर्ण चांदी तांबा पोटल-की प्रतिमा कही है ॥ ७६ ॥

शांकरीश्वेतवर्णावाकृष्णवर्णातुवैष्णवी ।
सूर्यशक्तिगणेशानांताम्रवर्णास्मृतापि च ॥

भाषार्थ—शिवजीकी प्रतिमा श्वेतवर्ण-और विष्णुकी कृष्णवर्ण और सूर्य देवी गणेश इनकी तांबेके समान वर्ण प्रतिमा कही है ॥ ७७ ॥

लौहीससिमयीवापिययोदिष्टास्मृतावुधैः ।
चलार्चायांस्थिरार्चायांप्रासादाद्युक्तलक्षणां
प्रतिमांस्थापयेन्नान्यांसर्वसौख्यविनाशिनीं
सेव्यसेवकभावेपुप्रतिमालक्षणंस्मृतं ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—लोहे वा सीसेकी शास्त्रोक्तरी तिसे विद्वानोंने कही है—चलकी पूजा वा स्थिरकी पूजामें प्रासाद (मंदिर) आदिके उक्त लक्षणवाली प्रतिमाको स्थापन करे और सबसुखोंको नष्ट करनेवाली अन्य प्रतिमाको स्थापन न करे और सेव्यसेवक भावमें भी प्रतिमाका लक्षण कहा है ७८ ॥ ७९ ॥

प्रतिमायाश्रयेदोषाह्यर्चकस्यतपोबलात् ।
सर्वत्रेश्वरचित्तस्यनाशंयांतिक्षणात्किल ८०

भाषार्थ—जो प्रतिमाके दोष हैं वे ईश्वरमें हैं चित्त जिसका ऐसे पूजा करनेवालेके तपोबलसे क्षणमात्रमेंही निश्चयसे नष्ट होजाति है ॥ ८० ॥

देवतायाश्चपुरतोमंडपेवाहनंन्यसेत् ।

द्विबाहुर्गरुडः प्रोक्तः सुचंचुःस्वक्षिपक्षयुक्

भाषार्थ—देवताके आगे मंडपमें वाहनों-का न्यास (स्थापन) करे दो भुजावाला श्रेष्ठ चंचु नेत्र-पक्ष वाला गरुड कहा है ॥ ८१ ॥

नराकृतिश्चंचुमुखोमुकुटीकवचांगदी ।

वद्धांजलिर्नम्रशीर्षः सेव्यपादाब्जलोचनः

भाषार्थ—नरके समान आकार—चंचु जिसके मुखमेंहो—मुकुट कवच अंगद धारणाकियेहो—हाथ जोड़ेहो नम्रशिरहो सेव्य (देवता) के चरणकमलमें जिसके नेत्रहों ऐसा गरुड आदि वाहनहो ॥ ८२ ॥

वाहनत्वंगतायेयेदेवतानांचपक्षिणः ।

कामरूपधरास्तेतेतथासिंहवृषादयः ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—जो पक्षी देवताओंके वाहन हुये हैं वे सब कामरूपधारी अथवा सिंह वृष आदि ॥ ८३ ॥

स्वनामाकृतयश्चैतेकार्यादिव्यावुधैःसदा ।

सुभूषितादेवताग्रमंडपेध्यानतत्पराः ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—अपने नामकी आकृतिके दिव्य (सुंदर) आयुषों सहित सदैव करने और ऐसे बनाने जो भलीप्रकार भूषित और देवताके आगे मंडपमें ध्यानके विषय तत्पर हों ८४ ॥

मार्जारकृतिकःपीतःकृष्णचिन्होवृहद्रूपः ।

असदोव्याघ्रइत्युक्तःसिंहःसूक्ष्मकटिर्महान्

भाषार्थ—विलावके समान जिसका आकार पीला—कृष्णचिह्न—बड़ाशरीरहो और सट नहो वह व्याघ्र कहाहै और कटि पतली और रूप महान् हो वह सिंह कहाहै ॥ ८५ ॥

वृहद्भृगंडनेत्रस्तुभालरेषोमनोहरः ।

सटावान्धूसरोऽकृष्णलांछनश्चमहाबलः ॥

भाषार्थ—जिसकी भुजुटि—गंडस्थल—नेत्र बड़े हों—मस्तक पर रेखाहो—और जो मनोहर हो और जिसके ऊपर सटा हो—धूसर रंगहो और काला चिह्न नहो और महाबली हो ऐसा सिंह होता है ॥ ८६ ॥

भेदः सटाऽलांछनतोनकृत्याव्याघ्रसिंहयोः ।

गजाननं नराकारं ध्वस्तकर्णपृथुदरं ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—सटाचिह्नसे इतर व्याघ्र सिंहका कोई भेद नहीं है—गजाननकी मूर्ति नराकार की हो जिसके कान ध्वस्त हों और पेट बड़ा हो ॥ ८७ ॥

बृहत्संक्षिप्तगहनपीनस्कंधांघ्रिपाणिनं ।

बृहच्छृङ्खलं भग्नवामरदमिच्छितवाहनं ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—बड़े—संक्षिप्त—गहन—पुष्ट—हैं स्कंध—चरण—हाथ जिसके—और बड़ी शृङ्खल और दृढ वाम दांत—और यथेच्छ है वाहन जिसका—ऐसी ॥ ८८ ॥

ईषत्कुटिलदंडायवामशृङ्खलमदक्षिणं ।

संध्यास्थिधमनगूढकुर्पान्मानामितंसदा ८९

भाषार्थ—कुछेक कुटिल शृङ्खला अग्र हों—वामशुजा पर शृङ्खला दक्षिण पर नहीं और संधि अस्थि—धमनी (नाडी) ये सब जिसकी ढकी हों ऐसी गणेशकी मूर्ति सदैव प्रमाणसे बनावे ॥ ८९ ॥

सार्धश्चतुस्तालमितः शृङ्खलादंडः समस्ततः ।

दशांगुलं मस्तकं च भूगंडश्चतुरंगुलः ॥ ९० ॥

भाषार्थ—और संपूर्ण शृङ्खला दंड साठे चार तालकाहो और दश अंगुलका मस्तक और चार अंगुलका भ्रुकुटियोंका गंडस्थल हो ॥ ९० ॥

नासोत्तरोष्ठरूपाचशेषांशुंडासपुष्करा ।

दशांगुलं कर्णद्वैर्व्यतदष्टांगुलविस्तृतं ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—नासिका और ऊपरके ओष्ठ रूप जो शृङ्खला वह पुष्कर सहित हो—कानोंकी लंबाई दश अंगुल और चौड़ाई आठ अंगुल हो ॥ ९१ ॥

कर्णयोरंतरे व्यासोऽष्टांगुलस्तालसंमितः ।

मस्तकेऽस्यैव परिधिर्ज्ञेयः षट्त्रिंशदंगुलः ९२

भाषार्थ—कानोंके मध्यका व्यास दो अंगुल ऊपर एक ताल होता है और इसके मस्तक की परिधि छत्तीस अंगुल होती है ९२ ॥

नेत्रोपांतित्तरिधिः शीर्षतुल्यः स दामतः ।

सष्टांगुलद्वितालः स्यान्नेत्राधः परिधिः करे ९३

भाषार्थ—नेत्रोंके समीपकी परिधि शिरके तुल्य कही है और हाथीके नेत्रोंके नीचकी परिधि दो अंगुल और दो ताल होती है ॥ ९३ ॥

कराग्रे परिधिर्ज्ञेयः पुष्करे च दशांगुलः ।

त्र्यंगुलं कंठद्वैर्व्यतत्परिधिस्त्रिंशदंगुलः ॥ ९४

भाषार्थ—और हाथके और पुष्करके अग्र-भागकी परिधि दश अंगुल होती है और कंठकी लंबाई तीन अंगुल होती है और उस कंठ की परिधि तीस अंगुल होती है ॥ ९४ ॥

परिणाहस्तद्वरेचचतुस्तालात्मकः सदा ।

षडंगुलोऽनियोक्तव्योऽष्टांगुलो वापि शिल्पिभिः

भाषार्थ—और उदरका विस्तार सदैव चार तालका होता है परंतु शिल्पी उसमें छः अंगुल वा आठ अंगुल और मिला दें ॥ ९५ ॥

दंतः षडंगुलो दीर्घस्तन्मूलपरिधिस्तथा ।

षडंगुलश्चाधरोष्ठः पुष्करं कमलान्वितं ९६ ॥

भाषार्थ—छः अंगुलका मोटा दंत होता है और उसके मूलकी परिधि भी तैसी ही होती है और नीचेका ओष्ठ छः अंगुल हो और पुष्कर (शृङ्खला) कमल सहित बानानी चाहिये ॥ ९६ ॥

ऊरुमूलस्यपरिधिःपट्टत्रिंशदंगुलोमतः ।

त्रयोविंशत्यंगुलःस्यादूर्वग्रपरिधिस्तथा ९७

भाषार्थ—ऊरुके मूलकी परिधि छत्तीस अंगुल मानी है और ऊरुके अग्रभागकी परिधि तेईस अंगुलकी होती है ॥ ९७ ॥

जंघामूलतुपरिधिर्विंशत्यंगुलसंमितः ।

परिधिर्वाहुमूलदेरधिकोऽङ्गुलः ॥ ९८

भाषार्थ—जंघाके मूलकी परिधि बीस अंगुलकी होती है और बाहुके मूल और अग्रभागकी परिधि दो अंगुल वा क्रमसे एक अंगुल अधिक बीस अंगुल होती है ॥ ९८ ॥

कर्णनेत्रांतरंनित्यंविज्ञेयंचतुरंगुलं ।

मूलमध्याग्रान्तरंतुदशसप्तपङ्गुलं ॥ ९९ ॥

भाषार्थ—कान और नेत्रोंका अंतर सदैव चार अंगुलका होता है और नेत्रोंके मूल मध्य अग्रका अंतर क्रमसे दश सात छः अंगुल होता है ॥ ९९ ॥

नेत्रयोःकथितंतज्जैर्गणपस्यविशेषतः ।

उत्सेधःपृथुतास्त्रीणांस्तनेपंचांगुलामता ॥

भाषार्थ—तिसके ज्ञाताओंने गणेशके नेत्रोंकी ऊंचाई विशेष कर पूर्वोक्त कही है और स्त्रियोंके स्तनोंकी ऊंचाई और लंबाई पांच अंगुल मानी है ॥ ५०० ॥

स्त्रीकट्यांपरिधिःप्रोक्तस्त्रितालेऽङ्गुलाधिकः ।

स्त्रीणामवयवान्सर्वांसप्ततालैर्विभावयेत् १

भाषार्थ—स्त्रियोंकी कमरकी परिधि दो अंगुल ऊपर तीन तालकी और स्त्रियोंके संपूर्ण अवयव सात तालके होते हैं ॥ १ ॥

सप्ततालादिमानेपिमुखंस्वद्वादशांगुलं ।

बालादीनामपिसदादीर्घतातुपृथक्पृथक् २ ॥

भाषार्थ—सप्त तालके प्रमाणमेंभी मुख वारह अंगुलका होता है और बाल (केश) आदिकी दीर्घताभी पृथक् रहती है ॥ २ ॥

शिशोस्तुकंधराहस्वापृथुशीर्षप्रकीर्तितं ।

कंठाधोवर्धतेयादृक्तादृक्छीर्षनवर्धते ॥ ३

भाषार्थ—बालककी ग्रीवा छोटी और शिर बड़ा होता है और कंठसे नीचे जितना बालक बढ़ता है उतना शिर नहीं बढ़ता ॥ ३ ॥

कंठाधोमुखमानेनवृत्तसार्धचतुर्गुणं ।

द्विगुणःशिश्रपर्यंतोऽह्यधःशेषंतुसक्थितः ॥ ४

भाषार्थ—कंठके नीचे मुखके प्रमाणसे साढेचार गुना और नीचिका शेष सक्थितसे लेकर लिंग पर्यंत दोगुना बढ़ता है ॥ ४ ॥

सपादाद्विगुणौहस्तौद्विगुणौवामुखेनहि ।

स्थौल्येतुनियमोनास्तियथाशोभिप्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—और मुखसे सवादो गुने वा दुगुने हाथ बढ़ते हैं और स्थूलता (मोटाई) में नियम नाहि उसको शोभाके अनुसार वनावे ॥ ५ ॥

नित्यंप्रवर्धतेवालःपंचान्दात्परतोभृशं ।

स्यात्पोडशेन्देसर्वांगःपूर्णास्त्रीविंशतौपुमाश्च

भाषार्थ—पांच वर्षसे ऊपरकी अवस्थामें बालक अत्यंत बढ़ता है और सोलह वर्षमें स्त्री और बीस वर्षमें पुरुष संपूर्ण अंगोंसे पूर्ण होजाता है ॥ ६ ॥

ततोर्ध्वतिप्रमाणंतुसप्ततालादिकंसदा ।

कश्चिद्बाल्येपिशोभादयस्तारुण्येवार्धकचिन्त ॥ ७ ॥

भाषार्थ—फिर सप्तताल आदि प्रमाणके योग्य होजाता है और बाल्य अवस्थामें

और कोई यौवनमें और वृद्ध अवस्थामें शोभासे युक्त होता है ॥ ७ ॥

मुखाधर्यंगुलाग्रीवाहृदयंतुनवांगुलं ।

तयोदरंचवस्तिश्चसक्थित्वष्टादशांगुलं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मुखके नीचे ग्रीवा तीन अंगुल हृदय नव अंगुल होता है तिसी प्रकार उदर वस्ति सक्थि अठारह अंगुल होती है ॥ ८ ॥

त्र्यंगुलंतुभवेज्जानुजंघात्वष्टादशांगुला ।

गुल्फाधस्त्र्यंगुलंज्ञेयंसप्ततालस्यसर्वदा ॥ ९ ॥

भाषार्थ—जानु तीन अंगुल और जंघा अठारह अंगुल और गुल्फके नीचे का भाग तीन अंगुलका सात तालके मनुष्यका सदैव होता है ॥ ९ ॥

वेदांगुलाभवेद्ग्रीवाहृदयंतुदशांगुलं ।

दशांगुलंचोदरस्याद्वस्तिश्चैवदशांगुलः १० ॥

भाषार्थ—और चार अंगुलकी ग्रीवा दश अंगुलका हृदय और उदर वस्ति दश अंगुलकी हो और ॥ १० ॥

एकविंशांगुलंसक्थिजानुस्याच्चतुरंगुलं ।

एकविंशांगुलाजंघागुल्फाधश्चतुरंगुलं ॥ ११ ॥

भाषार्थ—इकीस अंगुल सक्थि चार अंगुल जानु इकीस अंगुल जंघा गुल्फ (टकने) के नीचे चार अंगुल का प्रमाण ॥ ११ ॥

अष्टतालप्रमाणस्यमानमुक्तमिदंसदा ।

त्रयोदशांगुलंज्ञेयंमुखंचहृदयंतथा ॥ १२ ॥

भाषार्थ—आठ तालके मनुष्यका सदैव कहा है मुख और हृदय तीरै अंगुलका होता है ॥ १२ ॥

उदरंचतथावस्तिर्दशतालपुसर्वदा ।

गुल्फाधश्चतयाग्रीवाजानुपंचांगुलंस्मृतं १३ ॥

भाषार्थ—उदर और वस्ति दश अंगुल की दश तालके मनुष्य की होती हैं गुल्फ की नीचेका भाग और जानु और ग्रीवा पांच अंगुलके कहे हैं ॥ १३ ॥

षड्विंशत्यंगुलंसक्थितयाजंघाप्रकीर्तिता ।
एकांगुलोर्मूर्धिमणिर्दशतालप्रकल्पयेत् १४ ॥

भाषार्थ—छत्वीस सक्थि और दश जं कही हैं तालके मनुष्यमें मस्तककी मणि चार अंगुल की कही है ॥ १४ ॥

पंचाशदंगुलौवाहृदशतालस्मृतौसदा ।

द्व्यंगुलौद्व्यंगुलौचोनौततोहीनप्रमाणके ॥ १५ ॥

भाषार्थ—और दश तालके मनुष्यकी भुजा पचास अंगुलकी होती है और उससे अल्प प्रमाणके मनुष्यकी भुजा दोदो अंगुल कम होती है ॥ १५ ॥

पाटवंतुयथाशोभिसर्वमानेषुकल्पयेत् ।

नवतालप्रमाणेनह्यनाधिक्यंप्रकल्पयेत् १६ ॥

भाषार्थ—और सब प्रमाणके मनुष्योंमें शोभाके अनुसार चतुराईकी कल्पना करे और नौ तालके मनुष्यके न्यूनाधिककी कल्पना न करे ॥ १६ ॥

दशतालतुविज्ञेयौपादौपंचदशांगुलौ ।

एकैकांगुलहीनौस्तस्ततोऽन्यूनप्रमाणके १७ ॥

भाषार्थ—दश तालके मनुष्यमें चौदह अंगुलके पैर जानने और उससे न्यून मनुष्यके प्रमाणमें एक २ अंगुल कम होते हैं ॥ १७ ॥

नपंचांगुलतोहीनानषडंगुलतोधिका ।

करस्यमध्यमाग्रोक्तान्युरुमानेषुसिद्धिदैः १८ ॥

भाषार्थ—और हाथकी मध्यमा अंगुली अंगुलसे कम और छः अंगुलसे अधिक वि-

द्वानोने अधिकसे अधिक मानमें नही
कहीहै ॥ १८ ॥

कचिन्नुवालसदृशंसदैवतरुणंवयः ।

मूर्तीनांकल्पयेच्छिल्पीनवृद्धसदृशंकांचित् ॥

भाषार्थ—और कहीं तरुण अवस्थाभी वालके सदृश होताहै और शिल्पी वृद्धके सदृश मूर्तियोंके कल्पना कभी न करे ॥ १९ ॥

एवंविधानृपोराष्ट्रदेवान्संस्थापयेत्सदा ।
प्रतिसंवत्सरंतेषामुत्सवान्सम्यगाचरेत् २०

भाषार्थ—राजा ऐसे देवताओंका स्थापन अपने राज्यमें सदैव करे प्रतिवर्ष उनके उनके उत्सवोंकू भली प्रकार करे ॥ २० ॥

देवालयमानहीनामूर्तिभयानधारयेत् ।

प्रासादांश्चतथादेवाञ्जीर्णानुद्धृत्ययत्नतः

भाषार्थ—प्रमाणसे रहित और टूटी फूटी मूर्तिंकू देवालयमें न रहनेदे और जीर्ण मंदिर और देवताओंका यत्नसे उद्धार करके २१

देवतांतुपुरस्कृत्यनृत्यादीन्वीक्ष्यसर्वदा ।

नमत्तःस्वोपभोगार्थंविदध्याद्यत्नतो नृपः ॥

भाषार्थ—और देवदर्शन और नृत्यकू देखकर प्रसन्नचित्त राजा अपने उपभोगके लिये यत्न न करे ॥ २२ ॥

प्रजाभिर्विधृतायेहेतुस्त्ववास्तांश्चपालयेत् ।

प्रजानंदेनसंतुप्येतदुःखैर्दुःखितोभवेत् २३

भाषार्थ—और जिनके उत्सवोंको प्रजा करतीहो तिनकी सदैव पालनाकरे प्रजाके आनन्दसे और दुःखसे दुःखित हो ॥ २३ ॥

दुष्टनिग्रहणंक्रूर्याद्यवहारानुदर्शनैः ।

स्वाज्ञयावर्तितुंशक्याऽधीनाजाताचसाप्रजा

भाषार्थ—और व्यवहारोंके देखनेसे दुष्टोंको दण्डदे क्योंकि जो प्रजा अपने आधीनहो वह अपनी आज्ञामें रह सकतीहै ॥ २४ ॥

स्वेष्टहानिकरःशत्रुर्दुष्टःपापप्रचारवान् ।

इष्टसंपादनंन्याय्यंप्रजानांपालनंहितत् २५

भाषार्थ—जो अपने इष्टकी हानि करे पापाचारी हो वह शत्रु होताहै इष्ट (वांछित) की संपत्ति करना उचित हो क्योंकि उसीकू प्रजाका पालन कहतेहैं ॥ २५ ॥

शत्रोरनिष्टकरणान्विबृत्तिःशत्रुनाशनं ।

पापाचारनिवृत्तिर्यैर्दुष्टनिग्रहणंहितत् ॥ २६

भाषार्थ—शत्रुको अनिष्ट न करना देना उसकू शत्रुनाशन कहते हैं और जिनसे पापाचरणोंकी निवृत्ति हो उसे दुष्टनिग्रहण कहते हैं ॥ २६ ॥

स्वप्रज्ञाधर्मसंस्थानंसदसत्प्राविचारतः ।

जायतेचार्यसंसिद्धिर्व्यवहारस्तुयेनसः ॥ २७

भाषार्थ—साधु असाधुके विचारसे अपनी प्रजाकू धर्ममें स्थापन करे और जिसे अर्थ सिद्ध होय उसे व्यवहार कहतेहैं ॥ २७ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविर्वर्जितः ।

सप्राद्विवाकःसामात्यःसब्राह्मणपुरोहितः

भाषार्थ—क्रोध लोभसे रहित और प्राद्विवाक (वकील) मन्त्री ब्राह्मण पुरोहित इन करके सहित राजा धर्मशास्त्रके अनुसार ॥ २८ ॥

समाहितमतिःपश्येद्यवहाराननुक्रमात् ।

नैकःपश्येच्चकार्याणिवादिनोःशृणुयाद्वचः ॥

भाषार्थ—सावधानमन होकर क्रमसे व्यवहारों (मुकदमे) को देखे और वादियों (मुद्दई सुद्दाले) के कार्योंकी अकेला न देखे और उनके वचनको ॥ २९ ॥

रहसिचतुषःप्राज्ञःसभ्याश्चैवकदाचन ।

पक्षपाताधिरोपस्यकारणानिचर्पचवै ॥ ३० ॥

भाषार्थ—पक्षपातधारेपस्यकारणानिचर्पचवै ॥ ३० ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् राजा और सभासद
एकांतमें कदाचित् न सुने पक्षपात कर-
नेके ये पांच कारण होते हैं कि ॥ ३० ॥

रागलोभभयद्वेषावादिनोश्चरहः श्रुतिः ।
पौरकार्याणियोराजानकरोति सुखे स्थितः ॥

भाषार्थ—राग (प्रीति) लोभ भय वैर और
एकांतमें वादी प्रतिवादीका वचन सुनना
जो राजा सुखमें स्थित हुआ पुरवासियोंके
कार्योंको नहीं करता ॥ ३१ ॥

व्यक्तं स नरके घोरं पच्यते नात्र संशयः ।

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ॥

भाषार्थ—यह प्रकट है इसमें संशय नहीं
वह घोर नरकमें पड़ता है जो राजा विना-
जाने अधर्मसे कार्योंको करता है ॥ ३२ ॥

अचिरात्तदुरात्मानं वशं कुर्वति शत्रवः ।

अस्वर्ग्यलोकनाशाय परानीकभयावहाः ॥

भाषार्थ—उस दुरात्माको शत्रुजन थोड़ेही
कालमें वसकर लेते हैं नरककी दाता
जगतकी नाशक शत्रुसेनाको भय देने
वाली ॥ ३३ ॥

आयुर्वीजहरिराज्ञामस्ति वाक्ये स्वयंकृतिः ।

तस्माच्छास्त्रानुसारेण राजा कार्याणि साध-
येत् ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—अवस्थाके बीजको नाशकशक्ति
राजाओंके वाक्यमें स्वयं सिद्ध होता है
तिससे राजा शास्त्रोंके अनुसार कार्योंको
सिद्ध करे ॥ ३४ ॥

यदानकुर्यान्नृपातिः स्वयं कार्यविनिर्णयं ।

तदा तत्र नियुंजीत ब्राह्मणवेदपारगं ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—जिस समय राजा कार्योंका नि-
र्णय न करे उस समय कार्यनिर्णयके लिये

ऐसे ब्राह्मणको नियत करे जो वेदोंको पार
गामी हो ॥ ३५ ॥

दांतं कुलीनमध्यस्थमनुद्वेगकरं स्थिरं ।

परत्र भीरुं धर्मिष्ठमुद्युक्तं क्रोधवर्जितं ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—और दान्त (जितेन्द्रिय) कुलीन
मध्यस्थ (समबुद्धि) अनुद्वेगकारी (कोमल-
वचन) स्थिरबुद्धि परलोकसे भीरु (डरने-
वाला) धर्मिष्ठ उद्योगी और क्रोधसे रहित
हो ॥ ३६ ॥

यदा विप्रो न विद्वान् तस्यात्क्षत्रियं तन्नि योजयेत्
वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—यदि विद्वान् ब्राह्मण न मिले तो
क्षत्री क्षत्री न मिले तो धर्मशास्त्रके ज्ञाता
वैश्यको उस पदपर नियत करे शूद्रको
तो यत्नेसे वर्जिते ॥ ३७ ॥

यद्वर्णजो भवेद् राजा योज्यस्तद्वर्णजः सदा ।

तद्वर्ण एव गुणिनः प्रायशः संभवति हि ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—जिस वर्णका राजा हो उसी
वर्णके मनुष्यको नियत करे क्योंकि उसी
वर्णमें प्रायः गुणवान् मनुष्य होते हैं ॥ ३८ ॥

व्यवहारविदः प्राज्ञावृत्तशीलगुणान्विताः ।

रिपौ मित्रे समाये च धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—व्यवहारके ज्ञाता आचारशील
और गुणोंसे संयुक्त शत्रु और मित्रमें समान
धर्मज्ञ सत्यवादी जो हो ॥ ३९ ॥

निरालसा जितक्रोध कामलोभाः प्रियंवदाः ।

राज्ञानियोजितव्यास्ते सभ्याः सर्वा सुजातिषु

भाषार्थ—निरालसी क्रोध काम लोभ ये
जिनोंने जीतेहो प्रियवादी हो ऐसे सभासद
सबजातियोंमेंसे राजाको नियुक्त करने ४० ॥

कीनाशाः कारुकाः शिकुसीदिश्रेणीनर्तकाः ।
लिङ्गिनस्तस्कराः कुर्युः स्वेनधर्मेण निर्णयः ॥

भाषार्थ—किसान—कारीगर (शिल्पी)
व्यवहारी नर्तक संन्यासी चोर ये सब अपने
धर्मसे निर्णयको करे ॥ ४१ ॥

अशक्यो निर्णयो ह्यन्यैस्तज्जैरेव तु कारयेत् ।
आश्रमे पुद्गिजातीनां कार्ये विवदतामिथः ४२

भाषार्थ—क्योंकि इनके निर्णयकों अन्य
नहीं करसके इनीकी जातिसे निर्णय करावे
जो द्विजाति अपने आश्रमोंके कार्यमें परस्पर
विवाद करतेहो ॥ ४२ ॥

न विवृया नृपो धर्मोच्चिकीर्णं हितमात्मनः ।
तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविध्यैरेव कारयेत् ४३

भाषार्थ—वहां अपने हित चाहने वाला राजा
धर्मके विरुद्ध नकहै और तपस्वियोंके कार्य-
के तीनों वेदपाठी ब्राह्मणसे करावे ॥ ४३ ॥

मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ।
सम्यग् विज्ञानसंपन्नेनोपदेशं प्रकल्पयेत् ४४

भाषार्थ—और मायावी और योगियोंके
कार्योंको क्रोधके डरसे राजा स्वयं नकरे
और भलीप्रकार ज्ञानवान् मनुष्यको उपदे-
श नकरे और उत्तमजाति और शीलवाल
और गुरु आचार्य तपस्वी ॥ ४४ ॥

उत्कृष्टजातिशीलानां गुर्वार्यतपस्विनां ।
आरण्यास्तु स्वकैः कुर्युः सार्थिकाः सार्थिकैः
सह ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—इनकूभी उपदेश नकरे वनके वासी
और सार्थिक (सीती) इनके कार्य इन-
केही सङ्ग मिलकर करे ॥ ४५ ॥

सैनिकाः सैनिकैरेव ग्रामेषु भयवासिभिः ।
अभियुक्ताश्च ये यत्र यत्र विवर्धनियोजयेत् ॥

भाषार्थ—सैनिकों (सेनाके योद्धा) के कार्य
सैनिकोंके संग और ग्रामवासियोंके कार्य
ग्राम और वनवासियोंके संग बैठकर करे
जिसपदपर जो नियुक्तहो उनका निबंध जो
राजाने नियत करदिया हो ॥ ४६ ॥

तत्रत्यगुणदोषाणां तद्विचारकाः ।
राजा तु धार्मिकान् सभ्यान् त्रिगुण्यस्तु परीक्षि-
तात् ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—उसके गुण और दोषोंके विचार
करनेवाले वेही होतेही परंतु राजा धार्मिक
और भलीप्रकार परीक्षा करनेवाले सभासदों-
को नियत करे ॥ ४७ ॥

व्यवहारधुरं वोढुं यशक्ताः पुंगवा इव ।
लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः सप्तपंचत्रयोपि वा ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—जो व्यवहारके बोझा उठानेमें ऐसे
समर्थ होकि जैसे बैल और जो लोक वेद
धर्म इनके ज्ञाता हो और सात पांच तीन
हो ॥ ४८ ॥

यत्रोपविष्टा विप्राः स्युः सायज्ञसदृशी सभा ।
श्रोतारो वणिजस्तत्र कर्तव्याः सुविचक्षणाः ॥

भाषार्थ—जिससभामें ब्राह्मण बैठेहो वह सभा
यज्ञसमान होतीहै और उससभामें अच्छे
पण्डित कार्योंके सुननेवाले वैश्य राजाकू
नियत करने ॥ ४९ ॥

अनियुक्तो नियुक्तो वा धर्मज्ञो वक्तुमर्हति ।
देवीं वाचं सवदति यः शास्त्रमुपजीवति ॥ ५० ॥

भाषार्थ—राजाको नियुक्त हो वा अनियुक्त
धर्मज्ञाता सभामें बोल सक्ता है क्योंकि जो
शास्त्रको जानता है वह देवीवाणीको कह-
ता है ॥ ५० ॥

सभावानप्रवेष्टव्यावक्तव्यवासमंजसं ।
अब्रुवन्ब्रुवन्श्चापिनरोभवतिकिल्बिषी ॥

भाषार्थ—यातो मनुष्य सभामें जायनहि और जाय तो यथार्थ कहै क्योंकी न बोलने विरुद्ध बोलनेसे मनुष्यको पातक लगता है ॥ ५१ ॥

राज्ञायेविदिताःसम्यङ्कुलश्रेणिगणादयः ।
साहसस्तेयवर्जानिकुर्युःकार्याणितेनृणां ॥

विचार्यश्रेणिभिःकार्यकुलैर्यन्नविचारितं ।
गणैश्चश्रेण्यविज्ञातंगणाज्ञातंनियुक्तकैः ॥

भाषार्थ—जिन कुलश्रेणी गण आदिको राजाभली प्रकार जानता हो वे मनुष्योंके उन कार्योंको करे जिनमें साहस (हित) चोरीका सम्बन्ध न हो ॥ ५२ ॥ जिस कार्यका विचार कुलवालोंकी बुद्धिमें न आयाहो जाय उस कार्यको विचारकर श्रेणी करे श्रेणीयोंके विना जाने कार्यको गण करे गणके विना जानेको राजाके अधिकारी पुरुष करे ॥ ५३ ॥

कुलादिभ्योधिकाःसभ्यास्तेभ्योऽध्यक्षोधि-
कःकृतः ।

सर्वेषामधिकोराजाधर्माधर्मनियोजकः ॥

भाषार्थ—कुलसे अधिक सभासद और सभासदोंसे अधिक अधिपति (मन्त्री) और सबसे अधिक धर्म अधर्मका नियुक्त करने-वाला राजा होता है ॥ ५४ ॥

उत्तमाऽधममध्यानांविवादानांविचारणात्
उपर्युपरिबुद्धिनांचरंतीश्वरबुद्धयः ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—उत्तम मध्यम अधम जो विवाद उनके विचार करनेसे सब बुद्धियोंके ऊपर २ ईश्वर (राजा) की बुद्धि विचरती है ५५

एकंशास्त्रमधीयानोनविद्यात्कार्यनिर्णयं ।
तस्माद्ब्रह्मगमःकार्योविवादेषूत्तमो नृपैः ॥

भाषार्थ—एक शास्त्रका पढ़ा हुआ मनुष्य कार्यके निर्णयको नहीं जानसकता तिससे राजा विवादोंके निर्णयार्थ ऐसे उत्तम मनुष्य-को नियत करै जिसने बहुत शास्त्र पढ़े हों ॥ ५६ ॥

सब्रूतेयःसधर्मस्यादेकोवाध्यात्मचिन्तकः ।
एकद्वित्रिचतुर्वारंव्यवहारानुचिंतनं ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—वह और अध्यात्म (ब्रह्म) की चिन्ता करनेवाला एकभी जिसको कहै वह धर्म होता है—और एक दो तीन बार व्यवहारोंका अनुचिंतन ॥ ५७ ॥

कार्यपृथक्पृथक्सभ्यैराज्ञाश्रेष्ठोत्तरैःसह ।
अर्थिप्रत्यर्थिनौसभ्यैर्लेखकप्रेक्षकांश्चयः ॥

भाषार्थ—पृथक् २ क्रमसे श्रेष्ठ सभासदोंके संग बैठ कर करै—और अर्थिप्रत्यर्थि (मुद्दई मुद्दाले) सभासद—लेखक और देखने वालोंको जो ॥ ५८ ॥

धर्मवाक्यैरंजयतिसभ्यस्तारयिताभयात् ।
नृपोधिकृतसभ्याश्चस्मृतिर्गणकलेखकौ ॥

भाषार्थ—धर्मके वाक्योंसे प्रसन्न करै वह सभासदोंको भयसे निवृत्त करता है—राजा अधिकारी (मंत्री) सभासद—धर्मशास्त्र-गणक—लेखक ॥ ५९ ॥

हेमाश्वबुस्वपुरुषाःसाधनांगानिवैदश ।
एतद्दशांगकरणंयस्यामध्यस्यपार्थिवः ॥

भाषार्थ—सुवर्ण—अग्नि—जल—और राजाके पुरुष (सिपाही) ये दश कार्यसिद्धिके अंग हैं इस दश अंगरूप सामग्री सहित राजा जिसमें बैठ कर ॥ ६० ॥

न्याय्यान्याय्येकृतमतिःसासमाध्वरसन्निभा
दशानामपिचैतेषां कर्मप्रोक्तं पृथक् पृथक् ॥

भाषार्थ—न्याय और अन्यायमें बुद्धिको
करता है कि वह सभा यज्ञके तुल्य है और
इन दशोंका कर्मभी पृथक् २ कहा है ॥ ६१ ॥

वक्ताभ्यक्षोत्पःशास्तासभ्याः कार्यपरीक्षाः
स्मृतिर्विनिर्णयं ब्रूते जयं दानं दमं तथा ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—अध्यक्ष (मंत्री) पढ़कर सुनावे
राजा शिक्षादे—सभासद कार्यकी परीक्षा
करें धर्मशास्त्र उसके निर्णयको और जय
दान दमको कहता है ॥ ६२ ॥

शपथार्थं हि रणयाग्नीं बुवत्पितृभ्योऽथोः ।
गणको गणयेदर्थं लिखेन्न्याय्यं च लेखकः ॥

भाषार्थ—शपथ (सौगंध) के लिये सुवर्ण
आग्नि और वृषावान् और ऋषीके लिये
जल गणक अर्थ (द्रव्य आदि) को गिने
और लेखक न्यायको लिखे ॥ ६३ ॥

शब्दाभिधानतत्त्वज्ञौ गणनाकुशलौ शुची ।
नानालिपिज्ञौ कर्तव्यौ राजा गणकलेखकौ ॥

भाषार्थ—शब्द बोलनेके तत्त्वको जानने
वाले—गिनतीमें कुशल—और शुद्ध अनेक
लिपिके ज्ञाता जो हों ऐसे गणक और लेख-
क राजाको नियत करने ॥ ६४ ॥

धर्मशास्त्रानुसारेण अर्थशास्त्रविवेचनं ।
यत्राधिक्रियते स्थाने धर्माधिकरणं हितम् ॥

भाषार्थ—जिस स्थानमें धर्मशास्त्रके अ-
नुसार अर्थशास्त्र (व्यवहार) का विवेचन
होनेका अधिकरण (प्रस्ताव) हो उस स्था-
नको धर्माधिकरण कहते हैं ॥ ६५ ॥

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पाथिवः ।
मंत्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभां ।

भाषार्थ—व्यवहार देखनेका अभिलाषी
राजा नम्र होकर ब्राह्मण और मंत्रके ज्ञाता
मंत्रियों सहित सभामें प्रवेश करे ॥ ६६ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय कार्यदर्शनमारभेत् ।
पूर्वोत्तरसमीभूत्वाराराजपृच्छेद्विवादिनोः ॥

भाषार्थ—धर्मासन (राजगद्दी) पर बैठ
कर कार्योंके देखनेका प्रारंभ करे—और रा-
जा प्रारंभ और अंतमें समान (इकसा) हो-
कर विवादियोंको पूछे ॥ ६७ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
जातिजानपदान्धर्माञ्ज्णेण धर्मास्तथैव च ॥

भाषार्थ—और प्रतिदिन देशमें—शास्त्रमें
देखे हेतुओंसे जाति देश और श्रेणियोंके
धर्मोंको ॥ ६८ ॥

समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपालयेत् ।
देशजाति कुलानां च ये धर्माः प्राक्प्रवर्तिताः

भाषार्थ—और कुलके धर्मोंको देखकर
अपने धर्मकी पालना करे—और देश जाति
कुल इनके जो धर्म पूर्व वर्णन किये हैं ६९ ॥
तथैव ते पालनीयाः प्रजाप्रभुभ्यतेन्यथा ।

उदूह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुताद्विजैः ॥

भाषार्थ—उनकी पालना उसी प्रकार करे
क्योंकि उनके अन्यथा करनेसे प्रजा क्षोभ-
की प्राप्त हो जाती है—दक्षिण देशके द्विज
मातुलकी कन्याको विवाह लेते हैं ॥ ७० ॥

मध्यदेशे कर्मकराः शिल्पिनश्च गराशिनः ।

मत्स्यादाश्च नराः सर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः

भाषार्थ—मध्यदेशके द्विज कर्म (सेवा)
करे हैं और शिल्पी हैं और विषको खाते हैं
और सब नर मत्स्योंको खाते हैं—स्त्री व्य-
भिचारमें रत हैं ॥ ७१ ॥

उत्तरेमद्यपानार्थःस्पृश्यान्प्रांरजस्वला ।

खशजाताःप्रगृह्णन्तिभ्रातृभार्यामभर्तृकां ७२

भाषार्थ—उत्तरकी स्त्री मदिरा पीती हैं—
मनुष्य रजस्वला स्त्रियोंको स्पर्श करते हैं
खश देशके मनुष्य अपने भ्राताकी विधवा
स्त्रीको ग्रहण करलेते हैं ॥ ७२ ॥

अनेनकर्मणानैतेप्रायश्चित्तदमार्हकाः ।

येषांपरंपराप्राप्ताःपूर्वजैरप्यनुष्ठिताः ७३ ॥

भाषार्थ—इस पूर्वोक्त अपने २ कर्मसे ये
प्रायश्चित्त और दंडके योग्य नहीं हैं जिनके
जो कर्म परंपरासे चले आये हों और पहि-
ले पुरुषोंनेभी किये हों ॥ ७३ ॥

तंप्रवृत्तैर्दुष्प्रेयुराचारान्नेतरस्यतु ।

न्यायान्पश्येत्तुमध्यान्हेपूर्वाण्डेस्मृतिदर्शनं

भाषार्थ—उह्ना कर्मोंसे वे दूषित नहीं होते
और इतरके कर्मोंसे दूषित होतेही हैं—राजा
मध्याह्नके समय न्याय देखे और पूर्वाह्णमें
स्मृति (धर्मशास्त्र) को देखे ॥ ७४ ॥

मनुष्यमारणेस्तेयेसाहसेस्तेयिकेसदा ।

नकालनियमस्तत्रसद्यएवविवेचनं ॥७५॥

भाषार्थ—मनुष्य मारना—चोरी—साहस और
आवश्यक कार्य में समयका कोई नियम
नहीं है किन्तु उसी समय विवेचन करे ७५

धर्मासनगतं दृष्ट्वा राजानं मंत्रिभिः सह ।

गच्छेन्न विद्यमानं यत्र तिरुद्धमधर्मतः ॥७६॥

भाषार्थ—मंत्रियों सहित राजाको धर्मासन
पर बैठा देख कर जाय और जो निवेदन क-
रना हो उसको अधर्मके त्यागपूर्वक (सत्य
२) कहै ॥ ७६ ॥

यथासत्यं चिंतयित्वा लिखित्वा वा समाहितः

नत्वावाप्रांजलिः प्रवृत्तार्थी कार्यं निवेदयेत् ॥

भाषार्थ—सत्यके अनुसार विचार कर और
सावधानीसे लिखकर और नवकर हाथ जोड़
कर नमस्कार करके अर्थी (मुद्दई) अपने
कार्यको निवेदन करे ॥ ७७ ॥

ययार्हमेनमभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।

सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥

भाषार्थ—इस अर्थीको ब्राह्मणों सहित राजा
यथायोग्य सत्कार करके और प्रथम शांति-
के वाक्यों समझाकर अपने धर्मको कहै ७८

काले कार्यार्थिनं पृच्छेत्प्रणतं पुरतः स्थितं ॥

किं कार्यं काचते पीडामाभेपीद्वीहिमानव ॥

भाषार्थ—और नमन किये और आगे खड़े
हुये कार्यार्थीको समयपर पूछे कि तेरा क्या
कार्य है और तुझे क्या पीडा (दुःख) है
तू कह और हे मनुष्य भय मत करे ॥ ७९ ॥

केन कस्मिन्कदा कस्मात्पीडितोसि दुरात्मना
एव पृष्टः स्वभावोक्तं तस्य संश्रुणुयाद्बचः ॥

भाषार्थ—और किस दुरात्माने किस जग-
है किस समय और किस कारणसे तुझे
दुःख दिया है—इस प्रकार पूछकर उस अर्थी-
के स्वभावसे कहे हुये वचनको भली प्रकार
सुने ॥ ८० ॥

प्रसिद्धलिपिभाषाभिस्तदुक्तं लेखको लिखेत्
अन्यदुक्तं लिखेदन्यद्योर्थिप्रत्यर्थिनां वचः ॥

भाषार्थ—प्रसिद्ध लिपि (अक्षर) और
भाषामें उस अर्थीके कहे हुएको लेखक
लिखे जो अर्थिपत्यर्थिके अन्य कहे वच-
नको अन्य लिखे ॥ ८१ ॥

चौरवत्त्रासयेद्राजालेखकं द्रागतं द्रितः ।

लिखतं तादृशं संभ्यान विद्वयुः कदाचन ८२

भाषार्थ—उस लेखकको राजा चौरके समान उसी समय सावधान होकर दंड दे-और सभासदभी जो लिखा हो उसके विरुद्ध कदाचित् न कहें ॥ ८२ ॥

वल्लभृष्टांतिलिखितंदंडयेत्तांस्तुचौरवत् ।
प्राड्विवाकोनृपाभावेपृच्छेदेवसभागतं ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—जो बलसे लिखकर ग्रहण करें उन सभासदोंको चौरके समान दंड दे और राजाके न होनेपर सभामें आये मनुष्यको प्राड्विवाक पूछे ॥ ८३ ॥

वादिनौपृच्छतिप्राड्विवाकोविविनक्तयतः
विचारयतिस्मैर्याधर्माधर्माविवक्तिवा ॥

भाषार्थ—वादी विवादीको पूछनेसे प्राड और सत्य असत्यके विवेक करनेसे विवाक अथवा सभासदोंके संग विचार और धर्म अधर्मके विवेकसे प्राड्विवाक (वकील) कहते हैं ॥ ८४ ॥

सभायांयेहितायोग्याःसभ्यास्तेचापिसाधवः
स्मृत्याचारव्यपेतेनमार्गेणाधर्पितःपरैः ८५

भाषार्थ—जो सभासद सभामें हित और योग्य हो वे साधु (अच्छे) होते हैं धर्म-शास्त्र और लोकाचारसे भिन्न जो मार्ग उस रीतिसे-अन्य मनुष्य जिसको दुःख दे और ८५ आवेदयतिचेद्राज्ञेव्यवहारपदंहितत् ।

नोत्पादयेत्स्वयंकार्यंराजानाप्यस्यपूरुषः ॥

भाषार्थ—वह राजाके यहां आकर निवेदन करे वही व्यवहार (झगडा) का स्थान होता है और राजा वा राजाका कोई मनुष्य स्वयं व्यवहारको पैदा न करे ॥ ८६ ॥

नरागेणनलोभेननक्रोधेनग्रसेनृपः ।

परैरप्रापितानर्थान्नचापिस्वमनीषया ८७ ॥

भाषार्थ—राजाभी प्रीति लोभ क्रोधसे व्यवहार न ग्रसे (छिपावे) और दूसरोंमें नहीं प्राप्तहुये अर्थोंको अपनी बुद्धिसे न उठावे ८७

छलानिचापराधांश्चपदानिनृपतेस्तथा ।

स्वयमेतानिगृण्णीयात्रृपस्त्वावेदकैर्विना ॥

भाषार्थ—छल-और अपराध और राजाके पदवी इनको तो राजा निवेदन करनेवालों के विनाभी ग्रहण करले ॥ ८८ ॥

सूचकंस्तोभकाभ्यांवाश्रुत्वाचैतानितत्त्वतः ।
शास्त्रेणनिर्दिष्टस्त्वर्थानापिराज्ञाप्रचोदितः ॥

भाषार्थ—सूचक (चुगल) स्तोभक (वह कानेवाला) से इनके यथार्थ तत्त्वको सुन कर-जो अर्थ शास्त्रसे निर्दिष्ट और राजाने जिसको कुछ कहा नहो ॥ ८९ ॥

आवेदयतियत्पूर्वस्तोभकःसउदाहृतः ।
नृपेणविनियुक्तोयःपरदोषानुवीक्षणे ॥ ९० ॥

भाषार्थ—और राजाके प्रति प्रथमही निवेदन करे उसे स्तोभक कहते हैं-और राजा ने जिसको दूसरोंके अपराध देखनेके लिये नियत कर रक्खाहो ॥ ९० ॥

नृपसंसूचयेज्ज्ञात्वासूचकःसउदाहृतः ।
पथिभंगीपराक्षेपीप्राकारोपरिलंघकः ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—और जो जानकर राजाको बता देता है वह सूचक कहाहै-मार्गका भंगक-दूसरेकी निंदा-परकोटेका लंघन इनको जो करें ॥ ९१ ॥

विपानस्यविनाशीचतथाचायतनस्यच ।
परिखापूरकश्चैवराजच्छिद्रप्रकाशकः ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—जो चोबच्चा और घरको नष्ट करे और खाईकी मिट्टीसे भरदे और जो राजाके छिद्र (बुराई) को प्रकाश करे ॥ ९२ ॥

अतःपुरंवासगृहंभांडागारंमहानसम् ।

प्रविशत्यनियुक्तोयोभोजनंचनिरिक्षते॥९३

भाषार्थ—अंतःपुर (रणवास) वसनेका स्थान—पात्रोंका घर और भोजन बनानेका स्थान इनमें जो विना कहे चलेजाय और जो भोजनको देखै ॥ ९३ ॥

विष्मूत्रश्लेष्मवातानांक्षेप्तकामानृपाग्रतः ।

पर्यंकासनबंधीचाप्यग्रस्थानविरोधकः ॥

भाषार्थ—और जो विष्ठा मूत्र थूक अधो-वायु इनको जानकर राजाके आगे फेंके और पलंगपर आसन लगाकर बैठे और राजाके मुख्य स्थानका विरोध करै ॥ ९४ ॥

नृपातिरिक्तवेषश्चविधृतःप्रविशेत्तुयः ।

यश्चोपद्वारेणविशेदवेलायांतथैवच ॥९५॥

भाषार्थ—राजाके विरुद्ध वेषको धारण करै और धारण करके प्रवेश करै और जो प्रसिद्ध द्वारसे अन्यद्वारसे अथवा असमयपर जो प्रवेश करै ॥ ९५ ॥

शय्यासनपादुकेचशयनासनरोहणे ।

राजन्यासन्नशयनेयस्तिष्ठतिसमीपतः ॥

भाषार्थ—और जो राजाके शय्यापर सोते-के समय शय्या आसन खडार्ड अपने शय्या पर राजाके समीप बैठे ॥ ९६ ॥

राज्ञोविद्विष्टसेवीचाप्यदत्तविहितासनः ।

अन्यवस्त्राभरणयोःस्वर्णस्यपरिधायकः ॥

भाषार्थ—जो राजाका विरोध करै और विना दिये आसनपर बैठे अन्यको वस्त्र भूषण सुवर्ण इनको धारण करै ॥ ९७ ॥

स्वयंग्रहेणतांबूलंगृहीत्वाभक्षयेत्तुयः ।

अनियुक्तप्रभाषीचनृपाक्रोशकएवच ॥९८

भाषार्थ—और जो पानको विना दिये स्वयं लेकर भक्षण करै और राजाकी आज्ञाके विना संभाषण करै और राजाकी निंदा जो करै ॥ ९८ ॥

एकवस्त्रस्तथाभ्यक्तोमुक्तकेशोवगुंठितः ।

विचित्रितांगःस्वग्वीचपरिधानविधूनकः ॥

भाषार्थ—एकवस्त्र धारण किये—और उवटना किये—केशोंको खोलकर—धूंगट लगाय कर अंगको चीतकर—माला पहनकर वस्त्रोंको हिलाकर जो राजाके समीप जाय ॥९९॥

शिरःप्रच्छादकश्चैवाच्छिद्रान्वेषणतत्परः ।

आसंगीमुक्तकेशश्चप्राणकर्णाक्षिदर्शकः ॥

भाषार्थ—शिरको ढकै छिद्रोंको जो ढूँढे जिसका मन दूसरे काममें लगा हो जिसके केश खुले हों जो नाक कान नेत्र इनको दिखवे ॥ ६०० ॥

दंतोल्लेखनकश्चैवकर्णनासाविशोधकः ।

राज्ञःसमीपेपंचाशच्छलान्येतानिसंतिहि १

भाषार्थ—दांतोंके मँलको जो निकासे कान नाकके मँलको निकासे—ये पूर्वोक्त पचास ५० छल राजाके समीप होते हैं ॥ १०१ ॥

आज्ञोल्लंघनकर्तारःस्त्रीविधोवर्णसंकरः ।

परस्त्रीगमनचौर्यगर्भश्चैवपतिविना ॥ २ ॥

भाषार्थ—आज्ञाका अवलंघन करनेवाले—स्त्रीकी हत्या—वर्णोंका संकर—पराई स्त्रीका गमन—चोरी—पतिके विना गर्भकी स्थिति ॥

वाक्पारुष्यमवाच्यायदंडपारुष्यमेवच ।

गर्भस्यपातनंचैवेत्यपराधादशैवतु ॥ ३ ॥

भाषार्थ—कठोर वाणी निंदाके अयोग्य को कठोर दंड—गर्भका पातन ये दश अपराध होते हैं ॥ ३ ॥

उत्कृतीसस्यपातीचाप्याग्निदश्रतयैवच ।

राज्ञोद्रोहप्रकर्तचित्तमुद्राभेदकस्तथा ॥४॥

भाषार्थ—अन्नको जो काटे सस्य (घास) को नष्ट करे अग्नि लगावे—राजाका जो द्रोह करे राजाकी मुद्रा (मोहर) को जो नष्ट करे ॥४॥

तन्मंत्रस्यप्रभेतःचवद्धस्यचविमोचकः ।

अश्वाभिषेक्यदंनंभागदंडंविचिन्वति ५॥

भाषार्थ—राजाके मंत्रको जो नष्ट करे वद्ध (कैदी) को जो छोड़दे—विना स्वामीके जो वेचद वा दान करे—दंडके भागको जो हँदे ॥ ५ ॥

पटहावोपणाच्छादिद्रव्यमस्वामिकंचयत् ।

राजावलीढद्रव्यंचयच्चैवागोविनाशनं ॥६॥

भाषार्थ—डंडेरेके शब्दको जो छिपावे—विना स्वामी के द्रव्यको और राजाके मिलने योग्य द्रव्य (कर आदि) को जो ले और जो अपराधीके अपराधको नष्ट करे ॥ ६ ॥

द्वाविंशतिपदान्याहुर्नृपज्ञेयानिपंडिताः ।

उद्धतःकूरवाग्वेपोगर्वितश्चंडएवहि ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे पंडितो ये वाइश२२ पद राजाके जानने योग्य हैं—और जो उद्धत (उहड़) कठोर जिसकी वाणी वेप हो—अभिमानो और जो क्रोधी हो ॥ ७ ॥

सहासनश्चातिमानीवादीदंडमवाप्नुयात् ।

अर्थिनाकथितंराज्ञेतदवेदनसंज्ञकं ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो एक आसनपर बैठे अति अभिमानो—विवादी—हो वह दंड देने योग्य है जो अर्थी राजाके आगे आकर कहै उसे आवेदन (अर्जी) कहते हैं ॥ ८ ॥

कथितं प्राड्विकाकादौ साभाषाखिलबोधिनी ।

सपूर्वपक्षःसभ्यादिस्तंविमृश्ययथार्थतः ॥९॥

भाषार्थ—और जो प्राड्विकाक आदिसे कहै उसे भाषा कहते हैं उसीसे सबको बोध होता है उसी पूर्वपक्षको सभ्य आदि यथार्थ रीतिसे विचार कर ॥ ९ ॥

अर्थितःपूरयेद्धीनंतत्साक्ष्यमधिकंत्यजेत् ।

वादिनश्चिन्हितंसाक्ष्यंकृत्यराजाविमुद्रयेत् ।

भाषार्थ—और फिर पूजाहुआ उसमें जो कम हो उसको पूर्ण करे और उसकी अधिक साक्षियोंको त्यागदे वादीके हस्ताक्षरसे चिन्हित करकर राजाकी मुद्रासे अंकित करे (मोहरलगादे) ॥ १० ॥

अशोधयेत्पापक्षयेह्युत्तरंदापयंतितात् ।

रागाहोभाद्रयाद्वापिस्मृत्यर्थेवाधिकारिणः

भाषार्थ—विना पूर्व पक्षको शुद्धकिये जो उत्तर दिवाते हैं उनको और प्रीति लोभ भयसे जो धर्मशास्त्रके अधिकारी विरुद्ध करे ॥ ११ ॥

सभ्यादीन्दंडयित्वातुह्यधिकारान्निवर्तयेत् ।

ग्राह्याग्राह्यांविवादंतुसुविमृश्यसमाश्रयन् १२

भाषार्थ—उन सभासदआदिकोंको दंड दिवाकर उनके अधिकारोंको छीनले और ग्रहण करने योग्य और अयोग्य विवादको भली प्रकार विचार कर राजा करे ॥ १२ ॥

संजातपूर्वपक्षंतुवादिनंसंनिरोधयेत् ।

राजाज्ञयास्तत्पुरुषैःसत्यवाग्भिर्मनोहरैः १३

भाषार्थ—जब वादिका पूर्वपक्ष पूरा होले तब उस वादीको राजाकी आज्ञाके अनुसार सज्जन सत्यवादि मनोहर पुरुष उसको रोकदे ॥ १३ ॥

निरालसंगितज्ञैश्चदृष्टास्त्रवारिभिः ।

वक्तव्यैर्ह्यतिष्ठंतमुक्तामंतंचतद्रचः १४॥

भाषार्थ—और जो आलस्य रहित चेष्टाके ज्ञाता—दृढ शस्त्रअस्त्रोंको जो धारण किये हों—जो वादी कहने योग्य अर्थमें न टिके अथवा अपने कहे वचनका अवलंघन करे ॥ १४ ॥

आसेधयेद्विवादार्यावदान्दानदर्शनं ।

प्रत्यर्थिनंतुशपथैराज्ञयावानृपस्यच ॥ १५ ॥

भाषार्थ—उसको तबतक रोकदें जबतक राजाकी आज्ञा नहो—और प्रत्यर्थी (मुद्दाले) को सौगंद—और राजाके आज्ञासे रोकें १५

स्थानासेधःकालकृतःप्रवासात्कर्मणस्तथा ।
चतुर्विधःस्यादासेधोनासिद्धस्तं विलंघयेत्

भाषार्थ—और वह आसेध स्थान—काल—पदेश—और कर्मसे पैदा होनेसे चारप्रकारका होता है—उस आसेधको प्राप्तहुआ मनुष्य आसेधका अवलंघन न करे ॥ १६ ॥

यस्त्विन्द्रियनिरोधेनव्याहारोच्छ्वासनादिभि
आसेधयेदनासेधैःसदंभ्योनत्वातिक्रमी १७

भाषार्थ—जो मनुष्य इंद्रियोंके रोकने वाणी ऊर्ध्वश्वास आदि अनासेधरूपोंसे आसेध करे वही दंड देने योग्य होता है और अवलंघन करनेवाला दंड्य नहीं होता ॥ १७ ॥

आसेधकालआसिद्धआसेधयोनिवर्तते ।

सविनेयोन्मथान्कुर्वन्नासेद्धादंडभागभवेत् १८

भाषार्थ—आसेधके समयपर आसेधको प्राप्तहुआ जो मनुष्य आसेधसे हटताहै अन्यथा करने पर वह दंड देने योग्य होता है आसेध करनेवाला दंडका भागी नहीं होता ॥ १८ ॥

यस्याभियोगं कुरुते तत्त्वेनाशं कयाथवा ।

तमेवान्धानयेद्राजमुद्रयापुरुषेणवा ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जिस मनुष्यपर अपराधकी शंका हो वा जो यथार्थ अपराधी हो उस मनुष्यकोही राजा अपने पुरुष अथवा मुद्रासे बुलावे ॥ १९ ॥

शंकाऽसतांतुसंसर्गादनुभूतकृतेस्तथा ।

वोढाभिदर्शनात्तत्त्वविज्ञास्यतिविचक्षणः २०

भाषार्थ—दुष्टोंके संबंधसे अथवा बारंवार कार्यके देखनेसे शंका होती है और अपराधियोंके संग गमनसे पंडितजन तत्त्वको जानलेते हैं ॥ २० ॥

अकल्पवालस्यविरविषमस्थक्रियाकुलान् ।
कार्यातिपातिव्यसननृपकार्योत्सवाकुलान्

भाषार्थ—असमर्थ—वालक—वृद्ध—काठि—काममें व्याकुल—कार्यमें अत्यंत आसक्त—व्यसनी—राजाके कार्य और उत्सवोंमें व्याकुल ॥ २१ ॥

मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्तभृत्यान्नाव्दानयेन्नृपः ।
नहीनपक्षांयुवतांकुलेजातांप्रसूतिकां ॥ २२

भाषार्थ—मत्त—उन्मत्त—प्रमत्त—रोगी ऐसे भृत्योंसे अपराधियोंको राजा न बुलावे और हीन (दुर्बल) जिसका पक्ष हो उस स्त्रीको और कुलीन स्त्री और प्रसूता स्त्रीकोभी राजा न बुलावे ॥ २२ ॥

सर्ववर्णोत्तमांकन्यानांज्ञातिप्रमुखाःस्त्रियः ।
निर्वेष्टुकांमोरोगातोर्यियक्षुर्व्यसनेस्थितः ॥

भाषार्थ—ब्राह्मणकी कन्या—और जातिमें मुख्य स्त्री इनकोभी न बुलावे विवाहमें उद्यत (लगा) रोगसे दुःखी—यज्ञका कर्ता—विपत्तिमें स्थित ॥ २३ ॥

अभियुक्तस्तथान्येनराजकार्योद्यतस्तथा ।

गवांप्रचारेगोपालाःसस्यावापेकृषीवलाः ॥

भाषार्थ—और अन्यके संग जिसका विरोध हो और जो राजाके काममें लगा हो—जो गोपालगौओंको चुगा रहे हों—और जो किसान खेत बो रहे हों ॥ २४ ॥

शिल्पिनश्चापितत्कालमायुधीयाश्चविग्रहे ॥
अव्याप्तव्यवहारश्चदूतोदानोन्मुखोव्रती २५

भाषार्थ—जो शिल्पी हो और जो तत्कालमें लडाईमें आयुध धारण किये हों जो व्यवहारको न जानता हो—दूत—दान देने—को जो उद्यत हो—और जो व्रतमें आसक्त हो ॥ २५ ॥

विषमस्थाश्चनासेध्यानचैतानाव्हयेनृपः ।
नदीसंतारकांतारदुर्देशोपप्लवादिषु ॥ २६ ॥

भाषार्थ—जो विषम (भयानक) स्थानमें बैठे हों—इनका आसेध न करै (न पकड़े) और न राजा इनको बुलावे—नदीका तिरना वन और भयानक देशके उपद्रव आदिमें २६
असिद्धस्तंपरासेधमुत्कामन्नापराध्रयात् ।
कालंदेशंचविज्ञायकार्याणांचबलावलं ॥ २७

भाषार्थ—जो मनुष्यको पकड़े और वह उसके पकड़नेको रोके तो अपराधी नहीं होता कार्य और देशको और कार्यके बल अवलको जानकर ॥ २७ ॥

अकल्पादीनपिशुनान्यानैराव्हानयेनृपः ।
ज्ञात्वाभियोगंयेपिस्थुर्वनेप्रव्रजितादयः २८

भाषार्थ—असमर्थ और धनी—अपिशुन (मुकवा) इनको राजा यान (सवारी) में बुलवावे और जो वनमें संन्यासी आदि हों अपराध जानकर ॥ २८ ॥

तानप्याव्हानयेद्राजागुरुकार्येष्वकोपयत् ।
व्यवहारानभिज्ञेनह्यन्यकार्याकुलेनच २९ ॥

भाषार्थ—उनकोभी गुरु (भारी) कामके लिये इस प्रकार बुलावे जैसे वे कुपित नहीं जो व्यवहारको न जानता हो अथवा अन्य कार्यमें व्याकुल हो ॥ २९ ॥

प्रत्यर्थिनार्थिनातज्ज्ञःकार्यःप्रतिनिधिस्तदा ।
अप्रगल्भजडोन्मत्तवृद्धस्त्रीवालरोगिणां ॥

भाषार्थ—ऐसा प्रत्यर्थी और अर्थी व्यवहारके ज्ञाता प्रतिनिधि (मुखत्यार) को सदैव करलें—जो प्रगल्भ न हो जड—उन्मत्त वृद्ध—स्त्री—वालक—रोगी ॥ ३० ॥

पूर्वोत्तरवदद्वंद्वधुर्नियुक्तोवाथवानरः ।

पितामातासुहृद्वंधुभ्रातासंबन्धिनोपिच ३१ ॥

भाषार्थ—इनके पूर्व और उत्तर पक्षको बंधु अथवा नियुक्त (मुखत्यार) मनुष्य अथवा पिता—माता—मित्र—भाता वा संबंधी क हैं ॥ ३१ ॥

यदिकुर्युरपस्थानंवादतत्रप्रवर्तयेत् ।

यःकश्चित्कारयेत्किंचित्त्रियोगाद्येनकेनचित्

भाषार्थ—जो ये उपस्थान (पूर्वपक्ष) ठीक २ करदें तो वहां विवादको प्रवृत्त करै—जो मनुष्य जिस किसीसे नियुक्त करके अपने किंचित् कार्यको कराले ॥ ३२ ॥

तत्तेनैवकृतज्ञेयमानिवर्त्याहितत्स्मृतं ।

नियोगितस्यापिभृतिविवादात्षोडशांशिकीं

भाषार्थ—वह कार्य उसीका किया समझना वह हट नहीं सकता—और जिस मनुष्यको नियत करै उसको सोलहमा भाग भृति (नोकरी) दे ॥ ३३ ॥

अन्यथाभृतिगृहंतदंडयेच्चनियोगिनं ।

कार्योनित्योनियोगीचनृपेणस्वमनीषया ३४

भाषार्थ—जो नियुक्त किया मनुष्य अन्यथा श्रुतिको ग्रहण करता है उसको दंड दे और राजाभी सदाके लिये अपनी बुद्धिसे एक नियुक्त मनुष्य करै ॥ ३४ ॥

लोभेनत्वन्वयाकुर्वन्नियोगीदंडमर्हति ।
योनभ्रातानचपित्तानपुत्रोननियोगकृत् ३५

भाषार्थ—यदि नियुक्त मनुष्य लोभसे अन्यथा करै तो दंडके योग्य होता है—जो भ्राता—पिता—पुत्र ये नियोगको न करे और ॥ ३५ ॥

परार्थवादीदंडचःस्याद्वचवहोरपुविबुधन् ।
तदधीनकुटुंबिन्यःस्वैरिष्योगणिकाश्रयाः ॥

भाषार्थ—पराये अर्थको कहै व्यवहारमें विरुद्ध कहता हुआ वह दंडके योग्य होता है और जिन स्त्रियोंके आधीन कुटुंब हो और जो व्यभिचारिणी और वैद्या हों ॥ ३६ ॥

निष्कुलायाश्चपतितास्तासामाह्वानमिष्यते
प्रवर्तयित्वावादंतुवादिनौतुमृतौयदि ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—जिनके कुल न हो और जो पतित हों ऐसी स्त्रियोंका डुलाना श्रेष्ठ है यदि विवादको लगा कर दोनों वादी मरगये हों ॥ ३७ ॥

तत्पुत्रोविवदेत्तज्ज्ञोह्यन्यथातुनिवर्तयेत् ।
मनुष्यमारणस्तेयेपरदारभिमर्शने ३८ ॥

भाषार्थ—तो व्यवहारका ज्ञाता उसका पुत्र विवाद करे यदि पुत्र न करे तो विवादको निवृत्त करदे—मनुष्यके मारना चोरी—पराई स्त्रीके स्पर्शमें ॥ ३८ ॥

अभक्ष्यभक्षणेचैवकन्याहरणदूषणे ।
पारुष्यकूटकरणनृपद्रोहेचसाहसे ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—अभक्ष्य वस्तुके भक्षणमें कन्याके हरने या दोष लगानेमें—कठोर वचन कहने झूठ करने—राजाके द्रोह और साहसमें ॥ ३९ ॥

प्रतिनिधिर्नदातव्यःकर्तातुविवदेत्स्वयं ।
आहूतोयत्रनागच्छेद्दर्पाद्वधुवलान्वितः ४०

भाषार्थ—प्रतिनिधिको न दे किंतु अपराध करनेवाला स्वयं विवाद करे—जो वधु और बलसे संयुक्त मनुष्य बुलाने पर न जाय ४०
अभियोगानुरूपेणतस्यदंडप्रकल्पयेत् ।
दूतेनाव्दानितं प्राप्ताधर्षकं प्रतिवादिनं ४१ ॥

भाषार्थ—तो अपराधके अनुसार उसके दंडकी कल्पना करे—दूतके बुलानेसे प्राप्त हुये जो अपराधी और प्रतिवादी उनको ४१
दृष्ट्वाज्ञातयोश्चित्तोयथार्हप्रतिभूस्त्वतः ।
दास्याभ्यदत्तमेतेनदर्शयामितवांतिके ४२

भाषार्थ—देखकर राजा उन दोनोंके यथोचित साक्षीकी चिन्ता करे—जो यह न देगा तो मैं दूंगा और आपके समीप पहुंचा दूंगा ॥ ४२ ॥

एनमार्धिपादयिष्येह्यस्मात्तेनभयंकचित्*
अकृतंचकरिष्यामिह्यनेनायंचवृत्तिमान् ॥

भाषार्थ—और इससे आधि (धरार) को दिवा दूंगा इससे आपको कदाचित् भी भय न होगा और जो इसने नहीं किया है उसे करादूंगा और यहभी करेगा ॥ ४३ ॥

अस्तीतिनचमिथ्यैतदंगीकुर्यादतंद्रितः ।

प्रगल्भोबहुविश्वस्तश्चाधीनोविश्रुतोधनी ॥

भाषार्थ—यह बात है मिथ्या नहीं इस बातको निरालस होकर स्वीकार करे जो धनी प्रगल्भ हो जिसका अधिक विश्वास हो जो आधीन हो और विख्यात धनवान् हो ॥ ४४ ॥

उभयोःप्रतिभूग्राह्यःसमर्थः कार्यनिर्णये ।
विवादिनौसंनिरुध्यततोवादंप्रवर्तयेत् ४५

भाषार्थ-वादी और प्रतिवादिके ऐसे साक्षीको राजा ग्रहण करे जो कार्य निर्णय करनेमें समर्थ हो दोनों वादी प्रतिवादी-योंको रोककर वादकी प्रवृत्ति को राजा करे ॥ ४५ ॥

स्वपुष्टैराजपुष्टैवास्वभृत्यापुरक्षकौ ॥

ससाधनौतत्त्वमिच्छुःकूटसाधनशंकया ४६

भाषार्थ-जो स्वयं पोषण करे वा राजा जिसका पोषण करे अथवा अपनी भृति (नो करी) से जो पोषण और रक्षा करे इन सबके साधन सहित तत्त्वकी इच्छाको राजा करे क्योंकि कोई साधन झूठा नहो जाय ४६

प्रतिज्ञादोषनिर्मुक्तंसाध्यं सत्कारणान्वितं ।

निश्चितलोकसिद्धं च पक्षं पक्षविदो विदुः ॥ ४७

भाषार्थ-प्रतिज्ञाके दोषोंसे रहित अच्छे कारणों सहित जो निश्चय किया और लोक सिद्धसाध्य पक्षके जाननेवाले उसको पक्ष कहते हैं ॥ ४७ ॥

अन्यार्यमर्थहीनं च प्रमाणमवर्जितं ।

लेख्यहीनाधिकं भ्रष्टं भाषादीपा उदाहृताः ॥

भाषार्थ-जो अन्य अर्थवाला हो अथवा अर्थसे हीन (रहित) हो प्रमाण और आगमसे वर्जित हो लिखने योग्य बातसे हीन हो वा अधिक हो वा भ्रष्ट हो-ये भाषा (अर्ज) के दोष कहे हैं ॥ ४८ ॥

अप्रसिद्धं निरावाधं निरर्थं निष्प्रयोजनं ।

असाध्यवाविरुद्धं वा पक्षाभासं विवर्जयेत् ४९

भाषार्थ-जो प्रसिद्ध नहो निरावाध हो निरर्थक हो निष्प्रयोजन नहो असाध्य हो वा विरुद्ध हो ऐसे पक्षाभास (नामका पक्ष) को वर्जदे ॥ ४९ ॥

न केनचिच्छृतो दृष्टः सोऽप्रसिद्ध उदाहृतः ।

अहं मूकेन संशयो बंध्यापुत्रेण ताडितः ॥ ५०

भाषार्थ-जो किसीने सुना हो न देखा हो उसको अप्रसिद्ध कहते हैं जैसे कि मुझे गूंगेने गाली दी और बंध्याके पुत्रने मुझे मारा ॥ ५० ॥

अधीते सुस्वरांगातिस्वेगे देविहरत्ययं

धत्ते मार्गं मुखद्वारं मम गेह समीपतः ॥ ५१ ॥

भाषार्थ-यह मनुष्य मेरे घरके समीप अपने घरमें बड़े ऊंचे स्वरसे पढ़ता है गाता है और अपने घरका दरवाजा भेड़कर फ्रीडा करता है ॥ ५१ ॥

इति ज्ञेयं निरावाधं निष्प्रयोजनमेव तत् ।

सदामहत्तकन्यायां जामाता विहरत्ययं ॥ ५२

भाषार्थ-इसको निरावाध जानना और वही निष्प्रयोजन होता है-यह मेरा जमाई मेरी दीहुई कन्यामें सदैव विहार करता है ५२

गर्भधत्ते न बंध्येयं मृतो र्थं न प्रभापते ।

किमर्थमिति तज्ज्ञेयमसाध्यं च विरुद्धकं ५३

भाषार्थ-और गर्भधारण करती है क्योंकि मेरी कन्या बंध्या नहीं है और मेरे संग मरा यह बोलता क्यों नही इसको असाध्य और विरुद्ध कहते हैं ॥ ५३ ॥

महत्तदुःखं सुखतो लोको दुप्यति नंदति ।

निरर्थमिति वा ज्ञेयं निष्प्रयोजनमेव वा ॥ ५४

भाषार्थ-मेरे दिये दुःखसे जगद दुःखी और सुखसे प्रसन्न होता है इसको निरर्थक वा निष्प्रयोजन जानना ॥ ५४ ॥

श्रावयित्वा तु यत्कार्यं त्यजेदप्यद्वेदसौ ।

अन्यपक्षाश्रयाद्वादीहीनो दंडयश्च स स्पृष्टः

भाषार्थ—जो यह पुरुष एक कार्यको सुना कर त्यागदे और अन्य कार्यको कहने लगे वह वादी अन्यपक्षके आश्रयसे हीन और दंड देने योग्य कहाँ है ॥ ५५ ॥

विनिश्चितपूर्वपक्षेग्राह्याग्राह्यविशोधिते ।

प्रतिज्ञार्थैस्थिरीभूतेलेखयेदुत्तरंततः ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—जब पूर्वपक्ष (अर्जी) का निश्चय हो जाय और ग्रहण करने योग्य वा अयोग्यका निश्चय होजाय और प्रतिज्ञा कियाहुआ अर्थ स्थिर होजाय उसके अनंतर उत्तरको लिखे ॥ ५६ ॥

तत्राभियोक्ताप्राक्पृष्टोह्यभियुक्तस्त्वनंतरं ।

प्राह्विवाकसदस्याद्यैर्दाप्यतेह्युत्तरंततः ॥

भाषार्थ—उस समय वादीको प्रथम पूछे और प्रतिवादीको उसके अनंतर और फिर प्राह्विवाक और सभासद आदिसँ उत्तर दिवाँ ॥ ५७ ॥

श्रुतार्थस्योत्तरंलेख्यंपूर्वविदकसंनिधौ ।

पक्षस्यव्यापकंसारमसंदिग्धमनाकुलं ॥

भाषार्थ—और सुने हुये अर्थका उत्तर वादीके सन्मुख लिखना चाहिये जो संपूर्ण पक्षका व्यापक (पूरा) हो और सार-संदेह-रहित-और व्याकुलतासे न दिया हो ॥ ५८ ॥

अव्याख्यागम्यमित्येतन्निर्दुष्टंप्रतिवादिना ।

संदिग्धमन्यत्प्रकृतादत्यल्पमतिभूरिच ॥

भाषार्थ—जो टीकाके बिना समझाय और प्रतिवादी जिसमें कोई दोष नदे और जो उचित उत्तरसे भिन्न हो अथवा अत्यन्त अल्प और अत्यंत अधिक हो वह संदिग्ध उत्तर कहाता है ॥ ५९ ॥

पक्षैकदेशेव्याप्यंयत्तुनैवोत्तरंभवेत् ।

नवाहूतोवदेत्किंचिद्धीनोदंडयश्चसःस्मृतः

भाषार्थ—जो उत्तर पूर्वपक्षके एकदेशका हो वह उत्तर नहीं होता और प्रतिवादी बुलाने पर कुछ न कहे वह हीन और दंड देने योग्य कहाँ है ॥ ६० ॥

पूर्वपक्षेयथार्थेतुनदद्यादुत्तरंतुयः ।

प्रत्यर्थीदापनीयःस्यात्सामादिभिरुपक्रमैः

भाषार्थ—जो प्रतिवादी यथार्थभी पूर्वपक्षका उत्तर न दे वह शांति आदि उपायोंसे दंड देने योग्य होताहै ॥ ६१ ॥

मोहाद्व्यायदिवाशाशयाद्यन्नोक्तंपूर्ववादिना ।

उत्तरांतर्गतंवातत्प्रश्नैर्ग्राह्यंद्वयोरपि ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—मोह वा शठतासे जो बात पूर्ववादिने न कहीहो-अथवा जो उत्तरमें ही आजाय वह बात पूछकर दोनोंकी ग्रहण करने योग्य है ॥ ६२ ॥

सत्यमिथ्योत्तरंचैवप्रत्यवस्कंदनंतया ।

पूर्वन्यायविधिश्चैवमुत्तरस्याच्चतुर्विधं ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—सत्य-मिथ्या-उत्तर और प्रत्यवस्कन्दन-और पूर्वन्यायका विधान इन भेदोंसे उत्तर चारप्रकारका होताहै ॥ ६३ ॥

अंगीकृत्यथार्थयद्वाद्युक्तंप्रतिवादिना ।

सत्योत्तरंतुतज्ज्ञेयंप्रतिपत्तिश्चास्मृता ॥

भाषार्थ—जिस वादीके कथनको प्रतिवादीने यथार्थ मानलियाहो उसको सत्योत्तर कहते हैं और वही प्रतिपत्ति कही है ॥ ६४ ॥

श्रुत्वाभाषार्थमन्यस्तुयदितंप्रतिषेधति ।

अर्थतःशब्दतोवापिमिथ्यातज्ज्ञेयमुत्तरं ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—भाषा (अर्जी) के अर्थको सुनकर यदि उसका कोई अर्थ वा शब्दसे निषेध करे वह उत्तर मिथ्या जानना ॥ ६५ ॥

मिथ्यैतन्नाभिजानामितदातत्रनसानिधिः ।
अजातश्चास्मितत्कालेइतिमिथ्याचतुर्विधं ॥

भाषार्थ—यह मिथ्या हैं—मैं जानता नहीं—
उस समय मैं वहां समीपमें नहीं था—और उस
समय मैं पैदाही नहीं हुआ था—इस प्रकार
मिथ्या चारप्रकारका है ॥ ६६ ॥

अर्थिनालिखितेऽर्थः प्रत्यर्थीयदितंतथा ।
प्रपद्यकारणं ब्रूयात्प्रत्यवस्कन्दनं हितम् ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—आदिने जो अर्थ लिखा हो उसको
यदि वादी मानकर कोई कारण कहे उस
उत्तरको प्रत्यवस्कन्दन कहते हैं ॥ ६७ ॥

अस्मिन्नर्थे ममानेन वादः पूर्वमभूत्तदा ।
जितोयमस्ति चेद्ब्रूयात्प्राङ्न्यायसमुदाहृत

भाषार्थ—इस विषयमें मेरा इसके संग
पहिले विवाद हुआ था उसमें इसको पराजय
कर चुका हूं उस उत्तरको प्राङ्गन्याय कहते
हैं ॥ ६८ ॥

जयपत्रेण सभ्यैर्वासाक्षिभिर्भाविष्याम्यहं ।
मयाजितः पूर्वमिति प्राङ्गन्यायस्त्रिविधः स्मृतः

भाषार्थ—और वह प्राङ्गन्याय इन भेदोंसे
तीन प्रकारका कहा है कि जयके पत्रसे वा
सभासदोंसे वा साक्षियोंसे—मैं भावना (नि-
श्चय) कर सकता हूं ॥ ६९ ॥

अन्योन्ययोः समक्षं तु वादिनोः पक्षमुत्तरं ।
नहि गृह्णति ये सभ्या दंड्यास्ते चौरवत्सदा ॥

भाषार्थ—जो सभासद दोनों वादी और
प्रतिवादीके समक्ष (सामने) पक्ष वा उत्तरको
ग्रहण नकरें वे सदैव चोरके समान दंड देने
योग्य हैं ॥ ७० ॥

लिखितेशोधिते सम्यक् सति निर्दोष उत्तरे ।
अर्थिप्रत्यर्थिनो वापि क्रियाकारणमिष्यते ॥

भाषार्थ—तब दोनों वादी और प्रतिवादी-
की क्रिया (मुकद्दमा) का करना अच्छा
कहा है जब उत्तर लिखकर और शुद्ध
होकर निर्दोष हो जाय ॥ ७१ ॥

पूर्वपक्षः स्मृतः पादो द्वितीयश्चोत्तरात्मकः ।
क्रियापादस्तृतीयस्तु चतुर्थो निर्णयाभिधः ॥

भाषार्थ—और इन भेदोंसे न्याय चार प्र-
कारसे होता है प्रथम पाद पूर्वपक्ष—दूसरा
पाद उत्तर—तीसरा पाद क्रिया—और चौथा
पाद निर्णय कहा है ॥ ७२ ॥

कार्यहि साध्यमित्युक्तं साधनं तु क्रियोच्यते ।
अर्थितृतीयपादे तु क्रियायाः प्रतिपादयेत् ॥

भाषार्थ—कार्यको साध्य कहते हैं और
क्रियाको साधन—और वादी क्रियारूप ती-
सरे पादमें साधनको कहें ॥ ७३ ॥

चतुष्पाद्व्यवहारः स्यात्प्रतिपत्त्युत्तरं विना ।
क्रमागतान्विवादास्तु पश्येद्वा कार्यगौरवात्

भाषार्थ—और प्रतिपत्ति उत्तरके विना व्य-
वहारके चार पाद होते हैं—और सभामें क्रमसे
आये जो विवाद उनको कार्यके गौरवानु-
सार राजा देखें ॥ ७४ ॥

यस्य वाभ्यधिका पीडा कार्यवाभ्यधिकं भवेत् ।
वर्णानुक्रमतो वापि नयेत्पूर्वविवादयेत् ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—जिसको अधिक पीडा हो अथवा
जिसका कार्य अधिक हो अथवा जो चारों
वर्णोंमें उत्तम हो उसका ही प्रथम न्याय वा
विवादका निर्णय करें ॥ ७५ ॥

कल्पयित्वा उत्तरं सभ्यैर्दातव्यैकस्य भावना ।
साध्यस्य साधनार्थं हि निर्दिष्टा यस्य भावना ॥

भाषार्थ—सभासद उत्तरकी कल्पना कर
के यह देखें कि देने योग्य वस्तुमें भावना

किसकी है और साध्य वा साधनके लिये जिसकी भावना देखी हो ॥ ७६ ॥

विभावयेत्प्रतिज्ञातंसोऽखिलं लिखितादिना ।
नचैकस्मिन्विवादेतुक्रियास्याद्वादिनोर्द्वयोः

भाषार्थ—वही मनुष्य संपूर्ण प्रतिज्ञा किये-
का लिखने आदिसे निश्चय करदे—और एक
विवादमें दो वादियोंकी क्रिया नहि होती
॥ ७७ ॥

मिथ्याक्रियापूर्ववादेकारणप्रतिवादिनि ।
प्राङ्न्यायकारणोक्तौतुप्रत्यर्थानिर्दिशेत्क्रि-
यां ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—पूर्व वादमें जो प्रतिवादी कारण
को कहै वहां मिथ्याक्रिया होती है—और
प्रथम न्यायके कारणको प्रतिवादी कहै
वहां प्रतिवादीही उसका कारण दिखाये
॥ ७८ ॥

तत्वाच्छलानुसारित्वाद्भूतं भव्यं द्विधा स्मृतं ।
तत्त्वं सत्यार्थाभिधायिकूटाद्यभिहितं छलं ७९

भाषार्थ—यथार्थ और छलके अनुसार भूत
और भव्य दो प्रकारका कहा है—जो सत्य
अर्थका अभिधायी हो वह तत्त्व और जो
कूटादिअर्थोंका अभिधायी हो वह छल
कहा है ॥ ७९ ॥

कारणात्पूर्वपक्षोपि उत्तरत्वं प्रपद्यते ।
ततोर्थालेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनं ८०

भाषार्थ—किसी कारणसे पूर्वपक्षभी उत्तर
हो जाता है—फिर अर्थी (वादी) अपने प्रति-
ज्ञाकिये अर्थके साधनको लिखै ॥ ८० ॥

तत्साधनं तु द्विविधं मानुषं दैविकं तथा ।
त्रिधास्याल्लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति मा-
नुषं ॥ ८१ ॥

भाषार्थ—वह साधन मानुष और दैविक-
भेदसे दो प्रकारका है तिनमें मानुष साध-
न इनभेदोंसे तीन प्रकारका होता है कि-
लिखाहुआ—वा भोगाहुआ अथवा जिसमें
कोई साक्षी हो ॥ ८१ ॥

दैवधृतादितद्रव्यं भूतालाभेनियोजयेत् ।
युक्तानुमानतो नित्यं सामादिभिरुपक्रमैः ॥

भाषार्थ—धृट (तोल) आदि दैव होता
है उसको भूत और भव्यके न मिलनेपर
युक्ति अनुमान और साम आदि उपायोंसे
नियुक्त करें ॥ ८२ ॥

न कालहरणं कार्यरताज्ञासाधनदर्शने ।
महान्देपो भवेत्कालाद्धर्मव्यापत्तिलक्षणः ॥

भाषार्थ—राजा साधनके देखनेमें विलंब न
करै क्यों कि समयके विलंबसे धर्मका ना-
शरूप महान् दोष होता है ॥ ८३ ॥

अर्थीप्रत्यर्थिप्रत्यक्षं साधनानि प्रदर्शयेत् ।
अप्रत्यक्षं तयोर्नैव गृह्णीयात्साधनं नृपः ८४

भाषार्थ—वादी अपने साधनों (सबूत)
को प्रतिवादीके सामने दिखाने और रा-
जा वादी और प्रतिवादीके अप्रत्यक्ष (पीछे)
साधनको स्वीकार नकरै ॥ ८४ ॥

साधनानां च ये दोषावक्तव्यास्ते विवादिना ।
गूढास्तु प्रकटाः सभ्यैः कालशास्त्रप्रदर्शनात्

भाषार्थ—और प्रतिवादीके साधनोंमें जो
दोष हों उनको वादी कहै और जो दोष
गुप्त हों उनको काल और शास्त्रके अनुसार
समासद प्रकट करै ॥ ८५ ॥

अन्यथा दूषयन् दंड्यः साध्या र्थादेव हीयते ।
विमृश्य साधनं सम्यक्कुर्यात्कार्यविनिर्णयं ॥

भाषार्थ—यदि वादी अन्यथा (झूठा) ही दोष दिखाने तो दंडदेने योग्य हैं और अपने साध्य अर्थको प्राप्त नहीं होता और राजा साधनको भलीप्रकर विचार कर कार्यका निर्णय करे ॥ ८६ ॥

कूटसाधनकारीतुदंध्यःकार्यानुरूपतः ।
द्विगुणंकूटसाक्षीतुसाध्यलोपीतयैवच ८७ ॥

भाषार्थ—झूठा साधन करनेवालेको कार्य-के अनुसार राजा दंड दे-और झूठे साक्षी और साक्षी के लोप करनेवालेको दूना दंड दे ॥ ८७ ॥

अधुनालिखितं वचमियथावदनुपूर्वशः ।
अनुभूतस्मारकं तु लिखितं ब्रह्मणा कृतं ८८ ॥

भाषार्थ—अभी लिखे हुयेको क्रमसे यथार्थ कहताहुं और जो अनुभूत (वीती) का जतानेवाला है वह लेख ब्रह्माका किया समझना ॥ ८८ ॥

राजकीयं लौकिकं च द्विविधं लिखितं स्मृतं ।
स्वहस्तलिखितं वान्यहस्तेनापि विलेखितं ८९ ॥

भाषार्थ—लेख दो प्रकारका होता है एक राजकीय और दूसरा लौकिक वह चाहें अपने हाथसे लिखा हो वा अन्यके हाथसे लिखाया हो ॥ ८९ ॥

असाक्षि मत्साक्षि मच्चसिद्धिदेशस्थितेस्तयोः
भोगदानक्रियाधानसंविदासंक्रणादिभिः ९० ॥

भाषार्थ—और चाहें वह साक्षीसे युक्त हो वा अयुक्त हो और उसकी सिद्धि देश-सीतिके अनुसार होती है-और भोगना दान क्रिया आधान (धरोर) संवित् (करार) दास-और ऋण आदि भेदसे ॥ ९० ॥

सप्तधालौकिकं चैतत्त्रिविधं राजशासनं
शासनार्थज्ञापनार्थनिर्णयार्थतृतीयकं ९१ ॥

भाषार्थ—लौकिक सात प्रकारका और राजाका शासन तीन प्रकारका है की शिक्षाके लिये-जतानेके लिये और तीसरा निर्णयके लिये ॥ ९१ ॥

राज्ञा स्वहस्तसंयुक्तं स्वमुद्राचिह्नितं तथा ।
राजकीयं स्मृतं लेख्यं प्रकृतिभिश्च मुद्रितं ९२ ॥

भाषार्थ—जो राजाने अपने हाथसे लिखा-हो अथवा जिसपर राजाके प्रकृति (मंत्री) आदिने अपनी राजमुद्रा लगादी हो अथवा ९२ निवेद्य कालं वर्षं च मासं पक्षं तिथिं तथा ।
वेलाप्रदेशं विषयं स्थानं जात्या कृतिं वयः ९३ ॥

भाषार्थ—जिसमें संवत् ऋतु महीना पक्ष-तिथि समय देश विषय स्थान जाति आकार और अवस्था और ॥ ९३ ॥

साध्यं प्रमाणं द्रव्यं च संख्यानां मतयात्मनः ।
राज्ञां च क्रमशो नाम निवासं साध्यनाम च ९४ ॥

भाषार्थ—साध्य (द्रविका द्रव्य आदि) प्रमाण द्रव्य-संख्या और अपना नाम और क्रमसे राजाओंका नाम निवास और साध्यका नाम और ॥ ९४ ॥

क्रमात्पितृणां नामानि पितामह तृतीयकं ।
क्षमालिंगानि चान्यानि पक्षे संकीर्त्य लेखयेत् ९५ ॥

भाषार्थ—पितरोंके नाम और पितामह-और प्रपितामहके नाम और क्षमा आदिके अन्य चिह्न इन सबको पक्ष (अर्जी) में कहकर लिखवावे ॥ ९५ ॥

यत्रैतानि न लिख्यंते हीनलेख्यं तदुच्यते ।
भिन्नक्रमं व्युत्क्रमार्थं प्रकीर्णार्थं निरर्थकं ९६ ॥

भाषार्थ—जिसमें ये सब न लिखे जाय उसको हीनलेख कहते हैं और क्रमरहित और जिसका क्रम लुटा हो वा जिसका

अर्थ प्रकीर्ण (कम) हो अथवा निरर्थक हो ॥ ९६ ॥

अतीतकाललिखितं न स्यात्तत्साधनक्षमं ।

अप्रगल्भेण च स्त्रिया बलात्कारेण यत्कृतं ९७

भाषार्थ—जो समय (म्याद) विताकर लिखा है वह लेख साधनके योग्य नहीं होता और जो अप्रगल्भ मनुष्यने अथवा स्त्रीने किया हो वह भी साधनयोग्य नहीं ॥ ९७ ॥

सद्भिर्लेख्यैः साक्षिभिश्च भोगैर्दिव्यैः प्रमाणतां व्यवहारे न रीयाति चेहासु प्राप्नुते सुखं ॥ ९८ ॥

भाषार्थ—और अच्छे लेख-साक्षी-भोग (वर्तना वा कवजा) दिव्य इनसे मनुष्य व्यवहारमें प्रमाणताको प्राप्त होता है और चेष्टाओंमें सुखका भागी होता है ॥ ९८ ॥

स्वेतरः कार्यविज्ञानीयः स साक्षीत्वेन कथा ।

दृष्टार्थश्च श्रुतार्थश्च कृतश्चैवाऽकृतो द्विधा ९९

भाषार्थ—अपनेसे भिन्न जो कार्यका ज्ञाता वह साक्षी होता है उसके अनेक भेद हैं एक वह जिसने देखा हो और जिसने सुना हो और वह साक्षी दो प्रकारका होता है— किया हो वा न किया हो ॥ ९९ ॥

अर्थिप्रत्यर्थिसात्रिध्यादनुभूतं तु प्राग्यथा ।

दर्शनैः श्रवणैर्येन स साक्षी तुल्यवाग्यदि ॥

भाषार्थ—वादी और प्रतिवादीके समीप जैसा प्रथम जिसने देखने वा सुननेसे जाना हो वह साक्षी होता है यदि उसकी वाणी एकसी रहे ॥ १०० ॥

यस्य नोपहता बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रं च नित्यशः ।

सुदीर्घेणापिकालेन स वै साक्षित्वमर्हति ॥ १०१ ॥

भाषार्थ—जिसकी बुद्धि-स्मरण-और श्रोत्र ये सदैव बहुतकालतक नष्ट नहीं वह मनुष्य साक्षी होनेके योग्य होता है ॥ १०१ ॥

अनुभूतः सत्यवाग्यः सैकः साक्षित्वमर्हति ।

उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपि धर्मवित् ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—जिसको सब सच्चा जानते हैं वह एकही साक्षी होने योग्य होता है वादी और प्रतिवादी दोनोंकी समतिसे एकभी धर्मका जाननेवाला साक्षी हो सकता है ॥ १०२ ॥

यथा जातियया वर्णसर्वे सर्वेषु साक्षिणः ।

गृहिणो न पराधीनाः सूरयश्चाप्रवादिनः ॥ १०३ ॥

भाषार्थ—जाति और वर्णके अनुसार सबही सबके साक्षी हो सकते हैं—और जो गृहस्थी पराधीन नहीं और जो शूरावर परदेशमें न रहते हैं वे और ॥ १०३ ॥

युवानः साक्षिणः कार्यः स्त्रियः स्त्रीपुचकी तिताः ।

साहसे पुचसर्वे पुस्त्यसंग्रहणे पुच ॥ १०४ ॥

भाषार्थ—जो युवा हैं वे साक्षी करने और स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करनी कही है—और संग्रहण साहस-चोरी और संग्रहणोंमें और ४ वाग्दंडयोश्च पारुष्येन परीक्षेत साक्षिणः ।

वालो ज्ञानादसत्यात् स्त्रीपापाभ्यासाच्च कूटकृत् ॥ १०५ ॥

भाषार्थ—कठोर वाणी और कठोर दंडमें साक्षियोंकी परीक्षा न करे—और अज्ञानसे बालक और झूठी स्त्री और पापके अभ्याससे छलका कर्ता ॥ १०५ ॥

विब्रूयाद्वांधवः स्नेहाद्वैरनिर्यातनादरिः ।

अभिमानाच्च लोभाच्च विजातिश्च शठस्तथा ॥

भाषार्थ—और बंधु स्नेहसे और शत्रु वैरसे विरुद्ध कह सकता है और अभिमानसे लोभसे विजाति और शठभी विरुद्ध कह सकते हैं ॥ १०६ ॥

उपजीवनसंकोचाद्भृत्यश्चैतेह्यसाक्षिणः ।

नार्थसंबन्धिनोविद्यायोनिसंबन्धिनोपि न ॥ ७ ॥

भाषार्थ—और उपजीवन (नौकरी) के संकोचसे भृत्य—ये सब साक्षी नहीं हो सकते और धनके संबंधी और विद्या और योनिके संबंधीभी साक्षी नहीं हो सकते ॥ ७ ॥

श्रेण्यादिपुत्रवर्गेषु कश्चिन्नेदृश्यतामियात् ।

तस्य तेभ्योनसाक्ष्यं स्याद्देष्टारः सर्व एव ते ८ ॥

भाषार्थ—जो श्रेणी आदि समूहमें कोई वैरभावको प्राप्त हो जाय उससे उसकी साक्षी नहीं हो सकती क्योंकि वे सब वैरी होते हैं ॥ ८ ॥

न कालहरणं कार्यरत्नाज्ञासाक्षिप्रभाषणे ।

अर्थिप्रत्यर्थिसान्निध्ये साध्यार्थपेक्षसन्निधौ

भाषार्थ—राजा साक्षीके कथनमें समयको न विताने और वादी प्रतिवादीके साहजिक और साध्य अर्थकीभी समीपतामें ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षवादयेत्साक्ष्यं न परोक्षं कथंचन ।

नांगीकरोति यः साक्ष्यं दंडचः स्याद्विशितो यदि ॥ १० ॥

भाषार्थ—प्रत्यक्ष साक्षीको कहावे परोक्षमें कदाचित् न कहावे—जो साक्षीको अंगीकार न करे वह साध्यके दंड देनेयोग्य है ॥ १० ॥

यः साक्षान्नैव निर्विद्वो नाहूते नैव देशितः ।

ब्रूयान्मिथ्येतितथ्यं वा दंडचः सोऽपि न राधमः

भाषार्थ—जिसको साक्षी लिये न कहा होय न बुलाया होय न आज्ञा दी हो यदि मिथ्या वा सत्य साक्षी वह नरोंमें नीच दंड देनेयोग्य है ॥ ११ ॥

द्वैधे बहूनां वचनं स मे पुगुणिनां वचः ।

तत्राधिकगुणानां च गृहीयाद्वचनं सदा १२ ॥

भाषार्थ—जो साक्षीमें दो प्रकार हो जिस-तरफ बहुतांका वचन होय उसको सत्य ग्रहण करे यदि दोनों पक्षोंमें साक्षी बराबर होय तो गुणवालोंका वचन ग्रहण करे और गुणवालोंमें भी जो अधिक गुणवाले हो उनके वचन सदैव ग्रहण करे ॥ १२ ॥

यत्रानियुक्तोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन ।

पृष्ठस्तत्रापि स ब्रूयाद्यथादृश्यया श्रुतं ॥ १३ ॥

भाषार्थ—जहां विनानियुक्त किया भी पुरूप देखे वा कुछ सुने वहां वह भी अपने देखे और सुनेके अनुसार साक्षीको कह सकता है ॥ १३ ॥

विभिन्नकालेषु ज्ञातं साक्षिभिश्चांशतः पृथक्

एकैकं वादयेत्तत्र विधिरेष सनातनः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—और भिन्न २ समयमें साक्षियों—ने जहां पृथक् २ जाना होय वहां एक २ से साक्षीका कथन करावे यह सनातनिक विधि है ॥ १४ ॥

स्वभावोक्तं वचस्तेषां गृह्णीयात्प्रवलात्कचित्

उक्तं तु साक्षिणां साक्ष्येन प्रष्टव्यं पुनः पुनः १५ ॥

भाषार्थ—उनके स्वभावसे कहुये वचन को ग्रहण करे और बलसे कभी न करे जब साक्षी देनेवाला अपनी साक्षीको कहदे तब बारंवार न पूछे ॥ १५ ॥

आहूय साक्षिणः पृच्छेन्नियम्य शपथैर्भृशं ।

पौराणैः सत्यवचनधर्ममाहात्म्यकीर्तनैः १६ ॥

भाषार्थ—साक्षियोंको बुलाकर गंगा आदि—की सोगंदे पुराणके सत्य वचन धर्मका माहात्म्य इनको कहकर पूछे ॥ १६ ॥

अनृतस्यातिदोषैश्च भृशमुत्त्रासयेच्छनैः ।

देशकालिकथं कस्मात्किं दृष्टं वा श्रुतं त्वया १७ ॥

भाषार्थ—और झूठ बोलनेमें अत्यंत दोषोंसे चारवार भय दिखवि और शूनः२ इस प्रकार पूछे कि किस देशमें किस कालमें किस प्रकार किस कारणसे तेने इस विषयमें क्या देखा क्या सुना ॥ १७ ॥

लिखितलेखितंयत्तद्वदसत्यंतदेवहि ।
सत्यंसाक्ष्यंहुवन्साक्षीलोकानाप्नोतिपुष्क
लान् ॥ १८ ॥

भाषार्थ—जो लिखाहों अथवा लिखवायाहों उसीको सत्य कहों साक्षीमें सच बोलता हुआ साक्षी उत्तम २ लोकोंको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

इहचानुत्तमांकीर्तिंवागेपाब्रह्मपूजिता ।
सत्येनपूज्यतेसाक्षीधर्मःसत्येनवर्धते ॥ १९ ॥

भाषार्थ—इस लोकमें उत्तम कीर्ति होती है यह वाणी वेदमेंभी पाजित कही है सत्यसे साक्षी पूजाता है सत्यसे धर्म बढ़ता है १९॥
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गातिरात्मैव ह्यात्मनः

भाषार्थ—तिससे सब वर्णोंमें साक्षी सत्य कहै अपनी आत्माका साक्षी आपहै अपनी आत्माका गति आत्माही है ॥ २० ॥

मावर्मस्यास्त्वमात्मानं नृणां साक्षित्वमुत्तमं ।
मन्यतैवैपापकारीनकाश्चित्पश्यतीति मां २१

भाषार्थ—जिससे मनुष्योंकी साक्षी देनेमें अपने आत्माका अपमान सुनकर पाप करनेवाला मनुष्य यह मानता है कि मुझे कोई नहीं देखता ॥ २१ ॥

तांश्च देवाः प्रपश्यन्ति तथा ह्यंतरपूरुषः ।
सुकृतं यत्त्वयार्किचिज्जन्मांतरशतैः कृतं २२

भाषार्थ—उसको देवता सबका अंतर्धामी परमेश्वर देखता है जो सो जन्मोंमें तेने कुछ पुण्य किया है ॥ २२ ॥

तत्सर्वतस्य जानीहियं पराजयसंभृता ।
समाप्नोति च तत्पापं शतजन्मकृतंसदा ॥ २३ ॥

भाषार्थ—वह सब पुण्य उसका जान जिसकी वृ श्रुती पराजय कराता है उसने जो सो जन्ममें पाप किया है उसको वृ प्राप्त होगा ॥ २३ ॥

साक्षिणं श्रावयेदेव स भायामरहोगतं ।
दद्याद्देशानुरूपं तु कालसाधनदर्शनं ॥ २४ ॥

भाषार्थ—इस प्रकार साक्षीको सभामें सबके सन्मुख सुनावे और देशके अनुसार साधन (सबूत) दिखानेको लिये समयदे ॥ २४ ॥
उपाधिवासमीक्ष्यैव देवराजकृतंसदा ।

विनष्टेलिखिते राजा साक्षिभोगैर्विचारयेत् ॥

भाषार्थ—और देव राजाकी उपाधिको देखकर लिखित नष्ट हो जाय तो राजा साक्षी और भोग (कवचा) से विचार करे ॥ २५ ॥

लेखसाक्षि विनाशे तु सद्भोगादेव चिंतयेत् ।
सद्भोगाभावतः साक्षीलेखतो विमृशेत्सदा ॥

भाषार्थ—लेख और साक्षी दोनों न मिले तो उत्तम भोगसेही विचार करे और अच्छा भोग न होय तो सदैव साक्षी और लेखसे सदैव विचार करे ॥ २६ ॥

केवल न च भोगेन लेखेनापि च साक्षिभिः ।
कार्यं न चिंतयेद् राजा लोकदेशादि धर्मतः २७ ॥

भाषार्थ—केवल भोगसे या केवल लेख अथवा साक्षीयोसे राजा लोक और देशके धर्मानुसार कार्यकी चिंता करे ॥ २७ ॥

कुशललेख्यविवानिकुर्वतिकुटिलाःसदा ।
तस्मान्नलेख्यसामर्थ्यात्सिद्धिरेकांतिकी
मता ॥ २८ ॥

भाषार्थ—कुशल और कुटिल जो लिखने
वाले हैं वे सदैव वनावटके लेख करलेंते हैं
तिससे लेखके बलसे सिद्धिका निर्णय नहीं-
माने ॥ २८ ॥

सैहलोभभयक्रोधैःकूटसाक्षित्वशंकया ।
केवलैःसाक्षिभिर्नैवकार्यसिध्यतिसर्वदा २९

भाषार्थ—और घेह लोभ-भय-क्रोध इनसे
झुठे साक्षीकी शंका होसकती है इससे के-
वल साक्षियोंसेही कार्यसिद्धि नहीं होती २९
अस्वामिकंस्वामिकंवाभुंक्त्यद्वलदपितः ।
इतिशंकितभागेनैवकार्यसिध्यतिकेवलैः ॥ ३०

भाषार्थ—वलके अभिमानवाला मनुष्य
अपनी और पराईको भोग सकता है इस
प्रकार केवल शंकावाले भोगोंसेही कार्य-
सिद्धि नहीं होसकती ॥ ३० ॥

शंकितव्यवहारेपुशंकयेदन्यथानहि ।
अन्यथाशंकितान्श्रम्यान्दंडयेच्चौरवन्नृपः ॥

भाषार्थ—जिनव्यवहारमें शंका हों उनमें
अन्यथा शंका न करे यदि राजाके सभासद
अन्यथा शंका करे तो राजा चौरके समान
दंड दे ॥ ३१ ॥

अन्यथाशंकनान्नित्यमनवस्थाप्रजायते ।
लोकोविभिद्यतेधर्मव्यवहारश्चहीयते ॥ ३२

भाषार्थ—अन्यथा शंका करनेसे व्यवहा-
रकी अनवस्था होती है अर्थात् निवृत्तराज-
ही होता लोकमें धर्म और व्यवहार दोनों
नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

सागमोदीर्घकालश्चविच्छेदोपरमोज्झितः ।
प्रत्यर्थिसन्निधानश्चभुक्तोभोगःप्रमाणवत् ॥

भाषार्थ—आगम (लेख) और दीर्घकाल
और दूसरेका छोडाहुआ विच्छेद (भोगका
अभाव) और प्रत्यर्थीकी समीपता इस प्रकार
भोगाहुआ भोग प्रामाणिक होता है ॥ ३३ ॥
संभोगंकीर्तयेद्यस्तुकेवलंनागमंकचित् ।
भोगच्छलापदेशेनविज्ञेयःसतुतस्करः ३४

भाषार्थ—जो मनुष्य केवल भोगको बतावे
और आगमका बता नदें वह भोगके छलके
वहानेसे तस्कर (चोर) जानना ॥ ३४ ॥
आगमेपिबलंनैवभुक्तिस्तोकापियन्नो ।
यंकंचिद्वशवर्षाणिसन्निधौप्रैक्षतेधनी ॥ ३५

भाषार्थ—वह आगमभी बलवान नहीं
होता जहां कुछभी नहोय धनवाला मनुष्य
जिस किसीको दश वर्षतक अपने समीप यह
देखता हैकि ॥ ३५ ॥

भुज्यमानंपरैरर्थनसतंतलब्धुमर्हति ।
वर्षाणिविंशतिर्यस्यभूभुक्तातुपरैरिह ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—इसमें पैदा हुये धनको दूसरे भो-
ग रहेहैं उस धनको वह धनवान नहीं लेसक-
ता जिस मनुष्यकी भूमिको २० वीस वर्ष
तक भोगाहो ॥ ३६ ॥

सतिराज्ञिसमर्थस्यतस्यसेहनसिध्यति ।
अनागमंतुयोभुंक्तवह्न्यन्दशतान्यपि ॥

भाषार्थ—और राजा विद्यमान और भूमिका
स्वामीभी समर्थ होय उसकी वह भूमि सिद्ध
नहीं हो सकती और आगमके बिना जो
बहुतसे सैंकड़ो वर्षभी भोगे ॥ ३७ ॥

चौरदंडेनतंपापदण्डयेत्पृथिवीपतिः ।
अनागमापियाभुक्तिर्विच्छेदोपरमोज्झिता ॥

भाषार्थ—उस पापीको राजा चौरके समान
दंड दे-और बिना आगमभी निरंतर जो
भोग ॥ ३८ ॥

षष्टिवर्षात्मिकासापदुर्तुशकयानकेनचित् ।
आधिःसीमाबालधननिक्षेपोपनिधिःस्त्रियः

भाषार्थ—साठ वर्षतक होंय उसको कोई नहीं छीन सकता है आधि (धरोहर) सीमा (ग्रामपर्याप्त) बालकका धन सोपना स्त्री ॥ ३९ ॥

राजस्वंश्रोत्रियस्वंचनभोगेनप्रणश्यति ।
उपेक्षाकुर्वतस्तस्यतृष्णाभूतस्यतिष्ठतः ॥ ४० ॥

कालेतिपन्नेपूर्वोक्तैतरफलंनाश्रुतेधनी ।
भोगःसंक्षेपतश्चोक्तस्तथादिव्यमथोच्यते ॥

भाषार्थ—और राजा, वेदपाठीका द्रव्य, ये भोग (वर्तना) सेवन नहीं होता यदि वह उपेक्षा करै और चुपका बैठा रहै ४० तो पूर्वोक्त मर्यादाके धीतनेपरभी धनका स्वामी उसके फलको प्राप्त होता है संक्षेपसे भोग वर्णन किया अब दिव्य वर्णन करते हैं ॥ ४१ ॥

प्रमादाद्दुर्निनोयत्रात्रिविधंसाधनंनचेत् ।
अर्थश्चापहुतेवादीतत्रोक्तस्त्रिविधोविधिः ॥

भाषार्थ—यदि धनवालेके प्रमादसे जहां पर तीन प्रकारका साधन न होय तो वादी अर्थ (धन) को छिपाया चाहे तो वहां तीन प्रकारकी विधि कहीहै ॥ ४२ ॥

चोदनाप्रतिकालश्चयुक्तिलेशस्तथैवच ।
तृतीयः शपथःप्रोक्तस्तैरेवंसाधयेत्क्रमात् ॥

भाषार्थ—प्रेरणा समयका व्यत्यय, और युक्तिका लेश और तीसरा शपथ (सोगंदे) इनतीनसे कार्यकी सिद्धि राजा करै ॥ ४३ ॥

विशिष्टतर्कितायाचशास्त्रशिष्टाविरोधिनी ।
योजनास्वार्थसंसिद्धचैसायुक्तिस्तुनचान्य-
या ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—जो उत्तम तर्कना होय शास्त्र और शिष्टोंका जिसमें विरोध न होय और अपने अर्थकी सिद्धिका योग होय उसे युक्ति कहते हैं अन्यको नहीं ॥ ४४ ॥

दानंप्रज्ञापनाभेदःसंप्रलोभक्रियाचया ।
चित्तापनयनंचैवहेतवोहिविभावकाः ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—देना, समझाना, फोड़ना, और उत्तम लोभ देना, और मनको वसमें करना, ये सब कार्यसिद्धिके हेतु होते हैं ॥ ४५ ॥

अभीक्ष्णंचोद्यमानोपिप्रतिहन्यान्नतद्वचः ।
त्रिचतुःपंचकृत्वोवापरतोर्यसदाप्यते ॥

भाषार्थ—चारवार प्रेरण करनेसेभी जो अपने वचनको तीन चार पांच बार कहनेसे न लोटे तो उसको प्रतिवादीसे धन मिल सकता है ॥ ४६ ॥

युक्तिष्वप्यसमर्थसुदिव्यैरेनंविमर्दयेत् ।
यस्माद्देवैःप्रयुक्तानिदुष्कारैर्महात्मभिः ॥

भाषार्थ—जहां युक्तिभी असमर्थ होंय (नचले) वहां दिव्योंसे मनुष्यका मर्दन करै क्योंकि देवता और महात्माने दुष्कर कर्मके लिये दिव्य कहे हैं ॥ ४७ ॥

परस्परविशुद्धयर्थतस्मादिव्यानिवाप्यतः ।
सप्तर्षिभिश्चभीत्यर्थैस्वीकृतान्यात्मशुद्धये ॥

भाषार्थ—परस्पर कार्यकी शुद्धिके लिये दिव्य उपाय होते हैं और डरानेके लिये सप्तर्षियोंनेभी आत्मशुद्धिके लिये दिव्योंको स्वीकार किया है ॥ ४८ ॥

स्वमहत्त्वाच्चयोदिव्यंनकुर्याज्ज्ञानदर्पतः ।
वसिष्ठाद्याश्रितानित्यंसनरोधर्मतस्करः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—जो अपने महत्त्वसे और ज्ञानके अभिमानसे वसिष्ठआदि ऋषियोंके स्वी-

कार किये दिव्यको न माने वह मनुष्य
वर्मका तस्कर होता है ॥ ४९ ॥

प्राप्तेदिव्योपनिशपेद्राज्ञाज्ञानदुर्वलः ।

संहर्तितचधर्मयित्तस्यदेवानसंशयः ॥ ५० ॥

भाषार्थ—ज्ञानका दुर्वल ब्राह्मण दिव्यकी
प्राप्तिके समय निदान कर जो शाप न करे
तो देवता उसके आधे धर्मको हरलेते हैं ५० ॥
यस्तुस्वशुद्धिमन्विच्छन्दिद्व्यंकुर्यादतद्रितः
विशुद्धोलभतेकीर्तिस्वर्गचैवान्ययानहि ५१

भाषार्थ—जो मनुष्य अपनी शुद्धिकी इच्छा
करताहुआ आलस्यको छोड़कर दिव्यका
स्वीकार करता है—विशुद्ध हुआ वह कीर्ति-
को और स्वर्गको प्राप्त होता है और अन्य-
था नहीं होता ॥ ५१ ॥

अग्निर्विषंवटस्तोयं धर्माधर्मांचित्तुल्लाः ।

शपथाश्चैवनिर्दिष्टामुनिभिर्दिव्यनिर्णये ५२

भाषार्थ—अग्नि-विष-तुला-जल-धर्म-
अधर्म-चावल-और सुगंध ये सब दिव्य के
निर्णयमें मुनियोंने कहे हैं ॥ ५२ ॥

पूर्वपूर्वगुरुतरं कार्यं दृष्टानियोजयेत् ।

लोकप्रत्ययतः प्रोक्तं सर्वं दिव्यं गुरुस्मृतं ५३

भाषार्थ—इनमें पहिला २ अधिक होता है
और इनको कार्यको देखकर नियुक्त करें
और जगत्की प्रतीतिसे कहाहुआ दिव्य
संपूर्णही गुरु कहा है ॥ ५३ ॥

तसायोगोलकं धृत्वा गच्छेन्नैव पदं करे ।

तसांगारे पुवा गच्छेत्पद्मं चांसपदं निहि ५४

भाषार्थ—तपाया हुआ लोहेको गोलोका
चिन्ह यदि हाथ पर रखनेसे न पड़े—अथवा
जो मनुष्य सात पदतक तपाये हुये अंगारों
पर गमन करे ॥ ५४ ॥

तप्ततैलगतं लोहमापहस्तेन निर्हरेत् ।

सुततलोहपत्रं वाजिह्वया सल्लिहेदपि ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—तपाये हुये तेलमें डाले हुये मासे
भर लोहको हाथसे उठा ले अथवा तपाये हुये
लोहेके पत्रको जिह्वासे चाट ले ॥ ५५ ॥

गर्भभक्षयेद्धस्तैः कृष्णसर्पसमुद्धरेत् ।

कृत्वा स्वस्य तुलासाम्यं हीनाधिक्यं विशो
धयेत् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—विषको भक्षण कर ले अथवा
हाथसे कालेसापको ले (यदि इन पूर्वी-
क्तोंसे न मरे अथवा हानि न होय तो
जानना कि सच्चा है) अथवा तुलामें अपनी
वपवरके पदार्थको रखकर हीन और अ-
धिकताकी जाच करे ॥ ५६ ॥

स्वेष्टदेवस्नपनजमद्यादुदकमुत्तमं ।

यावन्नियमितः कालस्तावदनुमिमज्जनं ५७

भाषार्थ—अपने इष्ट देवके स्नानके उत्तम
जलका पान करें अथवा नियमित कालतक
जलमें डूबा रहें ॥ ५७ ॥

अधर्मधर्ममूर्तीनामद्वद्वहरणं तथा ।

कर्ममात्रांस्तुलांश्च चर्वयेच्च विशंकितः ५८

भाषार्थ—अधर्म और धर्मकी मूर्तियोंको
न देखे न हरे और एकतोलाभर चावल
शंकाको त्यागकर चावले ॥ ५८ ॥

स्पर्शयेत्पूज्यपादांश्च पुत्रादीनां शिरांसि च ।

धनानि संस्पृशेद्वाक्कुसुमस्येनापिशपेत् तथा ॥

भाषार्थ—अपने पूज्य पिता आदिके चर-
णोंका पुत्र आदिके शिरोका अथवा धनका
स्पर्श करें और शीघ्रही सत्यसे संगंदको
ग्रहण करें ॥ ५९ ॥

दुष्कृतप्राप्त्यामघनश्येत्सर्वतुसत्कृतं ।
सहस्रेपहतेचाग्निःपादोनेचविषंस्मृतं ॥ ६० ॥

भाषार्थ—मुझे आज पाप प्राप्त हो और
संपूर्ण सत्कर्म नष्ट हो जाय हजारकी चोरी-
पर अग्नि और इससे चौथाई कमपर विषदेना
कहा है ॥ ६० ॥

त्रिभागोनेघटःप्रोक्तोह्यर्धेचसलिलंतथा ।
धर्माधर्मैतदधेचह्यष्टमांशेचतंडुलाः ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—त्रिभागसे क्रममें घट (तुला)
आधेमें नल और उससे आधेमें धर्म और
अधर्म आठवे अंशकी चोरीमें चावल ॥ ६१ ॥

षोडशांशेचशपयाएवांदिव्याविधिःस्मृतः ।
एषांसंख्यानिकृष्टानांमध्यानांदिगुणास्मृता

भाषार्थ—और सोलहमें भागमें शपथ(सो-
गंद) इस प्रकार दिव्य प्रमाणकी विधि कही
है और निकृष्टोकी यह संख्या है मध्यम
दिव्योंकी संख्या दूनी कही है ॥ ६२ ॥

चतुर्गुणोत्तमानांचकल्पनीयापरीक्षकैः ।
शिरोवार्तिर्यदानस्यात्तदादिव्यंनदीयते ६३

भाषार्थ—और परीक्षक जन उत्तम दिव्यों-
की चौगुनी संख्याकी कल्पना करै जब शिरो
वार्ति अर्थात् शिरका कापना न होय तो
उस समयमें दिव्य प्रमाणको नदे ॥ ६३ ॥

अभियोक्ताशिरःस्थानेदिव्येषुपरिकीर्त्यते ।
अभियुक्तायदातव्यदिव्यंश्रुतिनिदर्शनात्

भाषार्थ—अभियोक्ता (अर्जी देनेवाला)
का शिर भी दिव्योंमें गिना है श्रुतिकी आज्ञा
से अभियुक्त (मुद्दायने) कोभी दिव्य
देना ॥ ६४ ॥

नकश्चिदभियोक्तरांदिव्येषुविनियोजयेत् ।
इच्छयावितरःकुर्यादितरोवर्तयेच्छिरः ६५

भाषार्थ—अथवा कोईभी न्याय करने
वालाभी अभियोक्ता (मुद्दाई) को दिव्य
प्रमाणमें नियुक्त न करै अर्थात् उससे दिव्य
न ले और इतर अपनी इच्छासे दिव्यको
करै और दूसरा शिरको हिलादे ॥ ६५ ॥

पार्थिवैःशंकितानांचनिर्दिष्टानांचदस्युभिः ।
आत्मशुद्धिपराणांचदिव्यंदेयंशिरोविना ॥

भाषार्थ—जिन मनुष्योंपर राजाओंकी
शंका हो और जो चोरोंके संग देखे हों और
जो अपराधी अपनी शुद्धि चाहते हो उन
सबको दिव्य देना परंतु शिरके बिना ॥ ६६ ॥

परदाराभिशापेचह्यगम्यागमनेषुच ।

महापातकशस्तेचादिव्यमेवचनान्यथा ६७

भाषार्थ—पराई दारके अभिशाप (गाली
देना) गमनके अयोग्य स्त्रीका गमन, महा
पातकी, इतने अपराधियोंको दिव्य प्रमाणदे
अन्यथा नदे ॥ ६७ ॥

चौर्याभिशांकायुक्तानांतत्तमापोविधीयते ॥
प्राणांतिकविवादेतुविद्यमानेपिसाधने ॥ ६८

भाषार्थ—जो प्राणी चोरीकी शंकासे युक्त
है उनको तपाये हुये मासेभर सोनेका दिव्य
कहा है जो विवाद प्राणांतिक (खूनके)
हो उनमें चाहे साधनभी विद्यमान हो ॥ ६८ ॥

दिव्यमालंबतेवादीनपृच्छेत्तत्रसाधनं ।
सोपधंसाधनंयत्रतद्राज्ञेआवितंयदि ॥ ६९ ॥

भाषार्थ—जहां पर वादी दिव्य प्रमाणको
आलंबन (स्वीकार) करे तो ऐसे स्थलमें
न्याय करनेवाला साधनको न पूछे—यदि
कही साधनमें कोई छल प्रतीत होय और
वह राजाको सुना दिया होय तो ॥ ६९ ॥

शोधयेत्तत्तुदिव्येनराजाधर्मासनस्थितः ।

यन्नामगोत्रैर्यल्लेख्यतुल्यंलेख्यंयदाभवेत् ७०

भाषार्थ—धर्मासनपे बैठा हुआ राजा उसको दिव्यसे शोधन करे जो भाषा पात्रिका (अर्जी) लिखना नाम और गोत्रके तुल्य होय ॥ ७० ॥

अगृहीतधनेतत्राकार्योदिव्येननिर्णयः ।

मातुपसाधनंनस्यात्तत्रदिव्यंप्रदापयेत् ७१

भाषार्थ—और प्रतिवादीने धनको ग्रहण न किया होय तो वहां पर दिव्य प्रमाणसे निर्णय करे और जहां कोई लौकिक साधन न होय वहां परभी दिव्यको दे ॥ ७१ ॥

आरण्येनिर्जनेरात्रावतर्वेष्मनिसाहसे ।

स्त्रीणांशीलाभियोगेषुसर्वार्थापन्हवेपुच ७२

भाषार्थ—निर्जन वनमें, रात्रि, गृहके भीतर, साहसे (हिंसा आदि) स्त्रियोंके आचरणका अभियोग, और सर्वथा झूठ, इनमें ॥ ७२ ॥

प्रदुष्टेपुप्रमाणेषुदिव्यैःकार्यविशोधनं ।

महापापाभिशतेपुनिक्षेपहरणेषुच ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—और जहां अन्य प्रमाणोंकी दुष्टता होगई हो वहां दिव्य प्रमाणोंसे शोधन करे महान् पापोंके अभिशाप (लगना) में और निक्षेप (धरोहर) हरनेमें ॥ ७३ ॥

दिव्यैःकार्यपरीक्षितराजासत्स्वपिसाक्षिषु ।

प्रथमायत्रभिद्यंतैसाक्षिणश्चतथापरे ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—चाहे साक्षीभी विद्यमान होय तो भी राजा दिव्योंमेंही झूठे सब्बकी परीक्षा करे जिस वादमें पहिले साक्षी और दूसरे साक्षी भेदनको प्राप्त होजाय ॥ ७४ ॥

परेभ्यश्चतथाचान्येतंवादंशपयैर्नयेत् ।

स्थावरेपुविवादेषुयुगश्रेणिगणेषुच ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—और तिसी प्रकार अन्यभी साक्षी टूट जाय ऐसे वादको राजा शपथोंसे निर्णय करे स्थावरोंके विवादोंमें युगश्रेणी (सला) गण ॥ ७५ ॥

दत्तादत्तेपुभृत्यानांस्वामिनांनिर्णयेसति ।

विक्रियादानसंवंधेक्रीत्वाधनमयिच्छति ७६

भाषार्थ—और दिये और न दियेमें सेवक और स्वामीके देनेके और न देनेके निर्णयमें बेचने और दानके संबंधमें और पदार्थको खरीदकर धनके न देनेमें ॥ ७६ ॥

साक्षिभिर्लिखितेनाथभुक्त्याचैतान्प्रसाधयेत् ।

विवाहोत्सवद्यूतेपुविवादेषुपस्यिते ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—इन सबका निर्णय साक्षियोंके लेखसे अथवा भुक्ति (वर्तना) से करे विवाह उत्सव द्यूत (जूआ) यदि इनमें विवाद उपस्थित होयतो ॥ ७७ ॥

साक्षिणःसाधनंतत्तनदिव्यंनचलेखकं ।

द्वारमार्गक्रियाभोग्यजलवाहांदिपुतया ७८

भाषार्थ—वहां साक्षीही निर्णयके साधन होते हैं न दिव्य न लेख द्वारमार्गका करना और जलके प्रवाह आदिके भोगमें ॥ ७८ ॥

भुक्तिरेवतुगुर्वीस्यान्नदिव्यंनचसाक्षिणः ।

यद्येकोमानुषीद्व्यादन्योद्व्यात्तुदैविकी ७९

भाषार्थ—भोगना (वर्तना) ही भारी प्रमाण है और न दिव्यही न साक्षीही जिस विवादमें एक मनुष्य मानुषी क्रियाको कहै और दूसरा दिव्य क्रियाको कहै ॥ ७९ ॥

मानुषीतत्रगृणीयान्नतुदैवीक्रियानृपः ।
यद्येकदेशप्राप्तापिक्रियाविद्येतमानुषी ॥८०॥

भाषार्थ—वहांपर राजा मानुषी क्रियाको ग्रहण करै दैवीको नहीं जो किसी एक देशमें भी मानुषी क्रिया मिल जाय तो ॥ ८० ॥

सायाह्यानतुपूर्णपिदैविकीवदतांनृणां ।
प्रमाणैर्हेतुचरितैःशपथेननृपाज्ञया ॥८१॥

भाषार्थ—विवाद करते हुये मनुष्योंमें उस मानुषी क्रियाको राजा ग्रहण करै और पूरी भी दिव्यक्रियाको ग्रहण न करै—प्रमाण हेतु आचरण—शपथ (सोगंध) राजाकी आज्ञा ८१ वादिसंप्रतिपत्त्यावानिर्णयोष्टविधःस्पृतः ।
लेख्यंयज्ञनविद्येतनभुक्तिर्नचसाक्षिणः ॥

भाषार्थ—वादीकी संप्रतिपत्ति (संतोष) इस प्रकार पूर्वोक्त निर्णय आठ तरहका कहाहै जिस विवादमें न लेख होय और न शुक्ति होय और न साक्षीसे होय ॥ ८२ ॥

नचदिव्यावतारोस्तिप्रमाणंतत्रपार्थिवः ।
निश्चैतुंयेनशक्याःस्युर्वादाःसंदिग्धरूपिणः

भाषार्थ—और न दिव्यका कोई निश्चय होय ऐसे स्थलमें राजाही प्रमाण है उसीसे संदेह रूप विवाद निश्चय करनेको शक्य होते हैं ॥ ८३ ॥

सीमाद्यास्तत्रनृपतिःप्रमाणंस्यात्प्रभुर्यतः ।
स्वतंत्रःसाधयन्नर्यान्राजापिस्याच्चकिल्बिषी ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—सीमा आदि संदेहके विवादमें भी राजाही प्रमाण है क्योंकि वह प्रभु है जो राजा स्वतंत्र होयके अर्थों (विवाद) को सिद्ध करताहै वहभी पापी होता है ॥ ८४ ॥
धर्मशास्त्राविरोधेनह्यर्थशास्त्रंविचारयेत् ।
राजामात्यप्रलोभेनव्यवहारस्तुदुष्यति ॥

भाषार्थ—धर्मशास्त्रके अविरोधसे राजा नीतिशास्त्रको विचार जिस व्यवहारमें राजा और मंत्रीको लोभ होताहै वह दूषित हो जाताहै ॥ ८५ ॥

लोकोपेच्यवतेधर्मात्कूटार्थेसंप्रवर्तते ।
अतिकामक्रोधलोभैर्व्यवहारःप्रवर्तते ॥ ८६ ॥

भाषार्थ—और जगत्भी धर्मसे गिर जाता है और कपटमें प्रवृत्त होजाता है अत्यंत काम क्रोध लोभ इनसे ही व्यवहार (विवाद) प्रवृत्त होता है ॥ ८६ ॥

कर्तृनयोसाक्षिणश्चसभ्यान्राजानमेवच ।
व्याप्तोत्पतस्तुतन्मूलंछित्त्वातंविमृशन्नयेत् ॥

भाषार्थ—और वह करनेवाला साक्षी सभासद राजा इनसबमें फेलताहै इससे राजा काम क्रोध लोभ मोह जो व्यवहारके मूल हैं उनको दूर करके विचारपूर्वक निर्णय करै ॥ ८७ ॥

अनर्थचार्यवत्कृत्वादर्शयंतिनृपायये ।
अविचिंत्यनृपस्तथ्यमन्यतेतैर्निर्दाशितः ॥

भाषार्थ—जो सभासद राजाको अनर्थका अर्थ दिखावे और उनके कहे हुयेको राजा सत्य मानले वह अर्थ उनसेही दिलवावे ८८ स्वयंक्रोरोतितद्वत्तौभुज्यतोष्टगुणत्वधं ।
अधर्मतःप्रवृत्तंतनोपेक्षेरन्सभासदः ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—जो अर्थको अनर्थको राजा स्वयं करे तो वे दोनों आठगुने पापको भोगते हैं अधर्ममें प्रवृत्त हुये राजाकी सभासद उपेक्षा न करै ॥ ८९ ॥

उपेक्ष्यमाणाःसन्तृपानरकंयांत्यधोमुखाः ।
धिग्दंडस्त्वयवाग्दंडःसभ्यायत्तौतुतावुभौ ॥

भाषार्थ—यदि उपेक्षा करै तो राजा और सभासद नीचेको मुख कारकी नरकमें जाते

हैं धिक्कारका दंड और वाणीका दंड ये दोनों सभासदोंके आधीन होते हैं ॥ ९० ॥

अर्थदंडवधावुक्तौराजायत्तावुभावपि ।

तीरितंचानुशिष्टंचयोमन्येतविधर्मतः ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—धनका दंड और वध ये दोनों राजाके आधीन होतेहैं जिस तीरित (हुक्म) और शिक्षाको राजा अधर्मसे कीहुईमाने ९१ द्विगुणंदंडमादायपुनस्तत्कार्यमुद्धरेत् । साक्षिसभ्यावसन्नानांदूषणेदर्शनपुनः ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—सभासदोंसे दूना दंड लेकर दु-चारा उसकार्यका उद्धार (प्रारंभ) करै यदि साक्षी सभासद इनमें कोई दूषण पाया जाय तोभी पुनः उद्धार करै ॥ ९२ ॥

स्वचर्यावसितानांचप्रोक्तःपौनर्भवोविधिः । अमात्यःप्राड्विवाकोवायेक्युक्तःकार्यमन्यथा

भाषार्थ—जो सभासद अपने कार्यमें भूल जाय तोभी कार्यको विधि पुनः कही है यदि मंत्री वा प्राड्विवाक (वकील) कार्यको अन्यथा करदे ॥ ९३ ॥

तंसर्ववृत्तिःकुर्यात्तान्सहस्रंतुंदडयेत् ।

नहिजातुविनादंडंकश्चिन्मार्गेवतिष्ठते ॥

भाषार्थ—उस संपूर्णकार्यको राजा करै और उन दोनोंको सहस्रमुद्रा दंडदे क्यों कि विना दंड कोईभी मार्गमें नहीं टिकता ॥ ९४ ॥

संदर्शितेसभ्यदोषेतदुद्धृत्यनृपोनयेत् ।

प्रतिज्ञाभावनान्द्राहीप्राड्विवाकादिपूजनात्

भाषार्थ—यदि सभासदोंका कोई दोष दिखायाजाय तो उस दोषको निकाल कर राजा स्वयं न्याय करै प्रतिज्ञाकी सत्यता और प्राड्विवाक (वकील) आदिके पूजनसे ॥ ९५ ॥

जयपत्रस्यचादानाज्जयील्लोकेनिगद्यते । सभ्यादिभिर्विनिर्णयितुंविधृतंप्रतिवादिना ॥

भाषार्थ—और जयपत्रके ग्रहणसे जगत्में जीतने वालेको जई कहते हैं जो सभासदोंने निर्णय कियाहोय और प्रतिवादिने मान लिया होय ॥ ९६ ॥

दृष्टाराजातुजयिनेप्रदद्याज्जयपत्रकं ।

अन्यथाप्राभियोक्तारनिरुध्याद्बहुवत्सरम् ॥

भाषार्थ—ऐसे जयपत्रको देवकर राजा जीतने वालेको दे अन्यथा (पूर्वोक्त न होय तो) अभियोक्ता (अरजी देनेवालेको) बहुतवर्षतक कैद करै ॥ ९७ ॥

मिथ्याभियोगसदृशमर्हयेदभियोगिनम् । कामक्रोधौतुसंयम्ययोर्यान्धमेणपश्यति ॥

भाषार्थ—और मिथ्या अभियोग (अर्जी) के समान अभियोगी (मुद्दायले) का पूजन करै जो राजा कामक्रोधको रोककर धर्म पूर्वक अर्थों (द्रवि) को देखता है ॥ ९८ ॥ प्रजास्तमनुवर्ततेसमुद्रमिवसिंधवः ।

जीवतोरस्वतंत्रःस्याज्जरयापिसमन्वितः ९९

भाषार्थ—उस राजाके अनुकूल प्रजा इस प्रकार होती है जैसे समुद्रके नदी माता पिताके जीवते हुये वृद्धभी पुत्र स्वतंत्र नहीं होता ॥ ९९ ॥

तथोरपिपिताश्रेयाच्चवीजप्राधान्यदर्शनात् । अभावविविजिनोमातातदभावेतुपूर्वजः ८००

भाषार्थ—उन दोनोंमेंभी वीजकी प्राधान्यता देखकर पिता श्रेष्ठ है—और पिताके अभावमें माता और माताके अभावमें जेठा भाई श्रेष्ठ होता है ॥ ८०० ॥

स्वातंत्र्यंतुस्पृतंज्येष्ठेजैष्ठ्यंगुणवयःकृतं । याःसर्वाःपितृपत्न्यःस्युस्तासुवर्ततेमातृवत्

भाषार्थ—जेठे भाईको स्वतंत्रता कही है और गुण अवस्थासे ज्येष्ठता होती है जो पिताकी संपूर्ण पत्नी हैं उन सबमें माताके समान वर्ताव करै ॥ १ ॥

स्वसमैकेनभागेनसर्वास्ताःप्रतिपालयन् ।
अस्वतंत्राःप्रजाःसर्वाःस्वतंत्रःपृथिवीपतिः

भाषार्थ—और अपने समान एकसे भागसे उन सबकी अच्छी पालना करै संपूर्णप्रजा अस्वतंत्र (पराधीन) हैं और राजा स्वतंत्र है ॥ ८०२ ॥

अस्वतंत्रःस्मृतःशिष्यआचार्येतुस्वतंत्रता ।
सुतस्यसुतदाराणांवंशित्वमनुशासने ॥ ३ ॥

भाषार्थ—शिष्य अस्वतंत्र है—और आचार्य स्वतंत्र है शिक्षा देनेके लिये लड़के और लड़केकी स्त्री पिताके वसमें होती है ॥ ३ ॥

विक्रयेचैवदानेचवाशित्वंनसुतोपेतुः ।
स्वतंत्राःसर्वएवैतेपरतत्रेपुनित्यशः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—बेचने और दानके लिये लड़िका पिताके वसमें नहीं होता पराधीनके विषेभी ये सब स्वतंत्र होते हैं ॥ ४ ॥

अनुशिष्टौविसर्गेवाविसर्गेचेश्वरोमतः ।
मणिमुक्ताप्रवालानांसर्वस्यैवपिताप्रभुः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—शिक्षा—दान—और अदान—में ये स्वतंत्र कहे हैं मणि—मोती—मूंगा इन सबका स्वामी (मालिक) पिता होता है ॥ ५ ॥

स्थावरस्यतुसर्वस्यनपितानपितामहः ।
भार्यापुत्रश्चदासश्चत्रयएवाधनाःस्मृताः ६

भाषार्थ—और संपूर्ण स्थावरधनका स्वामी न पिता है न पितामह है भार्या—पुत्र—दास—ये तीनों अधन अर्थात् धनके अस्वामी कहे हैं ॥ ६ ॥

यत्तेसमधिगच्छंतियस्यैतेतस्यतद्धनं ।
वर्ततेयस्ययद्धस्तेतस्यस्वामीसएवन् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो इनको मिलता है वहभी धन उसीका होता है जिसके ये तीनों होते हैं जो धन जिसके हाथमें वर्तै उसका स्वामी वही नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अन्यस्वमन्यद्वस्तेपुचौर्याद्यैःकिन्नदृश्यते ।
तस्माच्छास्त्रतएवस्यात्स्वाम्यनानुभवादपि

भाषार्थ—क्योंकि चोरी करनेसे अन्यका धनभी अन्यके हाथ दीखता है—तिससे शास्त्रसेही धनका स्वामी होता है अनुभवसे नहीं ॥ ८ ॥

अस्यापत्तद्वतमेतेननयुक्तंवक्तुमन्यथा ।
विदितोर्थागमःशास्त्रेतायावर्णःपृथक्पृथक् ९

भाषार्थ—अन्यथा यह कहना अयोग्य हो गाकि इसका धन इसने हरा धनका आगम और पृथक् २ वर्ण शास्त्रमें विदित है ॥ ९ ॥
शास्त्रितच्छास्त्रधर्म्ययन्मलेच्छानामपित-
त्सदा ।

पूर्वाचार्यैस्तुकाथितंलोकानांस्थितिहेतवे १०

भाषार्थ—उस शास्त्रने जिस धर्मकी शिक्षा दी है वही धर्म म्लेच्छ आदिपर्यंत तदासे होता है क्योंकि पहिले आचार्योंने जगत्की मर्यादाके लिये कहा है ॥ १० ॥

समानभागिनःकार्याःपुत्राःस्वस्यचैवस्त्रियः
स्वभागार्धहराकन्यादौहित्रस्तुतदर्धभाक् ॥

भाषार्थ—पिता अपने पुत्र और स्त्रियोंको समान भागदे और कन्याओंको आधाभाग और कन्याओंसे दौहित्रको आधा भाग दे ॥ ११ ॥

मृतेधिपेपिपुत्राद्याउक्तमार्गहराःस्मृताः ।
मात्रेदद्याच्चतुर्थांशंभगिन्यैमातुरर्धकम् १२

भापार्थ-पिताके मरेपरभी पुत्र आदि सम भाग लेनेवालेही कहे हैं माताको चौथा भाग और मातासे आधा भाग भागिनीको दे ॥ १२ ॥

तदर्धभागिनेयायशेषं सर्वहरेत्सुतः ।

पुत्रो न साधनं पत्नी हरेत्पुत्री च तत्सुतः ॥ १३ ॥

भापार्थ-भागिनीसे आधा भागनेको दे और शेष सबको पुत्र ग्रहण करे पुत्र न होय तो पत्नी पत्नी न होय तो पुत्री पुत्री न होय तो दौहित्र धनको ग्रहण करे ॥ १३ ॥

मातापिताच भ्राता च पूर्वालाभं च तत्सुतः ।

सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातंत्र्यमप्येतै

भापार्थ-माता-पिता-भाई भाई न होय तो उसका पुत्र धनको ग्रहण करे जो धन स्त्रियोंको सौदायिक मिलता है उस धनमें स्त्री स्वतंत्र होती है ॥ १४ ॥

विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्याद्वरेष्वपि ।

उद्ययाकन्यायावापि पत्युः पितृगृहाच्च यत् ॥

भापार्थ-चाहे उसे बेचे और दान करे और वह धन स्थावर हों या जंगम विवाही हुई कन्याको पातिसे और पिताके घरसे जो धन मिले ॥ १५ ॥

मातृपित्रादिभिर्दत्तं धनं सौदायिकं स्मृतं ।

पित्रादि धनसंबंधहीनं यद्यदुपार्जितं ॥ १६ ॥

भापार्थ-अथवा माता-पिता जो दे उस धनको सौदायिक कहते हैं जो पुत्र पिताके धनको न लगाकर धनका संचय करले १६ ॥

येन सः काममश्रीयादविभाज्यं धनं हितम् ।

जलतस्करराजाग्निव्यसने समुपस्थिते ॥

भापार्थ-वह पुत्र उस धनको अपनी इच्छाके अनुसार भोगे और अपने भाई-

योंको न बांटे यदि जल, चौर, राजा-अग्नि-इनकी विपत्ति पिताके धनपर पड़े ॥ १७ ॥

यस्तु स्वशक्या संरक्षेत्तस्यांशो दशमः स्मृतः

हेमकारादयो यत्र शिल्पं संभूय कुर्वते ।

भापार्थ-जो पुत्र अपनी शक्तिसे उस धनकी रक्षा करे तो उसको दसवां भाग उसमेंसे मिलना कहा है जो सुनार आदि मिलकर कारीगरी करते हैं ॥ १८ ॥

कार्यानुकरणं निर्वेशं लभेरस्ते यथार्हतः ।

संस्कर्तृ तत्कलाभिज्ञाः शिल्पी प्रोक्तो मनीषिभिः ॥ १९ ॥

भापार्थ-वे अपने २ कार्यके अनुसार नौकरीको यथायोग्य प्राप्त होते हैं संस्कार करनेवाला जो कार्यकी कलाको भली प्रकार जानता हों उसको बुद्धिमान् शिल्पी कहते हैं ॥ १९ ॥

हर्म्यं देवगृहं वा पिवाटिकोपस्कराणि च ।

संभूय कुर्वतांते पां प्रमुख्यो द्यंशमर्हति ॥ २० ॥

भापार्थ-महल-देवताओंका मंदिर-वाटिका-और उपस्कर-इनको जो मनुष्य मिलकर करते हो उनमें जो मुख्य हों उसे दो भाग मिलने योग्य हैं ॥ २० ॥

नर्तकानामेव धर्मः सद्भिरेव उदाहृतः ।

तालज्ञोलभते धोर्धगायनास्तु समांशिनः ॥

भापार्थ-नाचनेवालोंका यह सनातन धर्म सज्जनोंने कहा है कि तालके जानने वालेको चौथाई भाग और गानेवालोंको सम (बराबर) मिलता है ॥ २१ ॥

परराष्ट्राद्धं न्यत्स्याच्चैरैः स्वाम्याऽज्ज्ञया हतं राज्ञेयं प्रांशमुद्धृत्य विभजेत्समांशकं ॥ २२ ॥

पराये राज्यमेते जिस धनको अपने स्वामी-
की आज्ञासे चौर हरलावे उसका छठा भाग
स्वामीको देकर शेष भागको समान बांटले ॥

तेषांचित्प्रसृतानांचग्रहणंसमवाप्नुयात् ।

तन्मोक्षार्थंचयद्दत्तंवहेयुस्तेसमांशतः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—उनके उस कामके करनेमें जो
कोई बंधनको प्राप्त हो जाय उसके छुटानेमें
जो धन दिया होय उसकोभी समभागसे
बांटकर भुगतले ॥ २३ ॥

प्रयोगंकुर्वतेयेतुहेमाद्यन्यरसादिना ।

समन्यूनाधिकैरंशैर्लभस्तेषांतथाविधः ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य सुवर्ण आदि वा अन्य-
रस आदिसे प्रयोग (रसोंका बनाना) करते
हैं उन सबको समान-न्यून-वा अधिक
अंशोंसे उसी प्रकार लाभ होता है कि ॥ २४ ॥

समोन्यूनाधिकोद्वांशेयिनक्षिप्तस्तथैवसः ।

व्ययंदद्यात्कर्मकुर्वाह्याभंगृणीतचैवहि ॥

भाषार्थ—जिसने समान न्यून वा अधिक
जैसा अंश जो मनुष्य व्ययको दे और काम
को करे वह लाभको ग्रहण करे ॥ २५ ॥

वणिजानांकर्षकाणामेषएवविधिःस्मृतः ।

सामान्यंयाचितंन्यासआधिर्दासश्चतद्धनं ॥

भाषार्थ—यह विधि व्यापारी और किसानों-
की कही है सामान्य-याचित न्यास (सोपाहु
आ द्रव्य) आधि (धरोहर) दास (दास-
का धन) ॥ २६ ॥

अन्वाहितंचनिक्षेपःसर्वस्वंचान्वयेसति ।

अपस्त्वपिनदेयानिनववस्तुनिपंडितैः ॥

भाषार्थ—अन्वाहित-निक्षेप-और सर्वत्र
इन वस्तुओंको पंडित जन आपत्तिके
समयमेंभी न दें यदि अपने वंशमें कोई संतान
होय ॥ २७ ॥

अदेयंयश्चगृह्णातिपश्चादेयंप्रयच्छति ।

तावुभौचौरवच्छास्यौदाप्यौचोत्तमसाहसं

भाषार्थ—जो मनुष्य देनेके अयोग्यको
ग्रहण करताहै अथवा देताहै वे दोनों चौर-
रके समान शिक्षा देने योग्य हैं—और राजा
उनको उत्तम साहसका दंडदे ॥ २८ ॥

अस्वामिकेभ्यश्चैरेभ्योविगृह्णातिधनंतुयः ।

अव्यक्तमेवकीर्णातिसदंड्यश्चौरववृषैः २९

भाषार्थ—जिनका कोई स्वामी न होय ऐसे
चौरोंसे जो धनको लेताहै और छिपकर
खरोदता है उसको राजा चौरके समान
दंडदे ॥ २९ ॥

ऋत्विग्याज्यमदुष्टंयस्त्यजेदनपकारिणं ।

अदुष्टश्चात्विजोयाज्योविनेयौतावुभावपि ॥

भाषार्थ—जो ऋत्विक् (यज्ञ करानेवाला)
निरपराधी और अदुष्ट यज्ञ करनेवालेको
त्यागदे और जो यज्ञ करनेवाला अदुष्ट
सज्जन ऋत्विजको त्यागदे उन दोनोंको
राजा शिक्षादे ॥ ३० ॥

द्वात्रिंशांशोषोडशांशलभंपण्येनियोजयेत् ।

नान्यथातद्वचयंज्ञात्वाप्रदेशाद्यनुरूपतः ॥

भाषार्थ—वत्तीसवां या सोलहवां लाभ
पण्य (बाजार) में राजा नियत कर देश
और कालके अनुरूप उसके व्यय (खर्च)
को जानकर अन्यथा न करे ॥ ३१ ॥

वृद्धिंहित्वाह्यर्धधनैर्वाणिज्यंकारयेत्सदा ।

मूलात्तुद्विगुणावृद्धिर्गृहीताचाधमर्णिकात् ॥

भाषार्थ—वृद्धि (नफा) को छोड़कर
व्यापारीयोंपर आधे धनसे सदैव व्यापार
करवे यदि उत्तमर्ण (देनेवाला) ने अधमर्ण
(करज लेनेवाले) से मूलसे दूना व्याजले-
लिया हो ॥ ३२ ॥

तदोत्तमर्णमूलं तु दापयेन्नाधिकंततः ।

धनिकाश्चक्रवृद्ध्यादिमिपतस्तु प्रजाधनं ॥

भाषार्थ—तो उत्तमर्णके मूलकोही राजा दिलवावे उससे अधिक नहीं—क्योंकि धनी मनुष्य चक्रवृद्धि (सुदपरसूद) के वहां-नेसे प्रजाके धनको ॥ ३३ ॥

संहरंति ह्यतस्तेभ्यो राजा संरक्षयेत्प्रजां ।

समर्थः स न ददाति शृहीतं धनिकाद्धनं ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—हरते हैं—इससे राजा उनसे प्रजाकी भली प्रकार रक्षा करे जो समर्थ होकर धनीसे लिये हुये धनको नदे ॥ ३४ ॥

राजासंदापयेत्तस्मात्सामदंडविकर्षणैः ।

लिखितं तु यदायस्य नष्टं तेन प्रबोधितं ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—उससे राजा साम-दंड-भेदसे धनको दिलवाये और जिसका लिखाहुआ नष्ट हो जाय उसने नष्ट हुये लिखितको राजाको जता दिया हो ॥ ३५ ॥

विज्ञायंसाक्षिभिः सम्यक् पूर्ववदापयेत्तदा ।

अदत्तं यश्च गृह्णाति सुदत्तं पुनरिच्छति ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—तो साक्षियोंसे भलीप्रकार जान कर पूर्वके समान राजा दिवादे जो बिना दियेको लेले अथवा भलीप्रकार देनेपरभी पुनः इच्छा करे ॥ ३६ ॥

दंडनीयावुभावैतौ धर्मज्ञेन महीक्षिता ।

कूटपण्यस्त्रविक्रेता सदंडचश्चौरवत्सदा ३७

भाषार्थ—तो धर्मका ज्ञाता राजा इन दोनों-को दंडदे जो खोटी वस्तुको बेचे उसे राजा चोरके समान दंडदे ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा कार्याणि च गुणाञ्छिल्पिनां भृतिमावहेत् ।

पंचमांशं चतुर्थांशं तृतीयांशं तु कर्षयेत् ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—कारिगरेके कार्य और गुणों-को देखकर भृति (नौकरी) दे पांचवा, चौथा, वा तीसरा, भाग रूपेका देकर खेती करावे ॥ ३८ ॥

अर्धवाराजताद्राजानाधिकं तु दिनेदिने ।

विद्रुतं न तु हीनं स्यात्स्वर्णं पलशतं शुचि ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—अथवा आधा देकर करावे अधिक नहि यह प्रमाण एक दिनकी भृतिका है जो सोल सोना गलानेसे कम नहोय वह शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥

चतुःशतांशं रजतं ताम्रं न्यूनं शतांशकं ।

वंगं च जसदंसीसं हीनं स्यात्पोडशांशकं ४०

भाषार्थ—और चारसौ पल चांदी, सोल तांबा, और वंग जस्त शीसा सोलह पल गलाये जाय तो प्रत्येकमें एक २ पल कम होजाता है ॥ ४० ॥

अयोष्टांशं त्वन्यथा तु दंडचः शिल्पीसदा नृपैः

सुवर्णं द्विशतांशं तुरजतं च शतांशकं ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—और लोहमें आठवां भाग कम होता है इससे अधिक कम होजाय तो राजा शिल्पीको दंड देने योग्य समझे सुवर्णके दोसे तोलमें और चांदीके सो तोलमें एक तोला ॥ ४१ ॥

हीनं मुषटिते कार्ये सुसंयोगे तु वर्धते ।

पोडशांशं त्वन्यथा हि दंडचः स्यात्स्वर्णकारकं

भाषार्थ—कम होता है और उसकी कोई वस्तु (गहना) बनवाया जाय तो सोलह वां भाग बढ़ता है इससे अन्यथा होय तो सुनार दंड देने योग्य समझना ॥ ४२ ॥

संयोगघटनं दृष्ट्वा वृद्धिं हासं प्रकल्पयेत् ।

स्वर्णस्योत्तमकार्ये तु भृतिस्त्रिंशं शकीमता ॥

भाषार्थ—संयोग जोड़ोंकी घटनाको देख-
कर वृद्धि और भूतिकी कल्पना कर सोनेके
उत्तम कामोंके बनानेकी भूति (नौकरी)
तसिवां भाग कही है ॥ ४३ ॥

षष्ठ्यंशकीमध्यकार्येहीनकार्येतदर्धकी ।
तदर्धाकटककेज्ञेयाविद्रुतेतुतदर्धकी ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—मध्यमकामकी भूति साठमें
भागकी और हीन (सुगम) कामोंकी
भूति उससे आधी कही है और उससेभी
आधी कडे बनानेकी और उससेभी
आधी सोनेके गलानेकी कही है ॥ ४४ ॥

उत्तमेराजतेत्वर्धातदर्धमध्यमास्मृता ।
हीनेतदर्धाकटकतदर्धासंप्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—चांदीके उत्तम कामोंकी भूति
आधी और मध्यमकामोंकी चौथाई और
हीन कामोंकी उससे आधी और उससे
भी आधी कडा बनानेमें कही है ॥ ४५ ॥

पादमात्राभृतिस्ताम्रेवंगेचजसदेतथा ।
लोहेर्धावासमावापिद्विशुणात्रिगुणाथवा ४६

भाषार्थ—तांबेके कामोंकी भूति चौ-
थाई—और तिसी प्रकार रांग और जस्तके
कामोंमें होती है—लोहेकी भूति आधी
वा बगवर दूनी वा तिगुनी होती है ॥ ४६ ॥

धातूनांकूटकारीतुद्विशुणोदंडमर्हति ।
लोकप्रचारैरुत्पन्नोमुनिभिर्विधृतःपुरा ॥ ४७

भाषार्थ—जो कारीगर धातुओंमें कपट
करै वह दूनेदंडके योग्य होता है लोकके
प्रचारसे उत्पन्न हुआ और मुनियोंने पहिले
कहाहुआ ॥ ४७ ॥

व्यवहारोन्तपथःसवक्तुंनैवशक्यते ।
उत्तराष्ट्रप्रकरणंसमासात्पंचमंतथा ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—जो व्यवहार उसके मार्ग अने-
कहैं उसको कोई नहि कहसकता यह
पांचवा राष्ट्र (राज्य) प्रकरण संक्षेपसे
वर्णन किया ॥ ४८ ॥

अत्रानुक्तागुणादोपास्तेज्ञेयालोकशास्त्रतः ।
षष्ठदुर्गप्रकरणंप्रवक्ष्यामिसमासतः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—इसमें जो गुण वा दोष नहि कहै
वे लोक और शास्त्रसे जानने अव छठे दुर्ग
(किला) प्रकरणको संक्षेपसे कह
ताहूं ॥ ४९ ॥

खातकंटकपापाणैर्दुष्पथंदुर्गमैरिणं ।
परितस्तुमहाखातंपारिखंदुर्गमेवतत् ५० ॥

भाषार्थ—खात—कांटे—पत्थर—गुप्तमार्ग और
ऊखरभूमि जिसके समीप होय उसे एरिण दुर्ग
कहतेहैं जिसके चारों तरफ बड़ी खाई
खुदी होय—उसे पारिख दुर्ग कहते हैं ॥ ५० ॥

इष्टकोपलमृद्धिप्रकारंपारिघंसमृतं ।
महाकंटकवृक्षौघैर्व्यासंतद्वनदुर्गमं ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—ईट—पत्थर—मिट्टी—भीत इनका
जिसमें परकाटा होय उसे पारिघ दुर्ग कहते
हैं बड़े २ कांटोंके वृक्षोंके समूहसे जो
व्याप्त होय उसे वनदुर्ग कहते हैं ॥ ५१ ॥

जलाभावस्तुपरितोधन्वदुर्गंप्रकीर्तितं ।
जलदुर्गंस्मृतंतज्जैरासमतान्महाजलं ५२ ॥

भाषार्थ—जिसके चारोंतरफ जलका अभाव
होय उसे धन्वदुर्ग कहते हैं और जिसके
चारों तरफ बड़ा जल होय उसे शास्त्रके
ज्ञाता जलदुर्ग कहते हैं ॥ ५२ ॥

सुवारिपृष्ठोच्चधरंविविक्तेगिरिदुर्गमं ।
अभेद्यंयूहाविद्वीरव्यासंतस्सैन्यदुर्गमं ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—जो जलके स्थानमें बड़ा ऊंचा
एकांतमें बनाया जाय उसे गिरिदुर्ग कहते

है—जिसमें कवायदके ज्ञाता बहुतसे शूरवीर हों और जो भेदनके अयोग्य होय उसे सैन्यदुर्ग कहते हैं ॥ ५३ ॥

सहायदुर्गतज्ज्ञेयं शूरानुकूलबन्धवं ।
पारिखादैरिणं श्रेष्ठं पारिषंतुततो वनं ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—जिसमें शूरवीरोंके अनुकूल बन्धुजन रहते होय उसे सहायदुर्ग कहते हैं पारिख-दुर्गसे ऐरिण—और ऐरिणसे पारिष और उससे वनदुर्ग श्रेष्ठ होता है ॥ ५४ ॥

ततो धन्वंजलं तस्माद्गिरिदुर्गततः स्मृतं ।
सहायसैन्यदुर्गे तु सर्वदुर्गप्रसाधिके ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—उससे धन्वदुर्ग—धन्वसे जलदुर्ग और उससे गिरिदुर्ग श्रेष्ठ कहा है सहायदुर्ग और सैन्यदुर्ग ये दोनों तो सबदुर्गोंके साधन होते हैं ॥ ५५ ॥

ताभ्यां विनान्यदुर्गाणि निष्फलानि महीभुजां
श्रेष्ठं तु सर्वदुर्गेभ्यः सेनादुर्गं स्मृतं बुधैः ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—क्योंकि इन दोनोंके बिना अन्य सब राजाओंके दुर्ग निष्फल होते हैं और सब दुर्गसे श्रेष्ठ तो पंडितजनोंने सेनादुर्ग कहा है ॥ ५६ ॥

तत्साधकानि चान्यानि तद्गन्धर्वपतिः सदा ।
सेनादुर्गतुयस्य स्यात्तस्य वश्या तु भूरियं ॥

भाषार्थ—अन्य सबदुर्ग सेनाकेही साधक होते हैं इससे राजा सदैव सेनाकी रक्षा करे जिस राजाके सेनादुर्ग होता है उसके वशमेंही यह भूमि होती है ५७ ॥

विना तु सैन्यदुर्गेण दुर्गमन्यत्तु बन्धनं ।
आपत्कालेन्यदुर्गानामाश्रयश्चोत्तमो मतः ॥

भाषार्थ—सैन्यदुर्ग बिना अन्यदुर्ग बन्धन होते हैं और आपत्ति के समयमें अन्यदुर्गोंका आश्रय उत्तम कहा है ॥ ५८ ॥

एकः शतयोधयति दुर्गस्योऽस्त्रधरो यदि ॥
शतं दशसहस्राणितस्माद्दुर्गं समाश्रयेत् ५९ ॥

भाषार्थ—यदि दुर्गमें टिका हुआ एक शस्त्रधारी सौ योधाओंके संग युद्ध करे और सौ योधा सहस्रयोधाओंके संग युद्ध करे इससे राजा दुर्गका आश्रय ले ५९

शूरस्य सैन्यदुर्गस्य सर्वदुर्गमिव स्थलं ।
युद्धसंभारपुष्टानिराजादुर्गाणि धारयेत् ६० ॥

भाषार्थ—और शूरवीर सैन्यदुर्गको तो संपूर्णस्थल (मैदान) भी दुर्ग के समान है—राजा ऐसे दुर्गोंका धारण करे युद्धके संभारों (सामग्री) से पुष्ट (मजबूत) हों ॥ ६० ॥

धान्यवीरास्त्रपुष्टानि कोशपुष्टानि वै तथा ।
सहायपुष्टं दुर्गं तत्तु श्रेष्ठतरं मतं ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—और अन्न—शूरवीर—अस्त्र—कोश इनसेभी पुष्ट हों—और जो दुर्ग सहाय कोसे पुष्ट हो वह अत्यंत श्रेष्ठ कहा है ६१ ॥

सहायपुष्टदुर्गेण विजयो निश्चयात्मकः ।
यद्यत्सहायपुष्टं तु तत्सर्वसफलं भवेत् ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—सहायसे पुष्ट जो दुर्ग उससे विजय निश्चयसे होता है और जो २ सहाय से पुष्ट होता है वह संपूर्ण सफल होता है ६२

परस्परानुकूल्यं तु दुर्गाणां विजयप्रदं ।
दौर्गसंक्षेपतः प्रोक्तं सैन्यसत्तममुच्यते ६३ ॥

भाषार्थ—दुर्गोंकी जो परस्पर अनुकूलता है वह विजय देनेवाली होती है—यह संक्षेपसे दुर्ग वर्णन किया अब सातवें सैन्य प्रकरणको कहते हैं ॥ ६३ ॥

सेनाशस्त्रास्त्रसंयुक्तामनुज्यादिगणात्मिका ।
स्वगमान्यगमाचेति द्विधा सैव पृथक् त्रिधा ॥

भाषार्थ—शस्त्र अस्त्रोंसे संयुक्त मनुष्यों-
के समूहको सेना कहते हैं वह स्वगम
(पियादे) और अन्यगम—(सवार) भेदसे
दो प्रकारकी और वही पृथक् २ तीन प्रकार
की होती हैं ॥ ६४ ॥

दैव्यासुरीमानवीचंपूर्वपूर्वबलाधिका ।

स्वगमायास्वयंगंत्रीयानगाऽन्यगमास्मृता

भाषार्थ—दैवी—आसुरी—मानुषी—इनतीनोंमें
पहिली २ सेना बलमें अधिक होती है—जो
सेना अपने पैरोंसे चले वह स्वगमा और
जो यानमें चले वह अन्यगमा कहाती है ६५
पदातस्वगमवान्यद्रयाश्वगजगंत्रिधा ।

सैन्याद्विनानैवराज्यंनधनंनपराक्रमः ॥ ६६

भाषार्थ—अथवा पदातियोंकी सेना स्वगम
और दूसरी रथ-अश्व-हाथीपर चलनेसे तीन
प्रकारकी होती है—सेनाके बिना न राज्य है
न धन है और न पराक्रम ॥ ६६ ॥

बलिनोवशगाःसर्वेदुर्बलस्यचशत्रवः ।

भवंत्यल्पजनस्यापिपुत्रस्यतुनकिंपुनः ६७

भाषार्थ—बलवान् (सेनावाला) के संपूर्ण
वशमें होते हैं और दुर्बलके संपूर्ण शत्रु हो
जाते हैं चाहे वह साधारणभी मनुष्यहो—राजा
के तो क्यों न होंगे ॥ ६७ ॥

शरीरहिबलशौर्यबलसैन्यबलंतथा ।

चतुर्थमास्त्रिकबलंपंचमधीबलंस्मृतं ॥ ६८ ॥

भाषार्थ—प्रथम बल शरीरका—२ बल शूर-
वीरताका ३ बल सेनाका—४ बल अस्त्रका—
५ बल बुद्धिका कहा है ॥ ६८ ॥

षष्ठमायुर्वलंत्वैतैरुपेतोविष्णुरेवसः ।

नबलेनाविनाप्यल्परिपुंजैतुंक्षमःसदा ॥ ६९

भाषार्थ—छठा बल अवस्थाका है—इनछः
बलोंसे युक्त राजा साक्षात् विष्णुरूप होता

है—और बलके बिना अल्पभी शत्रुके जीतने
में सदैवसे समर्थ नहीं होता ॥ ६९ ॥

देवासुरनरास्त्वन्योपायैर्नित्यंभवतिहि ।

बलमेवरिपोर्नित्यंपराजयकरंपरं ॥ ७० ॥

भाषार्थ—देवता असुर और नर ये तीनों
तो अन्य २ उपायोंसे नित्य होते हैं और
शत्रुकाही बल नित्य पराजय करनेवाला
होता है ॥ ७० ॥

तस्माद्वलममोघंतुधारयेद्यत्नतो नृपः ।

सेनावलंतुद्विविधस्वीयंमैत्रं चतद्विधा ॥ ७१

भाषार्थ—तिससे राजा अमोघ (सफल)
बलका यत्नसे धारण करे और सेनाका बल
अपनी और मित्रकी सेनाके भेदसे दो-
प्रकारका होता है ॥ ७१ ॥

मौलसाद्यस्कभेदाभ्यांसारसारंपुनर्द्विधा ।

अशिक्षितंशिक्षितंचगुल्मीभूतमगुल्मकं ७२

भाषार्थ—मौल (सदाका) और साद्यस्क
(तुरंतका) भेदसे दोप्रकारका है और वे
दोनोंभी सार और असार भेदसे दो प्रकार
का है १ अशिक्षित (नसीखी) और २
शिक्षित (सीखीहुयी)—और गुल्मवाली
और बिना गुल्मवाली ॥ ७२ ॥

दत्तास्त्रादिस्वशस्त्रास्त्रंस्वबाहिदत्तवाहनं ।

सौजन्यात्साधकंमैत्रंस्वीयंभृत्याप्रपाळितं ॥

भाषार्थ—१ दत्तास्त्र (जिसको राजाने
अस्त्र दिये हों) २ स्वशस्त्रास्त्र जिसके पास
अपनेही शस्त्र अस्त्रहों—१ स्वबाही (जिस
पर अपनी सवारी हो) २ दत्तवाहन (जिस
को राजाने सवारी दी हो)—जो सेना सौजन्य
(स्नेह) से कार्यसिद्धि करे वह मैत्र और
जो भृति (नौकरी) देकर पाली हो वह
स्वीय (अपनी) कहाती है ॥ ७३ ॥

मौलवहतुवांघिस्यात्साद्यस्कंयत्तदन्यया ।

सुयुद्धकामुक्तसारमसारविपरीतकं ॥७४॥

भाषार्थ—जो सेना बहुत दिनकी हो वह मौल और इससे अन्यथा हो वह साद्यस्क कहाती है जो सेना उत्तम युद्धकी इच्छा करे वह सार और इससे जो विपरीत वह असार कहाती है ॥ ७४॥

शिक्षितव्यूहकुशलविपरीतमशिक्षितं ।

गुल्मीभूतसाधिकारिस्वस्वामिकमगुल्मकं ॥

भाषार्थ—जो सेना व्यूह (कयायद) में कुशल हो वह शिक्षित और इससे विपरीत अशिक्षित होती है—जिसका अधिकारी दूसरा हो वह गुल्मीभूत और जिसका स्वामी अन्य नहो वह अगुल्मी भूत होती है ॥७५॥

दत्तास्त्रादिस्वामिनायत्स्वशस्त्रास्त्रमतो
न्यया ।

कृतगुल्मस्वयंगुल्मंतद्वन्द्वदत्तवाहनं ॥७६॥

भाषार्थ—स्वामिन जिसको अस्त्र आदिदिये हों वह दत्तास्त्र और इससे विपरीत स्वशस्त्रास्त्र होती है—कृतगुल्म—२ स्वयंगुल्म—और ३ दत्तवाहन ॥ ७६ ॥

आरण्यकंकिरातादियत्स्वाधीनस्वतेजसा ।

रत्सृष्टरिपुणावापिभृत्यवर्गोनिवेशितं ॥७७॥

भाषार्थ—मौल आदि जो अपने तेजसे स्वाधीन होते हैं उनकी सेना आरण्यक (वनकी) होती है—जो सेना शत्रुने छोड़ दीहो और अपने भृत्योंमें मिला लीहो ॥७७॥

भेदाधीनकृतशत्रोःसैन्यंशत्रुवलस्मृतं ।

उभयदुर्बलप्रोक्तकेवलसाधकनतत् ॥७८॥

भाषार्थ—वा जो शत्रुकी सेना भेदसे अपने आधीन करली हो वह शत्रुकी सेना कही

है—ये दोनों दुर्बल कहाँ हैं और अकेली ये दोनों कार्यसिद्धिको नहीं कर सकती ॥७८॥

समैर्नियुद्धकुशलैर्व्यापामैर्नतिभिस्तथा ।

वर्धयेद्वाहुयुद्धार्थंभोज्यैःशरीरकैर्वलं ॥७९॥

भाषार्थ—समान जो निरंतर युद्धमें कुशल उनके परस्पर युद्धसे—व्यापाम (कसस्त) और नति (प्रार्थना) से और शरीरके पोषक उत्तम २ खानेके पदार्थोंसे बाहुयुद्धके लिये सेनाको बढ़ावे ॥ ७९ ॥

मृगयाभिस्तुव्याघ्राणांशस्त्रास्त्राभ्यासतः
सदा ।

वर्धयेच्छरसंयोगात्सम्यक्छौर्यवर्लवृषः ॥

भाषार्थ—सिंहोंकी मृगया और सदैव शस्त्र अस्त्रके अभ्यास और वाणोंके संयोग (चालना) से शूरवीर्योंकी सेनाको सदैव राजा बढ़ावे ८० सेनाबलंसुभृत्यातुतपोभ्यासेस्तथास्त्रिकं । वर्धयेच्छास्त्रचतुरसंयोगाद्दीवलसदा ८१ ॥

भाषार्थ—अच्छ भृति (नौकरी) से सेनाके बलको और तपके अभ्याससे अस्त्रके बलको और शस्त्र और चतुरके सत्संगसे बुद्धिके बलको सदैव बढ़ावे ॥ ८१ ॥

सत्क्रियाभिश्चिरस्यापिनिर्वराज्यंभवेद्यथा
स्वगोत्रेतुतयाकुर्यात्तदायुर्वलमुच्यते ॥८२॥

भाषार्थ—अच्छे २ कर्मोंसे अपने गोत्रकी परंपरामें राज्य चिरकालतक जिस प्रकार स्थिर रहे उस प्रकारही राजा आचरण करे उसको आयुर्वल कहते हैं ॥ ८२ ॥

यावद्गोत्रेराज्यमस्तितावदेवसजीवति ।

चतुर्गुणंहिपादातमश्वतोधारयेत्सदा ८३ ॥

भाषार्थ—इतने राजाके गोत्रमें राज्य रहे तबतकही वह राजा जीवता है—और सत्ता

रसे चौगुनी पदातियोंकी सेना राजा सदैव रखे ॥ ८३ ॥

पंचमांशानुवृषभानष्टांशांश्चक्रमेलकान् ।
चतुर्थांशान्गजानुष्टान्गजाधीश्वरयान्सदा ॥

भाषार्थ—पांचवें अंशके बैल और आठवें अंशके खीचर चौथाई हाथी और ऊंट और हाथियोंसे आधे रथ सदैव रखे ॥ ८४ ॥

रथानुद्विगुणं राजा बृहन्नालद्वयं तथा ।
पदातिवहुलसैन्यं मध्याश्वतुगजाल्पकं ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—रथोंसे दूने दो बड़े तोफखाने राजा रखे—जिसमें पदाति बहुत हों और घोड़े मध्यम और हाथी अल्प हों उसे सैन्य कहते हैं ॥ ८५ ॥

तथा वृषोष्टसामान्यं रक्षेत्रागाधिकं न हि ।
सवयः सारवेषोऽत्र शस्त्रास्त्रंतु पृथक् शतं ८६ ॥

भाषार्थ—तिसी प्रकार बैल और ऊंट जिसमें सामान्य हों उस सेनाकी राजा रक्षा करे और जिसमें हाथी अधिक हों उसकी नदी-जवान-उत्तम वेषधारी-उत्तम २ शस्त्र और अस्त्रधारी ये सब पृथक् २ सौ २ रखने ८६

लघुनालिकयुक्तानां पदातीनां शतत्रयं ।
अशीत्यश्वान् रथंचैकं बृहन्नालद्वयं तथा ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—और बंदूकवाले पदाति तीनसौ हों—अस्सी घोड़े और एक रथ और बड़ी दो तोफ ॥ ८७ ॥

उष्ट्रान् दशगजौ द्वौ तु शकौ षोडशर्षभान् ।
तथालेखकषट्कां हि मन्त्रितयमेव च ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—दश ऊंट—दो हाथी—दो गाड़े—सोलह बैल—और छः लिखारी और तीन मंत्री होने चाहिये ॥ ८८ ॥

धारयेन्नुपातिः सम्यक् वत्सरे लक्षकर्षभाक् ।
संभारदानभोगार्थं धनं सार्धं सहस्रकं ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—इन सबको राजा भली प्रकार रखे और एक वर्षमें एक लक्ष रुपयोंका संचय करे और सामान और दान भोगके लिये षेडसहस्र रुपया प्रतिमासमें करे ८९ ॥

लेखकार्यैश्च तं मासिमज्यर्थे तु शतत्रयं ।
त्रिशतदारपुत्रार्थैर्विद्वदर्थे शतद्वयं ॥ ९० ॥

भाषार्थ—लिखनेके काममें सौरुपे—और मंत्रीके काममें तीनसौ रुपे और स्त्री और पुत्रोंके लिये तीनसौरुपे—और पंडितोंके लिये दो सौरुपे—प्रति मासमें खर्च करे ॥ ९० ॥
साद्यश्च पदगार्थं हिरा राजा चतुः सहस्रकं ।
गजोष्ट्रवृषनालार्थं व्ययं कुर्याच्चतुः शतं ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—सवार—घोड़े—पदाति—इनके लिये चार सहस्र रुपे—और हाथी—ऊंट—बैल—और तोफखाना इनके लिये चारसौ रुपे प्रतिमासमें राजा खर्च करे ॥ ९१ ॥

शेषं कोशे धनं स्थाप्यं व्ययं कुर्यान्न चान्यथा ।
लोहसारमयश्चक्रसुगमो मंचकासनः ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—शेष धनको कोश (खजाना) में स्थापन करे और अन्य किसी वृथा रीतिसे खर्च न करे—जिस रथका चक्र लोहसार (उत्तमलोहा) का हो जिसकी गति (चलना) अच्छी हो और जिसमें बैठनेका आसन मंचक (खट्वा) के समान हो ॥ ९२ ॥
स्वादोलपितरुढस्तु मध्यमासनसारथिः ।

शस्त्रास्त्रसंधार्युदरं इष्टच्छायामनोरमः ॥ ९३ ॥

भाषार्थ—जिसकी दोला (कमानी) ओं पर सागथी बैठे व मध्यम आसन हो और जिस रथके भीतर शस्त्र अस्त्र सब आजाय और जिसकी छाया अच्छी हो और जो देखनेमें सुंदर हो ॥ ९३ ॥

एवंविधोरथोराज्ञारक्ष्योनित्यंसदश्वकः ।

नीलतालुनीलजिह्वोवक्रदंतोह्यदंतकः १४

भाषार्थ—ऐसे उत्तम अश्ववाले रथकी राजा सदैव रक्षा करे—और जिसकी तालु और जिह्वा नीली हों और दांत टेढ़े हों और जिसके दांत न हों ॥ १४ ॥

दीर्घद्वेपीक्रमदस्तथापृष्ठविधूनकः ।

दशाष्टोननखोमंदोभूविशोधनपुच्छकः १५

भाषार्थ—जिसको बड़ा वैर हो—जिसमें बहुत मद हो—और जिसकी पीठ कंपती हो और जिसके अठारहसे कम नख हों जो मंदहो और जिसकी पुंछ भूमिपर लटकती हो ॥ १५ ॥

एवंविधोऽनिष्टगजोविपरीतःशुभावहः ।

भद्रोमंद्रोमृगोमिश्रोगजोजात्याचतुर्विधः ॥

भाषार्थ—ऐसा जो हाथी वह अनिष्ट होता है और इससे विपरीत शुभदायी होता है और भद्र मंद्र मृग मिश्र—इन चार जातियोंसे हाथी चार प्रकारका होता है ॥ १६ ॥

मध्वाभदंतःसवलःसर्मांगोवर्तुलाकृतिः ।

सुमुखोवयवश्रेष्ठोज्ञेयोभद्रगजःसदा ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जिसके दांत मधुके समान हों—जो बलवान् हो—जिसके अंग सम हों—जिसका आकार गोल हो—सुंदर मुखहो—अंग अच्छे हों—ऐसे गजको सदैवसे भद्र कहते हैं ॥ १७ ॥

स्थूलकुक्षिःसिंहदक्कचवृहत्त्वगलशुंडकः ।

मध्यमावयवोदीर्घकायांमंद्रगजःस्मृतः १८

भाषार्थ—जिसकी कोख स्थूल हो—सिंहके समान दृष्टि हो—गला और शृंखला बड़े हों—अंग मध्यम हों—लंबी काया हो उस हाथीको मंद्र कहते हैं ॥ १८ ॥

तनुकंठदंतकर्णशुंडःस्थूलाक्षएवहि ।

सुहृत्स्वाधरमेंद्रस्तुवामनोमृगसंज्ञकः ॥ १९

भाषार्थ—जिसके कंठ—दांत—कान—शृंखला—ये सब पतले हों और नेत्र स्थूल (बड़े) हों हृदय और ओष्ठ और लिंग ये सब सुंदर हों आर जो वामन (छोटा) हो—उस हाथीको मृग कहते हैं ॥ १९ ॥

एपांलक्षमैर्विमिलितोगजोमिश्रइतिस्मृतः ।

भिन्नभिन्नप्रमाणंतुत्रयाणामपिकीर्तितं १००

भाषार्थ—इन सबके चिन्ह जिसमें मिलें वह गज मिश्र कहा है—और तीनोंका प्रमाणभी भिन्न २ कहा है ॥ १०० ॥

गजमानेह्यंगुलंस्पादष्टभिस्तुयवोदरैः ।

चतुर्विंशत्यंगुलैस्तैःकरःप्रोक्तोमनीषिभिः १

भाषार्थ—हाथीके प्रमाणमें ऐसा अंगुल होता है जिसके बीचमें आठ जो आजाय उन चौबीस अंगुलोंका बुद्धिमान मनुष्योंने कर (हाथ) कहा है ॥ १०१ ॥

सप्तद्वस्तोन्नतिर्भेदह्यष्टद्वस्तप्रदीर्घता ।

परिणाहोदशकरउदरस्यभवेत्सदा ॥ २ ॥

भाषार्थ—भद्र हाथीकी लंबाई सात हाथकी चौड़ाई आठ हाथकी—और उदरका विस्तार दश हाथका सदैव रहता है ॥ १०२ ॥

प्रमाणंमंद्रमृगयोर्हस्तहीनंक्रमादतः ।

कथितंदैर्घ्यसाम्यंतुमुनिभिर्भद्रमंद्रयोः ॥ ३

भाषार्थ—मंद्र और मृग नामके हाथी—योंका प्रमाण इससे एक हाथ कम होता है और चौड़ाईमें भद्र और मंद्रकी साम्यता (बराबरी) ही मुनियोंने कही है ॥ ३ ॥

वृहद्भ्रूगंडालस्तुघृतशीर्षगतिःसदा ।

गजःश्रेष्ठस्तुसर्वेषांशुभलक्षणसंयुतः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जिसकी भुङ्कुटी गंडस्थल—और मस्तक ये तीनों बड़े हों और शिरकी गति—भी जिसकी सदैव अच्छी हो और जो उत्तम २ लक्षणोंसे युक्त हो ऐसा हाथी सब हाथियोंमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४ ॥

पंचयवांगुलैर्नैववाजिमानं पृथक्स्मृतं ।

चत्वारिंशांगुलमुखोवाजीयश्चोत्तमोत्तमः ५

भाषार्थ—पांच जोंके अंगुलसे घोड़ोंका प्रमाणभी पृथक् २ कहा है—चालीस अंगुल—का जिसका मुख हो ऐसा जो घोड़ा वह उत्तमसे उत्तम होता है ॥ ५ ॥

षट्त्रिंशदंगुलमुखोऽहोत्तमः परिकीर्तितः ।

द्वात्रिंशदंगुलमुखो मध्यमः स उदाहृतः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—छतीस अंगुलका जिसका मुख हो वह उत्तम—और बत्तीस अंगुलका जिसका मुख हो वह मध्यम कहा है ॥ ६ ॥

अष्टाविंशत्यंगुलोऽधोमुखे नीचः प्रकीर्तितः ।

वाजीनां मुखमानेन सर्वावयवकल्पना ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जिस घोड़ेका मुख अठार्वीस अंगुलका हो वह नीच कहा है और घोड़ोंके मुखसेही संपूर्ण अवयवोंकी कल्पना होती है कि ॥ ७ ॥

औच्चंतुमुखमानेन त्रिगुणं परिकीर्तितं ।

शिरोमणिसमारभ्य पुच्छमूलांतमेव हि ॥ ८ ॥

भाषार्थ—मुखके प्रमाणसे तिगुनी उंचाई कही है—और शिरकी मणिसे लेकर पूँछके मूल पर्यंत ॥ ८ ॥

तृतीयांशाधिकंदैर्घ्यं मुखमानाच्चतुर्गुणं ।

परिणाहस्तदरस्य त्रिगुणं च त्र्यंगुलाधिकः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—तीसरा अंश अधिक (चौगुनी) लंबाई होती है और वह मुखके प्रमाणसे

चौगुनी समझनी—और उदरका विस्तार तिगुना और तीन अंगुल होता है ॥ ९ ॥

स्मश्रुहीनमुखः कांतः प्रगल्भोऽतुंगनासिकः ।

दीर्घोद्धतग्रीवमुखो ह्रस्वकुक्षिखुरश्रुतिः १०

भाषार्थ—जिसके मुखपर श्मश्रु (बाल) नहीं—सुंदर—प्रगल्भ हो और जिसकी नासिका उंची हो—जिसकी ग्रीवा और मुख ऊपर को ऊंचे उठे रहते हो और जिसकी कुक्षि छोटी—हो और जिसके खुरोंका शब्द सुनता हो ॥ १० ॥

तुरप्रचंडवेगश्च हंसमेघसमस्वनः ।

नातिक्रोनातिमृदुर्देवसत्वो मनोरमः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—शीघ्र तरमें जिसका वेग प्रचंड हो—हंस और मेघके समान जिसका शब्द हो और जो न अत्यंत क्रोधी और न अत्यंत कोमल हो और जो देवके समान बलवान् हो और सुंदर हो ॥ ११ ॥

सुकांतिगंधवर्णश्च सद्रुणभ्रमरान्वितः ।

भ्रमतस्तु द्विधा वर्तते वामदक्षिणभेदतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—जिसकी कांति—गंध वर्ण ये सुंदर हों और उत्तम गुण और भोंवरी हों—वाम और दक्षिणकी तरफ भ्रमणके समय जिसके दो प्रकार आवर्त (भोंवरी) पड़ें ॥ १२ ॥

पूर्णोऽपूर्णः पुनर्द्धा दीर्घो ह्रस्वस्तथैव च ।

स्त्रीपुं देहवामदक्षौ यथोक्तफलदौ क्रमात् १३

भाषार्थ—और पूर्ण और अपूर्ण—और तिसी प्रकार दीर्घ और ह्रस्व भोंवरी हों और घोड़ी और घोड़ाके देहमें बाई और दाहिनी तरफ क्रमसे फल दायक होते हैं ॥ १३ ॥

न तथा विपरीतौ तु शुभाशुभफलप्रदौ ।

नीचोर्ध्वतिर्यङ्मुखतः फलभेदो भवेत्तयोः

भाषार्थ—और इससे विपरीत शुभ और अशुभ फलदायक नहीं होते—नीचे—ऊर्ध्व और तिरछे मुखसे उनके फलका भेद हो जाता है ॥ १४ ॥

शंखचक्रगदापद्मवेदिस्वस्तिकसन्निभः ।
प्रासादतोरणधनुःसुपूर्णकलशकृतिः ॥ १५ ॥

भाषार्थ—शंख—चक्र—गदा—पद्म—वेदी—स्वस्तिक (सतिया) इनके समान अथवा मंदिर—तोरण—धनुष्य—पूर्णकलश—इनके तुल्य जिसका आकार हो ॥ १५ ॥

स्वस्तिकस्रङ्गमीनस्रङ्ग श्रीवत्सामःशुभो
भ्रमः ।

नासिकाग्रललाटेचशंखकंठेचमस्तके ॥ १६ ॥

भाषार्थ—स्वस्तिक—माला—मीन—खड्ग—श्रीवत्स इनकी कान्तिके समान जो हो वह भौवरी शुभ है—नासिकाके अग्रभागमें लटार—मे शंखमें कंठमें और मस्तकमें ॥ १६ ॥

आवर्तोजायतेयेपांतेधन्यास्तुरगोत्तमाः ।
हृदिस्कंधेगलेचैवकाटिदेशेयैवच ॥ १७ ॥

भाषार्थ—जिन वाजियोंके आवर्त (भ्रमर) हो वे घोड़ोंमें उत्तम धन्य हैं—हृदयमें स्कंध—पर—गलेमें और कमरमें ॥ १७ ॥

नाभौकुक्षौचपार्श्वग्रिमध्यमाःसंप्रकीर्त्तताः ।
ललाट्यस्यचावर्तद्वितयस्यसमुद्भवः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—और नाभि—कुक्षि और पार्श्वोंका अग्रभाग इनमें जिनके आवर्त हो वे घोड़े मध्यम कहे हैं—जिसके ललाटमें दो आवर्त हों ॥ १८ ॥

मस्तकेहृत्तृतीयस्यपूर्णहर्षोयमुत्तमः ।

पृष्ठवंशेयदावर्तोयस्यैकःसंप्रजायते ॥ १९ ॥

भाषार्थ—और मस्तकमें तीन आवर्त हों

और आनंदसे पूर्ण हो वह घोड़ा उत्तम होता है—जिसकी पीठके वांसमें एक आवर्त हो ॥ १९ संकरोत्यश्वसंघातान्स्वामिनःसूर्यसंज्ञकः ।
त्रयोयस्यललाटस्थाआवर्तास्तिर्यगुत्तराः

भाषार्थ—वह सूर्य नामका घोड़ा अपने स्वामीके यहां घोड़ोंके समूहोंके इकट्ठे करता है—और जिसके—ललाटमें तीन आवर्त हों और वामकी तरफका आवर्त तिरछा हो ॥ २० ॥

त्रिकुटःसपरिज्ञेयोवाजिवृद्धिकरःसदा ।

एवमेवप्रकारेणत्रयोग्रीवांसमाश्रिताः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—उस घोड़ेको त्रिकूट कहते हैं और वहभी सदैव घोड़ोंकी वृद्धि करने-वाला होता है—इसी प्रकार तीन ग्रीवामें २१ समावर्तःसवाजीशो जायतेनृपमंदिरे ।

कपोलस्थोयदावर्तोदृश्यतेयस्यवाजिनः २२

भाषार्थ—उत्तम आवर्त होय तो वह घोड़ों का स्वामी वाजी राजाके मंदिरमेंही होता है जिस घोड़ेके कपोलोंपर दो आवर्त दीखें २२ यशोवृद्धिकरौप्रोक्तौराज्यवृद्धिकरौमतौ ।

एकोवायकपोलस्यौयस्यावर्तःप्रदृश्यते २३

भाषार्थ—वे दोनों आवर्त यश और राज्य-की वृद्धि करनेवाले कहे हैं अथवा जिसके कपोलपर एकही आवर्त दीखें ॥ २३ ॥

शर्वनामासविख्यातःसङ्च्छेत्स्वामिनाशनं
गंडसंस्थोयदावर्तोवाजिनोदक्षिणाश्रितः ॥

भाषार्थ—उस घोड़ेका नाम शर्वा विख्यात है और वह अपने स्वामीका नाश करता है—जिस घोड़ेके दक्षिण गंडस्थलपर आवर्त हो ॥ २४ ॥

संकरोतिमहासौख्यंस्वामिनःशिवसंज्ञकः ।

तद्वद्वामाश्रितःक्रूरःप्रकरोतिघनक्षयम् २५

भाषार्थ—शिवनामक वह घोड़ा अपने स्वामीको महान् सुख करता है और जिसके बाँये गंडस्थलमें आवर्त हो, क्रूरनामक वह घोड़ा स्वामीके धनका नाश करता है॥
 इंद्राभौतावुभौशस्तौनृपराजविवृद्धिदौ ।
 कर्णमूलेयदावर्तौस्तनमध्येतथापरो ॥ २६ ॥

भाषार्थ—यदि ये दोनों गंडोंके आवर्त इंद्रके समान हों तो उत्तम राजाकी वृद्धिके देनेवाले होते हैं—जिसके कान और स्तनोंके मध्यमें दो २ आवर्त हों ॥ २६ ॥
 विजयाख्यावुभौतौतैयुद्धकालेशप्रदौ ।
 स्कंधपाश्वेयदावर्तौसभवेत्पद्मलक्षणः ॥ २७ ॥

भाषार्थ—विजय नामके वे दोनों घोड़े युद्धके समय यशके दाता होते हैं—स्कंध और पाश्वर्षोंमें जो आवर्त हो उसको पद्म लक्षण कहते हैं ॥ २७ ॥

करोतिविविधांपद्मांस्वामिनःसततंसुखं ।
 नासामध्येयदावर्तैकोवायदिवात्रयम् २८
 भाषार्थ—वह घोड़ा अपने स्वामीके यहां नानाप्रकारकी लक्ष्मी और निरंतर सुख करता है—जिसकी नाकमें एक वा तीन आवर्त हों ॥ २८ ॥

चक्रवर्तिसविज्ञेयोवाजीभूपालसंज्ञकः ।
 कंठेयस्यमहावर्तौएकःश्रेष्ठःप्रजायते ॥ २९ ॥

भाषार्थ—उस घोड़ेका नाम भूपाल होता है और वह राजा चक्रवर्ती जानना—जिसके कंठमें एक उत्तम आवर्त हो ॥ २९ ॥

चिंतामणिःसविज्ञेयश्चित्तिार्थसुखप्रदः ॥
 शुक्लाख्यौभालकंबुस्थौआवर्तौवृद्धिकीर्तिदौ ।

भाषार्थ—उस घोड़ेको चिंतामणि कहते हैं वह घोड़ा चिंतित अर्थ और सुख देने-

वाला होता है—यदि मस्तक और ग्रीवामें सपेद आवर्त हों तो वृद्धि और कीर्तिके दाता होते हैं ॥ ३० ॥

यस्यावर्तौवक्त्रगतौकुक्ष्यंतेवाजिनोयदि ।
 सनूनमृत्युमाप्नोति कुर्याद्वास्वामिनाशनम् ॥

भाषार्थ—जिस घोड़ेकी कुक्षिके अंतमें तिरछे आवर्त हों वह घोड़ा या तो निश्चय मर जाय अथवा अपने स्वामीका नाश करे ३१
 जानुसंस्थाअथावर्ताःप्रवासक्लेशकारकाः ।
 वाजिमेंद्वेयदावर्तौविजयश्रीविनाशनः ३२

भाषार्थ—जिसके गोंडोंपर तीन आवर्त हों वह घोड़ा प्रवास (परदेश) में क्लेशकारक होता है—यदि घोड़ेके लिंगमें आवर्त होय तो विजय और श्रीका नाश करता है ॥ ३२ ॥

त्रिकसंस्थोयदावर्तस्त्रिवर्गस्यप्रणाशनः ।
 पुच्छमूलेयदावर्तौधूमकेतुरनर्थकृत् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—जिसके त्रिकमें आवर्त हो वह धर्मअर्थकामका नाश करता है यदि पूछके मूलमें आवर्त हो धूमकेतु वह घोड़ा अनर्थ को करता है ॥ ३३ ॥

गुह्यपुच्छत्रिकावर्तौसकृतांतोभयप्रदः ।
 मध्यदंडात्पार्श्वगमासैवशतपदीकचैः ३४ ॥

भाषार्थ—जिसकी गुदा पूछमें तीन आवर्त हों तो कालरूप वह घोड़ा भयका दाता होता है—जिस घोड़ेकी शतपदी (पूछ) के बाल मध्य दंडसे पार्श्वकी तरफ जाय ३५

अतिदुष्टांगुष्ठमितादीर्घाऽदुष्टायथायथा ।
 अश्रुपाताहनुगंडहृद्गलप्रोथबस्तिषु ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—और वह अंगूठेके समान पतली होय तो अत्यंत दुष्ट होती है और जितनी २

मेटी हो उत्तनीही उत्तम होती है-जिसका
ठोड़ी-गंडस्थल-हृदय-गला-प्रोथ (पेह)
और वस्तिपर आंसू गिरें ॥ ३५ ॥

कटिशंख जानुमुष्कककुवाभिगुदेपुच ।
दक्षकुशौदक्षपादत्वशुभोभ्रमरःसदा ॥ ३६ ॥

भापार्थ-कमर-शंख-गोंडे-अंडकोश-
खंड-नाभि-गुदा-दक्षिणकोख-दक्षिणपाद
इनमें भ्रमर होयतो सदैव अशुभ कहा है ३६

गलमध्येपृष्ठमध्येउत्तरोष्ठेधरेतथा ।
कर्णनेत्रांतरैवामकुशौचैवतुषार्थयोः ॥ ३७ ॥

भापार्थ-गलेमें और पीठ-और दोनों
ओष्ठ-कान-नेत्र-और बाईकोख और दोनों
पार्श्व-इनमें ॥ ३७ ॥

ऊरुपुचशुभावर्तौवाजिनामग्रपादयोः ।
आवर्तौसांतरांभालेसूर्यचंद्रौशुभयदौ ॥ ३८ ॥

भापार्थ-दोनों ऊरु (जंवा) ओमें और
अगले पैरोंमें जो आवर्त हैं वे शुभ कहे हैं
और मस्तकके जो बीचमें खाली आवर्त हैं
वे सूर्यचंद्र कहाते हैं और शुभदायक होते
हैं ॥ ३८ ॥

मिलितौतौमध्यफलौह्यतिलग्रीतुदुष्फलौ ।
आवर्तौत्रितयंभालेशुभचोर्ध्वतुसांतरम् ॥ ३९ ॥

भापार्थ-जो वे दोनों आवर्त आपसमें कुछ
मिले होंय तो मध्यमफल और अत्यंत मिले
होंय तो बुराफल देते हैं-और मस्तकके
ऊपर तीन आवर्त फरकसे होंय तो शुभ
होते हैं ॥ ३९ ॥

अशुभंचातिसंलग्नमावर्तद्वितयंतया ।
त्रिकोणत्रितयंभालेआवर्तानांतुदुःखदम् ॥

भापार्थ-और अत्यंत मिले हुये अशुभ
होते हैं और ऐसे ही दो आवर्त समझने

और मस्तकमें तिकोने तीन आवर्त दुःखदा-
यी होते हैं ॥ ४० ॥

गलमध्येशुभस्त्वेकःसर्वाशुभनिवारणः ।
अधोमुखःशुभःपादेभालेचोर्ध्वमुखोभ्रमः ॥

भापार्थ-गलेके मध्यमें एक आवर्त संपूर्ण
अशुभोंका नाशक होनेसे शुभ होता है
और पैरोंमें अधोमुख और मस्तकमें ऊर्ध्व-
मुख आवर्त शुभ होते हैं ॥ ४१ ॥

नचैवात्यशुभापृष्ठमुखीशतपदीमता ।
मंद्रस्यपश्चाद्भ्रमरीस्तनवाजीसचाशुभः ॥

भापार्थ-और पीछेको मुखवाली पूंछ अ-
त्यंत अशुभ नहीं कही-जिसके लिंगके पी-
छे और स्तनोंमें भैंरी हो वह घोड़ाभी अ-
शुभ होता है ॥ ४२ ॥

भ्रमःकर्णसमीपेतुशृंगीचैकःसर्निदितः ।
ग्रीवोर्ध्वपार्श्वभ्रमरीहिकारिमःसचैकतः ४३

भापार्थ-जो कानोंके समीप एक साँगवा-
ला आवर्त होय तो वहभी निर्दित है ग्रीवा-
के ऊपरके पार्श्वमें जो एक रस्सीकी भैंरी
हो और वह एक तरफ होय तो निर्दित होती
है ४३ ॥

पादोर्ध्वमुखभ्रमरीकीलोत्पाटीसर्निदितः ॥
शुभाशुभोभ्रमौयस्मिन्सवाजीमध्यमःस्पृशतः

भापार्थ-पैरोंमें जो ऊर्ध्व मुखभैंरी है उस
को कीलोत्पाटी कहते हैं और वहभी निर्दि-
त होती है-जिस घोड़ेमें शुभ और अशुभ
दोनों आवर्त हों वह घोड़ा मध्यम
है ॥ ४४ ॥

मुखेपत्सुसितःपंचकल्याणोश्चसदामतः ।
सएवहृदयेस्कंधेषुच्छेत्वेतोष्ट्रमंगलः ॥ ४५ ॥

भाषार्थ—जिसका मुख और पैर सपेद हों वह घोड़ा सदैव पंचकल्याण कहा है यदि-वही हृदय-स्कंध-और पुच्छमें सपेद होय तो अष्टमंगल होता है ॥ ४५ ॥

कर्णेद्यामःश्यामकर्णःसर्वतस्त्वेकवर्णभाक् तत्रापिसर्वतःश्वेतोमध्यःपूज्यःसदैवहि ४६

भाषार्थ—जिसके कर्ण श्यामहों और सब एकही रंगहो वह श्यामकर्ण उसमेंभी जो संपूर्ण श्वेत हो वह मध्यम और सदैव पूजने योग्य होता है ॥ ४६ ॥

वैदूर्यसन्निभेनेत्रेयस्यस्तोजयमंगलः ।

मिश्रवर्णस्त्वेकवर्णःपूज्यःस्यात्सुंदरोयदि

भाषार्थ—जिसके नेत्र वैदूर्य माणिके तुल्य हों वह जयमंगल होता है और जो घोड़ा अनेक वर्ण हो अथवा एकही वर्ण हो और सुंदरभी होय तो पूजनेयोग्य होता है ॥ ४७ ॥

कृष्णपादोहरिर्निद्यस्तथाश्वेतैकपादपि ।

रुक्षोधूसरवर्णश्चगर्दभाभोपिनिंदितः ४८ ॥

भाषार्थ—जिस घोड़ेके पैर काले हों अथवा एकही पैर सपेद होय तो वहभी निंदित होता है और जो रूखा गधेके समान धूसर वर्णकाहो वहभी निंदित होता है ॥ ४८ ॥

कृष्णतालुःकृष्णजिह्वःकृष्णोष्ठश्चविनिंदितः

सर्वतःकृष्णवर्णोऽयःपुच्छेश्वेतःसनिंदितः ॥

भाषार्थ—जिसके-तालु-जिह्वा-और ओष्ठ ये सबकाले हों वहभी अत्यंत निंदित होता है और जो सब कृष्णवर्ण और पूंछमें सपेद हो वहभी निंदित है ॥ ४९ ॥

उच्चैःपदंन्यासगतिर्द्विपण्याघ्रगतिश्चयः ।

मयूरहंसतिर्त्तरिपारावत्तगतिश्चयः ॥ ५० ॥

भाषार्थ—जिस घोड़ेकी गति (चाल) उंचे २ पैर उठाकर हो अथवा गैंडा-सिंह-मोर

हंस-तिर्त्तरि-और कबूतर इनके समान जिसकी गति हो ॥ ५० ॥

मृगोष्ट्वानरगतिःपूज्योवृषगतिर्हयः ॥

अतिभुक्तोतिपीतोऽपियथासादीनपीडयेत्

भाषार्थ—मृग-ऊंट-बन्दर-अथवा बेल इन्के समान जिसकी गति हो वह घोड़ा पूजने योग्य होता है-जो घोड़ा अत्यंत भूखा वा अत्यंत प्यासा अपने सवारको पीडा न दे ५१ श्रेष्ठागतिस्तुसाज्ञेयाश्रेष्ठस्तुरगोमतः ।

सुश्वेतभालतिलकोविद्धोवर्णांतरेणच ५२ ॥

भाषार्थ—वह गति उत्तम जाननी और वही घोड़ा श्रेष्ठ माना है जिस घोड़ेके मस्तकका सपेद तिलक दूसरे रंगसे विंघाहो अर्थात् उसमें कोई अन्य वर्णभी हो ॥ ५२ ॥

सवार्जदलभंजीतुयस्यतस्यातिनिंदितः ।

संहन्यार्द्रजान्दोपान्स्निग्धवर्णोभवेद्यदि

भाषार्थ—वह घोड़ा सेनाके नष्ट करनेवाला होता है और जिसका वह घोड़ा हो वहभी अत्यंत निंदित होता है-यदि घोड़ेका वर्ण स्निग्ध (चिकना) होय तो वर्णके जितने दोष हैं उन सबको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

वलाधिकश्चसुगतिर्भहान्सर्वांगसुंदरः ।

नातिक्रूरःसदापूज्योभ्रमाद्यैरपिदूषितः ५४

भाषार्थ—जिस घोड़ेमें बल अधिक हो और अच्छी गति हो और मोटा और सब अंगोंमें सुंदरहो जो अत्यंत क्रोधी नहो वह चाहै आवर्त आदिसे दूषितभी हो तोभी सदैव पूजनेयोग्य है ॥ ५४ ॥

वाजिनामत्यवहनात्सुदोषाःसंभवांतिहि ।

कृशोव्याधिपरीतांगोजायतेत्यंतवाहनात् ॥

भाषार्थ—घोड़ोंसे जो सवारी न लेना उससे बहुतसे दोष होते हैं-जो घोड़ा दुबला-रोगी अत्यंत जोतनेसे हो जाय ॥ ५५ ॥

अवाहितोभवेन्मन्दःसर्वकर्मसुनिन्दितः ।
अपोपितोभवेत्क्षीणो रोगीचात्यन्तपोपणात् ।

भाषार्थ—और बिना जोते मंद होजाय वह सब कामोंमें निन्दित होता है—और जो बिना पोषण (खवाये) क्षीण (थकना) होजाय और अत्यन्त पोषणसे रोगी होजाय ॥ ५६ ॥

सुगतिर्दुर्गतिरित्यंशिक्षकस्यगुणागुणैः ।

जातवधश्चलपादस्यादृजुकायःस्थिरासनः ।

भाषार्थ—और जिसकी शिक्षकके गुण और अवगुणसे सुगति और दुर्गति होजाय—और गोडके नीचे जिसके पैर हलते हों और काया कोमल और आसन स्थिरहो ॥ ५७ ॥

तुलाधृतखलीनःस्यात्कालेदेशेसुशिक्षकः ।

मृदुनानातितीक्ष्णनकशाघातेनताडयेत् ॥

भाषार्थ—जो समय और देशके अनुसार एकसी खलीन (लगाम) को धारण करे वह अच्छा शिक्षक होता है जो कशा (कोरडा) कोमल हो और अतिकठिन नहो उससेही घोडेकी ताडना करे ॥ ५८ ॥
ताडयेन्मध्यघातेनस्यानेस्वध्वंसुशिक्षकः ।
हेपितेकक्षयोर्हन्त्यात्स्खलितेपक्षयोस्तथा ॥

भाषार्थ—उत्तम शिक्षा देनेवाला श्रेष्ठघोडेको मध्यमरीतिसे उचित अंगमें ताडना दे—हिंसनेमें कोख और गिरनेके समय पंखोंमें ताडना दे ॥ ५९ ॥

भीतिकर्णांतरैश्चैवग्रीवासुन्मार्गगामिनि ।

कुथितेबाहुमध्येचभ्रांतचित्तेतथोदरे ॥ ६० ॥

भाषार्थ—ढलेपर कानोंमें कुमार्गचलनेपर ग्रीवामें क्रीध होनेपर भुजाके मध्यमें—चित्तके भ्रम होनेपर पेटमें घोडेकी ताडना दे ॥ ६० ॥

अश्वःसंताड्यतेप्राज्ञैर्नान्यस्थानेषुकार्हिंचित्
अथवाहेपितेस्कंधस्खलितेजघनांतरम् ६१

भाषार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य किसी अन्य स्थानमें कभीभी ताडनानदे अथवा हिंसने पर स्कंधोंमें और पडनेपर जंघाओंके मध्यमें ताडना दे ॥ ६१ ॥

भीतिवक्षस्थलंहन्याद्वक्त्रमुन्मार्गगामिनि ।

कुपितेषुच्छसंध्यतेभ्रांतेजानुद्वयंतथा ६२ ॥

भाषार्थ—घोडेके ढरजनेपर छातीपर—कुमार्ग चलनेपर मुखमें—क्रोध होनेपर पृष्ठके समीपमें और भ्रम होनेपर दोनों गोंडोंमें ताडना दे ॥ ६२ ॥

नासकृत्ताडयेदश्वमकालेचविदेशके ।

अकालास्यानघातेनवाजीदोषांस्तनोतिच

भाषार्थ—बारंवार और क्रुसमयमें और कोमल देशमें अश्वको ताडना नदे क्योंकि क्रुसमय और विदेशकी ताडना देनेपर घोडा दोषोंको करता है अर्थात् अपने सवारके दावमें न रहता है ॥ ६३ ॥

तावद्भवतितेदोषायावज्जीवित्यसौहयः ।

दुष्टदंडेनाभिभवन्नारोहेदंडवर्जितः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—और वे दोष तबतक रहते हैं जबतक यह घोडा जीवता है—दुष्ट घोडेका दंडसे तिरस्कार करे और दंडके बिना सवारभी नहो ॥ ६४ ॥

गच्छेत्पोडशमात्राभिरुत्तमोन्धोधनुःशतं ।

यथायथान्यूनगतिरश्वोहीनस्तथातथा ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—जो घोडा सोलह मात्राओंके उच्चारण कालमें सौ धनुष चले वह उत्तम होता है इससे जितनी २ न्यूनगति जिसकी हो उतना २ ही वह हीन होता है ॥ ६५ ॥

सहस्रचापप्रामितंमंडलगतिशिक्षणे ।

उत्तमवाजिनोमध्यं नीचमर्धतदर्धकं ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—और गतिकी शिक्षा देनेके समय सहस्र मंडल धनुषकी गतिका प्रमाण उत्तम घोडेका है उससे आधी गतिवाला मध्यम और उससेभी आधी गति जिसकी हो वह घोडा नीच होता है ॥६६॥

अल्पशतधनुःप्रोक्तमत्यल्पचतुर्दशकं ।

शतयोजनगतास्यादिनैकेनयथाहयः ६७॥

भाषार्थ—सौ धनुषकी गति अल्प और पचासधनुषकी गति अत्यल्प होती है जैसे घोडा एक दिनमें सौ योजन चलनेवाला होजाय ॥ ६७ ॥

गतिस्वर्धयेन्नित्यंतथामंडलविक्रमैः ।

सायंप्रातश्चहेमंतेशिशिरेकुसुमागमे ॥६८॥

भाषार्थ—उस प्रकार नित्य गतिको मंडल और बढ़ावे विक्रम (चाल) से हेमंत (जाड़ा) ऋतुमें सायंकाल और प्रातः-काल—और शिशिर और वसंत ऋतुमें ६८॥

सायंग्रीष्मेतुशरदिप्रातरश्ववेत्सदा ।

वर्षासुनवहेदीपतथाविषमभूमिपु॥ ६९ ॥

भाषार्थ—सायंकालको और ग्रीष्म (गरमी) और शरद ऋतुमें प्रातःकालकी समय घोडेको नित्य चलावे और वर्षा और विषम भूमिमें कदाचित्भी न चलावे ॥ ६९ ॥

सुगत्याग्निर्वलंदाव्यमारोग्यवर्धतेहरेः ।

भारमार्गपरिश्रान्तंशनैश्चक्रामयेद्धयम् ७० ॥

भाषार्थ—उत्तम गतिसे घोडेकी आग्नि-बल दृढता और आरोग्य बढ़ते हैं और भार और मार्गसे थके हुये घोडेको शनैः २ चलावे (फेरे) ॥ ७० ॥

स्रैहसंपादयेत्पश्चाच्छर्करासक्तुमिश्रितं ।

हरिमंथाश्चमाषाश्चभक्षणार्थमकुष्ठकान् ७१

भाषार्थ—फिर खांड और सक्तुओंमें मिलाकर घीको खुलावे और चणे और उडद और मठा ये सब घोडेके भक्षणके लिये दित हैं ॥ ७१ ॥

शुष्कानार्द्रांश्चमांसानिसुखिन्नानिप्रदापयेत् यद्यत्रस्खलितंगान्त्रतत्रदंशंप्रापयेत् ॥७२॥

भाषार्थ—सूखे और गोले पके हुये मांसों-कोभी दे जो गात्र घोडेका घाव आदिसे गिर जाय उस जगह मांसको भरदें ॥ ७२

नावतीरितपल्याणंहयमार्गसमागतं ।

दत्त्वागुडंसलवणंवलत्तरक्षणायच ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—जिस घोडेका पलाण नावसे उतारा हो और मार्गसे चलकर आया हो उसको लवण और गुडबलकी रक्षाके लिये देकर ॥ ७३ ॥

गतस्वेदस्यशांतस्यसुरूपमुपातिष्ठतः ।

मुक्तपृष्ठादिवंधस्यखलीनमवतारयेत् ॥७४॥

भाषार्थ—जब स्वेद (पसीना) शांत हो-जाय और अपने स्वरूपमें स्थित होजाय और उसकी पीठका बंधन तारकर खलीन (लगाम) को उतार लें ॥ ७४ ॥

मर्दयित्वातुगान्नाणिपांसुमध्येविवर्तयेत् ।

स्नानपानावगाहैश्चततःसम्यक्प्रदापयेत् ॥

भाषार्थ—और गातोंको मलकर ऐसी जगह फेरे जहां धूली हो फिर स्नान-पान और मलकर भली प्रकार पुष्ट करे ॥ ७५ ॥

सर्वदोषहरोन्मानांमद्यजंगलयोरसः ।

शक्त्यासंपादयेत्क्षीरंघृतंवावारिसक्तुकं ७६ ॥

भाषार्थ—मदिरा और जंगलीमांसका रस घोड़ोंके सब रोगोंको हरता है और यथा शक्ति दूध-घी और जलमिले सक्तुओंको खिलावे ॥ ७६ ॥

अन्नभुक्त्वा जलं पीत्वा तत्क्षणाद्वाहितो हयः ।
उत्पद्यंत तदा श्वानां कासश्वासादिका गदाः ॥

भाषार्थ—अन्नको खिलाकर और जलको पिलाकर उसी क्षणमें चलाया हुआ जो घोड़ा उसके कास और श्वास आदि अनेक रोग पैदा होते हैं ॥ ७३ ॥

यावाश्च चणकाः श्रेष्ठामध्यामापामकुण्डकाः
नीचामसूरासुद्राश्च भोजनार्थमुवाजिनः ७८

भाषार्थ—घोड़ेको जौ और चणे श्रेष्ठ और उड़द और मठा मध्यम होते हैं और मसूर और मूंग भोजनके लिये निर्दिष्ट होते हैं ॥ ७८ ॥

पादैश्चतुर्भिस्तुत्यमृगवत्साप्सुतागतिः ।

असंवलितपद्भ्यां तु सुव्यक्तं गमनं तुरं ॥ ७९

भाषार्थ—जो घोड़ा चारों पैरोंसे मृगके समान कूदकर चले वह गति प्लुत होती है और पैरोंको नहीं मिलाकर जो प्रकट गतिसे चले उस गतिको तुर (वेगवती) कहते हैं ॥ ७९ ॥

धौरीतकंचतज्जेयं रयसंवाहनेवरं ।

प्रसंवलितपद्भ्यां योमयूरोद्धृतकंधरः ॥ ८०

भाषार्थ—जो घोड़ा रथके ले चलनेमें उत्तम हो उसे धौरीतक कहते हैं जो घोड़ा मिले हुये पैरोंसे कंधरा उठाये ले उसे मयूर कहते हैं ॥ ८० ॥

दोलायितशरीरार्थका योगच्छतिवल्गितं ।

गतयः पद्धिधा धारास्कंदितरोचितं पुंसम् ८१

भाषार्थ—जो घोड़ा आवे शरीरको हिंदोलेके समान उठाकर चले उसकी गति को वल्गित कहते हैं—और घोड़ेकी गति छः

प्रकारकी होती है—धार आस्कंदित—पेचित—प्लुत ॥ ८१ ॥

धौरीतकंच वल्गितंच तासां लक्ष्मपृथक्पृथक् ।

धारागतिः सा विज्ञेया याति वेगतरामता ॥ ८२

भाषार्थ—और धौरीतक और वल्गित—उनके लक्षणभी पृथक् २ हैं—जो अत्यंत वेगसे हो वह गति धार जाननी ॥ ८२ ॥

पार्ष्णिती दाति नुदितो यस्यां भ्रांतो भवेद्भयः ।
आकुंचिता प्रपादाभ्यामुत्प्लुत्योत्प्लुत्य या गतिः

भाषार्थ—पार्ष्णि (रोड़ी) के लगानेसे अत्यंत प्रेरित किया घोड़ा अत्यंत भ्रांत हो जाता है—किंचित् सुकड़े हुये अगले पैरों से जो खूद २ कर जो गति है ॥ ८३ ॥

आस्कंदिता च सा ज्ञेया गतिविद्भिस्तु वाजिनां
ईषदुत्प्लुत्या गमनमसं डरे चितं हितम् ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—उसको घोड़ोंकी गतिके ज्ञाता आस्कंदित कहते हैं—किंचित् कूदकर जो अखंड गति है उसको रेचित कहते हैं ॥ ८४ ॥

परिणाहो वृषमुखादुदरे तु चतुर्गुणः ।

सककुत्रिगुणोच्चस्तु सार्धत्रिगुणदीर्घता ८५

भाषार्थ—बैलके मुख विस्तारसे उदरका चौगुना विस्तार होता है और कछुद (ढाँठ) सहित त्रिगुनी लंबाई और सादेतीन गुनी लंबाई होती है ॥ ८५ ॥

सप्ततालवृषः पूज्यो गुणैरेभिर्युतो यदि ।

नस्थायी न चर्वमंदः सुबोढा हांग सुंदरः ॥ ८६

भाषार्थ—यदि पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त होय तो सात तालका बैल पूजने योग्य होता है और जो नस्थायी (खडारह) हो और न मंद हो और जिसके सब अंग सुंदर हों ॥ ८६ ॥

नातिकूरः सुपृष्ठश्च वृषभः श्रेष्ठ उच्यते ।

त्रिंशद्योजनगंता वा प्रत्यहं भारवाहकः ॥ ८७

भाषार्थ—और जो भारको लेचले जो न अत्यंत क्रूर हो और जिसकी पीठ सुंदर हो वह बैल श्रेष्ठ कहा है और प्रतिदिन तीस योजन भारको लेकर चलसके ॥ ८७ ॥

नवतालश्चसुदृढःसुमुखोष्ट्रःप्रशस्यते ।
शतमायुर्मनुष्याणांगजानांपरमंस्मृतं ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—नौ ताल जिसका प्रमाण हो और मुख सुंदर हो ऐसा ऊंट श्रेष्ठ कहा है—मनुष्य और हाथियोंकी अवस्था सौ वर्षकी परम कही है ॥ ८८ ॥

मनुष्यगजयोर्बाल्यंयावद्विंशतिवत्सरं ।
नृणांहिमध्यमंयावत्षष्ठिवर्षवयःस्मृतं ॥ ८९ ॥

भाषार्थ—मनुष्य और हाथीकी बाल्य अवस्था बीस वर्षतक होती है और मनुष्योंकी मध्यम अवस्था साठवर्षतक कही है ॥ ८९ ॥

अशीतिवत्सरंयावद्गजस्यमध्यमंवयः ।
चतुर्विंशच्चतुर्वर्षाणामश्वस्यायुःपरंस्मृतम् ॥

भाषार्थ—अस्सी वर्षतक हाथीकी मध्यम अवस्था होती है चौतीस वर्षकी अवस्था घोडेकी परम पूरी होती है ॥ ९० ॥

पंचविंशतिवर्षंहिपरमायुर्वृषोष्ट्रयोः ।
बाल्यमश्ववृषोष्ट्राणांपंचसंवत्सरंमत्तं ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—बैल—और ऊंटकी पूरी अवस्था पचास वर्षकी होती है और घोडा बैल ऊंट इनकी बाल्य अवस्था पांचवर्षकी कही है ९१

मध्यंयावत्षोडशाब्दंवार्षिक्यंतुततःपरं ।
दंतानामुद्गमैर्वर्णैरायुर्ज्ञेयंवृषाश्वयोः ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—सोलह वर्षतक मध्यम आयु और उससे परे वृद्ध अवस्था होती है और दांतोंके निकसने और वर्ण (आकार) से बैल, और घोडेकी अवस्था जाननी ॥ ९२ ॥

अश्वस्यषट्सितादंताःप्रथमाब्देभवंतिहि ।
कृष्णलोहितवर्णास्तुद्वितीयेन्देहधोगताः ॥

भाषार्थ—घोडेके छःदांत सपेद पहिले वर्षमें और दूसरे वर्षमें काले और लाल वर्णके और नीचेकी तरफही होते हैं ॥ ९३ ॥

तृतीयेन्देतुसदृशौक्रमात्कृष्णौषडब्दतः ।
नवमाब्दात्क्रमात्पातौतौसितौद्वादशाब्दतः

भाषार्थ—तीसरे वर्षमें क्रमसे बराबर हो जाते हैं और छठे वर्ष काले हो जाते हैं और नवे वर्षमें पीले और बारहमें वर्षमें सपेद हो जाते हैं ॥ ९४ ॥

दशपंचाब्दतस्तौतुकाचामौक्रमतःस्मृतौ ।
अष्टादशाब्दतस्तौहिमध्वाभौभवतःक्रमात्

भाषार्थ—और पंद्रहमें वर्षमें वे दोनों दांत काचके समान और अठारहमें वर्षमें मधु(स-हृत) के समान क्रमसे होजाते हैं ॥ ९५ ॥
शंखाभौचैकविंशाब्दाच्चतुर्विंशाब्दतःसदा ।
छिद्रसंचलनंपातोदंतानांचत्रिकेत्रिके ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—इक्कीसमें वर्षमें शंखके समान हो जाते हैं और चौबीस वर्षसे तीसरे २ वर्षमें दांतोंमें छेद हिलना और पडना होने लगता है ॥ ९६ ॥

प्रोथेसवलयास्तिस्रःपूर्णायुर्यस्यवाजिनः ।
यथाययातुहीनास्ताहीनमायुस्तथातथा ॥

भाषार्थ—जिस घोडेकी नाकके आगे तीन त्रिविली होय उसकी पूर्ण अवस्था होती है और जैसी २ त्रिविली कम होय उतनीही कम होती है ॥ ९७ ॥

जानुस्यातात्वोष्ठवाद्योष्ठतपृष्ठोजलासनः ।
गतिमध्यासनःपृष्ठपातीपश्चाद्गमोर्ध्वापात् ॥

भाषार्थ—गोडेंसे जो घोडा खडा होय और होठ जिसके वजे पीठ कंघे जलमें बैठ

जाय गति जिसकी मध्यम हो पीठ जिसकी लगती होय पीछेकू हटता होय ऊपरकू पैर उठाता होय और ॥ ९८ ॥

सर्पजिह्वश्चर्षकांतिर्भूरुश्वोतिर्निदितः ।
सच्छिद्रभालतिलकीर्निद्यआश्रयकृत्तथा ॥

भाषार्थ—सापके समान जिह्वा और पीछे-कीसी कांति डरपोका होय ऐसा घोडा अत्यंत निदित होता है जिसके मस्तकके तिलकमें छिद्र होय और जो ढीला और आश्रय चाहता होय वह घोडाभी निदित होता है १९

वृषस्याष्टौसितादंताश्चतुर्थेऽखिलाःस्पृता
द्वावन्त्यौपतितौत्पन्नौपंचमेन्देहितस्यवै ॥

भाषार्थ—बैलके दांत चौथे वर्षमें आठ और सपेद होते हैं और पांचवें वर्षमें पिछले दो टूटकर पैदा होते हैं ॥ १००० ॥

पृष्ठेनृपांत्यौभवतःसप्तमेतत्समीपगौ ।
अष्टमेपतितौत्पन्नौमध्यमौदशनौखलु ॥ १॥

भाषार्थ—और उनके पासके दो दांत छठे वर्षमें और उनके भी पासके दो दांत सातवें वर्षमें और बीचके दोनों आठवें वर्षमें गिरकर दुबारा पैदा होते हैं ॥ १०१ ॥

कृष्णपीतासितारक्तशंखच्छायौद्विकेद्विके ।
क्रमाद्वेचभवतश्चलनंपतनंततः ॥ २ ॥

भाषार्थ—और दो दो वर्षके अंतरसे दांतोंकी कांति काली पीली—सपेद—लाल—और शंखके समान हो जाती है और उसके बाद दांतोका हिलना और पडना होने लगता है ॥ १००२ ॥

उष्ट्रस्थोक्तप्रकारेणवयोज्ञानंतुवाभवेत् ।
भ्रैरकाऽऽकर्षकमुखोऽकुशोगजविनिर्ग्रहे ३॥

भाषार्थ—ऊंटकीभी अवस्थाका ज्ञान पूर्वोक्त प्रकारसे होता है—हाथीकू शिक्षा देने-

के लिये ऐसा अंकुश होय जिसका मुख तिरछा होय और जो घुसिसके ॥ ३ ॥

हास्तिपकैर्गजस्तेनविनेयःसुगमोयदि ।
खालीनस्योर्ध्वखंडौर्द्धापाश्वगौद्वादशांगुलौ

भाषार्थ—उस अंकुशसे भली प्रकार चलनेके लिये पीलवान् हाथीको शिक्षादे खलीन (लगाम) के ऊपर लोखंडके दोनों बाजू वारह २ अंगुलके होते हैं ॥ ४ ॥

तत्पाश्वीतर्गतभ्यांतुसुदृढाभ्यांतथैवच ।
वारकाकर्षखंडाभ्यारज्ज्वर्थवलयैर्युतौ ५॥

भाषार्थ—और वे दोनों ऐसे होय जिनके पासमें लगे हुये और बड़े दृढ हठाने और खीचनेके खंडलगे होय और रस्सीको डोर-भी लगी होय ॥ ५ ॥

एवंविधखलीनेनवशीक्रियार्त्तुवाजिनं ।
नासिकाकर्षरज्ज्वातुवृषोर्ध्विनयेद्दशं ॥ ६॥

भाषार्थ—ऐसे खलीनसे घोडेको वसमें करै और नासिकामें लगी हुई खीचनेकी रस्सीसे बैल और ऊंटको वसमें करै ॥ ६॥
तीक्ष्णाग्रकःसप्तफालःस्यादेष्टांमलशोधने ।
सुताडनैर्विनेयाहिमनुष्यैःपशवःसदा ॥ ७॥

भाषार्थ—और इनकी मलशुद्धिके लिये तीखे अग्रवाला सात फालोंकी दंताली करना मनुष्य पशुओंको सदैव भली प्रकार ताडना-से शिक्षादे ॥ ७ ॥

सैनिकास्तुविशेषेणनतवैधनदंडतः ।
अनूपेतुवृषान्गजानांजघाणांजुजांगले ॥ ८

भाषार्थ—और सेनाके मनुष्योंको तो विशेष कर ताडनासे शिक्षित करै और घन दंडसे नदी बैल और घोडोंको जलवाले देशमें हाथी और ऊंटोंको जंगलमें ॥ ८ ॥

साधारणेपदातीनां निवेशाद्रक्षणं भवेत् ।
शतंशतं योजनं तैसैः न्यराष्ट्रे नियोजयेत् ॥ ९

भाषार्थ—और पदाति मनुष्योंको साधारण देशमें निवास करनेसे रक्षा होती है राजा अपने राज्यमें योजनके अंतर पर सोसो सेनाको नियुक्त करै अर्थात् छावनी डाले ॥ ९ ॥

गजोष्ठवृषभाश्वाः प्राक्श्रेष्ठाः संभारवाहने ।
सर्वेभ्यः शकटाः श्रेष्ठावर्षाकालं विना स्मृताः

भाषार्थ—हाथी—ऊट—बैल—घोड़े—इनमें पहिला २ बोझ ले चलनेमें श्रेष्ठ होता है और वर्षाके समयको छोड़कर सबसे उत्तम बोझ-ले चलनेमें शकट (गाड़ी) होते हैं ॥ १० ॥

न चाल्पसाधनो गच्छेदपि जेतुमर्हदधुं ।
महातात्यंतसाध्यस्तु बलैर्नैव सुबुद्धियुक् ॥

भाषार्थ—थोड़े सामानवाला राजा छोटे-भी शत्रुके जीतनेके लिये गमन न करै वा बुद्धिमान् मनुष्य बड़ी सेनासे शत्रुओंके अंतको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अशिक्षितमसारंचसाद्यस्कं बलवच्चतत् ।
युद्धं विनान्यकार्येषु योजयेन्मातमान्सदा ॥

भाषार्थ—और बुद्धिमान् राजा ऐसी सेनाको युद्धसे भिन्न कार्यमें नियुक्त करै जो अशिक्षित, असार, साद्यस्क, (नवीन) बलवान् होय ॥ १२ ॥

विकर्तुं यततेऽल्पेऽपि प्राप्ते प्राणात्ययेऽनिशं ।
न पुनः किंतु बलवान् विकारकरणक्षमः ॥ १३

भाषार्थ—छोटाभी शत्रु प्राणोंका नाश होना देखकर विरोध करनेके लिये जब यत्न करता है तो बलवान् मनुष्य विकार करनेको क्यों न समर्थ होगा ॥ १३ ॥

अपि बहुबलोऽशूरो न स्यात्तुं क्षमते रणे ।
किमल्पसाधनाच्छूरः स्यात्तुं क्षतोऽरिणा समं

भाषार्थ—अशूर (कायर) भी मनुष्य अधिक सेना होने पर संग्राममें टिकनेको समर्थ नहीं और अल्प सामानवाला शूर शत्रुके संग टिकनेको समर्थ क्या हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

सुसिद्धाल्पबलः शूरो विजेतुं क्षमते रीपुं ।
महान्सुसिद्धबलयुक् शूरः किन्न विजेष्यति ॥

भाषार्थ—भली प्रकार सन्नद्ध थोड़ीभी सेनावाला शूरवीर शत्रुके जीतनेको समर्थ होता है और भलीप्रकार सन्नद्ध सेनावाला और महान् शूरवीर शत्रुकी सेनाको क्यों नहीं जीतिगा ॥ १५ ॥

मौलशिक्षितसारेण गच्छेद्राजारणेरिपुं ।
प्राणात्ययेऽपि मौलं स्वामिनं त्यक्तुमिच्छति

भाषार्थ—मौल (पुस्तेनीनोकर) और सखी सेनाको लेकर राजा रणमें शत्रुपर चढ़े क्योंकि मौल सेना प्राणोंके नाश समयमें भी अपने स्वामीको त्यागना नहीं चाहती १६ वागदंडपरुषेणैव भृतिहासेन भीतिताः ।

नित्यं प्रवासायासाभ्यां भेदो वश्यं प्रजायते ॥

भाषार्थ—कटु वचन और भृति (नोकर) की न्यूनता करनेके भयसे और प्रतिदिन परदेशमें भेजने और परिश्रमसे सेनाका अवश्य भेद (फटना) हो जाता है ॥ १७ ॥

बलं यस्य तु संभिन्नं मनः अपि जयः कुतः ।
शत्रोः स्वल्पापि सेनायाः अतो भेदं विचिंतयेत्

भाषार्थ—जिस राजाकी थोड़ीही सेना भिन्न होगई होय उसकी जय कहां—इससे शत्रुके थोड़ीभी सेनाके भेदकी चिंता करै ॥ १८ ॥

यथा हि शत्रुसेनायाः भेदो वश्यं भवेत्तथा ।
कौटिल्येन प्रदानेन्द्राक्षुर्यान्नृपतिः सदा १९

भाषार्थ—जैसी शत्रुकी सेनाका अवश्य भेद होय तिसप्रकार कुटिलाई और द्रव्यके देनेसे राजा शीघ्र आचरण करै ॥ १९ ॥

सेवयाऽत्यंतप्रबलं न त्याचारिं प्रसाधयेत् ॥
प्रबलमानदानाभ्यां युद्धे हीनबलं तथा २० ॥

भाषार्थ—अत्यंत प्रबल शत्रुको सेवा और नाति (नवना) से साधे और प्रबलको मान और दानसे और हीन बलको युद्धसे सिद्ध करै ॥ २० ॥

मैत्र्याजयेत्समबलं भेदैः सर्वान्वशं नयेत् ।
शत्रुसंसाधनोपायो नान्यः सुबलभेदतः २१ ॥

भाषार्थ—समान बलवाले शत्रुको मित्रतासे जति और सब प्रकारके शत्रुओंको भेदोंसे वसमें करे सेनाके भलीप्रकार भेदसे इतर शत्रुओंके जीतनेका उपाय नहीं है ॥ २१ ॥

तावत्परो नीतिमान्स्याद्यावत्सुबलवान्स्वयं
मित्रं तावच्च भवति पुष्टाग्नेः पवनो यथा ॥ २२ ॥

भाषार्थ—इतने राजा हृद बलवान् रहे इतने नीतिमें तत्पर रहे और इतनेही मित्र होता है जैसे प्रबल अग्निका पवन ॥ २२ ॥

त्यक्तं रिपुबलं धार्य न समूहसमीपतः ।
पृथङ् नियोजयेत्प्राग्वा युद्धार्थं कल्पयेच्च तत् ॥

भाषार्थ—शत्रुकी त्यागी हुई सेनाके समूहको अपने समीप न रखें या तो उसे अपनी सेनासे पृथक् काममें लगावे अथवा सबसे पहिले युद्धमें नियुक्त करै ॥ २३ ॥

मैत्र्यमारात्पृष्ठभागे पार्श्वयोर्बलं न्यसेत् ।
अस्य तेक्षिप्यते यत्तु मंत्रयंत्राग्निभिश्च तत् २४ ॥

भाषार्थ—मित्रकी सेनाको अपने समीप पठिके भागमें अथवा पार्श्व (आसपास) भागोंमें रखें जो मंत्र यंत्र अग्नि इन तीनोंसे चलाया जाय उसे ॥ २४ ॥

अस्त्रंतदन्यतः शस्त्रमासि कुंतादिकंच यत् ।

अस्त्रंतु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मांत्रिकं तथा ॥ २५ ॥

भाषार्थ—अस्त्र कहते हैं उससे जो भिन्न तलवार भाला आदि हैं उनको शस्त्र कहते हैं अस्त्र दो प्रकार के होता हैं १ नालिक २ मांत्रिक ॥ २५ ॥

यदा तु मांत्रिकं नास्ति नालिकं तत्र धारयेत् ।
सहस्रेण नृपतिर्विजयार्थं तु सर्वदा ॥ २६ ॥

भाषार्थ—जो मांत्रिक अस्त्र न होय तो नालिक अस्त्रको शस्त्र सहित राजा विजयके लिये सदैव धारण करै ॥ २६ ॥

लघुदीर्घाकारधाराभेदैः शस्त्रास्त्रनामकं ।
प्रथयंति नवं भिन्नं व्यवहाराय तद्विदः ॥ २७ ॥

भाषार्थ—लघु और बड़े हो आकार और धारा भेदसे शस्त्र और अस्त्रोंको संग्रामके जाननेवाले नवीन २ भिन्न २ नामोंसे विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥

नालिकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत्क्षुद्रविभेदतः ।
तिर्यग्गूर्ध्वच्छिद्रमूलं नालं पंचवितस्तिकं २८ ॥

भाषार्थ—बड़े और क्षुद्र (छोटेके) भेदसे नालिक दो प्रकारका है तिरछा ऊपरको छिद्र और जड़के भेदसे पांच विलस्तका नाल होता है ॥ २८ ॥

मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदी तिलविंदुयुतंसदा ।
यंत्राघाताग्रिकृद्वावचूर्णमूलककर्णकं २९ ॥

भाषार्थ—मूल और अग्र भागसे जो ऐसे लक्ष्य (निसाने) को जो तिल और बिन्दु के समान होय जिसमें यंत्रके दबानेसे अग्नि लगे और पिसाहुआ चूर्ण (दारू) पडा होय ॥ २९ ॥

सुकाष्ठोपांगबुध्रं च मध्यांगुलविलांतरं ।
स्वांतेग्रिचूर्णसंधात्रीशलाकासंयुतंदृढं ॥ ३० ॥

भाषार्थ—हृद जिसमें काठ होय भीतरसे एक अंगुल पीली होय जिसमें अग्निचूर्ण पड़ा होय और शलाका (लोहेका गज) सेभी युक्त और दृढ होय ॥ ३० ॥

लघुनालिकमप्येतत्प्रधार्यपत्तिसादिभिः ।
यथायथातुत्वक्सारं यथास्थूलविलांतरं ३१

भाषार्थ—ऐसी लघुनालिका (बंदूक) के पदाति और सवार धारण करै और जितनी २ मोटी त्वचा होय और बीचका जितना २ बिल जिसका मोटा हो ॥ ३१ ॥

यथादीर्घबृहद्गोलंदूरभेदितथा तथा ।
मूलकीलोद्गमाल्लक्ष्यसमसंधानभाजियत् ॥

भाषार्थ—जितनी लंबी होय और जितना बड़ा गोला आवे और दूरके निसानेकोभी भेदन करै और मूलकी कील उखाडनेसे जो निसानेके समान लगे ॥ ३२ ॥

बृहन्नालिकसंज्ञतत्काष्ठबुध्रविर्वर्जितं ।
प्रवाहं शकटद्यैस्तुसुयुक्तं विजयप्रदं ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—ऐसी बृहन्नालिका (तोप) जो काष्ठ बुध्र (ऊपरका काठ) से वर्जित होय और भलीप्रकार लगानेसे विजयको देनेवाली वह शकट आदिसे चलाने योग्य होती है ॥ ३३ ॥

सुवर्चिलवणात्यंतपलानिगंधकात्पलं ।
अंतर्धूमविपकार्कस्तुह्लाद्यंगारतः पलं ३४ ॥

भाषार्थ—जिसमें पांचपल सेरेका लवण एकपल गंधक और अग्निसे पके हुये आक-स्तुही (सेहड़) वा केले इनके पलभर को-इले होय ॥ ३४ ॥

शुद्धात्संग्राह्यसंचूर्ण्यसंमील्यप्रपुटेद्वयैः ।
शुद्धार्काणारसोतस्यशोषयेदातपेनच ३५ ॥

भाषार्थ—इन सबको शुद्ध २ लेकर पीस-ले और केलेके रसमें मिलाकर पुटेद्वे और धूपमें सुखाले ॥ ३५ ॥

पिप्प्लाशर्करवच्चैतदग्निचूर्णं भवेत्खलु ।
सुवर्चिलवणाद्वागाः षड्वाचत्वारण्ववा ३६

भाषार्थ—यह अग्निचूर्ण पिसकर खांडके समान होजाता है सेरेके लवण के ६ छः वा चार भाग ले ॥ ३६ ॥

नालास्त्रार्थाग्निचूर्णे तु गंधांगारौ तु पूर्ववत् ।
गोलोलोहमयोगर्भगुटिकः केवलोपि वा ॥

भाषार्थ—गंधक और कोले पूर्वके समान तोपके लिये जो दारुके बनानेकी यह रीति है और हालनेका गोला सब लोहेका होय अथवा जिसके भीतर छोटी २ गोली होय ऐसा होय ॥ ३७ ॥

सीसस्य लघुनालाथैहान्यधातुभवापि वा ।
लोहसारमयं वापि नालास्त्रं त्वन्यधातुजं ॥

भाषार्थ—बन्दूकके लिये सीसेका अथवा अन्यधातुका गोला होता है और तोपके लिये लोहसारका अथवा अन्यधातुका होता है ॥ ३८ ॥

नित्यसंमार्जनस्वच्छं मस्त्रपातिभिरावृतं ।
अंगारस्यैव गंधस्य सुवर्चिलवणस्य च ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—और उसको नित्य माजना स्व-च्छ रखना और गोलंदाजोंसे युक्त रखना चाहिये और कोलेगंधक सेरेका नोन २९

सिलायाहरितालस्य तथा सीसमलस्य च ।
हिंगुलस्य तथा कान्तरजसः कर्पूरस्य च ४० ॥

भाषार्थ—मनासिल हरताल—सीसेका मेल—
हिंसल—कांतिसार—लिहा—खपरिया ॥ ४० ॥

जतोनील्याश्चसरलनिर्यासस्यतथैवच ।
समन्यूनाधिकैरंशैरग्निचूर्णान्यनेकशः ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—लाख वा राल नील—(देवदारु)
सरलका गोंद—इन सबके समान वा कमजादे
अंशोंसे अनेक प्रकारकी दारु बनती है ४१

कल्पयंतित्तद्विद्याश्चंद्रिकाभादिमंतित्ति ।
क्षिपंतित्तिचाग्निसंयोगाद्गोलंलक्ष्येसुनालगं ॥

भाषार्थ—और दारुके जाननेवाले चांद-
नकि समान प्रकाश करनेवाली अनेक
प्रकारकी दारुओंको कल्पना करते हैं और
तोपके गोलेको अग्निके संयोगसे निसाने पर
फेकते हैं ॥ ४२ ॥

नालास्त्रंशोधयेदादौदद्यात्तत्राग्निचूर्णकं ।
निवेशयेत्तदंडेननालमूलेयथादृढं ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—पहिले तोपको मलीप्रकार शुद्ध
करे फिर उसमें दारुको डालदे फिर उस
दारुको दंड (गज) से तोपकी जड़में दृढ-
तासे जमादे ॥ ४३ ॥

ततःसुगोलकंदद्यात्ततःकर्णेग्निचूर्णकं ।
कर्णचूर्णाग्निदानेनगोलंलक्ष्येनिपातयेत् ॥

भाषार्थ—फिर उसके ऊपर गोला रखदे
फिर तोपके कानमें दारुको रखदे फिर कान-
के दारुमें अग्निको लगाकर गोलेको निसाने
पर फेकदे ॥ ४४ ॥

लक्ष्यभेदीयथाबाणोधनुज्याविनियोजितः ।
भवेत्तथातुसंधायद्विहस्तश्चशिलीमुखः ४५

भाषार्थ—जैसे बाण धनुष्य ज्यापर लगा-
या हुआ निसानेको बाँधे इसप्रकार दो हाथ-
के बाणको धनुष्यपर रखै ॥ ४५ ॥

अष्टास्त्रापृथुवुध्रातुगदाहृदयसंमिता ।

पट्टीशात्मसमोहस्तवुध्रश्चोभयतोमुखः ४६

भाषार्थ—आठ कोनकी मोटी छातीकी व-
रवर गदा होती है—और पट्टा अपनी बरा-
बर दोनों तरफ मुखवाला हाथमें रखनेके
लिये होता है ॥ ४६ ॥

ईषद्रक्षश्चैकधारोविस्तारेचतुरंगुलः ।

धुरप्रांतोनाभिसमोदृढमुष्टिःसुचंद्ररूक् ४७

भाषार्थ—कुछ टेढ़ा एक धारवाला और चार
अंगुल चौड़ा नाभितक ऊँचा छुरीके समान
पेना और दृढ जिसकी मूठ होय चंद्रमाके
समान कांति होय ॥ ४७ ॥

खड्गःप्रासश्चतुर्हस्तदंडवुध्रःधुराननः ।

दशहस्तमितःकुंतःफालाग्रःशंकुवुध्रकः ४८

भाषार्थ—ऐसा खड्ग होता है चार हाथ लंबा
छुरीके समान मुखवाला मोटा प्रास (फरसा)
होता है दस हाथका भालेके समान जिसके
अग्रभाग आगेसे पेना कुन्त (भाला) होता
है ॥ ४८ ॥

चक्रंषड्दहस्तपरिधिःधुरप्रांतंसुनाभियुक् ।

त्रिहस्तदंडास्त्रिशिखोलोहरज्जुःसपाशकः ॥

भाषार्थ—छः हाथकी जिसकी परिधी (फेर)
हो छुरीके समान जिसका प्रान्त होय और
अच्छी नाभि (छुरीकी जगे) होय ऐसा
चक्र होता है तीन हाथका जिसका दंड होय
तीन शिखा होय और फांसी जिसमें होय
ऐसी लोहेकी रज्जु होती है ॥ ४९ ॥

गोधूमसंमितस्थूलपत्रंलोहमयंदृढं ।

कवचंसशिरस्त्राणमूर्ध्वकायविशोभनं ५०

भाषार्थ—गेहूँके समान जिसके स्थूल पत्ते
होय और जो सब लोहेका दृढ होय और
शिरका त्राण (रक्षा) सहित होय ऊपरको

ऊँचा और शोभित होय ऐसा कवच होता है ॥ ५० ॥

योवैसुपुष्टसंभारस्तथाषड्गुणमंत्रवित् ।
बह्वस्त्रसंयुतोरजायोद्धुमिच्छेत्स एवहि ५१

भाषार्थ—जिस राजाके भलीप्रकार पुष्ट सामान होय और जोषड्गुण मंत्रको जानता होय और जिसके यहां बहुतसे अस्त्रभी होय वही राजा युद्ध करनेकी इच्छा करे ॥ ५१ ॥

अन्यथादुःखमाप्नोतिस्वराज्याद्धश्यतेपिच
शत्रुभावसमापन्नोरुभयोःसंयतात्मनोः ५२

भाषार्थ—अन्यथा दुःखको प्राप्त होता है और अपने राज्यसेभी जाता रहता है जो दोनों शत्रुभावको प्राप्त होगये होय और जिनके मनमें उद्योगभी होय और जिनके मनमें परस्पर लड़ाईके उद्योग होय ॥ ५२ ॥

अस्त्राद्यैःस्वार्थसिद्धयर्थंन्यापारोयुद्धमुच्यते
मंत्रास्त्रैर्दैविकंयुद्धंनलाद्यस्त्रैस्तथाऽऽसुरं ॥

भाषार्थ—ऐसे दौंका जो अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अस्त्र आदिसे परस्पर व्यापार उसको युद्ध कहते हैं मंत्रके अस्त्रोंका जो युद्ध उसे दैविक और तोप आदि अस्त्रोंसे जो युद्ध उसे आसुर कहते हैं ॥ ५३ ॥

शत्रुबाहुसमुत्थत्तुमानवंयुद्धमीरितं ।
एकस्यबहुभिःसार्धवहूनांवहुभिश्चवा ॥ ५४

भाषार्थ—शत्रुओंकी परस्पर भुजाओंसे जो युद्ध उसे मानव कहते हैं और एकका बहुतोंके संग और बहुतोंका बहुतोंके संग ५४
एकस्यैकेनबाह्वाभ्यांद्वयोर्वातद्ववेत्खलु ।
कालदेशंशत्रुबलंदृष्ट्वास्वीयबलंततः ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—वा एकका एकके संग वा दौंका दौंके संग जो युद्ध उसे मानव कहते हैं—

काल-देश-शत्रुका बल और अपना बल देखकर ॥ ५५ ॥

उपायान्पङ्कणमंत्रसंभूयाद्युद्धकामुकः ।
शरद्वेमतशिशिरकालोयुद्धेपुत्रोत्तमः ५६ ॥

भाषार्थ—छः हैं गुण जिसमें ऐसे मंत्रोंके उपायोंकी युद्धकी कामनावाला मनुष्य संग्रह करे युद्धके लिये शरत् हेमन्त-शिशिरका समय उत्तम होता है ॥ ५६ ॥

वसन्तोभ्यमोज्ञेयोऽध्रमोग्रीष्मःस्मृतःसदा ।
वर्षासुनप्रशंसंतिद्युद्धंसामस्मृतंतदा ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—वसन्त मध्यम जानना और ग्रीष्म सदैव अधम कहा है—वर्षाके समय युद्धकी कोईभी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि उस समय शांति करनाही कहाहै ॥ ५७ ॥

युद्धसंभारसंपन्नोयदाधिकबलोनृपः ।
मनोत्साहीसुशकुनोत्पातोऽकालस्तदाशुभः

भाषार्थ—जब राजा युद्धके सामानसे संपन्न होय अधिक बलवान होय मनमें उत्साही होय अच्छे शकुन होते होय उस कालको शुभ जानना ॥ ५८ ॥

कार्येऽत्यावश्यकप्राप्तिकालोनोवेद्यदाशुभः
विधायहृदिविश्वेशंगेहेचिन्हमियात्तदा ५९

भाषार्थ—जब अत्यंत आवश्यक कार्य आन पड़े और समयभीशुभ न होय तो हृदयमें परमेश्वरको स्थापना करिके और धर्म परमेश्वरके चिह्न बनाकर गमन करे ॥ ५९ ॥

नकालनियमस्तत्रगोस्त्रीविप्रविनाशने ।
यस्मिन्देशेयथाकालसैन्यव्यायामभूमयः

भाषार्थ—गो स्त्री ब्राह्मण इनके विनाशमें और पूर्वोक्त कालमें समयका नियम नहीं है जिस देशमें समयके अनुसार अपनी सेनाके कवायदकी अच्छी भूमि होय ॥ ६० ॥

परस्याविपरीतश्चस्मृतोदेशःसत्तमः ।

आत्मनश्चपरेषांचतुल्यव्यायामभूमयः ६१

भाषार्थ—शत्रुकी इससे विपरीत होय वह देश लड़ाईके लिये उत्तम कहा है जिस देशमें अपनी और पराई सेनाकी कवायदके लिये समान भूमि होय ॥ ६१ ॥

यत्तमध्यमउद्दिष्टोदेशःशास्त्रविचितैः ।

आरातिसैन्यव्यायामसुपर्याप्तमहीतलः ॥

भाषार्थ—वह देश शास्त्रकी चिन्ता करनेवालोंने मध्यम कहा है जिस देशमें शत्रुकी सेनाके लिये कवायदकी भूमि पूरी होय ६२

आत्मनोविपरीतश्चसवैदेशोऽधमःस्मृतः ।

स्वसैन्याचतुल्यतीयांशहीनंशत्रुवलंयदि ॥ ६३

भाषार्थ—और अपनी सेनाकी उससे विपरीत होय उस देशको अधम कहा है यदि अपनी सेनासे तीसरा भाग कम शत्रुकी सेना होय ॥ ६३ ॥

आशिक्षितमसारंवासायस्कंस्वजयायन ।

पुत्रवत्पालितंयत्तुदानमानंविबुद्धितं ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—और अपनी सेना आशिक्षित होय सारहीन वा नई होय तो अपना जय नहो सकेगा जो सेना पुत्रके समान पाली होय दान और मानसे बढ़ाई होय ॥ ६४ ॥

युद्धसंभारसंपन्नंस्वसैन्यविजयप्रदं ।

संधिचविग्रहंयानमासनंचसमाश्रयं ॥ ६५ ॥

भाषार्थ—युद्धकी सामग्रीयोंसे युक्त होय ऐसी सेना विजय देनेवाली होती है संधि-विग्रह-यान-(चढ़ाई) आसन-समाश्रय (आधीन होना) ॥ ६५ ॥

द्वैधीभावंचसंविद्यान्मंत्रस्यैतांस्तुषड्गुणान्
याभिःक्रियाभिर्वलवान्मित्रतांयातिवैरिणः

भाषार्थ—द्वैधी भाव (भेद) इन मंत्रके छः गुणोंको राजा भली प्रकार जाने जिन कामोंके करनेसे बलवान्भी वैरी मित्र हो जाय ॥ ६६ ॥

साक्रियासंधिरित्युक्ताविमुञ्चेत्तांतुयत्नतः ।

विकर्षितःसनाधीनोभवेच्छत्रुस्तुयेनैव ६७

भाषार्थ—उस क्रिया (कर्म) को संधि-कहते हैं उसको यत्नसे राजा विचारे जिस कामसे भेदन कियाहुआ शत्रु अपने आधीन होजाय ॥ ६७ ॥

कर्मणाविग्रहस्तंतुचितयेन्मंत्रिभिर्नृपः ।

शत्रुनाशार्थगमनंयानंस्वाभीष्टसिद्धये ॥ ६८

भाषार्थ—उस विग्रह (लड़ाई) को मंत्री-योंके संग राजा विचारे अपने अभीष्ट सिद्धि के लिये शत्रुके नाशार्थ मनुष्यसे यान (चढ़ाई) कहते हैं ॥ ६८ ॥

स्वरक्षणंशत्रुनाशोभवेत्स्यानात्तदासनं ।

यैर्गुप्तोवलवान्भूयादुर्वलोपिसआश्रयः ६९

भाषार्थ—अपनी रक्षा शत्रुका नाश (जिस स्थानसे बैठ रहना) होय और जिनकी रक्षासे दुर्बलभी बलवान् होजाय उसे आश्रय कहते हैं ॥ ६९ ॥

द्वैधीभावःस्वसैन्यानांस्थापनंगुल्मगुल्मतः ।

बलीयसाभियुक्तस्तुनृपोनान्यप्रतिक्रियः ॥

भाषार्थ—गुल्म २ (मोका) पर अपनी सेनाओंका टिकाना उसे द्वैधीभाव कहते हैं बलवान्का दवायाहुआ राजा जब अन्य प्रतीकार न करसके तो ॥ ७० ॥

आपन्नःसंधिमन्विच्छेत्कुर्वाणःकालपालनं ।

एकएवोपहारस्तुसंधिरेषमतोहिनः ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—विपत्तिको प्राप्त हुआ और कालको बिताता हुआ शत्रुके संग संधि (मेल) की

इच्छा करे और दूसरेको भेट देदेना यह मुख्य संधि हमकाभी संमत है ॥ ७१ ॥

उपहारस्यभेदास्तुसर्वेभ्यैमित्रवर्जिताः ।
अभियोक्तावलीयस्त्वादलब्ध्वाननिवर्तते ॥

भाषार्थ—और मित्रताको छोड़कर उपहार-के अन्यभी भेद बहुतसे होते हैं—जहां अभियोक्ता (चढ़नेवाला) शत्रु बलवान् होनेसे विना भेट लिये निवृत्त न होय ॥ ७२ ॥

उपहाराद्वैतयस्मात्संधिरन्योनविद्यते ।
शत्रोर्वलानुसारेण उपहारप्रकल्पयेत् ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—वहांपर उपहारसे दूसरी संधि नहीं होती किंतु शत्रुके बलानुसार भेटको दे दे ॥ ७३ ॥

सेवांपापिचस्वीकुर्याद्दयात्कन्याभुवंधनं ।
स्वसामंतांश्चसंधीयान्मंत्रेणान्यजयायवै ॥

भाषार्थ—अथवा शत्रुकी सेवाका स्वीकार करै वा कन्या-भूमि-धन इनको शत्रुको दे दूसरेकी जयके लिये अपने सामंतों (समीपके राजा) के संग संधि करै ॥ ७४ ॥

संधिःकार्योप्यनार्येणसंप्राप्योत्सादयेद्विषः
संघातवान्यथावेणुर्निबिडैःकंटकैर्वृतः ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—अनार्य मनुष्यकी कीहुई संधि शत्रुको खराड देती है—जैसे सघन कांटों-से रोका हुआ वेणु समूहवाला होकर ७५ ॥

नशक्यतेसमुच्छेत्तुवेणुःसंघातवांस्तथा ।
बलिनासहसंधायभयेसाधारणेयदि ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—छेदनेको शक्य नहीं होता इसी प्रकार संधिवाला राजाभी खराडनेके अयोग्य होता है—यदि राजाको साधारण भय होय तो बलवानके संग मिलकर ॥ ७६ ॥

आत्मानंगोपयेत्कालेबव्हमित्रेषुबुद्धिमान् ।
बलिनासहयोद्धव्यमितितान्स्तिनिदर्शनं ॥

भाषार्थ—बहुत शत्रुओंके होनेपर बुद्धिमान् राजा उसकालमें अपने आत्माकी रक्षा करै क्योंकि यह शास्त्रमें नहीं लिखा कि बलवानके संग युद्ध करना ॥ ७७ ॥

प्रतिवातंहीनघनःकदाचिदपिसर्पति ।
बलीयसिप्रणमतांकालेविक्रमतामपि ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—क्योंकि छोटा वादल पवनके सामने कदाचित्भी नहीं चलता जो राजा बलवान् शत्रुको नमते है और समयपर पराक्रमभी करते है ॥ ७८ ॥

संपदेनविसर्पतिप्रतीपमिवनिम्नगाः ।
राजानगच्छेद्विश्वाससंधितोपिद्विबुद्धिमान्

भाषार्थ—उनकी संपदा इस प्रकार कही नहीं जाती जैसे ऊंचे परनदी-बुद्धिमान् राजा मेल होनेपरभी शत्रुका विश्वास नकरै ७९ अद्रोहसमयंकृत्वावृत्रभिद्रःपुराऽवधीत् ।

आपन्नोभ्युदयाकांक्षीपीड्यमानःपरेणवा ॥

भाषार्थ—क्योंकि स्नेहकी प्रतिज्ञा करिके—भी पूर्व कालमें इंद्रने वृत्रासुरको मारदियाथा आपत्तिको प्राप्त हुआ शत्रुसे पीडित राजा अपना उदय चाहे तो ॥ ८० ॥

देशकालबलोपेतःप्रारभेतचविग्रहं ।
प्रहीनबलमित्रंशत्रुर्गुह्यंस्वयंतरागतं ॥ ८१ ॥

भाषार्थ—देश-काल-बल—इनसे जब युक्त होय उस समय लड़ाईका प्रारंभ करै—और जिस शत्रुके बल और मित्रहीन होय दुर्गमें टिका होय दो शत्रुओंके बीच होय ॥ ८१ ॥

अत्यंतविषयासक्तंप्रजाद्रव्यापहारकं ।
भिन्नमंत्रिवर्लराजापीडयेत्परिवेष्टयन् ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—अत्यंत विषयोंमें आसक्त होय प्रजाके द्रव्यको हरता होय मंत्री और सेना जिससे फटी होय ऐसे शत्रुको चारों तरफसे लपेटकर पीडित (दबाव) करै ८२

विग्रहःसचविज्ञेयोह्यन्यश्चकलहःस्मृतः ।

बलीयसात्यल्पबलःशूरणनचविग्रहम् ॥ ८३

भाषार्थ—इसीको विग्रह कहते हैं इससे अन्य कलह कदा है बलवानके संग अल्प बलवाले शूरवीरके संग जी लड़ाई ॥ ८३ ॥

कुर्याच्चविग्रहेषुसांसर्वानाशःप्रजायते ।

एकार्थाभिनिवेशित्वंकारणंकलहस्यवा ८४

भाषार्थ—कर्ता है उस लड़ाईमें पुरुषोंका सर्वनाश होता है एक वस्तुकी अभिलाषा करनी इसीको लड़ाईका कारण कहते हैं ॥ ८४ ॥

उपायांतरनाशेतुततोविग्रहमाचरेत् ।

विग्रहसंधायतथासंभूयाथप्रसंगतः ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—जब दूसरा कोई उपाय नहोय तो लड़ाईको करै लड़ाईके लिये मिलकर इकट्ठा होकर और प्रसंगसे ॥ ८५ ॥

उपेक्षयाचनिपुणैर्यानपंचविधसंमृतं ।

विग्रहयातिहियदासर्वाञ्छत्रुगणान्बलात्

भाषार्थ—उपेक्षासे यह पांच प्रकारका यान (चढाई) विद्वानोंने कहा है जब शत्रुओंके गणके ऊपर बलसे लड़ाई करिके गमन करै उसको ॥ ८६ ॥

विग्रहयानंयानज्ञैस्तदाचार्यैःप्रचक्षते ।

आरिमित्राणिसर्वाणिस्वमित्रैःसर्वतोबलात्

भाषार्थ—यानके जाननेवाले आचार्य विग्रहयान कहते हैं अथवा संपूर्ण शत्रुके मित्रोंको अपने सब मित्रोंके संगबलसे ८७ ॥

विग्रहचारिभिर्गुंतुविग्रहगमनंतुवा ।

संधायान्यत्रयात्रायांपाणिग्राहेणशत्रुणा ॥

भाषार्थ—लडाकर शत्रुपर जो चढना उसको विग्रह गमन कहते हैं अन्यपर चढाईके समय पीछेके शत्रुके साथ संधि करिके जो गमन ॥ ८८ ॥

संधायगमनंप्रोक्तंतज्जिगीषोःफलार्थिना ।

एकोभूपोयदैकत्रसामंतैःसांपराधिकैः ॥

भाषार्थ—उसे जीतनेवाले फलके अभिलाषी राजाका संधायगमन कहते हैं जब एक राजा अपने सामंत साथी उन राजाओंके संग ॥ ८९ ॥

शक्तिशौर्ययुतैर्यानसंभूयगमनंहितत् ।

अन्यत्रप्रस्थितःसंगादन्यत्रैवचगच्छति ॥

भाषार्थ—मिलकर गमन करै जो सामर्थ्य और बलसे युक्त होय उसे संभूय गमन कहते हैं यदि अन्यपर चढाईके लिये प्रस्थित राजा संगसे अन्यत्रही चला जाय ॥ ९० ॥

प्रसंगयानंतत्प्रोक्तंयानविधिश्चमंत्रिभिः ।

रिपुंयातस्यबलिनःसंप्राप्यविकृतंफलम् ॥

भाषार्थ—तो यानके ज्ञाता मंत्रीजन उसे प्रसंगयान कहते हैं— जो बलवान राजा शत्रुपर गमन करै वहां विपरीत फल मिल जाय ॥ ९१ ॥

उपेक्ष्यतस्मिन्तद्यानमुपेक्षायानमुच्यते ।

दुर्वृत्तेऽप्यकुलनितोबलंदातरिरज्यते ॥ ९२

भाषार्थ—तो उसकी उपेक्षा (छोडना) करनेको उपेक्षायान कहते हैं—जो दुराचारी कुलहीन होय ऐसे राजापर बल करना अच्छा होता है ॥ ९२ ॥

तदृष्टं कृत्वा स्वीयबलं पारितोष्यप्रदानतः ।

नायकः पुरतोयायात्प्रवीरपुरुषावृतः ॥ ९३ ॥

भाषार्थ—अपनी सेनाको प्रसन्न और धन आदि देनेसे उसका संतोष करिके बड़े वीर पुरुषोंसे युक्त सेनाका नायक (सेनापति) सबसे आगे चले ॥ ९३ ॥

मध्ये कलत्कौशश्च स्वामी फल्गुचयद्धनं ।

ध्वजिनीं च सदोद्युक्तः संगोपाये द्विवानिशम्

भाषार्थ—सेनाके बीचमें स्त्री-कौश-स्वामी-और सामान्य धन-इनको रखे और रात्रि दिन सदैव बड़े यत्नसे अपनी सेनाकी रक्षा करे ॥ ९४ ॥

नद्यद्विवनदुर्गे पुयत्रयत्रभयं भवेत् ।

सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद्व्यूहकृतैर्वलैः ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—नदि-पर्वत-वन-दुर्ग-आदिमें जहां २ भय होय वहां २ सेनाके व्यूह बनाकर सेनापति गमन करे ॥ ९५ ॥

यायाव्यूहेन महतामकरेण पुरोभये ।

इयेनेनोभयपक्षेण सूच्यावाधीरवक्रत्रया ॥

भाषार्थ—यदि सेनाके आगे भय होय तो बड़े मकरके आकारके व्यूहसे सेनापति चले अथवा शिखरके दोनों पक्षके समान व्यूहसे अथवा बड़ी पेनी है धार जिसकी ऐसी सूचीके व्यूहसे सेनापति गमन करे ॥ ९६ ॥

पश्चाद्भ्येतु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसंज्ञिकं ।

सर्वतः सर्वतो भद्रं चक्रं व्यालमथापिवा ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—यदि पीछे भय होय तो शकट व्यूहसे पार्श्वोंमें (दोनों तरफ) भय होय तो वज्रव्यूहसे चारों तरफसे भय होय तो सर्व तो भद्रव्यूहसे अथवा सर्पव्यूहसे सेनापति गमन करे ॥ ९७ ॥

यथादेशं कल्पयेद्वा शत्रुसेनाविभेदकं ।

व्यूहरचनसंकेतान्वाद्यभाषासमीरितान् ॥

भाषार्थ—और देशके अनुसार शत्रुकी सेनाके भेदप्रकार भेद (तोड़ने) का यत्न करे और पूर्वोक्त व्यूहोंकी रचनाके ऐसे संकेत (इसारे) ऐसे जो बाजोंके बजनेसे मालूम हो सके ॥ ९८ ॥

स्वसैनिकैर्विना कोपेन जानातितया विधान् ।
नियोजयेच्च मतिमान् व्यूहान्ना विधानसदा

भाषार्थ—और उन संकेतोंको अपनी सेनाके मनुष्योंसे इतर कोईभी न जाने और बुद्धिमान राजा सदैव अनेक प्रकारके व्यूहोंको नियत करे ॥ ९९ ॥

अश्वानां च गजानां च पदातीनां पृथक् पृथक् ।

उच्चैः संश्रावयेद्व्यूहसंकेतान्सैनिकान् वृषः ॥

भाषार्थ—सवार-हाथीवान्-पदाति इनको और सेनाके इतर मनुष्योंको राजा व्यूहके संकेतोंको ऊंचे शब्दसे सुनवाइदे ११००॥
वामदक्षिणसंस्थो वाममध्यस्थो वाग्रसंस्थितः ।
श्रुत्वा तान्सैनिकैः कार्यमनुशिष्टं यथा तथा १

भाषार्थ—राजा वाम वा दक्षिण वा मध्य वा अग्र भागमें स्थित रहै सेनाके मनुष्य उन संकेतोंको सुनकर यथार्थ रीतिसे उक्तसंकेतोंके अनुसार राजाकी शिक्षाके अनुसार कामको करे ॥ ११०१ ॥

संमीलनप्रसरणपरिभ्रमणमेव च ।

आकुंचनंतथायानं प्रयाणमपयानकम् ॥ २॥

भाषार्थ—संमीलन (मिलना) प्रसरण (चलना) चारोंतरफ भ्रमना आकुंचन (सकुडना) शनैः २ गमन अच्छी रीतिसे गमन अपयान (उलटा चलना) ॥ ११०२ ॥

पर्यायेणचसांमुख्यंसमुत्थानंचलुंठनं ।

संस्थानंचाष्टदलवच्चक्रवद्गोलतुल्यकम् ३॥

भाषार्थ—पर्यायसे गमन सन्मुख गमन खडा होना, लोटना, आठ दलके समान टिकना अथवा चक्रकी गुलाई तुल्य टिकना ३

सूचीतुल्यंशकटवर्धचंद्रसमंतुवा ।

पृथग्भवनमलपालैःपर्यायैःपंक्तिवेशनं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सुईके समान वा शकटके समान अथवा थोड़ी २ सेनाको पृथक् पर्याय क्रमसे पंक्तियोंका बैठाना ॥ ४ ॥

शस्त्रास्त्रयोर्धारणंचसंधानंलक्ष्यभेदनं ।

मोक्षणंचतयास्त्राणांशस्त्राणांपरिघातनम् ५

भाषार्थ—शस्त्र अस्त्रका धारण संधान (धनुषपरवाण लगाना) निसानेका भेदन अस्त्रोंका छोड़ना और शस्त्रोंका चलाना ५

द्राक्षसंधानंपुनःपातोग्रहोमोक्षःपुनःपुनः ।

स्वगृहनंप्रतीघातःशस्त्रास्त्रपदविक्रमैः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—बाणोंका शीघ्र लगाना छोड़ना फिर ग्रहण करना वारंवार फिर छोड़ना शस्त्र और अस्त्र और पैरोंके उठा बसे अपना गृह न छिपना और शत्रुको मारना ॥ ६ ॥

द्राभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिर्वापंक्तितोगमनंततः ।

तथाप्राक्भवनंचापसरणंतूपसर्जनम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—फिर दो २ तीन २ वा चार २ की पंक्ति बनाकर गमन करना और कभी सेनासे आगे होना कभी पीछे कभी पृथक् हो-जाना ॥ ७ ॥

अपसृत्यास्त्रसिध्यर्थमुपसृत्यविमोक्षणे ।

प्राक्भूत्वामोचयेदस्त्रव्यूहस्थःसैनिकःसदा

भाषार्थ—और अस्त्रोंकी सिद्धिके लिये पीछे हटना और अस्त्रोंके छोड़नेके लिये आगे

जाना व्यूहमें टिकाहुआ युद्ध करनेवाला सैनिक सदैव अस्त्रको छोड़े ॥ ८ ॥

आसीनःस्याद्विमुक्तास्त्राग्राग्राचापसरेत्पुनः प्रागासीनंतूपसृतोदृष्टास्त्रास्त्रविमोचयेत् ९

भाषार्थ—अस्त्रके छोड़नेपर खडा होजाय अथवा फिर सेनाके आगे चला जाय और आगे जाकर अपने सन्मुख खड़े हुये शत्रुको देखकर अस्त्रको छोड़े ॥ ९ ॥

एकैकशोद्विशोवापिसंघशोचोधितोयथा ।

क्रौंचानांखेगतिर्यादृक्पंक्तितःसंप्रजायते ॥

भाषार्थ—जैसे आकाशमें क्रौंच पक्षियोंकी गति एक २ दो दो वा समूह २ से पंक्ति-सेहि होती है उसी प्रकार संकेतसे सेनाके मनुष्य चले ॥ १० ॥

तादृक्संरचयेत्क्रौंचव्यूहंदेशवलंयथा ।

सूक्ष्मग्रीवंमध्यपुच्छंस्थूलपक्षंतुपंक्तितः ११

भाषार्थ—उसी प्रकार देश और बलके अनु-सार क्रौंचव्यूहकी रचनाको सेनापति रचै जिसकी ग्रीवा सूक्ष्म होय पूंछ मध्यम और पक्ष मोटे होय ऐसी पंक्ति बनावै ॥ ११ ॥

वृहत्पक्षंमध्यगलपुच्छेद्व्येनमुखेतनु ।

चतुष्पान्मकरोदीर्घस्थूलवक्रद्विरोष्ठकः १२

भाषार्थ—जिसके पक्ष बड़े होय गल और पूंछ मध्यम होय मुख सूक्ष्म होय उसे सेना व्यूह कहते हैं जिसके चौपायेका आकार होय लंबा होय स्थूलमुख होय और दो ओष्ठ होय उसव्यूहको मकर कहते हैं ॥ १२ ॥

सूचीसूक्ष्ममुखोदीर्घसमदंष्टांतरंघ्रयुक् ।

चक्रव्यूहश्चैकमागौह्यष्टधाकुंडलीकृतः १३

भाषार्थ—जिसका सूक्ष्म मुख होय और समान लंबा विस्तार होय और बीचमें खाली होय उसे सूचीव्यूह कहते हैं जिसका एक-

मार्ग होय और आठ जिसकी कुंडली होय उसे चक्रव्यूह कहते हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दिक्ष्वष्टपरीधिःसर्वतोभद्रसंज्ञकः ।

आमार्गश्चाष्टवलयीगोलकःसर्वतोमुखः १४

भाषार्थ—जिसकी परिधी (फेर) चारों दिशाओंमें आठ होय उस व्यूहको सर्वतोभद्र कहते हैं ॥ १४ ॥

शकटःशकटाकारोव्यालोव्यालाकृतिःसदा
सैन्यमल्पवृहद्वापिदृष्टामार्गंरणस्थलम् १५

भाषार्थ—जिस सेनाका आकार शकट (गाड़ा) के समान होय उसे शकट और जिसका सर्पके समान होय उसे व्यालव्यूह कहते हैं सेनाकी अल्पता वा अधिकताको और रणभूमिकी देखकर ॥ १५ ॥

व्यूहैर्व्यूहेनव्यूहाभ्यांसंकरेणापिकल्पयेत् ।

यंत्राद्यैःशत्रुसेनायाभेदोभ्यःप्रजायते ॥

भाषार्थ—सेनाके अनेक वा एक वा दोव्यूहोंकी वा संकर (इकट्ठी) की रचनाको करे जहां यंत्रके अस्त्रोंसे शत्रुकी सेनाका भेद (पराजय) होजाय ॥ १६ ॥

स्थलेभ्यस्तेषुसंतिष्ठेत्ससैन्योद्घासनंहितम् ।

तृणान्नजलसंभारायेचान्येशत्रुपोषकाः ॥

भाषार्थ—ऐसे स्थलोंमें जो सेना सहित राजाका टिकना उसको आसन कहते हैं तृण, अन्न, और जलके संभार और जो शत्रुके पोषण करनेवाले पदार्थ हैं ॥ १७ ॥

सम्यङ्निरुध्यतान्यत्नात्परितश्चिरमासनात् ।

विच्छिन्नविधिधारं प्रक्षीणयवसंघनं १८ ॥

भाषार्थ—उन सबको चारों तरफसे चिर-कालतक आसनमें टिका हुआ राजा भली

प्रकार रोके और शत्रुके भार देनेके वीवध (वहिगी) इनको और भुसई धनको और मार्गको नष्ट करदे ॥ १८ ॥

विगृह्यमाणप्रकृत्तिकालेनैववशनयेत् ।

अरेश्चविजिगीपोश्चविग्रहेहीयमानयोः ॥

भाषार्थ—और शत्रुकी प्रजामें जिस समय राजाके संग लड़ाई देखे उस समय शत्रुको वसमें करले जब शत्रु जीतनेवाला ये दोनों लड़ाईमें हीन होजाय ॥ १९ ॥

संधाययदवस्थानंसंधायासनमुच्यते ।

उच्छिद्यमानोवलिनानिरुपायप्रतिक्रियः ॥

भाषार्थ—उस समय मिलकर जो बैठ रहना उसे संधाया आसन कहते हैं बलवाले शत्रुका उखाड़ा हुआ उपाय और प्रतीकार करनेमें असमर्थ राजा ॥ २० ॥

कुलोद्भवंसत्यमार्यमाश्रयेत्तवलोत्कटं ।

विजिगीपोस्तुसाह्यार्याःसुहृत्संबन्धिवांधवाः

भाषार्थ—अपने कुलीन—सत्यवादी—सज्जन और अपनेसे बलमें अधिकके आश्रयले जीतनेवाले राजाकेही मित्र संबंधी बांधव सहायक होते हैं ॥ २१ ॥

प्रदत्तभृतिकाहान्यभूपावंशप्रकल्पिताः ।

सैवाश्रयस्तुकथितोदुर्गाणिचमहात्मभिः ॥

भाषार्थ—और राजा जिनको राजका कुछ भाग दे रक्खा है अथवा वेतन मिलता है उनका जो आश्रय लेना अथवा किलेमें बैठ रहना उसीको महात्मा लोग आश्रय कहते हैं ॥ २२ ॥

अनिश्रितोपायकार्यःसमयानुचरोनृपः ।

द्वैधीभावेनवर्तेतकाकाक्षिवदलक्षितम् २३ ॥

भाषार्थ—जब राजाको समयके अनुसार अपने कार्यका उपाय निश्चित नहोय उस

समयका काकके नेत्रसमान द्वेधीभावसे वर्ते
और किसीको प्रतीत न होय ॥ २३ ॥

प्रदर्शयेदन्यकार्यमन्यमालंबयेच्चवा ।

सदुपायैश्चसन्मंत्रैःकार्यसिद्धिरथोद्यमैः ॥

भाषार्थ—अन्य कामको दिखाने और अन्य-
को ग्रहण करें अच्छे उपाय और अच्छे मंत्र
और उद्यमोंसे कार्यकी सिद्धि ॥ २४ ॥

भवेदल्पजनस्यापि किंपुनर्नृपतेर्नहि ।

उद्योगेनैव सिध्याति कार्याणि न मनोरथैः ॥

भाषार्थ—तुच्छ जनकीभी होजाती है
राजाकी तो क्यों न होगी उद्योगसे कार्य
सिद्ध होते हैं मनोरथ करनेसे नहीं ॥ २५ ॥

न हि सुप्तमृगं द्रस्वपि न पतंगजामुखे ।

अयोभेद्यमुपायेन द्रवतामुपनीयते ॥ २६ ॥

भाषार्थ—क्योंकि सोते हुये सिंहके मुखमें
हाथी नहीं गिरते जो पदार्थलोहेसे विधता है
वहभी उपायसे द्रव (गलना) हो जाता
है ॥ २६ ॥

लोकप्रसिद्धमेवैतद्वारिवद्वैर्नियामकम् ।

उपायोपगृहीतेन तेनैतत्परिशोष्यते ॥ २७ ॥

भाषार्थ—यह बात जगतमें प्रसिद्ध है कि
जलसे अग्निशान्ति होती है यदि उपाय
किया जाय तो अग्निही जलको शोकलेती
हैं ॥ २७ ॥

उपायेन पदमूर्ध्नि न्यस्यते मत्तहास्तिनाम् ।

उपाये पूतमोभेदः पद्गुणेषु समाश्रयः २८

भाषार्थ—उन्मत्त हाथीयोंके मस्तकपरभी
उपायसे चरण रक्खा जाता है सब उपायोंमें
उत्तम गुण भेद है और ६ गुणोंमें उत्तम गुण
समाश्रय है ॥ २८ ॥

कार्यैर्द्वौ सर्वदा तौ तु नृपेण विजिगीषुणा ।

ताभ्यां विना नैव कुर्याद्युद्धं राजा कदाचन ॥

भाषार्थ—इन दोनोंको विजयकी इच्छा
वाला राजा सदैव करे इन दोनोंके विना
युद्धको कदाचित्भी न करें ॥ २९ ॥

परस्परं प्राति कूल्यं रिपुसेनपमंत्रिणाम् ।

भवेद्यथा तथा कुर्यात्तत्प्रजायाश्च तत्स्त्रियाः ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार शत्रुका सेनापति
और मंत्री ये परस्पर प्रतिकूल (नामाफक)
हो जाय और शत्रुकी प्रजा और स्त्रियोंमें
भी प्रतिकूलता हो ऐसे आचरण राजा
करे ॥ ३० ॥

उपायान् पद्गुणान्वीक्ष्य शत्रोः स्वस्यापि स-
र्वदा ।

युद्धं प्राणात्यये कुर्यात्सर्वस्वहरणे सति ॥ ३१

भाषार्थ—शत्रुके और अपने उपाय और
६ गुणोंको सदैव देखकर और सर्वस्वके
हरनेपर प्राणोंके नाश आनेपर युद्धकूं
करे ॥ ३१ ॥

स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च गोविनां शोषि ब्राह्मणैः ।

प्राते युद्धे कचिन्नैव भवेदपि पराङ्मुखः ॥ ३२

भाषार्थ—यदि स्त्री ब्राह्मण इनकू विपत्ति हो
गौका नाश हो ब्राह्मणोंका परस्पर युद्ध हो
ऐसे समयमें कभीभी युद्धसे न हटे ॥ ३२ ॥

युद्धमुत्सृज्य योयाति स देवैर्हन्यते भृशम् ।

समोत्तमाधमैराजात्वाहूतः पालयन् प्रजाः ॥

भाषार्थ—जो राजा युद्धकूं छोड़कर भाग-
ता है उसको देवता सदैव नष्ट करते हैं प्र-
जाओंकी पालना करते हुये राजाकूं यदि
युद्धके लिये समान उत्तम अधम बुला-
मेंतो ॥ ३३ ॥

ननिवर्तेतसंग्रामात्क्षत्रधर्ममनुस्मरन्
राजानंचापयोद्धारंब्राह्मणंचाप्रवासिनम् ३४

भाषार्थ—क्षत्रियोंके धर्मका स्मरण करता-
हुआ राजा संग्रामसे न हटे जो राजा होकर
युद्ध न करे और ब्राह्मण होकर परदेशमें
न जाय ॥ ३४ ॥

निगीलतिभूमिरेतौसर्पोविलशयानिव ।
ब्राह्मणस्यापिचापत्तौक्षत्रधर्मेणवर्ततः ॥ ३५

भाषार्थ—इन दोनोंको भूमि इसप्रकार ग्र-
सलेती है जैसे सांप विलमें सोनोंवालोंको ब्रा-
ह्मणकी आपत्तिमें जो राजा क्षत्रियोंके धर्म
(रक्षाकरना) से वर्तता है ॥ ३५ ॥

प्रशस्तंजीवितंलोकेशत्रहिव्रह्मसंभवम् ।
अधर्मःक्षत्रियस्यैष्यच्छयामरणंभवेत् ३६

भाषार्थ—जगत्में उसकाही जीवन श्रेष्ठ है
क्योंकि ब्राह्मणसेही क्षत्रियोंकी उत्पत्ति है
क्षत्रियका यह महान् अधर्म है कि शय्यापर
पड़े पड़े मरना ॥ ३६ ॥

विसृजन्लक्ष्मपित्तानिकृपणंपरिदेवयन् ।
अविक्षतेनदेहेनप्रलयंयोधिगच्छति ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—जो क्षत्री अपने देहमेंसे कफ
और पित्तको गेरता और दीन वचन कहता
हुआ देहमें धाव आये बिना मर जाता है ३७
क्षत्रियोनास्यतत्कर्मप्रशंसंतिपुराविदः ।

नगृहेमरणंशस्तंक्षत्रियाणांविनारणात् ३८

भाषार्थ—पुरातन ऋषि उस क्षत्रीके इस
कर्मकी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि रणके
बिना क्षत्रियोंका धर्म मरना अच्छा नहीं ३८
शौंडीरिणामशौंडीरमधर्मकृपणंचयत् ।

रणेषुकदनंकृत्वाज्ञातिभिःपरिवारितः ॥ ३९

भाषार्थ—और शस्त्रमें कुशल्लोके मध्यमें

अकुशलता करनी अधर्म और कृपणताभी
क्षत्रियोंको अच्छा नहीं रणमें शत्रुओंका कद-
न (हिंसा) करके अपनी जातिके परिवार
सहित और ॥ ३९ ॥

शस्त्रास्त्रैःसुविनिर्भिन्नःक्षत्रियोवधमर्हति ।
आहवेपुमियोन्योन्यंजिघांसंतोमहीक्षितः ॥

भाषार्थ—शस्त्र और अस्त्रोंसे भलीप्रकार
विधाहुआ क्षत्री मरनेके योग्य होता है सं-
ग्रामोंमें परस्पर मारते हुये राजा ॥ ४० ॥

युध्यमानाःपरंशक्त्यास्वर्गयात्यपराङ्मुखा
भर्तुरर्थंचयःशूरोविक्रमेद्वाहिनीमुखे ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—और शक्तिके अनुसार युद्धको
करते और नहटते हुये स्वर्गमें जाते हैं
जो शूवीर अपने स्वामीके लिये सेनाके
मुखपर पराक्रम करता है ॥ ४१ ॥

भयान्नविनिवर्तेततस्यस्वर्गोह्यनंतकः ।
आहवेनिहतंशूरंनशोचेतकदाचन ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—और भयसे हटता नहीं उसको
अनंत स्वर्ग मिलता है संग्राममें मरे हुए
शूवीर को कदाचित्भी न सोचे ॥ ४२ ॥

निर्मुक्तःसर्वपापेभ्यःपूतोयातिसलोकतां ।
वराप्सरःसहस्राणिशूरमायोधनेहतम् ४३ ॥

भाषार्थ—क्योंकि सचपापोंसे निवृत्त और
पवित्र हुआ वह अच्छे लोकोंमें जाता है और
संग्राम हुए शूवीरके लिये हजारों उत्तमोत्त-
म अप्सरा ॥ ४३ ॥

त्वरमाणाःप्रधावंतिममभर्ताभवेदिति ।
मुनिभिर्दीर्घतपसाप्राप्यतेयत्पदमहत् ॥ ४४

भाषार्थ—शीघ्रतासे दौडती हैं कि यह मे-
रा भर्ता होगा चिरकालतक तपकरनेसे मुनि-
लोग जिस महान्पद को प्राप्त होते हैं ४४

युद्धाभिमुखनिहतैःशूरैस्तद्रागवाप्यते ।
एतत्तपश्चपुण्यंचधर्मश्चैवसनातनः ॥४५॥

भाषार्थ—वही पद युद्धमें सन्मुख हतेहुए शूखीरको शीघ्र मिलता है यहही तप यहही पुण्य यहही सनातन धर्म है ॥ ४५ ॥

चत्वारवाश्रमास्तस्ययोजुद्धेनपलायते ।
नहिशौर्यात्परंकिंचित्त्रिपुल्लोकेपुविद्यते ४६

भाषार्थ—और उसकी ४ आश्रमहैं जो युद्धमेंसे नहीं हटता तीनो लोकमें शूखीर-तासे परे और कोई उत्तम नहीं है ॥ ४६ ॥

शूरःसर्वपालयतिशूरेसर्वप्रतिष्ठितं ।
चराणामचराब्रह्मदंष्ट्रादंष्ट्रिणामपि ॥४७॥

भाषार्थ—शूखीरही सबकी पालना करता है और शूखीरहीके सब आश्रय रहते हैं चरों (मनुष्य) के अन्न स्थावर और दाढवालोंके अन्न विना दाढवाले होते हैं ॥ ४७ ॥
अपाणयःपाणिमतामन्नंशूरस्यकातराः ।

द्राविमौपुरुषौलोकैःसूर्यमंडलभेदिनौ ॥४८॥

भाषार्थ—हाथवालोंके अन्न विना हाथवाले और शूखीरके अन्न कायर होतेहैं ये दो पुरुष सूर्यमंडलको भेदन करनेवाले होते हैं कि ॥ ४८ ॥

परित्राद्योगयुक्तोयोरणेचाभिमुखंहतः ।

आत्मानंगोपयेच्छक्तोवधेनाप्याततायिनः

भाषार्थ—योगसे युक्त संन्यासी और संग्राममें सन्मुख मरा हुआ शूखीर और समर्थ मनुष्य आततायी (शस्त्रधारी) के मारनेसे अपने आत्माकी रक्षा करे ॥ ४९ ॥

सुविद्योब्राह्मणगुरुर्युधेश्रुतिदर्शनात् ।

आततायित्वमापन्नोब्राह्मणःशूद्रवत्समृतः ॥

भाषार्थ—क्योंकि वेदकी आज्ञासे विद्या-

वान् और ब्राह्मणभी द्रोणाचार्यने युद्ध किया ब्राह्मणभी आततायी शूद्रके समान कहा है ॥ ५० ॥

नाततायिवधेदोपोहंतुर्भवतिकश्चन ।

द्यम्यशस्त्रमायातंभ्रूणमप्याततायिनं ॥

भाषार्थ—आततायीके मारनेमें मारनेवाले को कोई भी दोष नहीं होता जो आततायी शस्त्र उठाकर आताहो चाह वह भ्रूण (बालक) भी हो ॥ ५१ ॥

निहत्यभ्रूणदानस्यादहत्वाभ्रूणहाभवेत् ।

अपसर्पितयोजुद्धाज्जीवितार्थान्नराधमः ॥

भाषार्थ—उसको मारकर भ्रूणहत्या नहीं लगती और न मारे तो लगती है जो मनुष्योंमें नीच जीनेकेलिये युद्धसे हटताहै ५२

जीवन्नेवस्मृतःसोपिभुंक्तेराष्टकृतंतत्त्वधं ।

मित्रंवास्वामिनंत्यक्त्वाभिर्गच्छतिरणाञ्चयः

भाषार्थ—वह जीवता हुआही मरा है और सब देशके पापको भोगता है जो मनुष्य मित्र वा अपने स्वामीको त्यागकर रणमेंसे भागता है ॥ ५३ ॥

सोत्तिनरकमाप्पातिसज्जीवोर्निन्दतेखिलैः ।

मित्रमापद्रुतंष्ट्रासहायनकरोतियः ॥५४॥

भाषार्थ—जीते हुए उसकी सब निंदा करते हैं और अंत समयमें नरककू जाता है जो मनुष्य अपने मित्रकी आपत्ति देखकर सहायता नहीं करता ॥ ५४ ॥

अकीर्तिलभतेसोत्रमृतोनरकमुच्छति ।

विस्त्रंभाच्छरणंप्राप्तयःसंत्यजतिदुर्मतिः ॥

भाषार्थ—वह इसलोकमें अकीर्तिको प्राप्त होता है और मरकर नरकमें जाता है जो दुर्मति मनुष्य विश्वाससे शरण अथिक्क त्यागता है ॥ ५५ ॥

सयातिनरकेघोरेयावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
सुदुर्वृत्तयदाक्षत्रनाशयेयुस्तुब्राह्मणाः ॥ ५६ ॥

भाषार्थ—वह चोदह इन्द्रोंके राज्यतक घोर नरकमें जाता है यदिदुराचारी क्षत्रियोंको ब्राह्मण नष्ट करदे ॥ ५६ ॥

युद्धं कृत्वापिशस्त्रास्त्रैर्न तदापापभाजिनः ।
हीनयदाक्षत्रकुलं नीचैर्लोकः प्रपीडयते ॥

भाषार्थ—उस समय शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्ध करकेभी ब्राह्मण पापके भागी नहीं होते और जब क्षत्रियोंका कुल हीन (अस-मर्थ) हो जाय और नीच जगत्को पीडा देते हों ॥ ५७ ॥

तदापित्राह्मणा युद्धेनाशयेयुस्तुतान्ध्रवम् ।
उत्तममंत्रिकास्त्रेणनालिकास्त्रेणमध्यमम्

भाषार्थ—उस समयमेंभी युद्ध करके ब्राह्मण उन नीचोंको अवश्य नष्ट करै मंत्रके अस्त्रोंसे युद्धको उत्तम और तोपको अस्त्रोंसे युद्धको मध्यम ॥ ५८ ॥

शस्त्रैः कनिष्ठयुद्धं तु बाहुयुद्धं ततोऽधमम् ।
मंत्रैरितमहाशक्तिवाणाद्यैः शत्रुनाशनम् ॥

भाषार्थ—और शस्त्रोंके युद्धको कनिष्ठ और भुजाओंके युद्धको अधम मंत्रसे फेंकी हुई महा शक्ति (वनछी) और वाणोंसे जो शत्रुका नाश ॥ ५९ ॥

मांत्रिकास्त्रेण तद्युद्धं सर्वयुद्धोत्तमं स्मृतं ।
नालाग्रिचूर्णसंयोगाल्लक्ष्मणोलनिपातनम् ॥

भाषार्थ—मंत्रके अस्त्रोंसे किये हुए उस लक्ष्यमको सब युद्धोंमें उत्तम कहते हैं तोपमें दारुके संयोगसे जो लक्ष्यपर गोलिका गेरना ॥ ६० ॥

नालिकास्त्रेण तद्युद्धं महाहासकरं रिपोः ।
कुंतादिशस्त्रसंघातैरिपूषां नाशनं च यत् ॥

भाषार्थ—नालिक अस्त्रसे किया हुआ वह युद्ध शत्रुकी वही हानि करता है कुंता आदि शस्त्रोंकी समूहसे जो शत्रुओंको नष्ट करना ॥ ६१ ॥

शस्त्रयुद्धं तु तज्ज्ञेयं नालास्त्राऽभावतः सदा ।
कर्षणैः संधिमर्माणाम्प्रतिलोमानुलोमतः ॥

भाषार्थ—नाल अस्त्रोंके न होने पर किये हुए युद्धको सदैव शस्त्रयुद्ध कहते हैं उलटे पलटे शत्रुकी सन्धिके मर्मोंको जो खींचना ॥ ६२ ॥

वयनैर्घातनं शत्रोर्युत्तयातद्वाहुयुद्धकं ।

नालास्त्राणि पुरस्कृत्य लघूनि च महंति च ॥

भाषार्थ—और युक्तिसे बाधकर शत्रुको मारना उसे बाहुयुद्ध कहते हैं छोटे और बड़े नालास्त्रोंको आगे ॥ ६३ ॥

तत्पृष्ठगोश्वपादातान् गजान् श्वान् पार्श्वयोस्वितान् ।

कृत्वा युद्धं प्रारभेत भिन्नामात्यवलारिणा ॥

भाषार्थ—उनके पीछे पदातियोंको और दोनों तरफ आसपासमें हाथी और घोड़ोंको करके ऐसे शत्रुके संग युद्धका प्रारंभ करै जिसके मंत्री फटगये हों ॥ ६४ ॥

सांख्येन सुप्रपातेन पार्श्वभ्यामपयानतः ।

युद्धानुकूलभूमेस्तु यावत्लाभस्तथाविधम् ॥

भाषार्थ—सांख्य (मोरचा) से और भली प्रकार प्रपाते (फरें) से और पार्श्वोंकी तरफसे लोटनेसे युद्ध करै—जिस प्रकारकी युद्धके अनुकूल और जितनी भूमि मिले ६५ सैन्यार्थांशेन प्रथमं सेनयोर्युद्धमीरितं ।

अमात्यगोपितैः पश्चादमात्यैः सह तद्भवेत् ॥

भाषार्थ—उसमें सेनाके आगे २ भागसे दोनों सेनाओंका युद्ध कहा है और पीछेसे

मंत्रीकी सेना वा मंत्रियोंके संग युद्ध होता है ॥ ६६ ॥

नृपसंगोपितैः पश्चात्स्वतः प्राणात्यये च तत् ।
दीर्घाध्वानि परिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितश्रमम् ॥

भाषार्थ—फिर राजाके सेवकोंके संग और पीछेसे प्राणोंका नाश होता देखें तो स्वयं राजाकोही युद्ध करना कहाँ मार्गसे थकित हो अथवा क्षुधा और तृषासे युक्त होय ६७॥

व्याधिदुर्भिक्षमरकैः पीडितं दस्युविद्रुतं ।
पंकपांसुजलं स्कंधव्यस्तं वासातुरंतया ॥ ६८

भाषार्थ—अथवा व्याधि—अकाल—और मरीसे पीडित हो अथवा चारोंका भगाया हुआ हो वा कीच और धूलका जल पीती हो जिसके स्कंध अस्त व्यस्त हों और जिसका वास भी अच्छा न हो ॥ ६८ ॥

प्रसुप्तं भोजने व्यग्रमभूमिष्टमसंस्थितं ।
घोराग्निभयविज्रस्तं वृष्टिवातसमाहतम् ६९ ॥

भाषार्थ—सोता हो अथवा भोजन करता हो ऐसी भूमिमें टिका हो चिगडी हो—घोर आग्निसे दुखी हो अधिक वृष्टि वापवनसे पीडित हो ॥ ६९ ॥

एवमादिपुजाते पुण्यसमैश्च समाकुलं ।
स्वसैन्यं साधुरक्षेत्रपरसैन्यं विनाशयेत् ॥ ७०

भाषार्थ—इत्यादि पूर्वोक्त कारण होनेपर और व्यसनसे युक्त अपनी सेनाकी तो राजा रक्षा करे और पराई सेनाको नष्ट करे ॥ ७० ॥

उपायान्पङ्कशुणान्मंत्रशतौः स्वस्थापि चिं
तयेत् ।

धर्मयुद्धैः कूटयुद्धैर्हिन्यादेव रिपुं सदा ॥ ७१ ॥

भाषार्थ—शत्रुके और अपने उपाय और छः गुणोंवाले मंत्रीकी चिन्ता करे (विचारें)

धर्मके अथवा छलके युद्धोंसे सदैव शत्रुको मारे ॥ ७१ ॥

याने सपादभृत्या तु स्वभृत्या वर्धयन् नृपः ।
स्वदेहं गोपयन् युद्धे चर्मणा कवचेन च ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—यानके समयमें योद्धाओंकी श्रुति (नौकरी) को एक चौथाई बढ़ावे और युद्धके समयमें चर्म (ढाल) और कवचसे अपने देहकी भी रक्षा करे ॥ ७२ ॥

पाययित्वा मदं सम्यक् सैनिकाशौर्यवर्धनं ।
नालास्त्रेण च खड्गाद्यैः सैनिकैर्दारयेदरीन् ॥

भाषार्थ—और सेनाके वीरोंकी जिससे झूर वीरता बढ़े ऐसे मद (मदिरा) को प्याकर—नालास्त्र (तोप) से और खड्ग (तलवार) आदिसे सैनिकों पर शत्रुओंकी मरवावे ७३

कुंतेन सादिवाणेन रायिनरं यगोपि च ।
गजो गजेन यातव्यस्तुरगेन तुरंगमः ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—भालावाला सवारके संमुख और रथवाला रथवान्के—हाथी हाथीके और घोड़ा घोड़ेके साहने चलें ॥ ७४ ॥

रथेन च रथोपाज्यः पत्तिनापत्तिरेव च ।
एकेनैकश्च शस्त्रेण शस्त्रमस्त्रेण वास्त्रकम् ७५ ॥

भाषार्थ—रथके संग रथको और पदातिके संग पदातिकी एकके संग एकको—और शस्त्रके संग शस्त्रको और अस्त्रके संग अस्त्रको मिलावे ॥ ७५ ॥

न च हिन्यात्स्थलारुढं न क्रीबिनं कृतांजलिं ।
न मुक्तकेशामसीनं न तवास्मीति वादिनम् ७६

भाषार्थ—स्थल (मेदान) में खड़े और नमुंसक—और कृतांजलि (हाथ जोड़ना) को और जिसके केश खुले हों—और जो स्वस्थवैद्य हो—और जो तेराही मैं हूँ ऐसे कहता हो ॥ ७६ ॥

नसुसन्नं विसन्नाहं ननग्रं निरायुधं ।

नयुध्यमानं पश्यं तं युध्यमानं परेण च ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—जो सोता हो कवचहीन नग्न आयुधरहित हो जो युद्ध करते हुए किसी को देखता हो अथवा दूसरेके संग युद्ध करता हो ॥ ७७ ॥

पिवतं न च भुंजान मन्य कार्या कुलं च न ।

नभीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ७८ ॥

भाषार्थ—और जो जल पीता हो भोजन करता हो अथवा किसी अन्य कार्यमें व्याकुल हो भयभीत हो युद्धसे जो पराङ्मुख (हटा) हो इतने शत्रुओंको सत्पुरुषोंके धर्मको स्मरण करता हुआ राजा कभी न मरे ७८ ॥

वृद्धो बालो न हंतव्यो नैव स्त्री किं वलोनृपः ।

यथा योग्यं संयोज्य निघ्नन् धर्मो न हीयते ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—वृद्ध—बालक—स्त्री—अकेला राजा इनकोभी न मारे योग्यसे योग्यको मिलाकर शत्रुके मारनेमें धर्म नष्ट नहीं होता ॥ ७९ ॥

धर्मयुद्धे तु कूटवैनसंतिनियमा अमी ।

नयुद्धं कूटसदृशं नाशनं वलवादिषोः ॥ ८० ॥

भाषार्थ—ये नियम धर्मयुद्धमें हैं छलके युद्धमें कोई नियम नहीं है वलवान् शत्रुको नष्ट करनेवाले कूटयुद्धके समान और युद्ध नहीं है ॥ ८० ॥

रामकृष्णेंद्रादिदेवैः कूटमेवाहृतं पुरा ।

कूटेन निहतो बालीर्यवनो न मुचिस्तथा ॥ ८१ ॥

भाषार्थ—पहलेभी राम कृष्ण इन्द्र आदि देवताओंने कूट युद्धकाही आदर किया है बाली कालियवन नमुचि ये सब कूटयुद्धसेही मारे हैं ॥ ८१ ॥

प्रफुल्लवदनैव तथा कोमलयागिरा ।

शुरधारेण मनसारिणीश्चिद्रं सुलक्षयेत् ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—देहकी प्रफुल्लता और कोमल-वानी हुरेकी धारा और मन इनसे शत्रुके छिद्रको भलाप्रकार देखे ॥ ८२ ॥

मंचासीनः शतानीकः सेनाकार्यविचिंतयन् ।

सदैव व्यूहसंकेतवाद्यशब्दांतवर्तितः ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—मंचपर बैठा हुआ सेनापति सेनाको कार्यको विचारे व्यूहके संकेतोंके जो बाजे उसके भीतरके सैनिक ॥ ८३ ॥

संचरेयुः सैनिकाश्च राजराष्ट्रहितैषिणः ।

भेदितां शत्रुणा दृष्ट्वा स्वसेनायां तयेत्तत्तां ८४

भाषार्थ—राजा और देशके हितको चाहते हुए विचारे शत्रुसे भेदन किई हुई अपनी सेनाको देखकर यत्नसे रक्षार्कर ॥ ८४ ॥

प्रत्यग्रेकर्षणिकृते यो धेर्दद्याद् न चतान् ।

पारितोष्यं वा अधिकारं क्रमेताहृतपः सदा ८५

भाषार्थ—सेनाके योद्धाओंमें यदि कोई योद्धा किसी भारी कामको करे तो उसको धन दे अथवा पारितोषिक वा उत्तम अधिकार क्रमसे सदैव दे ॥ ८५ ॥

जलान्नतृणसंरोधैः शत्रून् संपीड्य यत्नतः ।

पुरस्ताद्विषमे देशे पश्चाद्न्याचुवेगवान् ८६

भाषार्थ—जल अन्न तृण इनके रोकसे यत्नपूर्वक शत्रुओंको दुःखी करके अपने आगे विषमदेशमें टिके शत्रुको पीछेसे सेनाका वेग बढ़ाकर नष्ट करे ॥ ८६ ॥

कूटस्वर्णमहादानैर्भेदयित्वा द्विषद्भलं ।

नित्यविघ्नं भंसु संप्रजागरकृतश्चमं ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—झूठे सोनाका महान् दान दे-देकर शत्रुकी सेनाको तोड़े और प्रतिदिन विश्वाससे सोती और जागनेके श्रमसे युक्त ॥ ८७ ॥

विलोभ्यापिपरानीकमप्रमत्तोविनाशयेत् ।
तत्सहायबलनैवव्यसनासमपिक्वचित् ॥८८॥

भाषार्थ—शत्रुकी सेनाको विशेष लोभ देकरभी सावधान राजा नष्ट करै शत्रुके सहायककी सेनाको संकटके समयमें कदाचित्भी न मारै ॥ ८८ ॥

स्वसमीपतरंराज्यंनान्यस्मात्प्राहयेत्क्वचित्
क्षणंयुद्धायसज्येतक्षणंवापसरेत्पुनः॥८९॥

भाषार्थ—जो राज्य अपने राज्यके अत्यंत समीप हो उसको दूसरे राजाको कदाचित् न लेनेदे क्षणमात्रहीमें युद्धके लिये तैयार होजाय और फिर क्षणमात्रहीमें युद्धसे हटजाय ॥ ८९ ॥

अकस्मान्निपतेदरादूस्वयुवत्परितःसदा ।

रूप्यहेमचक्रूप्यचयोयज्जयति तस्यतत् १०

भाषार्थ—और अचानक दूरसेही चारोंके समान चारों तरफ सदैव प्रहार करै चांदी सोना और धन ये सब जिस योधाने जीते हो उसकेही होते हैं ॥ ९० ॥

दद्यात्कार्यानुरूपंचहृष्टोयोधान्प्रहर्षयन् ।
विजित्येवरिपूनेवंसमादद्यात्करंतथा॥९१॥

भाषार्थ—प्रसन्न हुआ योधाओंकी प्रसन्नताके लिये कामके अनुसार वस्तुओंको दे इस प्रकार राजा शत्रुओंको जीतकर उनसे करका ग्रहण करै ॥ ९१ ॥

राज्यांशंवासर्वराज्यंनंदयति ततःप्रजाः ।
तुर्मंगलघोषेणस्वकीयंपुरमाविशेत् १२॥

भाषार्थ—ब्रह्म कर जो राज्यका भाग अथवा सम्पूर्ण राज्य हो फिर शत्रुकी प्रजाको प्रसन्न करै और मंगलके वाजे बजाता हुआ अपने पुरमें प्रवेशकरै ॥ ९२ ॥

तत्प्रजाःपुत्रवत्सर्वाःपालयितात्मसात्कृताः
नियोजयेन्मंत्रिगणमपरंमंत्रंचित्तने ॥९३॥

भाषार्थ—उस शत्रुकी सम्पूर्ण प्रजाका अपने आधीन करके पुत्रके समान पालनकरै और मंत्रके विचारमें दूसरे मन्त्रिओंके समूहको नियुक्त करै ॥ ९३ ॥

देशेकालेचपात्रेचह्यादिमध्यावसानतः ।
भवेन्मंत्रफलंकीदृगुपाधिनकथंत्विति॥९४॥

भाषार्थ—देश काल पात्र आदि मध्य अन्त इनमें उपर किस प्रकारउपाय करनेसे मन्त्रका फल क्या होगा इसको ॥ ९४ ॥

मंत्र्याद्यधिकृतःकार्ययुवराजायबोधयेत् ।
पश्चाद्वाज्ञेतुतैःसांक्युवराजाभिवेदयेत्॥९५॥

भाषार्थ—मंत्री आदि अधिकारी इस कार्यको यो राजको कहैं फिर मंत्री आदि सहित युवराजा राजाके प्रति निवेदन करै ॥ ९५ ॥

राजासंशसयेदादौयुवराजंततस्तुतः ।
युवराजोमंत्रिगणान्राजाग्रेतेधिकारिणः१६

भाषार्थ—राजा प्रथम युवराजको शिक्षा दे फिर युवराज मन्त्री आदि समूहको शिक्षित करै क्योंकि राजाके आगे वेही अधिकारी होते हैं ॥ ९६ ॥

सदसत्कर्मराजानंबोधयेद्विपुरोहितः ।
ग्रामाद्बहिःसमीयेतुसैनिकान्धारयेत्सदा ॥

भाषार्थ—राजाके सत् असत् कर्मका पुरोहित बोधन करै और ग्रामसे बाहर समीपमेंही सैनिकोंको सदैव ठिकावे ॥ ९७ ॥

ग्राम्यसैनिकयोर्नस्यादुत्तमर्णाधमर्णता ।
सैनिकार्थतुपण्यानिसैन्येसंधारयेत्पृथक् ॥

भाषार्थ—ग्रामके निवासी और सैनिकोंका उत्तमर्ण, अधमर्ण, व्यवहार (लेनेदेन)

न होने दे सैनिकोंके लिये सेनामेंही पृथक् बाजार चनवावे ॥ १८ ॥

नैकव्रवासयेत्सैन्यवत्सरंतुकदाचन ।

सेनासहस्रसज्जं स्यात्क्षणात्संशासयेत्तथा ॥

भाषार्थ—एक स्थानपर सेनाको कदाचित् न बसावे जिस प्रकार हजारों सेना एक क्षणमेंही तयार होजाय ऐसी शिक्षादे १९ ॥

संशासयेत्स्वनियमान्सैनिकानष्टमेदिने ।

चंडत्वमाततायित्वं राजकार्ये विलंबनम् ॥

भाषार्थ—और आठमे दिन सैनिकोंको अपने नियमकी शिक्षा देताहै कि क्रोध आततायी राजाके कार्यमें विलंब ॥ १२०० ॥

अनिष्टोपेक्षणं राज्ञः स्वधर्मपरिवर्जनं ।

त्यजंतु सैनिकानित्यं संल्लापमपि वापरैः ॥

भाषार्थ—राजाके अनिष्टकी उपेक्षा अपने धर्मका परित्याग शत्रुओंके संग संभाषण इन सबको सेनाके मनुष्य प्रतिदिन त्यागदे ॥ २०१ ॥

नृपाज्ञया विनाग्रामं न विशेष्युः कदाचन ।

स्वाधिकारिगणस्यापि ह्यपराधं दिशंतु नः ॥

भाषार्थ—राजाकी आज्ञाके बिना कदाचित् ग्राममें न जाय और अपने अधिकारी गणका जो अपराध हो उसे हमको कहै १२०२ ॥

मित्रभावेन वर्तध्वं स्वामिभिरुद्ये सदाऽखिलैः ।

सूज्वलानि च रक्षंतु शस्त्रास्त्रवसनानि च ॥

भाषार्थ—और स्वामीके कार्यमें संपूर्ण सदैव मित्रभावे से वर्ताव करै और अपने शस्त्र अस्त्र और वस्त्रोंको लज्ज्वल रखे और रक्षा करै ॥ ३ ॥

अनंजलं प्रस्थमात्रं पात्रं बह्वक्षसाधकं ।

शासनादन्यथाचारान् विनोदयामियमालयं

भाषार्थ—अन्न और जल ये प्रस्थभर और जिसमें बहुत अन्न आनाय ऐसा पात्रही जो मेरी शिक्षाका भंग करेगा उसे यमराजके स्थानपर पहुंचाऊंगा ॥ ४ ॥

भेदायितारिपुधनं गृहीत्वा दर्शयंतु मा ।

सैनिकैरभ्यसेन्नित्यं व्यूहाद्यनुकृतिं नृपः ५ ॥

भाषार्थ—भेदन किये हुए शत्रुके धनको हमें दिखाओ राजाभी सैनिकोंके संग सेनाके व्यूहोंका प्रतिदिन अभ्यास करै ॥ ५ ॥

तथाऽयनेयने लक्ष्यमस्त्रपातैर्विभेदयेत् ।

सायं प्रातः सैनिकानां कुर्यात्संगणनं नृपः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—तिसी प्रकार अयन २ (मोंके २) पर अस्त्रोंको फेंककर लक्ष्यको वीधे—और सायंकाल और प्रातःकालके समय राजा सैनिकोंकी गिनती करै ॥ ६ ॥

जात्याकृतिवयोदेशग्रामवासान्विमृश्य च ।

कालं भृत्यवधिदेयं दत्तं भृत्यस्य लेखयेत् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—भृत्यकी जाति—आकार—अवस्था देश—ग्रामको वास—और समय भृतिके अवधि—दियाहुआ द्रव्य—देने योग्य और इन सबको—लिखै ७ ॥

कतिदत्तं हि भृत्येभ्यो वेतनं पारितोषिकं ।

तत्प्राप्तिपत्रं गृहीत्वा दद्यात्वेतनपत्रकम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—वेतनमें भृत्योंको कितना पारितोषिक दिया उसकी प्राप्ति का पत्र (रसीद) ले—और वेतन (नौकरी) का पत्र उसको देदे ॥ ८ ॥

सैनिकाः शिक्षिता ये ये तेऽप्युपूर्णाभूतिः स्मृता ।

व्यूहाभ्यासे नियुक्ता ये तेऽप्युपूर्णाभूतिमावहेत् ॥

भाषार्थ—जो सैनिक शिक्षक हैं उन २ की भूति (नौकरी) पूर्ण देनी कही है—और जो

सैनिक व्यूहके अभ्यासमें नियुक्त हैं उनको उनसे आधी भृतिको दे ॥ ९ ॥

असत्कर्त्राश्रितसैन्यनाशयेच्छत्रुयोगतः ।
नृपस्यासद्गुणरताःकेगुणद्वेषिणोनराः ॥ १० ॥

भाषार्थ—शत्रुके योग (बहकाना) से जो सेना असत् कामको करै उसको नष्ट करै राजाकी बुराईमें कोन तत्पर हैं और कोन मनुष्य राजाके गुणोंका द्वेष करते हैं ॥ १० ॥

असद्गुणोदासीनाःकेहन्यात्तान्विमृशन्नृपः ।
सुखासक्तास्त्यजेद्भृत्यान्गुणिनोपिनृपःसदा

भाषार्थ—कोन असद्गुणी है और कोन उदासीन हैं उन सबको विचार २ कर राजा नष्ट करै जो भृत्य सुखमें आसक्त हों वेचा है गुणवान्मी हों तथापि राजा उनको सदैव त्याग दे ॥ ११ ॥

सुस्वांतलोकविश्वस्तायोज्यास्त्वंतःपुरादिपु
धार्याःसुस्वांतविश्वस्ताधनादिव्ययकर्मणि

भाषार्थ—भली प्रकार स्वयं जाचे और जगत्में विश्वास वाले जो भृत्य उनको अंतःपुर (रणवास) में नियत करै और भलीप्रकार स्वयं जिनका विश्वास करलिया हो उनको धनके व्यय (खर्च) करनेमें नियुक्त करै ॥ १२ ॥

तथाहिलोकोविश्वस्तोवाहाकृत्येनियुज्यते ।
अन्यथायोजितास्तेतुपरीवादायकेवलम् ॥

भाषार्थ—इसी प्रकार जगत्के विश्वासीको बाहिरके कृत्यमें नियुक्त करै यदि इन पूर्वोक्तोंको अन्यथा नियुक्त करै तो केवल अपयशके लियेही होते हैं ॥ १३ ॥

शत्रुसंबंधिनोयेयेभिन्नामंत्रिगणादयः ।
नृपदुर्गुणतोनिवृत्ततमानागुणाधिकाः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो २ भृत्य शत्रुके संबंधी हों और जो २ मंत्रियोंके भिन्न गण (फटे) हों राजाके दुष्ट गुणोंसे गुणोंमें अधिक भी उनके मान (सत्कार) को हरले ॥ १४ ॥

स्वकार्यसाधकायेतुसुभृत्यापोषयेच्चतान् ।
लोभेनासेवनाद्भिन्नास्तेष्वर्धाभृतिमावहेत् ॥

भाषार्थ—जो अच्छे भृत्य अपने कार्यके साधक हों उनका पोषण करै जो लोभसे और सेवा करनेसे भिन्न (विमुख) हों उनके आधी भृति दे ॥ १५ ॥

शत्रुत्यक्तान्सुगुणिनःसुभृत्यान्पालयेन्नृपः ।
परराष्ट्रेतदेदद्याद्भृतिभिन्नावधितथा ॥ १६ ॥

भाषार्थ—जिन अच्छे गुणोंवालोंको शत्रुने त्यागदिया हो उनकी अच्छी भृति देकर पालना करै जिस समय पराया देश लिया जाय उस समय भिन्नावधि (भत्ता) और भृति उसको दे ॥ १६ ॥

दद्यादर्धासस्यपुत्रेस्त्रियैपादमितांकिल ।
तत्तराज्यस्यपुत्रादौसद्गुणेपादसंमितम् ॥

भाषार्थ—और उसके पुत्रको आधी और उसकी स्त्रीको चौथाई दे—जिसका राज्य हरा हो अच्छे गुणी उसके पुत्र आदिको चौथाई राज्य दे ॥ १७ ॥

दद्याद्वातद्राज्यतस्तुद्वात्रिंशंशंप्रकल्पयेत् ।
तत्तराज्यस्यनित्तिकोशंभोगार्थमाहरेत् ॥

भाषार्थ—अथवा उसके राज्यमेंसे बत्तीसवां भाग दे और जिसका राज्य हरा हो उसके संचित कोश (खजाना) को भोगनेके लिये लेआवे ॥ १८ ॥

कौसीदंवातद्धनस्यपूर्वांक्तार्धंप्रकल्पयेत् ।
तद्धनंद्भिगुण्यावन्नतदूर्ध्वकदाचन ॥ १९ ॥

भाषार्थ—अथवा उसके धनमेंसे आधे घनको व्याजमें पूर्वोक्तसे आधा द्रव्य दे परन्तु इतनेही दे जबतक उसके धनसे दूना व्याज पहुंचे फिर उसके पीछे कदाचित् नदे १९॥
स्वमहत्त्वद्योतनार्थं हतराज्यान्प्रधारयेत् ।
ग्राह्मानैर्यदिसद्रुत्तान्दुर्वृत्तास्तुप्रपीडयेत्

भाषार्थ—अपनी बढाईके जतानेके लिये जिनका राज्य हराहो उनकीभी पालना करे यदि वे मान आदिसे पहिले सदाचारी हों—यदि दुष्टाचारी हों तो पीडित करे ॥ २० ॥

अष्टधादशधावापिकुर्यात्तद्वादशधापिवा ।
यामिकार्यमहोरात्रयामिकान्वीक्ष्यनान्यथा

भाषार्थ—आठ वा दश—अथवा बारह यामिको (पहरे दार) को देखकर यामिक (पहरा) के लिये रातदिनमें नियत करे ॥ २१ ॥

आदौप्रकल्पितानंशान्भजेयुर्यामिकास्तथा
आद्यःपुनस्त्वंतिमांशःस्वपूर्वांशततोपरि १२

भाषार्थ—नियत होनेके समय जितना भाग पहरेके लिये नियत हुआ हो उसकी सब यामिक पालना करै—पहिले भागको पहिला उससे अगले भागको दूसरा और अपनेसे पूर्व अंशको वे लें जो अन्य हैं ॥ २२ ॥

पुनर्वायोजयेत्तद्वादयेत्यर्चांतिमेततः ।
स्वपूर्वांशद्वितीयेद्विद्वितीयादिःक्रमागतम् ॥

भाषार्थ—अथवा फिर (बदली) अंत्य (पिछला) को आद्य समयमें और आद्यको अंत्य समयमें दूसरे दिन अपने पूर्व अंशमें द्वितीय आदि क्रमसे नियत करे ॥ २३ ॥

चतुर्भ्यस्त्वधिकानित्यंयामिकान्योजयेद्दिने
युगपद्योजयेद्दृष्ट्वावहन्वाकार्यगौरम् ॥ २४ ॥

भाषार्थ—एक दिनमें चारसे अधिक यामि-

कोंको सदैव नियत करे और कार्यका गौरव (भारी) देखकर एक बारही बहुत यामिकोंको नियत करे ॥ २४ ॥

चतुरनान्यामिकांस्तुकदानैवनिर्णययेत् ।
यद्रक्ष्यमुपदेक्ष्यंयदादेक्ष्यंयामिकायतत् २५

भाषार्थ—और चारसे कम यामिकोंको तो कदाचित्भी नियुक्त न करे—जिसकी रक्षा करनी हो अथवा जो उपदेशके योग्य हो उसे यामिकोंको बतायदे ॥ २५ ॥

तत्समक्षांदिस्वर्णस्याद्यामिकोपिचतत्तथा
कीलकोष्टेत्तुस्वर्णादिरक्षेत्रियमितावाधि २६

भाषार्थ—उसीके साहजने सबहो और यामिकभी उसै उसी प्रकार करे और जिसमें कील लगी हो ऐसे कोठेमें नियमसे स्वर्ण आदिकी रक्षा करे ॥ २६ ॥

स्वांशांतेदर्शयेदन्ययामिकंतुयथार्थकं ।
क्षणेक्षणेयामिकानांकार्यदूरात्सुबोधनम् २७

भाषार्थ—पहिला यामिक अपने भागके अंतमें दूसरे यामिकको यथार्थ रीतिसे दिखा दे—क्षण २ में यामिकों कार्यको दूरसेही समझा दे ॥ २७ ॥

सत्कृताभ्रियमान्स्वान्यदासंपालयेन्नृपः
तदैव नृपतिःपूज्योभवेत्सर्वेपुनान्यथा २८ ॥

भाषार्थ—जब राजा अपने किये हुये सब नियमोंकी पालना जब करता है तभी राजा सब मनुष्योंके बीचमें पूजा (बढाई) के योग्य होता है अन्यथा नहीं होता ॥ २८ ॥
यस्यास्तिनियतं कर्मनियतःसद्ग्रहोयदि ।
नियतोऽसद्ग्रहत्यागोनृपत्वंसोभ्रुतेचिरम् ॥

भाषार्थ—जिस राजाका काम नियत है और जिसको आग्रहभी अच्छाही नियत है और असत् (बरा) आग्रहका त्यागभी

नियत है वही राजा चिरकालतक राज्यको भोगता है ॥ २९ ॥

यस्यानियमितकर्मसाधुत्वंवचनंत्वापि ।

सदैवकुटिलःसस्तुस्वपदाद्राग्विनश्यति३०

भाषार्थ—जिस राजाके कामका नियम नहीं उसके चाँह वचन अच्छेभी हों तोभी वह सदैव कुटिल है और वह अपने पद (राजगद्दी) से शीघ्रही पतित (गिरना) होता है ॥ ३० ॥

नापिव्याघ्रागजाःशक्तामृगेंद्रंशासितुंयथा ।

नतथामंत्रिणःसर्वेनृपंस्वच्छंदगामिनम्३१

भाषार्थ—जैसे भिडा और हाथी सिंहको शिक्षा देनेके लिये समर्थ नहीं होते तिसी प्रकार संपूर्ण मंत्रियोंके गण स्वच्छंदचारी राजाको शिक्षा नहीं दे सकते ॥ ३१ ॥

निभृताधिकृतास्तेननिःसारत्वंहितेष्वतः ।

गजोनिवध्यतेनैवतूलभारसहस्रकैः॥३२॥

भाषार्थ—वे मंत्री राजाकेही पाले हैं और राजानेही उनको अधिकार दिया है इससे उनमें सार (दृढता) नहीं होता—तूलके सहस्रों भारोंसेभी हाथी नहीं बाँधा जा सकते ॥ ३२ ॥

उद्धर्तुंद्रागजःशक्तःपंकलग्रगजंवल्लि ।

नीतिभ्रष्टनृपंत्वन्यनृपउद्धारणक्षमः॥३३॥

भाषार्थ—और बलवान् हाथी यंत्र (कीच) में फसे हुये दूसरे हाथीको जैसे शीघ्रही उद्धार सकता है इसी प्रकार नीतिसे भ्रष्ट (हीन) राजाकोभी अन्य राजा उद्धार करनेको समर्थ होता है ॥ ३३ ॥

बलवन्नृपभृत्येऽल्पेऽपिश्रीस्तेजोयथामवेत् ।

तथानहीननृपतौतन्मंत्रिष्वपिनोतथा ३४॥

भाषार्थ—बलवान् राजाके छोटेभी भृत्यमें जैसे लक्ष्मी और तेज होता है वैसे तेजहीन राजामें और उसके मंत्रियोंमेंभी नहीं होता ॥ ३४ ॥

बहूनामैकमर्त्यंहिचृपतेर्बलवत्तरं ।

वहुसूत्रकृतोरज्जुःसिंहाद्याकर्पणक्षमः॥३५॥

भाषार्थ—बहुत मंत्री आदिकी जो एक मति वही राजाका अधिक बल है क्योंकि बहुतसे सूतोंकी बनावट हुयी रज्जु (रस्सी) सिंह आदिकेभी खींचनेमें समर्थ होती है ३५

हीनराज्योरिपुभृत्योनैसैन्यंधारयेद्बहु ।

कोशवृद्धिंसदाकुर्यात्स्वपुत्राद्यभिवृद्धये३६

भाषार्थ—जिसका राज्य छिन गया हो और शत्रुकी सेवा करता हो ऐसा राजा अधिक सेनाको न रखे और राजा अपने पुत्र आदिकी वृद्धिके लिये कोश (खजाना) की वृद्धि सदैव करे ॥ ३६ ॥

क्षुधयानिद्रयासर्वमशनंशयनंशुभम् ।

भवेद्यथातथाकुर्यादन्यथाशुदरिद्रकृत॥३७॥

भाषार्थ—क्षुधा होनेपर भोजन और निद्राके आनेपर भली प्रकार शयन जैसे होय तैसेही करे इससे जो अन्यथा करता है वह शीघ्रही दरिद्री होता है ॥ ३७ ॥

दिशानयान्ययंकुर्यान्नृपोनित्यंनचान्यथा ।

धर्मनीतिविहीनायेदुर्बलाअपिवैवृपाः॥३८॥

भाषार्थ—इसी प्रकार राजा सदा व्यय (खर्च) को करे अन्यथा नकरे जो दुर्बल राजा धर्म—और नीतिसे हीन हैं ॥ ३८ ॥

सुधर्मबलयुग्राज्ञादंड्यास्तेचौरवत्सदा ।

सर्वधर्मावनानीचनृपोपिश्रेष्ठतामियात् ३९

भाषार्थ—उन सबको उत्तमबल और धर्म-स युक्त राजा सदैव चौरके समान दंडदे सबके धर्मकी रक्षा करनेसे नीच राजाभी श्रेष्ठ हो जाता है ॥ ३९ ॥

उत्तमोपि नृपो धर्मनाशनास्त्रीचतामियात् ।
धर्माधर्मप्रवृत्तौ तु नृप एव हि कारणम् ॥ ४० ॥

भाषार्थ—और उत्तमभी राजा सबके धर्म नाश करनेसे नीचताको प्राप्त होता है क्योंकि धर्म और अधर्मकी प्रवृत्तिमें राजा ही कारण होता है ॥ ४० ॥

सहि श्रेष्ठतमोलोके नृपत्वं यः समाप्नुयात् ।
मन्वाद्यैरादृतो यो रथस्तदर्थो भार्गवेषणवै ॥ ४१ ॥

भाषार्थ—वही जगत्में अत्यंत श्रेष्ठ है जो राज्यको प्राप्त होता है जो अर्थ मनु आदि-ने माने हैं वेही अर्थ शुक्राचार्यने माने हैं ॥ ४१ ॥

द्वाविंशतिशतं श्लोकानीति सारं प्रकीर्तिताः ।
शुक्रोक्तनीतिसारं यश्चित्ते दनिशंसदा ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—इस नीतिसारमें २२०० वाईस सो श्लोक कहे हैं शुक्रके कहे हुए इस नी-तिसारको जो राजा रातदिन चिन्ता (वि-चार) करता है ॥ ४२ ॥

व्यवहारधुरं वोढुं सशक्तो नृपतिर्भवेत् ।
न कवेः सदृशानीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—वही राजा व्यवहारके भार उठाने-में समर्थ होता है शुक्रनीतिके समान इतर कोई नीति तीनों लोकोंमें नहीं है ॥ ४३ ॥

काव्ये वनीतिरन्या तु कुनीतिर्व्यवहारिणां ।
नाश्रयंति च ये नीतिं मंदभागास्तु ते नृपाः ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—व्यवहारी मनुष्योंके लिये शुक्र-की नीतिही है और सब कुनीति हैं जो रा-जा इस नीतिका आश्रय नहीं लेते वे मन्द-भागी जानने ॥ ४४ ॥

कातर्याद्धनलोभाद्वास्त्युर्वेन रकभाजनाः ।
इति शुक्रनीतौ मिश्रप्रकरणं नाम चतुर्थं समाप्तं

भाषार्थ—और कायरपन और धनके लोभसे वे नरकगामी होते हैं शुक्रनीतिमें यह चौथा मिश्र प्रकरण समाप्त हुआ ४५ ॥ नीतिशेषं खिले वक्ष्ये ह्यखिले शास्त्रसंमतम् । सप्तांगानां तु राज्यस्य हितं सर्वजनेषु वै ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—अब सब शास्त्रोंका सम्मत और सम्पूर्ण नीतिका जो शेष है उसको कहता हूँ । जिस प्रकार सब मनुष्योंका हित हो उसी प्रकार राज्यके सातों अङ्गोंको रखे ४६ शतसंवत्सरांतोपिकारिप्याम्यात्मसाद्रिपुम् । इति संचिन्त्य मनसारिपोऽश्छिद्राणि लक्षयेत् ॥

भाषार्थ—और मनसे यह विचार कर श-त्रुके छिद्रोंको देखै कि १०० सो वर्षके अंततक भी शत्रुको अपने आधीन (वसमें) करूंगा ॥ ४७ ॥

राष्ट्रभृत्यविशंकी स्याद्धीनमंत्रवलोरिपुः ।
युत्तया तथा प्रकुर्वीत सुमंत्रवलुयुक्स्वयं ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ मंत्र और बलसे युक्त राजा युक्तिपूर्वक ऐसा यत्न करे कि शत्रुको राज्य और भृत्योंकी शंका हो और मंत्र और सेनासे रहित हो जाय ॥ ४८ ॥

सेवया वा वणिक्वृत्त्यारिपुराष्ट्रविमृश्य च ।
दत्ताभयं सावधानो व्यसनस्तु चेतसः ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—सेवा वा व्यापारकी वृत्तिसे शत्रुके देश को विचार (देख) कर और शत्रुको अभयदान देकर सावधान हुआ राजा व्यसनमें लगा है चित्त जिसका ऐसे शत्रुको ॥ ४९ ॥

मार्जारं लुब्धकवत्संतिष्ठन्नाशयेदरीम् ।
सेनां युद्धे नियुंजीत प्रत्यनीकविनाशिनीम् ॥

भाषार्थ—इस प्रकार टिककर शत्रुको नष्ट करै जैसे विलावको लुब्धक (व्याध) और युद्धमें ऐसी सेनाको नियुक्त करै जो शत्रुकी सेनाको नष्ट कर सके ॥ ५० ॥

नयुंज्याद्रिपुराष्टस्यांभियःस्वद्वेषिणीवच ।
ननाशयेत्स्वसेनांतुसहसायुद्धकामुकः ५१

भाषार्थ—शत्रुको देशकी और परस्पर वैर करनेवालीको सेनाको नियुक्त न करै युद्धके इच्छावाला राजा विना विचारै अपनी सेनाको नष्ट करै ॥ ५१ ॥

दानमानैर्वियुक्तोपिनभृत्योभूपतिस्त्यजेत् ।
समयेशत्रुसान्नैवगच्छेज्जीवधनाशया ५२॥

भाषार्थ—दान और मानसे हीनभी भृत्य अपने राजाको न त्यागै जीव और धनकी इच्छासे समयपर शत्रुके आधीन न होवे ॥ ५२ ॥

मेघोदकैस्तुयापुष्टिःसार्किनद्यादिवारितः ।
प्रजापुष्टिर्नृपद्रव्यैस्तयार्किंधनिनांधनात् ॥

भाषार्थ—जो पुष्टि मेघके जलोंसे होती है वह पुष्टि क्या नदी आदिके जलसे होती है प्रजाकी जो पुष्टि राजाके द्रव्योंसे होती है क्या वह पुष्टि धनियोंके धनसे होती है ५३ दर्शयन्मार्दवंनित्यंमहावीर्यवलोपिच ।

रिपुराष्ट्रेप्रविश्यादौतत्कार्येसाधकोभवेत् ५४

भाषार्थ—महान् वीर्य और बलवालाभी राजा प्रतिदिन नम्रता दिखाता हुआ प्रथम शत्रुके राज्यमें प्रविष्ट हो कर शत्रुके कार्योंका साधक हो जाय ॥ ५४ ॥

संजातबद्धमूलस्तुतद्राज्यमखिलंहरेत् ।
अथतत्तद्रिष्टदायादान्तेनपानंशदानतः ५५

भाषार्थ—और जब वह मूल (जड) बंध जाय तो उसके सब राज्यको हरले फिर

शत्रुके वैरी और दायाद (हिस्सेदार) और सेनापति इनको वह कुछ भाग देनेसे ॥ ५५ ॥

तद्राज्यस्यवशीर्कुप्यान्मूलमुन्मूलयन्बलात् ।
तरोःसंक्षीणमूलस्यशाखाःशुष्प्यंतिवैयथा ॥

भाषार्थ—वशमें करै जो शत्रुके राज्यका ही हो और बलसे शत्रुके मूलको उखाड़ दे—जैसे जिसका मूल कटगया हो उस वृक्षके शाखा सूख जाती हैं ॥ ५६ ॥

सद्यःकेचिच्चकालेनसेनयाद्याःपतिविना ।
राज्यवृक्षस्यनृपतिर्मूलस्कंधाश्चर्मत्रिणः ५७

भाषार्थ—इसी प्रकार सेनापति आदि संपूर्ण कोई शीघ्र और समय पाकर राजाके विना सूकजाते हैं—राज्यरूपी वृक्षका मूल राजा होता है और मंत्री स्कंध (डाले) होते हैं ॥ ५७ ॥

शाखाःसेनाधिपाःसेनाःपल्लवाःकुसुमानिच
प्रजाःफलानिभूभागावीजभूमिःप्रकल्पिता

भाषार्थ—सेनाके अधिप शाखा—सेना पत्ते प्रजा फूल—और पृथिवीके भाग फल—भूमि बीज होती है ॥ ५८ ॥

विश्वस्तान्यनृपस्यापिनविश्वासंसमाम्नुयात्
नैकांतेनगृहेतस्यगच्छेदल्पसहायवान् ५९

भाषार्थ—विश्वासके योग्यभी दूसरे राजा का विश्वास कदाचित् न करै और अल्प सहायक होने पर एकांत समयमें शत्रुके घरमें न जाय ॥ ५९ ॥

स्ववेषरूपसंहशान्निकटेरक्षयेत्सदा ।

विशिष्टचिह्नगुप्तःस्यात्समयेऽन्यादृशोभवेत्

भाषार्थ—अपने समान वेष और रूपवाले भृत्योंकी अपने निकट सदैव रक्षा करै और विशिष्ट (श्रेष्ठ) चिह्नसे अपनी रक्षा करै औ-

र युद्ध आदिके समय अन्य २ रूपोंको धारण करै ॥ ६० ॥

वेद्याभिश्चनैर्मद्यैर्गार्ग्यकैर्मोहयेदरिं ।
सुवस्त्राभरणैर्नैव नकुटुंबेन संयुतः ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—और शत्रुको वेद्या—नट—मदिरा गानेवाले इनसे मोहित करै उत्तम वस्त्र आभूषण और कुटुंब इनको लेकर युद्धमें कदाचित् होते हैं ॥ ६१ ॥

विशिष्टचिन्हतोभीतोयुद्धेगच्छेन्नवैकचित् ।
क्षणमासावधानः स्याद्भृत्यस्त्रीपुत्रशत्रुषु ६२

भाषार्थ—विशिष्ट चिह्न (राजा) के धारण किये और डरता हुआ युद्धमें कदाचित्भी न जाय—और भृत्य स्त्री पुत्र और शत्रु इनमें क्षणमात्रभी असावधानी न करै ॥ ६२ ॥

जीवन्स्वामितापुत्रेन देयाप्यखिलाक चित् ।

स्वभावसद्गुणैर्यस्मान्महाऽनर्थमदावहा ६३

भाषार्थ—जीवता हुआ राजा अपनी स्वामिता पूरी २ अपने पुत्रको कदाचित् न दे क्योंकि स्वभावसे सद्गुणोंकोभी स्वामिता महान् अनर्थ और मदको देती है ॥ ६३ ॥

विष्णवाद्यैरपिनोदत्तास्वपुत्रस्वाधिकारता ।
स्वायुषःस्वल्पशेषेतु सत्पुत्रस्वाम्यमादिशेत्

भाषार्थ—विष्णु आदिकोंनेभी अपना अधिकार अपने पुत्रको नहीं दिया किन्तु जब अपनी अवस्था अल्प रहै उस समय सज्जन पुत्रको अपनी स्वामिता दे ॥ ६४ ॥

नाराजकक्षणापिराष्ट्रं धर्तुं क्षमाः किल ।
युवराजादयः स्वाम्यलोभं चापल्यगौरवात् ॥

भाषार्थ—युवराज आदि विना राजाके क्षणमात्रभी राष्ट्र (देश) के धारण (पालन)

करनेको समर्थ नहीं होते और स्वामिताका लोभ—चपलता—गौरव (बड़ाई) से ॥ ६५ ॥

प्राप्त्योत्तमपदपुत्रः सुनीत्यापालयन् प्रजाः ।
पूर्वामात्येषु पितृवद्रौरवं संप्रधारयेत् ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—पुत्र उत्तम पदको प्राप्त होकर और उत्तम नीतिसे प्रजाओंका पालन करता हुआ पहिले मंत्रियोंका पूर्वके समान गौरव (बड़ाई) माने ॥ ६६ ॥

तस्यापि शासनं तैस्तु प्रधार्य पूर्वतोधिकं ।
युक्तं चेदन्यथा कार्यं निषेध्य कालं बनेः ६७

भाषार्थ—और मंत्री आदिभी उसकी आज्ञाको पूर्वसेभी अधिक माने—यदि अन्यथा करै तो काल विलंब आदिसे निषेध करै ६७

तदनीत्यानवर्तयेत्स्तेन साकंधनाशया ।
वर्तयेत्तदनीत्याते तेन साकंपतं त्यरात् ६८

भाषार्थ—और राजाकी अनीतिमें उसके संग मंत्री आदि घन लोभसे न वर्तै यदि वे अनीतिसे वर्ताव करै तो राजाके संग शीघ्र ही नरकमें जाते हैं ॥ ६८ ॥

कुलभक्तांश्च यो द्वेष्टि न वीनं भजते जनं ।
स गच्छेच्छत्रुसाद्राजधनप्राणैर्विभुज्यति ॥

भाषार्थ—जो अपने कुलके भक्त (पाले-हुये) हैं उनका जो युवराज वैर करता है और नवीन जनको सेवता है वह राजा शत्रुके आधीन हो जाता है और घन और प्राणोंसे विभुक्त हो जाता है ॥ ६९ ॥

गुणी सुनीतिर्न व्योपि परिपाल्यस्तु पूर्ववत् ।
प्राचीनैः सह तं कार्यं ह्यनुभूय नियोजयेत् ७०

भाषार्थ—गुणी और नीतिका ज्ञाताके नवीन जनकोभी पूर्वके समान पालकर प्राचीन मंत्री आदिकोंके संग देख भालकर कार्योंमें नियत करै ॥ ७० ॥

अतिमृदुस्तुतिनतिसेवादानप्रियोक्तभिः ।

मार्यिकैःसेव्यतेयावत्कार्यंनित्यंतुसाधुभिः

भाषार्थ—अत्यंत कोमल—स्तुति—नमन—
सेवा—दान—और प्रिय वचन—इनसे इतने
मायावी सेवें तितने उस कार्यको करें जितें
साधु जन कहैं ॥ ७१ ॥

प्रत्यक्षंपरोक्षंवासत्यवाग्भिर्नृपोपिच ।

याथार्थ्यतस्तयोरीदृगंतरंस्त्रभुवोर्यथा ७२

भाषार्थ—प्रत्यक्ष (सामने) वा परोक्ष
(पीछेसे) सत्य वाणियोंसे उनके इस
प्रकार अंतर (फरक) को राजाभी जानले
जैसे आकाश और भूमिका अंतर होता
है ॥ ७२ ॥

मायायाजनकाधूर्तजारचौरवहुश्रुताः ।

प्रतिष्ठितोयथाधूर्तान्तयातुवहुश्रुतः ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—मायाके पैदा करनेवाले जार—
चौर—और बहुश्रुत (जिसने बहुत बातें
सुनी हों) ये होते हैं और जैसा मायावी
प्रतिष्ठित धूर्त होता है ऐसा बहुश्रुत नहीं
होता ॥ ७३ ॥

परस्वहरणेलोकेजारचौरौतुर्निदितौ ।

तावप्रत्यक्षंहरतःप्रत्यक्षंधूर्तएवहि ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जगतमें पराये धन हरनेवाले
चौर और जारये दोनों निंदित कहे हैं परन्तु
ये दोनों अप्रत्यक्ष (पीछे) हरते हैं धूर्त तो
साहजनेही धनको हरता है ॥ ७४ ॥

हितंत्वहितवच्चांतेअहितंहितवत्सदा ।

धूर्ताःसंदर्शयित्वाऽज्ञस्वकार्यसाधयंतिते ७५

भाषार्थ—धूर्तजन समीप हितकोभी अहि-
तके समान और अहितको हितके समान
मूर्खको दर्शा कर अपने कार्यको सिद्ध कर-
ते हैं ॥ ७५ ॥

विस्त्रंभयित्वाचात्यर्थमाययाधातयंतिते ।

यस्यचाप्रियमन्विच्छेत्तस्यक्रुर्धात्सदाप्रियं

भाषार्थ—और वे मायासे अत्यंत विश्वास
देकर मार देते हैं जिसके अप्रियकी इच्छा
करें उसका सदैव प्रिय करें ॥ ७६ ॥

व्याधोमृगवधंकर्तुंगीतंगायतिसुस्वरं ।

मायांविनामहाद्रव्यंद्राड्नसंपाद्यतेजनैः ॥

भाषार्थ—मृगोंका वध करता हुआ व्याध
उत्तम स्वरसे गाता है—और मायाके बिना
मनुष्योंकी अत्यंत धन नहीं मिलता ॥ ७७ ॥

विनापरस्वहरणान्नकाश्चित्स्यान्महाधनः ।

मायायातुविनाताद्विनसाध्यस्याद्ययेप्सितं

भाषार्थ—पराये धनके हरणे बिना कोई
भी महाधनी नहीं होता और मायाके बिना
वह धन अपनी इच्छाके अनुसार मिलभी
नहीं सकता ॥ ७८ ॥

स्वधर्मपरममंत्वापरस्वहरणंनृपाः ।

परस्परमहायुद्धं कृत्वाप्राणोस्त्यजंत्यापि ॥

भाषार्थ—पराये धनके हरणको अपना
परम धर्म मानकर राजा लोग परस्पर महा
युद्ध करके प्राणोंकोभी त्याग देते हैं ॥ ७९ ॥

राज्ञोयदिनपापंस्याद्दस्यूनामपिनोभवेत् ।

सर्वपापं धर्मरूपं स्थितमाश्रयभेदतः ॥ ८० ॥

भाषार्थ—यदि राजाको पाप न होय तो
चोरोंकोभी न होना चाहिये इससे संपूर्ण पाप
आश्रय (कर्ता) के भेदसे धर्मरूपसे
स्थित है ॥ ८० ॥

बहुभिर्यस्तुतो धर्मो निंदितोऽधर्म एव सः ।

धर्मतत्त्वहिगहनंज्ञातुंकेनापिनोचितम् ८१ ॥

भाषार्थ—जिसकी बहुत जन स्तुति करें
वह धर्म और जिसकी निंदा करें वह अधर्म

ही है—धर्मके गहन (गहरा) तत्वको कोई भी नहीं जान सकता ॥ ८१ ॥

अतिदानतपःसत्ययोगोदारिद्र्यकृत्विह ।
धर्माथैयत्रनस्यातांतद्वाकामनिरर्थकम् ८२

भाषार्थ—अत्यंत दानदेना—तप सत्य बो-
लना ये सब इस जगतमें दरिद्रता करने
वाले हैं—जिस काममें धर्म वा अर्थ (धन)
नहीं वह निरर्थक (वृथा) है ॥ ८२ ॥

अर्थस्य पुरुषोदासोदासस्त्वर्थोनकस्यचित्
अतोर्थाय यतैतैव सर्वदा यत्नमास्थितः ८३ ॥

भाषार्थ—यह पुरुष अर्थका दास हैं और
अर्थ किसीका भी दास नहीं है इससे यत्नमें
टिका हुआ मनुष्य अर्थके लिये अवश्य
यत्न करे ॥ ८३ ॥

अर्थार्द्धमश्च कामश्च मोक्षश्चाप्रिभवेवृणां ।
शस्त्रास्त्राभ्यां विना शौर्यं गार्हस्थ्यं तु स्त्रियं वि-
ना ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—अर्थसे धर्म काम और मोक्ष ये
तीनों मनुष्योंको प्राप्त होते हैं शस्त्र और
अस्त्रके विना शूरीकी शक्ति और स्त्रीके विना
गृहस्थ ॥ ८४ ॥

एकमर्थां विना युद्धं कौशल्यं ग्राहकीं विना ।
दुःखाय जायते नित्यं सुसहायं विना विपत् ॥

भाषार्थ—एक मतिके विना युद्ध और
ग्राहक (कदरदान) के विना कुशलता
और पदातिथीके विना अच्छी सहायता ये
सब सदर दुःखदायी ही होते हैं ॥ ८५ ॥

न विद्यते तु विपत्तिः सुसहायं सुहृत्समम् ॥
लघोरप्यपमानस्तु महावैराज जायते ८६ ॥

भाषार्थ—और विपत्तिके समय मित्रके
समान दूसरा सहायक नहीं होता—बुच्छ

मनुष्यका भी अपमान महान् वैरके लिये
होता है ॥ ८६ ॥

दानं मानं सत्यं शौर्यं मृदुता हि सुहृत्करं ॥
सर्वानापादिरहसि समाह्वय लघून् गुरुन् ८७

भाषार्थ—दान—मान—सत्य—शूरता—मृदुता
(कोमलपना) मित्रका कार्य—इन सबको
आपत्तिके समय सब लघु गुरु (छोटे बड़े)
ओंको ॥ ८७ ॥

भ्रातृन् वधूंश्च भृत्यांश्च ज्ञातीन्सभ्यान् पृथक् पृ-
थक् ।

यथाहं पूज्यं विनतं स्वाभीष्टं याचयेन्नृपः ॥

भाषार्थ—और भाई बंधु—भृत्य—ज्ञाति—
सभासद इन सबको यथायोग्य पृथक् पूज
कर नम्र हुआ राजा अपने अभीष्ट (मनो-
रथ) को याचना करे ॥ ८८ ॥

आपदं प्रतरिष्यामो गूर्यं युत्तया वदिष्यथ ।
भवन्तो मम मित्राणि भवत्सु नास्ति भृत्यता ॥

भाषार्थ—जिस प्रकार आपत्तिसे पारहों वह
युक्ति आप लोग कहो—तुम मेरे मित्र हो और
भृत्यपना तुममें नहीं है ॥ ८९ ॥

न भवत्सदृशास्त्वन्ये साहाय्याः संति मे ह्यतः ।
तृतीयांशं भृतेर्ग्राह्यमर्धं वा भोजनार्थकम् ९०

भाषार्थ—जिससे तुम्हारे समान अन्य कोई
मेरे सहायक नहीं है अब भोजनके लिये
अपनी भृति (नोकरी) का तीसरा वा
आधा भाग आपलोग ग्रहण करो ॥ ९० ॥

दास्याम्यापत्समुत्तीर्णः शेषं प्रत्युपकारवित्
भृतिं विना स्वाभिकार्यं भृत्यः कुर्यात्समाष्टकं

भाषार्थ—इस आपत्तिसे पार होकर शेष
भृतिको उपकारके जाननेवाला मैं दोगा—
अपने स्वामीके कामको भृतिके विना भी
आठ वर्ष तक भृत्य करे ॥ ९१ ॥

पोडशाब्दधनीयः स्यादितरोयानुरूपतः ।
निर्धनैरन्नवस्त्रतुनृपाद्ग्राह्यनचान्यया १२ ॥

भाषार्थ—जो भृत्य धनवान् हो वह बारह वर्षतक करे और उससे इतर अपने धनके अनुसार करे और निर्धन भृत्य राजासे अन्न वस्त्रकोही ग्रहण करे अन्यथा न करे ॥ १२ ॥

यतोभुक्तं सुखं सम्यक् कृतदुःखैर्दुःखितो न चेत् ।
विनिंदति कृतघ्नस्तु स्वामी भृत्यो न्येव वा ॥

भाषार्थ—जिससे भली प्रकार सुख भोगा हो उसके दुःखसे दुःखी न होय तो उसको स्वामी वा अन्य भृत्य यह निंदा करते हैं कि यह कृतघ्न है ॥ १३ ॥

सकृत्सुभुक्तं यस्यापि तदर्थं जीवितं त्यजेत् ।
भृत्यः स एव सुखो को नापत्तौ स्वामिनं त्यजेत्

भाषार्थ—जिसकी एक बारभी खायाहो उसके लियेभी जीवित (प्राण) को त्यागदे वही भृत्य प्रशंसाके योग्य होता है जो आपत्तिके समय स्वामीको न त्यागें ॥ १४ ॥

स्वामी स एव विज्ञेयो भृत्यार्थं जीवितं त्यजेत् ।
न रामसदृशो राजापृथिव्या नीतिमान् भूत् ॥

भाषार्थ—और स्वामीभी वही जानना जो भृत्यके लिये जीवितको त्यागदे रामचंद्रके समान कोईभी राजा पृथिवीमें नीतिवाला नहीं हुआ ॥ १५ ॥

सुभृत्यता तु यन्नीत्यावानरैरपि स्वीकृता ।
अपिरापृथिविनाशाय चोराणामेकचित्तता १६

भाषार्थ—और उनकी श्रेष्ठ भृत्यताभी नीतिसे वानरोंने स्वीकारकी—जब देशके नष्ट करनेके लिये चोरोंकाभी एकाचित्त होजाता है तो ॥ १६ ॥

शक्ता भवेन्न किं शत्रुनाशाय नृपभृत्ययोः ।
न कूटनीतिरभवत् श्रीकृष्णसदृशो नृपः ॥ १७

भाषार्थ—क्या स्वामी और भृत्यकी एकता शत्रुके नाशार्थ न होगी और कूट (झूठी) नीतिवाला राजा श्रीकृष्णचंद्रके समान कोई नहीं हुआ ॥ १७ ॥

अर्जुनात्प्राहितास्वस्य सुभद्राभिगनीछलात्
नीतिमतां तु सा युक्तिर्याहिस्वश्रेयसेखिला ॥

भाषार्थ—अपनी वहिनभी सुभद्रा जिह्मोंने छलसे अर्जुनको विवाहदी—नीतिमान् राजा ओंकी जो युक्ति है वही सब अपने कल्याणके लिये होती है ॥ १८ ॥

नात्मसंगोपने युक्तिं चित्तयेत्सपशोर्जडाः ।
जारसंगोपने छद्मसंश्रयं तिस्रियोऽपि च ॥ १९

भाषार्थ—जो मनुष्य अपनी रक्षाकी युक्ति—को न विचारे वह जड़ और पशु है स्त्रीभी जार मनुष्यके छिपानेमें छल करती है ॥ १९ ॥

युक्तिं च छलात्मिका प्रायस्तथान्यायोजना-
त्मिका ।

यच्छद्मचारि भवति तेन छद्मसमाचरेत् ॥

भाषार्थ—और युक्ति प्रायः सब छलरूप होती है और दूसरी युक्ति योजन (मिलाप) रूप होती है जो मनुष्य छल करे उसके संग आपभी छल करे ॥ १३०० ॥

अन्यथाशीलनाशाय महतामपि जायते ।
अस्ति बुद्धिमतां श्रेणिर्न त्वेको बुद्धिमानतः १

भाषार्थ—अन्यथा छल करना वहाँके भी शीलको नष्ट करता है—और बुद्धिमान् मनुष्योंकोभी श्रेणी (बहुत) होती है—एक—ही मनुष्य बुद्धिमान् नहीं होता ॥ १३१ ॥

देशकालेषु रूपेण नीतिं युक्तिमनैकधाम् ।
कल्पयंति च तद्विद्यादृष्टारुद्धांतु प्राकृतनाम्नः

भाषार्थ—उस बुद्धिके ज्ञाता देश और कालके अनुसार अनेक प्रकारकी उन नीति और युक्तियोंकी देखकर कल्पना करलेते हैं जो पुरानी हैं परंतु छिपी हैं ॥ १३०२ ॥

मंत्रौषधिपृथग्वेषकालवागर्थसंश्रयात् ।

छद्मसंजनयंतीहताद्विद्याकुशलजनाः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—छलकी विद्यामें कुशल जन मंत्र औषध—पृथक् वेष—काल वाणी अर्थ इनके आश्रयसे छलको पैदा करलेते हैं ॥ ३ ॥

लोकोऽधिकारीप्रत्यक्षविक्रीतंदत्तमेववा ।
वस्त्रभांडादिकंकीर्तंस्वचिन्हैरंकयेच्चिरम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—जगतमें जो जिसका अधिकारी है वह अपने वेष और दिये वस्त्र पदार्थको भांड आदि सबके सामने अपने नामके चिह्नोंसे अंकित करदे ॥ ४ ॥

स्तेनकूटनिवृत्त्यर्थराजज्ञातंसमाचरेत् ।

जडांधवालद्रव्याणांदद्यादृद्धिचतुःसदा ॥

भाषार्थ—चोरीके और छलके पदार्थ जैसे प्रतीत नहीं उस प्रकार राजाकोभी ज्ञात करादे और जड अंध वाल इनके जो द्रव्य उनकी सदैव वृद्धि (व्याज) को राजा दे ॥ ५ ॥

स्वीयातयाचसामान्यापरकीयानुस्वीयथा ।
त्रिविधोभृतकस्तद्बहुत्तमोमध्यमोऽधमः ॥

भाषार्थ—जै अपनी पराई और सामान्य—ये तीन प्रकारकी स्त्री होती हैं इसी प्रकार तीन प्रकारका और उत्तम मध्यम अधमरूप तीन प्रकार भृत्य होता है ॥ ६ ॥

स्वामिन्येवानुरक्तोभृतकस्तुत्तमःस्मृतः
सेवतेपुष्टभृतिदंप्रकरंसचमध्यमः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—जो भृत्य अपने स्वामीमेंही प्रीति रखता हो वह उत्तम कहा है जो उसी

समूहकी सेवा करे जो अधिक भृति (नो-करी) दे वह मध्यम होता है ॥ ७ ॥

पुष्टोपिस्वामिनाऽव्यक्तंभजतेन्यसंचाधमः ।
उपकरोत्यपकृतोह्युत्तमोप्यन्यथाधमः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जो अपने स्वामीने पुष्टभी किया हो तोभी छिपकर दूसरेकी सेवा करे वह अधम होता है—और जो तिरस्कार करने परभी उपकार करे वह उत्तम और अन्य अधम होता है ॥ ८ ॥

मध्यमःसाम्यमन्विच्छेदपरःस्वार्थतत्परः ।
नोपदेशंविनासम्यक्प्रमाणैर्ज्ञायतेखिलम् ॥

भाषार्थ—जो अपनी समानताको चाहे वह मध्यम और जो अपने स्वार्थमें तत्पर हो वह अधम होता है—और उपदेशके विना किसी प्रमाणसेभी सचका ज्ञान नहीं होता ॥ ९ ॥

वाल्यंवाप्यथतारुण्यंप्रारंभितसमाप्तिदम्
प्रायोबुद्धिमतोज्ञेयंनवार्षक्यंकदाचन ॥

भाषार्थ—बालपन अथवा वृद्धपन ये दोनों प्रारंभ किये कामकी समाप्तिके होनेसे बुद्धि मान् मनुष्यके जानने योग्य होते हैं और वृद्धता कदाचित्भी नहीं होती ॥ १० ॥

आरंभंतस्यकुर्याद्विद्यत्समाप्तिंसुखंव्रजेत् ।
नारंभोबहुकार्याणामेकदैवसुखावहः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—उसी कामका प्रारंभ करे जिसकी सुखसे समाप्ति हो जाय—एकवारही बहुतसे कामोंका प्रारंभ सुखदायी नहीं होता ॥ ११ ॥
नारंभितसमाप्तिंनुविनाचान्यंसमाचरेत् ॥
संपाद्यतेनपूर्वादिनापरंलभ्यतेयतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—प्रारंभ किये हुये कार्योंकी समाप्तिके विना अन्य कामको नकरे क्योंकि

यदि प्रथमही काम न भया तो दूसराभी उसको न होगा ॥ १२ ॥

कृतीतत्कुर्वतेनित्यंयत्समाप्तिंव्रजेत्सुखं ॥
ईर्ष्यालोभोमदःप्रीतिःक्रोधोभीतिश्चसाहसं ।

भाषार्थ—शक्तिके अनुसार प्रारंभ किये कामको नित्य करै जिससे उसकी सुखसे समाप्ति हो—ईर्ष्या—लोभ—मद—प्रीति—क्रोध—भीति—और साहस ॥ १३ ॥

प्रवृत्तिच्छिद्रहेतुनिकार्येसप्तबुधाजगुः ॥
यथाछिद्रंभवेत्कार्येतथैवेहजमाचरेत् १४ ॥

भाषार्थ—ये सप्त प्रवृत्तिके छिद्रमें हेतु पंडित जनोंने कहे हैं—इस जगत्में कामको उसी प्रकार—करै जैसे उसमें कोई छिद्र न हो ॥ १४ ॥

अविस्वादिबिद्वद्भिःकालेतीतेपिचापदि ॥
दशग्रामीशतानीकौपरिचारकसंयुतौ ॥

भाषार्थ—और सत्यवादी विद्वानोंने कला वीतनेपर आपत्तिके समयमें पूर्वोक्त छिद्रका न होना कहा है—दशग्रामोंका स्वामी और सौ सैनिकोंका सेनापति ये दोनों अपने सेवकों समेत ॥ १५ ॥

अश्वस्थौविचरेयातांग्रामपाह्यपिचाश्वगाः ।
साहस्रिकशतग्रामीएकाश्वरथवाहनौ ॥

भाषार्थ—अश्वस्थ (व्याकुल) हुये और ग्रामके पति (चौधरी) और असवार—नित्य विचार करै—सहस्र मनुष्य और सौ ग्रामोंका स्वामी एक घोड़ेके यानमें बैठकर चलै ॥ १६ ॥

सहस्रग्रामपोनित्यंनरश्चद्व्यश्वयानगः ॥
आयुतिकोर्विशतिभिःसेवकैर्हस्तिनाव्रजेत् ।

भाषार्थ—सहस्र ग्रामोंका स्वामी नरयान (पालकी) वा अश्वयानमें बैठकर—और दश

सहस्र सेनाओंका स्वामी वीस सेवकों समेत हाथीपर चढ़कर—गमन करै ॥ १७ ॥

अयुतग्रामपःसर्वयानैश्चचतुरश्वगैः ॥

पंचायुतीसेनपोपिचरैर्द्वद्विसेवकः ॥ १८

भाषार्थ—दश सहस्रग्रामोंका स्वामी चार घोड़ोंके सवयानोंमें बैठकर गमन करै और पचास सहस्र सेनाओंका स्वामी भी बहुतसे सेवकों सहित विचरै ॥ १८ ॥

यथाधिकाधिपत्यंतुवीक्ष्याधिक्यंप्रकल्पयेत्
कल्पयेच्चयथाधिक्यंधनिकेषुगुणिष्वपि ॥

भाषार्थ—जितना अधिक अधिपति (स्वामी) हो उसको देखकरही यान आदिकी अधिकताको करै इसी प्रकार धनी और गुणवानोंमेंभी धन गुणकी अधिकता देखकर यान आदिकी अधिकता करै ॥ १९ ॥

श्रेष्ठोनमानहीनःस्यान्न्यूनोमानाधिकोपिन
राष्ट्रेनित्यंप्रकुर्वीतश्रेयोर्थान्वृषतिस्तथा ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ जन मानसे हीन और न्यून (छोटा) जन अधिक मानवाला न हो यह रीति अपने राज्यमें कल्याणका अभिलाषी राजा करै ॥ २० ॥

हीनमध्योत्तमानांतुग्रामेभूमिंप्रकल्पयेत् ॥
कुटुंबिनांगृहार्थेतुपत्तनेपिनृपःसदा ॥ २१ ॥

भाषार्थ—जो गाममें हीन मध्यम उत्तम हो उनके लिये ग्राममें कुछ भूमि नियत करै और कुटुंबियोंके घरके लिये तो राजा सदैव पत्तन (शहर) ऐसी भूमिको नियत करै—१ द्वात्रिंशत्ग्रामितैर्हस्तैर्दीर्घार्धाविस्वृताधमा ॥ उत्तमादिगुणामध्यासार्धमानायथार्हतः ॥

भाषार्थ—जो बत्तीस हाथ लंबी और सोलह हाथ चौड़ी और बड़ी उत्तम कड़ी है और

उससे आधे प्रमाणकी जो हो वह यथायोग्य मध्यम और अधम होती है ॥ २२ ॥

कुटुंबसंस्थितिसमानन्यूनानाधिकापिन ॥
ग्रामाद्वहिवसेयुस्तेयेयेत्वधिकृतानृपैः ॥

भाषार्थ—और वह भूमि कुटुंबकी स्थितिके सम (बराबर) हो न उससे न्यूनहो और न कमहो—जिन २ को राजाने अधिकार दिया हो वे सब ग्रामसे बाहिर वसैं ॥ २३ ॥

नृपकार्यविनाकश्चिन्नग्रामेसैनिकोविशेत् ॥
तथानपीडयेत्कुत्रकदापिग्रामवासिनः ॥

भाषार्थ—राजाके कार्यके विना कोईभी सैनिक ग्राममें न धसै—और तिसी प्रकार किसीभी ग्राम वासीको पीडा (दुःख) न दें ॥ २४ ॥

सैनिकैर्नव्यवहरेन्नित्यंग्राम्यजनोपि च ।
श्रावयेत्सैनिकान्नित्यंधर्मशौर्यविवर्धनम् ॥

भाषार्थ—और ग्रामके जनभी सैनिकोंके संग प्रतिदिन व्यवहार न करें—और सेनाके मनुष्योंको शूरवीरता बढ़ानेवाले धर्मको नित्य श्रवण करवौ ॥ २५ ॥

सुवाद्यनृत्यगीतानिशौर्यवृद्धिकराण्यपि ।
युद्धक्रियांविनाशौर्ययोजयेन्नान्यकर्मणि ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ बाजे—नृत्य—गीत इनकोभी ऐसोंकोही सुनावै जिनसे शूरवीरताकी वृद्धि हो—और युद्धके काम विना शूरवीरको किसी अन्य काममें न लगावे ॥ २६ ॥

सत्याचारास्तुधनिकाव्यवहारेहतायदि ।
राजासमुद्धरेत्तास्तुतथान्यांश्चकृषीवलान्

भाषार्थ—जो सत्य आचरण करनेवाले धनवान् व्यवहारमें विगड़गये हों उनका और अन्य वैसेही किसानोंका राजा उद्धार करै अर्थात् धनदेकर उनकी सहायता करै ॥ २७ ॥

येसैन्यधनिकास्तेभ्योयथाह्यभृतिमावहेत् ।
सारदेश्यंचविंशांशमधिकंतद्धनव्ययात् ॥

भाषार्थ—जो सेनाके मनुष्य धनवान् हों उनसे यथायोग्य भृति ले—जो परदेशी हों उनसे तीसवां भाग वा अधिक धनके व्यय (खर्चा) के अनुसार ले ॥ २८ ॥

धनसंरक्षयेत्तेषांयत्नतःस्वात्मकोशवत् ।
संहरेद्धनिकात्सर्वमिथ्याचाराद्धनंनृपः ॥

भाषार्थ—और उनके धनकी अपने कोशके समान वडे यत्नसे रक्षा करै और जो धनवान् मनुष्य मिथ्याचारी हो राजा उसके सब धनको हरले ॥ २९ ॥

मूलाच्चतुर्गुणावृद्धिर्गृहीताधनिकेनच ।
अधमर्णान्नदातव्यंधनिनेतुधनंतदा ॥ ३० ॥

भाषार्थ—जब धनवान् मनुष्यने अधमर्णसे मूल धनकी अपेक्षा चौगुनी वृद्धि (व्याज) लेली होयतो वह धनीको कुछभी धन न दे ॥ १३३० ॥

इति शुक्रनीतिः समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास—

“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना—मुंबई.

